प्रकाशक
प्रसाद-परिषद्
की ओर से
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, बनारस-१

प्रबोधनी : २००६
मूल्य : ६)
प्रतियाँ : १५००

मुद्रक
श्रीमद्भागवत प्रेस,
सुड़िया, काशी।

प्रस्तुत ग्रंथावली

प्रस्तुत ग्रंथावली के संपादन में प्रत्येक पुस्तक के विभिन्न हस्तलेखों का आलोड़न करके पहले यह निर्णय किया गया है कि किसमें शुद्धता एवम् प्रामाणिकता अधिक है और फिर उसे प्रधान रखकर प्रायः अन्यों से पाठांतर दिए गए हैं। पर सर्वत्र उसी का पाठ मूल में न होकर यथास्थान अन्यों के उपयुक्त पाठ लिए गए हैं। 'घनआनंद-कवित्त' और 'सुजानहित' घनआनंद के कवित्तों के दो विभिन्न संग्रह हैं। इनमें से 'घनआनंद-कवित्त' मेरे विचार और अनुसंधान से प्राचीन है। फिर भी 'सुजानहित' में कवित्तों के पाठ उसी (सुजानहित) के हस्तलेखों के आधार पर रखे गए हैं। इस ग्रंथावली में 'घनआनंद-कवित्त' नहीं रखा गया है, 'सुजानहित' ही संमिलित है। वह पृथक् प्रकाशित किया जा चुका है।

विभिन्न हस्तलेखों के संकेत '१, २, ३' या 'क, ख, ग' आदि न रखकर उनके प्राप्तिस्थानों के संक्षेप से व्यक्त किए गए हैं। जैसे 'वृंदावन' के लिए 'वृंदा०', 'रामनगर' के लिए 'राम' आदि। ऐसा करने में लाघव तो नहीं है, पर भ्रम की संभावना कम है। पाठांतरों के लिए मूल में अंकों की योजना भी इसी से नहीं की गई। अंक आदि के टूट-फूट जाने से भी गड़बड़ हो सकता है। हाँ, लाघव के लिए मूल के लंबे पाठों का पूरा उद्धरण न देकर कुछ शब्द ही दिए गए हैं, फिर शून्य लगाकर आगे पूरा पाठांतर दिया गया है। ऐसा करने में कुछ पृष्ठ बढ़ गए हैं, पर सरलता अधिक है।

मूल के नीचे पहले छोटे भिन्न अक्षरों में पाठांतर हैं, जिनके लिए पद्यों की संख्या बिना कोष्ठक के दी गई है। फिर छोटे पर भिन्न अक्षरों में कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। पद्य की संख्या बड़े कोष्ठक से घिरी है। विस्तार-भय से बहुत कठिन शब्दों के ही अर्थों की योजना की गई है। घनआनंद व्रजभाषा-प्रवीण थे, इसका पता इस ग्रंथावली से विशेष रूप से लगता है। कुछ शब्दों के दिए गए अर्थ संदिग्ध हैं। व्रजभाषा-ज्ञान के

लिए भिखारीदास ने ब्रजबास को प्रधान नहीं माना, कवियों के काव्य को साधन कहा है। पर घनआनंद के बहुत से शब्द और प्रयोग अन्य कवियों में हैं ही नहीं।

सुजान-हित, कृपाकंद, प्रेमपत्रिका, वृंदावनमुद्रा में कुछ कवित्त-सवैये ओत-प्रोत हैं। उन्हें प्रत्येक ग्रंथ में ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। 'प्रेमसरोवर' पूरा का पूरा 'व्रज-व्यवहार' में २२५ से २३२ तक आ गया है। 'मनोरथमंजरी' पूरी 'पदावली' में भी आई है। फिर भी पुनरुक्ति बनी रहने दी गई है। 'पदावली' में कुछ दोहे भी आए हैं वे भी यथास्थान हैं। यह सब इसलिए किया गया जिससे ग्रंथावली अनुसंधान के उपयोग की भी बनी रहे।

शब्दरूपों में वहीं तक एकरूपता लाई गई है जहाँ तक ग्रंथ के 'वैज्ञानिक' संपादन का महत्त्व बना रहे और साहित्यिकता भी खंडित न हो। अतः शब्दों के विभिन्न रूप भी यथास्थान मिलेंगे। प्राचीन ग्रंथों में 'समान', 'सुजान' आदि शब्दों के रूप 'समांन', 'सुजांन' या 'समाँन', 'सुजाँन' भी मिलते हैं। ये रूप भाषा-विज्ञान की दृष्टि से काम के हैं—सानुनासिक 'न' से 'म्' या 'ज्' का 'आ' प्रभावित है। पर ऐसे रूप गृहीत नहीं किए गए, सार्वत्रिक प्रवृत्ति न होने से। 'माँ' की सानुनासिकता इसलिए नहीं छोड़ दी गई है कि 'म्' स्वयम् सानुनासिक है अतः उसमें अनुस्वार या अर्धानुस्वार व्यर्थ है, जैसा आधुनिक हिंदी में 'में' के संबंध में कुछ पंडितंमन्य समझने-करने लगे हैं। परमार्थतः 'अनुस्वार' या 'अर्धानुस्वार' 'म्' को नहीं उसके आगे के 'स्वर' को रंजित करता है। विस्तार-भीति से एकदेश का ही निरूपण करके विरत होता हूं, अन्यत्र भी ऐसी ही गति है।

ग्रंथ के अंत में केवल कवित्तों (मनहरण, सवैया, छप्पय) और पदों की सूची संधान-अनुसंधान के प्रेमियों के लिए जोड़ दी गई है। अन्य छंदों की सूची निष्प्रयोजन समझी गई। अतः पदावली या कवित्तों के बीच आए दोहे-सोरठे सूची में न मिलेंगे।

प्रस्तुत संस्करण में घनआनंदजी का चित्र भी दिया जा रहा है। यह चित्र इलाहाबाद से प्राप्त हुआ है और मुझे निंबार्क-संप्रदाय के वृंदावननिवासी ब्रह्मचारी

घनआनन्द

श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदांताचार्य से मिला है। इस चित्र पर यह छप्पय भी अंकित है—

"सकल-गुन-सुजान स्वामीजी श्रीआनंदघनजी।
वृंदावन में अटल है वास कियौ आनंदघन।
रचैं कटीली काव्य, स्तुति कछु परत न गाई।
अनुपम अक्षर जटित चोज चेटक गरुआई।
श्रवन परत हिय द्रवैं छकनि फूलैं सब भूलैं।
मानौ मोहन मंत्र महा सुधि की सुधि भूलैं।
गान-कला में अति कुशल सुनत बढ़ै आह्लाद मन।
वृंदावन में अटल है वास कियौ आनंदघन॥"

जिन महानुभावों ने अपने हस्तलेख या उनकी प्रतिलिपियाँ दीं, जिन संस्थाओं ने हस्तलेखों को देखने की सुविधा दी उन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता विनम्र भाव से व्यक्त करता हूँ। वृंदावनवाले हस्तलेख के लिए 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीविहारीशरणजी का, सरस्वती-भंडार (रामनगर) के हस्तलेखों के लिए हिज हाइनेस महाराज विभूतिनारायण सिंहजी का, अजयगढ़ के काव्यसंग्रहवाले हस्तलेख के लिए हिज हाइनेस सवाई महाराजा पुण्यप्रताप सिंहजू देव का, घनआनंद के चित्र तथा निंबार्क-संप्रदाय की बहुत सी सामग्री देने के लिए बड़ी कुंज (वृंदावन) के श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदांताचार्य का, लंदन के हस्तलेख का माइक्रोफिल्म ला देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० केसरीनारायणजी शुक्ल का, उस माइक्रोफिल्म के पठनार्थ अत्यंत शक्तिशाली मैग्नीफाइंग ग्लास देने के लिए के० कृष्णा एंड संस (चौक, बनारस) के संचालक श्रीविधानकुमार चक्रवर्ती का, समय-समय पर शब्दार्थ-संबंधी परामर्श के लिए श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी (रामनगर) का, घनआनंद-संबंधी भड़ौओं की प्रतिलिपि भेजने के लिए धर्मसमाज कालिज (अलीगढ़) के हिंदी-संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्रीमनोहरलालजी गौड़ का और अजयगढ़वाला हस्तलेख ले आने के लिए भारती महाविद्यालय (काशी विश्वविद्यालय) के प्राध्यापक श्रीविश्वंभरशरण पाठक का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस कार्य में मेरे कई शिष्यों ने छोटी-मोटी सहायता करके हाथ बँटाया। उनमें से पाठांतरों के मिलान के लिए गया कालिज के प्राध्यापक श्रीबटेकृष्ण और माइक्रोफिल्म से प्रतिलिपि करने में सहायता देने और प्रतीकानुक्रमणी प्रस्तुत करने के लिए काशी विश्वविद्यालय (हिंदी-विभाग—एम्० ए० कक्षा) के छात्र श्रीगोपालदास कार्य-गौरव के निमित्त उल्लेख्य और आशीर्वाद के विशिष्ट भाजन हैं।

इस ग्रंथावली के मुद्रित हो जाने से घनआनंद की कृतियों के संपादन का अनुष्ठान पूर्ण हो गया। अब रह गई उनके सौंदर्यविधान और भावनाभेद की सरणियों का परिचय करानेवाली समीक्षा, जिसके लिए मैं प्रतिश्रुत हूँ। उसकी संभावना भी शीघ्र ही करनी चाहिए, क्योंकि व्याधि-मंदिर में इस कार्य की परिपूर्ति में सतत श्रम के अनिवार्य परिणाम-स्वरूप कई व्याधियों के स्थापित हो जाने पर भी मैं स्फूर्ति का अनुभव करने लगा हूँ—

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते'

प्रबोधिनी, २००६
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित—(१) राजपुस्तकालय, रामनगर, बनारस राज्य।
(२) म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग।
(३) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली।

कृपाकंद—सरस्वती-भंडार, रामनगर, बनारस राज्य।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचंद्र वैद्य, भरतपुर।
(२) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।

इश्कलता—श्रीरामचंद्र सैनी, बेलनगंज, आगरा।

यमुना-यश—म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।

पदावली—मानस-संघ, रामवन, सतना।

आनंदघन-ग्रंथावली—श्रीव्रजनारी बिहारीशरण, वृंदावन।

व्रजस्वरूप (आनंदघन-ग्रंथावली)—(माइक्रोफिल्म, ब्रिटिश म्यूजियम, हस्तलेख-विभाग, १६४)—श्रीकेशरीनारायण शुक्ल, लखनऊ।

प्रकीर्णक—(१) आनंदघन-कवित्त, रत्नाकर-संग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
(२) घनआनंद-कवित्त, वही।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
(४) संग्रह, राजपुस्तकालय, अजयगढ़ राज्य, विंध्यप्रदेश।
(५) भड़ौआ, (याज्ञिक-संग्रह), श्रीमनोहरलाल गौड़, अलीगढ़।

मुद्रित

घनआनंद-कवित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

शृंगार-संग्रह—सरदार कवि।

सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चंद्र।

मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु महोदय।

'खोज' के विवरण—(अप्रकाशित भी)

सुजान-सागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।
विरह-लीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रसखान और घनानंद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रागकल्पद्रुम (तीनों भाग)—श्रीकृष्णानंद व्यास।
रागरत्नाकर—श्रीभक्तराम।
ब्रजनिधि-ग्रंथावली—('सभा' द्वारा प्रकाशित)
घन-आनंद—श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना (आधार—याज्ञिक-संग्रह)
ब्रज-भारती (पत्रिका)—संपादक, श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

संकेत

राम—रामनगर (बनारस राज्य) के हस्तलेख।
प्रयाग—प्रयाग (म्यूनिसिपल म्यूज़ियम) के हस्तलेख।
कवित्त—घनआनंद-कवित्त ('सभा') के हस्तलेख।
कांक०—कांकरौली, विद्या-विभाग के हस्तलेख।
भदा०—भदावर राज्य (नवगाँव, आगरा) के हस्तलेख।
संग्रह—विभिन्न संग्रहों के हस्तलेख या मुद्रित ग्रंथ।
सभा—'सभा' द्वारा मुद्रित ग्रंथ।
खोज—खोज-विभाग के मुद्रित और अप्रकाशित विवरण।
वृंदा०—वृंदावन, श्रीकिशोरीशरणजी वाला हस्तलेख।
लंदन—लंदन (ब्रिटिश म्यूज़ियम) का हस्तलेख (माइक्रोफिल्म)
भरत—भरतपुर, श्री[illegible]चंद्र वैद्य का हस्तलेख।
बेल०—बेलनगंज (आगरा), श्रीरामचंद्र सेनी का हस्तलेख।
याज्ञिक—याज्ञिक-संग्रह के हस्तलेख (बहुगुना के घन आनंद के आधार पर)।
सतना—सतना ([illegible]) की पद्यावली का हस्तलेख।
वही—पूर्वगामी संकेत के लिए।

सूचना—जहाँ पाठांतर में कोई संकेत नहीं वहाँ उत्तरगामी संकेत समझिए।

सूची

———

वाङ्मुख

शृंगारकाल

आधुनिक इतिहासों में हिंदी-साहित्य की लगभग एक सहस्र वर्षों की दीर्घ-कालीन परंपरा तीन भागों में विभाजित की गई है—आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल[1]। मध्यकाल को ऐतिहासिकों ने कई प्रकार से बाँटा। मिश्रबंधुओं ने इसके तीन उपविभाग किए—पूर्व, प्रौढ़ और अलंकृत[2]। पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने इसके दो खंड माने—पूर्व-मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल[3]। पहले का नाम भक्तिकाल और दूसरे का रीतिकाल रखा। 'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार दूसरा 'अलंकृत काल' है और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' के अनुसार 'रीतिकाल'[4]। मिश्रबंधुओं ने 'अलंकृत' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। संस्कृत में 'अलंकार' शब्द का व्यवहार साहित्य के समस्त शास्त्रपक्ष के लिए भी होता है[5]। 'अलंकारशास्त्र' कहने से रस, अलंकार, रीति, पिंगल आदि समस्त काव्यांगों का भी बोध होता है। हिंदी में संस्कृत के ही अनुगमन पर केशवदासजी ने 'अलंकार' शब्द 'कविप्रिया' में व्यापक अर्थ में स्वीकृत किया[6]। वहाँ काव्य की सारी सामग्री—वर्ण्य विषय और वर्णन-प्रणाली—'भूषण' अर्थात् अलंकार मानी गई है। संस्कृत में 'रीति' शब्द का व्यवहार ऐसे व्यापक अर्थ में नहीं होता, पर 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस,

---

१ मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु-कृत, चतुर्थ संस्करण (सं० १९९४); हिंदी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल कृत, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण (सं० १९९६); हिंदी भाषा और साहित्य—बाबू श्यामसुंदरदास-कृत प्र० संस्करण।

२ मिश्रबंधु-विनोद, चतुर्थ संस्करण।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण।

४ उत्तरवर्ती अन्य इतिहासों में भी शुक्लजी का ही विभाजन और नाम स्वीकृत हुआ है, अतः वे भी इसी में गतार्थ हैं।

५ आप्टे का संस्कृत-कोश पृ० १५६।

६ कविप्रिया, तृतीय प्रकाश।

अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है, जिसे हिंदी-काव्य-परंपरा का मान्य अर्थ समझना चाहिए । 'रीति' वस्तुतः 'काव्य-रीति' का संक्षिप्त रूप है[१] ।

साहित्य के विविध कालों का विभाजन और नामकरण किस आधार पर हो, यह विचारणीय है । मुख्यतया कृति, कर्ता, विषय और पद्धति को दृष्टिपथ में रखकर विभाजन तथा नामकरण होता है । साहित्य के किसी विशिष्ट काल या युग की एकरूप कृतियों के विचार से विभाजन और नामकरण का दृष्टांत है हिंदी का आदिकाल, जिसमें उपलब्ध अधिकांश रचनाओं का नाम 'रासो' है । अतः कुछ लोग उसे 'रासो-काल' कहना ठीक समझते हैं । कर्ताओं की एकरूपता को लक्ष्य करके उसे 'चारण-काल' भी कहा गया है[२] । प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उसका नाम 'वीरगाथा-काल' भी रखा गया है[३] । पर कभी-कभी विशिष्ट पद्धति की बहुलता भी नामकरण का हेतु होती है । हिंदी का आधुनिक काल 'गद्यकाल' कहा जाता है[४] । जब विभाजन और नामकरण का कोई मार्ग नहीं मिलता तब किसी विवेच्य काल का कोई विशिष्ट कवि या लेखक सामने किया जाता है ; अथवा राजनीतिक या सामाजिक इतिहास की शरण ली जाती है । अँगरेजी-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-शेक्सपियर-युग उत्तर-शेक्सपियर-युग आदि नाम[५] और उन्हीं की अनुकृति पर संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-कालिदास-युग, पर-कालिदास युग आदि नाम[६] पहले प्रकार के उदाहरण हैं । हिंदी में 'मिश्रबंधु-विनोद' के उपविभाग सौरकाल, तुलसी-काल, बिहारी काल इसी के बोधक हैं और आधुनिक काल के भारतेंदु-

---

१ भिखारीदास ने लिखा है—काव्य की रीति सिखी सुकबीन सों देखी सुनी, बहु लोक की बातें—काव्यनिर्णय, प्रथम उल्लास ।

२ [illegible] फ्राम हिंदी-लिटरेचर—लाला सीताराम संगृहीत, प्रथम भाग ।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल-कृत ।

४ मिश्रबंधु-विनोद तथा हिंदी-साहित्य का इतिहास ।

५ ए हिस्ट्री आफ इंगलिश लिटरेचर—श्री आर्थर काम्टन रिकेट-कृत (सन् १९३१) पृ० [illegible] ।

६ [illegible] लिटरेचर—श्री कीथ-कृत ।

युग, द्विवेदी-युग' खंड भी यही सूचित करते हैं। अँगरेजी-साहित्य के इतिहासों में एलिजाबेथन या विक्टोरियन पीरियड नाम दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी में अकबर-काल, दयानंद-काल नाम भी वैसे ही हैं।

विभाजन और नामकरण में एक ओर तो किसी विशेष काल या युग की व्यापक प्रवृत्तियों का बोध लक्ष्य होता है और दूसरी ओर अंतर्विभाग का सुभीता। जहाँ तक प्रवृत्तियों के बोध का पक्ष है इतर क्षेत्रों से नाम का ग्रहण आलस्य का सूचक है। साहित्य का इतिहास जनता की मानस-परंपरा का इतिहास होता है, उसे किसी शासक के नाम से प्रकट करना साहित्य की भाव-धारा के अज्ञान की घोषणा करना है। किसी विशिष्ट कवि या लेखक का नाम तब तक युग के साथ न जुड़ना चाहिए जब तक उसकी प्रवृत्तियाँ सर्वमान्य न हो गई हों। 'भारतेंदु-युग' और 'द्विवेदी-युग' नाम को इसी दृष्टि से उचित कहा जा सकता है। अंतर्विभाग के लिए ध्यान में रखना होगा—विभाग के नाम की व्याप्ति को। अंतर्विभाग व्यापक प्रवृत्तियों के स्कंधों का बोधक होता ही है, साथ ही किसी विभाग की दीर्घ सीमा के विवेचन की कठिनाई भी सुगम करता है। प्रत्येक काल के पृथक्-पृथक् युग या सामान्य प्रवृत्तियों के पृथक्-पृथक् स्कंध बतलाने और समझने की दृष्टि से अनिवार्य होते हैं। अतः विद्वान् ऐतिहासिक सदा विभाजन करके ही विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। शुक्लजी ने हिंदी-साहित्य का पूर्व-मध्यकाल विवेचन-सौकर्य के ही लिए चार अंतर्विभागों में विभक्त किया है। निर्गुण तथा सगुण धारा की दो-दो शाखाएँ मानकर ये नाम रखे हैं—ज्ञानमार्गी-प्रेममार्गी तथा रामभक्ति-कृष्णभक्ति।

इस प्रकार किसी साहित्य-काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। एक तो नाम सर्वसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अंतर्विभाग का मार्ग अनवरुद्ध रखे। सर्वसामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का संबंध किसी विशेष काल में प्रस्तुत ग्रंथराशि के बाहुल्य से है, समस्तता से नहीं। किसी काल में बहुत सी प्रवृत्तियाँ पूर्व काल की भी चलती रहती हैं और कुछ नए काल का आभास देती हुई भी सामने आती हैं। इसलिए बाहुल्य की दृष्टि ही सर्व-व्यापृत प्रवृत्तियों का प्रकृत रूप निर्दिष्ट कर सकती है।

---

१ आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास—श्री कृष्णशंकर शुक्ल-कृत।

इस विचार से साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचकों और राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शासकों का शासन सामने लानेवाले ऐतिहासिकों में बड़ा भेद है। परंपरा के अनुसार किसी देश के इतिहास का कर्ता किसी काल के नामकरण या विभाजन में बहुधा शासक-वर्ग के नाम या जाति का ही सहारा लेता है। यद्यपि जनता की मनोवृत्तियों की झलक भी उसे देनी पड़ती है, तथापि वह शासकों की व्यवस्था और कार्य-कलाप पर ही अधिक दृष्टि रखता है अतः उसे नामकरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। हिंदू-काल, मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल या अफगान-काल, मुगल-काल आदि नाम किसी गहरी छान-बीन के परिणाम नहीं। पर साहित्य में ये व्यक्तिवाचक या जातिबोधक नाम यदि कहीं रख भी दिए जायँ तो भी सर्वत्र यही ऋजु पथ न मिलेगा। साहित्य जनता के मन की छाया है और जनता का संघटन सब प्रकार की जातियों, वर्गों आदि से होता है। इसी से साहित्य में एक ही प्रकार की रचना प्रस्तुत करनेवाले विभिन्न जातियों, वर्गों, संप्रदायों आदि के लोग हो सकते हैं क्या, होते ही हैं। हिंदी-साहित्य के किसी काल या युग की रचना उठा लीजिए, प्रमाण मिल जायगा। हिंदी के आधुनिक काल में एक ही प्रकार की रचना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी जाति तथा मत के भारतवासी मिलते हैं। वस्तुतः साहित्य भेद में अभेद की स्थापना करनेवाला होता है। इसी से किसी देश की सार्वजनिक एकता का प्रमाण होता है एक साहित्य और एक भाषा। इसलिए विभागोपविभाग के नामकरण में कवियों और लेखकों की सर्वनिष्ठ प्रवृत्तियाँ ही प्रयोजनीय होती हैं। अतः शासकों की एकरूपता के अनुसार नामकरण, यदि कहीं ऐसी एकरूपता मिले भी तो, विशेष उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इसलिए अंत में कृति, विषय और पद्धति की एकरूपता ही बच रहती है।

अब देखना चाहिए कि साहित्य में प्रवृत्ति की एकरूपता का कौन सा लक्षण सूचक [illegible]—कृति, पद्धति या विषय। 'भाषा' की भाँति सदा कृति की एकरूपता नहीं रहा करती, अतः यह ढंग भी बहुत स्थूल लक्ष्य का द्योतक मात्र है। [illegible] एक ही समय में [illegible] होती हैं। आधुनिक काल 'गद्य-काल' भी कहा जाता है पर पद्य की रचना भी प्रचुर परिमाण में हो रही है।

इसी गद्य-काल में 'छायावाद' का डंका पिट चुका है, पर उसकी समाई गद्यकाल में कहाँ है? इस प्रकार व्याप्ति निर्दुष्ट नहीं रह जाती। वस्तुतः इस प्रकार के नामकरण तभी ठीक माने जा सकते हैं जब साहित्य के वर्ण्य विषय की एकरूपता किसी प्रकार घटित न होती हो।

इससे निश्चित है कि साहित्य के इतिहासों में विभाजन और नामकरण का सर्वोत्कृष्ट ढंग वर्ण्य विषय की व्याप्ति के अनुसंधान से संबद्ध है। पर वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी वस्तुतः दो पक्ष हो जाते हैं—एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर। हिंदी के आदिकाल को ही लीजिए। इस काल में वीर पुरुषों की गाथाओं का वर्णन करनेवाले ग्रंथ अधिक मिलते हैं। अतः वीरगाथा उनका वर्ण्य हुआ अर्थात् इन ग्रंथों में बाह्यार्थ वीरकथा है। पर कवियों ने जिस भाव या रस की अभिव्यक्ति लक्ष्य करके ये गाथाएँ काव्यबद्ध की वह भी तो वर्ण्य ही है। वह बाह्यार्थ नहीं पर काव्यार्थ तो है ही, अर्थात् प्रवृत्ति का मानस या आभ्यंतर पक्ष है। अतः इस दृष्टि से यदि 'आदिकाल' को 'वीरगाथा-काल' न कहकर 'वीररस-काल' या संक्षेप में 'वीरकाल' कहा जाय तो कोई हानि नहीं। भारतीय दृष्टि से साहित्य या काव्य का प्रतिपाद्य भाव या रस ही होता है। इसी से उसमें कर्ताओं के मानस-पक्ष का प्रसार दूर तक दिखाई पड़ता है अर्थात् उसकी व्याप्ति प्रकृत्या अधिक होती है। 'भक्तिकाल' नाम में 'भक्ति' शब्द की व्याप्ति उसके भाव होने से अधिक है। यदि 'रीतिकाल' नाम की ओर देखते हैं तो उसमें रीति अर्थात् रस, अलंकार, शब्दशक्ति, नायक-नायिका-भेद, पिंगल आदि काव्यरीति अवश्य वर्ण्य विषय ही है, पर 'रीति' शब्द बाह्यार्थ का ही बोधक है, आभ्यंतरार्थ का नहीं। उस काल का आभ्यंतर वर्ण्य 'शृंगार' था। 'रीति' की सीमा में जितनी कृतियाँ समाविष्ट हैं वे अधिकतर 'शृंगार' की हैं। थोड़ी सी वीररस या शुद्ध भक्ति की रचनाएँ शृंगार की सीमा में आबद्ध नहीं होतीं। जिन्होंने 'नवरस' का प्रतिपादन लक्ष्य बनाया उन्होंने भी शृंगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विस्तार से 'शृंगार' का ही वर्णन किया। हाँ, गिनने के लिए एक एक उदाहरण अन्य रसों का भी रख दिया, और प्रतिज्ञा पूरी की। केशव, देव, पद्माकर, दास आदि की भी, जो अच्छे प्रतिपादक आचार्य हैं, यही दशा है, औरों का कहना ही क्या? वीररस की रचना करनेवाले शृंगार रस से

कोरे हों ऐसा भी नहीं है। 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवभूषण' में की सारी रचना वीररस में की, पर उनके बहुत से फुटकल छंद शृंगार के भी मिलते हैं, ये 'रीति' के पूरे कायदे-कानून के अनुसार निर्मित हैं। बहुत संभव है, उन्होंने रस या नायिका-भेद का कोई ग्रंथ ही लिखा हो, पर अब न मिलता हो। 'भूषण उल्लास', 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण-हजारा' नाम से जो इनके ग्रंथ जनश्रुति में सुने जाते हैं वे वीररस के होंगे ऐसी संभावना नहीं प्रतीत होती। उनके फुटकल शृंगार के छंद इन्हीं ग्रंथों के होंगे, अतः भूषण की यदि सारी रचना मिल जाय तो कदाचित् वे बाहुल्य के विचार से शृंगार के ही कवि ठहरेंगे। शिवाजी के दरबार में पहुँचने से पूर्व वे कई दरबारों में गए थे। उन्होंने वहाँ शृंगार की ही रचना से श्रीगणेश किया होगा। उनके भाई चिंतामणि, मतिराम, जटाशंकर भी तो शृंगार रस का ही चषक भरते रहे!

यदि रीतिकाल के समस्त ग्रंथों की छान-बीन की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के ग्रंथों में शृंगार तो किसी-न-किसी रूप या परिमाण में अवश्य मिल जाता है अर्थात् दूसरे रस का वर्णन करनेवाले भी शृंगार का वर्णन अवश्य करते थे, पर शृंगार की अभिव्यक्ति करनेवाले बहुत से ऐसे मिलेंगे जिन्होंने दूसरे रसों का नाम भी नहीं लिया। नायक-नायिका भेद के ग्रंथों की तो कोई बात ही नहीं, वे शृंगार के ही ग्रंथ हैं, शृंगार का आलंबन-पक्ष ही सामने रखते हैं। नख-शिख के ग्रंथ भी ऐसे ही हैं। षड्ऋतु के ग्रंथों में शृंगार का ही उद्दीपन विभाव लिया गया है। अलंकार, शब्दशक्ति और पिंगल के ग्रंथों में सर्वत्र अधिकतर उदाहरण शृंगार के हैं। कुछ पिंगल या अलंकार के ग्रंथ ऐसे अवश्य हैं जिनमें आश्रयदाताओं के शौर्य की गाथा है। पर 'भूषण' के 'शिवभूषण' या उसी प्रकार के दो-एक ग्रंथों को छोड़कर ये ग्रंथ शृंगार रस से शून्य हों, ऐसा नहीं है। भक्ति के ग्रंथ हैं तो भक्ति के ही, पर वे शृंगार-रहित हैं, यह नहीं कह सकते। काव्य-दृष्टि से उनमें राधा-कृष्ण के शृंगार की कथा ही तो है। 'सूरदास' के 'सूरसागर' में गोपीकृष्ण का शृंगार है, इसे तो मानना ही पड़ेगा। वह लौकिक शृंगार न सही, अलौकिक सही, पर है तो शृंगार ही। इस प्रकार रीति के अधिकांश ग्रंथ तो शृंगार-प्रधान हैं ही, और ग्रंथ भी शृंगार-संवलित हैं।

रीतिकाल में कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने रीतिशास्त्र पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। पर वे रीति के ही प्रतिनिधि कवि माने गए हैं, क्योंकि इनपर रीतिशास्त्र की भरपूर छाप है। इनमें मुख्य विहारी हैं। विहारी ने अपनी सतसई रीति-ग्रंथ के रूप में नहीं प्रस्तुत की, पर उनकी सारी रचना टीकाकारों ने शृंगार के आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव आदि के भेदोपभेदों में खतिया कर रख दी है। अतः लक्षण-ग्रंथ लिखनेवालों से ऐसी रचनाएँ पृथक् अवश्य हैं। हाँ, इन्हें हम रीतिबद्ध रचना ही मानेंगे। जैसे रीति-ग्रंथ के प्रणेताओं ने शृंगार के भेद का क्रमबद्ध वर्णन किया है वैसे इन्होंने क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया और समग्र भेदों के उदाहरण जुटाने पर दृष्टि नहीं रखी। साधारणतः दोनों प्रकार की रचनाओं में कोई भेद नहीं लक्षित होता। पर ध्यान देने से भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रीति-ग्रंथ लिखनेवाले शास्त्र में गिनाई सामग्री की योजना करने में सावधान रहते थे। उन्हें लक्ष्य और लक्षण का समन्वय भी करना पड़ता था, पर 'सतसई', 'सौसई' या 'हजारा' लिखनेवाले रीति की सामग्री का उपयोग अपने ढंग से करते थे। यही कारण है कि इन्हें कहने के लिए कुछ स्वच्छंदता मिल गई थी। इसी से सतसई आदि प्रस्तुत करनेवालों की रचना रीति-ग्रंथ लिखनेवालों से प्रायः उत्कृष्ट दिखाई देती है। बंधन ढीला करके ये कविता में रमणीयता लाने में अवश्य सफल हुए। ऐसे कवियों को रीति का प्रतिनिधि कहने में इसी से विशेष तर्क से काम लेना पड़ा है। यह कहना पड़ा है कि "विहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है, पर 'नखशिख', 'नायिकाभेद', 'षट्ऋतु' के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारों ने दोहों को इस प्रकार के साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों की रचना करते समय विहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसी लिए हमने विहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर उक्त काल के प्रतिनिधि-कवियों में ही रखा है।"[१] टीकाकारों या संग्रह-कर्ताओं के अनुसार चलें तो बहुतों को रीतिकाल का प्रतिनिधि मानना पड़ेगा। क्योंकि उन्होंने तो आलम, ठाकुर, घनआनंद आदि की भी रचनाएँ नायक-नायिका-भेद के अंतर्गत ही खींचकर बैठाई हैं, फिर

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, १९९९, पृ० २७९।

भी बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि माननेवाले शुक्लजी ने इन्हें उस काल के फुटकल कवियों की श्रेणी में आसन दिया है। ठाकुर आदि की कुछ रचनाएँ लक्षणों से समन्वित होने का आभास मात्र देती हैं। पर ये 'रीति' के प्रतिनिधि कवि नहीं हैं। यहाँ यह प्रतिपाद्य नहीं है कि बिहारी रीति के प्रतिनिधि नहीं थे। कहना इतना ही है कि 'रीतिकाल' की सीमा बढ़ाने के लिए 'रीति' के नाम पर उन रचनाओं को भी समेटना पड़ा है जो रीतिशास्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नहीं निर्मित हुई थीं। दूसरे शब्दों में इन कवियों का साध्य शृंगार था, रीति से ये कभी-कभी साधन का काम अवश्य लेते थे। यदि शृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तर्क देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फेंके हुए और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में आपसे आप आ जाते।

'रीतिकाल' वस्तुतः उन ग्रंथों के समुदाय का बोधक है जिनकी राशि 'रीति' के नाम पर एकत्र हुई। विचार करने पर रीति-ग्रंथ-प्रणेता अधिकतर आचार्य नहीं सिद्ध होते। इन्होंने रीति का पल्ला सहारे के लिए पकड़ा, कहना ये चाहते थे शृंगार ही। किसी ने अलंकारों की माला बनाई, किसी ने पिंगल का प्रस्तार किया, किसी ने रसभाव की धारा बहाई और किसी ने सीधे नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षड्ऋतु बारहमासा आदि के बने बनाए साँचे ले लिए। सच पूछिए तो इन्हें रीतिशास्त्र का विवेचन करने के लिए बुद्धि दौड़ाने की आवश्यकता ही कहाँ थी, संस्कृत में शास्त्र-पक्ष की सारी सामग्री जुटी-जुटाई रखी थी, उसे उठाकर हिंदी-पद्यों में ढाल भर देना था। यदि 'रीति' का विवेचन इनका साध्य होता तो ये संस्कृत के आचार्यों की भाँति प्रत्येक विषय के विमर्श में लगते, दोहों में लक्षण देकर काम चलता न करते। शास्त्र के पुराने विवेचक पहले से प्रस्तुत ग्रंथों या विवेचित पक्षों को हृदयंगम करते थे, तब उनपर अपना स्वच्छंद मत प्रकट करते थे। हिंदी के ये आचार्य तो काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यादर्श, रसतरंगिणी, रसमंजरी, चंद्रालोक, कुवलयानंद, वृत्तरत्नाकर में से एक या दो ग्रंथ सामने रख लेते और लक्षणों का टेढ़ा-सीधा पद्यबद्ध उल्था करके हिंदी में संस्कृत-उदाहरण से मिलता जुलता दूसरा उदाहरण गढ़ देते थे। कहीं-कहीं लक्ष्य का भी उल्था ही दिया जाता था। फल यह हुआ कि जहाँ रीतिकाल के

विवेचन का अल्प प्रयास दिखाई भी पड़ा पर वहाँ भी सारा ग्रंथ भ्रांति-शून्य न बन सका। विषय पूर्णतया हृदयंगम करके यदि ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते तो ऐसा प्रायः न होता। केशव, देव, दास, पद्माकर ऐसे आचार्यों से भी संस्कृत की विवेचित सामग्री का संग्रह करने में भ्रांति हो गई है, फिर औरों की बात ही क्या! जैसा इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है ये सबके सब वस्तुतः कवि थे। इनका प्रधान वर्ण्य विषय शृंगार ही था। इसी से नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षट्ऋतु, बारहमासा, रस आदि के रीतिग्रंथ ही प्रचुर परिमाण में प्रणीत हुए, शब्दशक्ति ऐसे दुरूह विषय के ग्रंथ दो तीन ही मिलते हैं। अलंकार के ग्रंथों की संख्या अधिक अवश्य है पर शृंगार से ही वे भी भरे हैं।

यदि तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते हैं तो भी इनका प्रतिपाद्य शृंगार ही ठहरता है। इस काल के अधिकांश कर्ता दरबारी कवि थे। कोई देशी नरेशों की दरबारदारी करता था तो कोई विदेशी या मुसलमान बादशाहों, शाहों या दीवानों की। देशी दरबारों या सभाओं में हिंदी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से जोड़-तोड़ भिड़ाना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृतवाले शृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे, जिसमें नायक-नायिका, ऋतु-वर्णन, नख-शिख आदि की छटा दिखाते थे, हिंदीवालों को भी वही करना पड़ता था। नरेश ही नहीं, छोटे-छोटे ताल्लुकेदार और जमींदार तक ऐसी रचना के शौकीन हो गए थे। कवि-कर्म करनेवालों के ये ही तो आश्रय-दाता थे। मुसलमानी दरबारों में फारसी या उर्दू की रचना प्रेम का ही बँधा-बँधाया विषय (थीम) लेकर चलती थी। उसके जोड़ में भी हिंदी-कवियों ने शृंगार या नायक-नायिका-भेद की रचना सामने की। उधर से वे शेर पढ़ते या गजल गाते थे, इधर से ये कवित्त, सवैया या दोहा भनते थे। मुक्तक-रचना के आधिक्य का कारण यह दरबारदारी ही है, क्योंकि मुक्तक द्वारा ही थोड़े में रस के छींटे उछाले जा सकते थे। दरबारी कवियों ने प्रबंध छुआ तक नहीं, उनका काम मुक्तकों से ही चल जाता था।

'रीतिकाल' नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि उस काल के अच्छे-अच्छे शृंगारी कवियों को छाँटकर पृथक् करना पड़ा। आलम, ठाकुर,

घनआनंद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमंग-भरे कवि किसी रीति-ग्रंथकार से काव्योत्कर्ष में कम नहीं हैं, पर 'रीति' की सीमा में ये न समा सके। रीतिकाल की शृंगारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालों ने भी लक्षित की है, और 'अलंकृत काल' नाम रखनेवालों ने भी। पर रीति या अलंकारशास्त्र की ग्रंथ-राशि ने एकत्र होकर इन्हीं नामों की ओर उन्हें आकृष्ट किया। फलतः शृंगार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के संबंध में पीछे छूट गई। बात यहीं तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बड़ी कठिनाई काल के विभाजन की आ गई, पर गृहीत नामों ने यह मार्ग छेंक रखा। 'अलंकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमें भेद का स्पष्ट संकेत कोई नहीं है। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट ,स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने समस्त काव्यांगों का वर्णन करनेवाले और किसी एक अंग का वर्णन करने-वालों को पृथक् किया है। पर सभी काव्यांगों के विवेचकों ने भी एक-एक काव्यांग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे दास, चिंतामणि आदि ने। अतः रीति में उपविभाग का मार्ग संकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखें, अलंकृत काल और रीतिकाल नाम व्याप्ति के बोधक नहीं प्रतीत होते। उन्हें हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की स्पष्ट अपेक्षा जान पड़ती है।

शृंगारकाल नाम स्वीकृत करने से वर्ण्य विषय की व्यप्ति के बोध के साथ ही फुटकल खाते से निकलकर कई उत्कृष्ट कवि असल खाते में आ जाते हैं। विभाजन का मार्ग सुस्पष्ट और सरल हो जाता है। रीति की सारी सामग्री रीति-ग्रंथकारों का साधन थी, वह उनकी काव्य-सामग्री थी, शास्त्र-सामग्री नहीं। शृंगारिक रचना रीतिबद्ध थी। रीतिबद्ध कृति उन्हीं की नहीं थी जो लक्षण लिखकर और लक्ष्य बनाकर उसमें उसका विनियोग करते थे, प्रत्युत उनकी कृति भी रीतिबद्ध ही थी जो लक्षण-ग्रंथ न रचकर रीति का संभार लेकर केवल लक्ष्य प्रस्तुत करते थे, जैसे बिहारी, रसनिधि आदि। इन्होंने लक्षण क्यों न लिखे, लक्ष्य ही क्यों प्रस्तुत किया? ये वस्तुतः लक्षण के बखेड़े में फँसना नहीं चाहते थे। कुछ चुने हुए प्रसंगों पर ही कविता रचना चाहते थे। ये रीति का बंधन

ढीला करके चलते थे, यद्यपि वे उससे मुक्त नहीं हुए थे। इसी से लक्षणबद्ध रचना में इनकी कविता अपेक्षाकृत उत्कृष्ट है। लक्षण और लक्ष्य का समन्वय करने में काव्योत्कर्ष को क्षति पहुँचती थी। इसका पक्का प्रमाण 'भूषण' की रचना में मिलता है, जिनकी फुटकल रचना उनके लक्षण-ग्रंथ 'शिवभूषण' की कविता से उत्तम है। लक्षणकार लक्षण से तिलभर हट नहीं सकता। वह रत्तीभर भी हटा नहीं कि लक्ष्य बेमेल हुआ नहीं। लक्षण-ग्रंथों में ऐसी बेमेल रचनाएँ भी कभी कभी मिल जाती हैं। इसका कारण यही होता है कि कवि की वह लक्षणानुगामिनी निर्मिति न होकर पहले से स्वीकृति उक्ति होती है जिसे वह बरबस वहाँ खोंसना चाहता है। रीति की केवल प्रेरणा ग्रहण करनेवाले की कविता में ऐसा न होगा। रीति उसके ध्यान में रहे, रहा करे, पर उक्ति बाँधने में उसे एकदम बँध ही न जाना पड़ेगा। बिहारी की रचना में रीति का आधार अवश्य है पर उक्ति का वैशिष्ट्य उन्हें लक्षणबद्ध कर्ताओं से पृथक् कर देता है। बिहारी आदि को रीतिबद्ध मानने का हेतु था बंधन बाँधे रहना ही, भले ही वह ढीला हो। उन्हें रीति की अपेक्षा अवश्य थी, कम से कम उन्होंने उसकी उपेक्षा नहीं की। बिहारी की सतसई में खंडिता के उदाहरण बीसों हैं। अधिक ऐसे मिलेंगे जिनमें केवल आँखों की ललाई का वर्णन है। लक्षणानुधावन करनेवालों को संभोग-चिह्नों का लंबा-चौड़ा वर्णन करना पड़ता है। बिहारी उक्तिवैचित्र्य पर विशेष ध्यान देनेवाले थे, अतः उन्होंने खंडिता के लक्ष्य में प्रमुख चिह्नों का तिरस्कार करके केवल ललाई पकड़ी और ऐसी उक्तियाँ बाँध दीं—

रह्यौ चकित चहुँधा चितै, चित मेरो मति भूलि।
सूर उदै आए रही, दृगनि साँझ सी फूलि॥

इन कवियों से वे सरलतापूर्वक पृथक् किए जा सकते हैं जो रीतिबद्ध रचना को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। वे रीति में बँधना नहीं चाहते थे। इसी से इन्हें रीतिमुक्त या 'स्वच्छंद' कवि कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। वे रीतिबद्ध कवि जो बँधी बँधाई उक्तियाँ सुनाते या शास्त्र-कथित सामग्री के भरोसे पांडित्य प्रदर्शित करते थे, इन्हें नहीं रुचते थे। सीखी-सिखाई काव्य-सामग्री के बल पर छंद जोड़नेवालों को 'ठाकुर' ने कविता के साथ खेल करने या कविता को खेल समझनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पबृच्छ कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेर औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।

कुछ रटी-रटाई उपमाएँ जोड़ने या प्रशस्ति करनेवाले काव्य-मर्मज्ञों की सभा में डेला सा फेंका करते थे। स्वच्छंद कवियों को इन कृतियों से चोट लगती थी। और वे इन्हें मिट्टी ही समझते भी थे। घनआनंद के कवित्तों के संग्रहकर्ता व्रजनाथ ने ऐसी रीतिबद्ध रचना को 'जग की कविता' अर्थात् साधारण रचना कहा है—(जग की कविताई के धोखे रहै ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी) और उससे घनआनंद की कविता को गूढ़ और पृथक् घोषित किया है। स्वच्छंद कवियों की रचना का वैशिष्ट्य उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से बतलाया है। घन-आनंद के काव्यमीमांसक के गुण निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने घनआनंद ऐसे रीतिमुक्त कवि के काव्योत्कर्ष का रूप इस प्रकार उद्घाटित किया है। इसे स्वच्छंद कवियों का स्वरूप-लक्षण समझना चाहिए—

नेही महा व्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद भावना-भेद-स्वरूप कों ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियौ, बिछुरें मिलें प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कबित्त बखानै॥

पद्य में प्रयुक्त 'सुछंद' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'सुछंद' शब्द का तात्पर्य है—रीति से स्वछंद, रीतिमुक्त। रीतिबद्ध या शास्त्रबद्ध (क्लासिकल) के बंधन से छूट कर ही ये रीतिमुक्त या स्वच्छंद (रोमांटिक) होनेवाले कवि थे। उनके अनुसार ये प्रेम की अनेक अंतर्वृत्तियों के उद्घाटक काव्यगत रमणीयता के नाना भेदों के विधायक, संयोग और वियोग की अनेक प्रेमदशाओं के मार्मिक द्रष्टा, भावनाभेदों के सहृदय चितेरे, प्रेमरस से सिक्त भावुक, मिलन और विरह की

हृद्गत अशांति के अनुभावक और भाषा-प्रयोग की सीमा के सच्चे ज्ञाता थे। ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करनेवाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकनेवाले और काव्य-विभूति द्वारा काव्य-मर्मज्ञों को प्रभावित करनेवाले थे। ये प्रेम के पंथ पर अग्रसर होनेवाले, रचना में मोतियों की सी निर्मल वाग्धारा प्रवाहित करनेवाले और उससे काव्य-माला गूँथनेवाले थे—मनमोहिनी और प्रभावुक। काव्य-कोविदों की बृहत्सभा में ये काव्य-सौष्ठव के प्रदर्शन के अभिलाषी थे। 'ठाकुर' कहते हैं—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरि-नाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।
ठाकुर सो कवि भावत मोहिं जो राजसभा मैं बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै॥

ये अनूठी उक्तियाँ बाँधनेवाले थे पर हृदय से संपृक्त। जूठी उक्ति का पुनर्विधान या पिष्ट-पेषण इन्हें अरुचिकर था। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध रचना में हृदय-पक्ष दब गया था, कला-पक्ष उभर आया था। मस्तिष्क के पूरे व्यायाम के साथ उनका रीतिबद्ध काव्य अखाड़े में उतरता था। 'जग के कवि' काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गए, उसके अंतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से 'स्वच्छंद कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की सँकरी गली में धक्कमधक्का करना नहीं। ये कविता की नपी-तुली नाली खोदनेवाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करनेवाले या मानस-रस का उन्मुक्त दान देनेवाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (कान्सस स्टेट) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अंतःसंज्ञा (सबकान्सस स्टेट या अनकान्सस स्टेट) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्भूत होती थी, घनआनंद ने स्पष्ट कहा है—

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन्नि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चटावत।
हैं घनआनँद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत॥

'लोग' अर्थात् रीतिबद्ध कवि रच-रचकर कविता बनाने, शब्द-रत्न की पच्चीकारी करने में, मरते पचते रहते थे, पर रीतिमुक्त कवि का काव्यस्रोत स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, पर रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवि अपनी भावधारा में स्वतः बह जाता था। इस प्रकार दोनों का अंतर स्पष्ट है। रीतिमुक्त कवियों में भी अंतर्भेद हो सकते हैं। इसके लिए शृंगारकाल के पूर्व तरंगित होनेवाली काव्यधाराओं की ओर दृष्टि करनी होगी। भक्तिकाल में एक ओर तो सगुण-काव्यधारा वह रही थी और दूसरी ओर निर्गुण-काव्यधारा। पहली का प्रसार भारतीय काव्य-परंपरा के प्रकृत राजपथ पर हुआ था और दूसरी का विदेशी सूफी रहस्य-मार्ग पर। स्वयं हिंदी के कवि सूफी 'प्रेम की पीर' का उद्घाटन प्रेममार्गी शाखा में कर ही रहे थे। कबीर आदि संतों की ज्ञानमार्गी शाखा भी सूफियों की 'प्रेम की पीर' से प्रभावित थी। सूफियों की इस 'प्रेम की पीर' का हिंदी-काव्य पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। आगे चलकर सगुण धारा की कृष्ण-भक्ति-शाखा तक इससे विशेष प्रभावित हुई। नागरीदास (सावंतसिंह), कुंदनशाह आदि में तो यह 'प्रेम की पीर' इतनी व्याप्त हुई कि उसका विदेशी रूप तक छिप न सका। सूफी प्रेम की पीर ही नहीं, फारसी काव्य के प्रेम-वैषम्य ने भी कवियों को छोप रखा। व्यापक प्रभाव का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि शुद्ध भारती काव्य-परंपरा में जब इसकी समाई न हो सकी तो यह जनता की संगीत-परंपरा में भरपूर प्रसरित हुआ। लावनी और ख्याल में लोकभाषा रेखता या खड़ी बोली के सहारे इसकी दौड़ दूर तक हो गई। इसका स्पष्ट रूप है लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में लय। इश्क-मजाजी की इश्क-हकीकी में परिणति। आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारती प्रेम-पद्धति के प्रतिनिधि हैं, पर रसखानि, घनआनंद और बोधा में वह अपनी झलक मारती है। रसखानि और घनआनंद ने बड़े ढंग से इसे ग्रहण किया है। पर बोधा इसे अपने रंग में रँग न सके। उन्होंने तो बार बार उसकी डुग्गी पीटी है—

इस्कमजाजी मैं जहाँ इस्कहकीकी खूब।—(विरह-वारीश)

रसखानि ने भी यही कहा है, इससे भी स्पष्ट, पर ढंग से—

आनँद-अनुभव होत नहिँ विना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥

घनआनंद ने भी लौकिक प्रेमलीला को अलौकिक प्रेमलीला का कण कहा है, किंतु रसखानि और घनआनंद दोनों ने कृष्णप्रेम में इसे छिपा रखा। बोधा ने इधर इतना ध्यान नहीं दिया। वे कृष्णभक्ति में लीन नहीं हुए। यदि कृष्ण-भक्ति का अवलंब वे लेते भी तो उनकी प्रवृत्ति और रंग-ढंग से यह जान पड़ता है कि बहुत कुछ नहीं तो कुछ कुछ फुंदनशाह की सी वृत्ति होती। बोधा प्रेम की प्रकृत गंभीरता को प्रायः सँभाल नहीं पाते। कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति का विकास आचार्यों ने लौकिक क्रीड़ा से संबद्ध रखकर किया। इसलिए सूफियों की 'प्रेम की पीर' को उसी में लय हो जाने का अवसर मिल गया। घनआनंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम (इश्कमजाजी) को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला (इश्कहकीकी) का क्षुद्र अंश कहा है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
विचार वापुरो हहरि वार ही तेँ फिरि आयौ है।
ताही एकरस है विवस अवगाहैँ दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैँ देखेँ सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसेँ मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥

संसार में फैला प्रेम-व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जलकेलि किया करते हैं। वही कण घनआनंद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियों की भाँति घनआनंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रह्म-प्रेम का आभास भी दिया है—

उघरी जग छाय रहे घनआनँद चातिक लौँ तकिये अब तौ।[1]

सूफियों का ब्रह्म-विरह इस सवैये में स्पष्ट है—

---

१ घनआनंद-कवित्त—८०।

अंतर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं॥
जौ घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥

इसलिए इन्हें रहस्योन्मुख प्रेमी कवि तथा दूसरों को उदात्त प्रेम-लीन शुद्ध प्रेमी कवि कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगारकाल का विभाजित रूप यों हुआ—
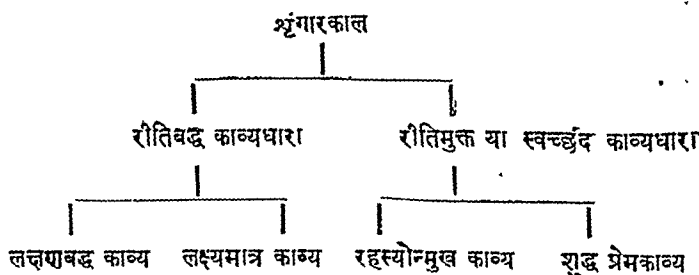
साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन ऐसा सटीक नहीं हो सकता कि किसी निश्चित संवत् से नए युग या काल का प्रवर्तन मान लिया जाय। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक संवत् से पूर्ववर्ती काल की प्रधान प्रवृत्ति समाप्त हो गई और परवर्ती काल की नई विशिष्ट प्रवृत्ति का उद्भव हो गया। वस्तुतः साहित्य में कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं; उन्हीं में से किसी काल में कोई प्रवृत्ति प्रधान होकर और अनेक रूप-रंग पकड़कर व्याप्त हो जाती है। जिस साहित्य की परंपरा प्राचीन होती है उसमें परवर्ती काल में पहले से जगी हुई प्रवृत्तियों में से कोई एक किसी समय प्रबल होकर छा जाती है और अन्य क्षीण होकर धीरे-धीरे दब जाती हैं। ऐतिहासिकों ने साहित्य-धारा को पहाड़ी सरिता का रूपक इसी से दिया है। पर्वत से उद्गत सरिता आरंभ में लघु-लघु कुल्याओं के रूप में बहती है और फिर परस्पर मिलकर वे ही वन्याएँ सरिता बन प्रसरित होती हैं। पटपर (समतल) पर पहुँचकर सरिता का पाट बढ़ जाता है, कभी-कभी ढाल के कारण कई धाराएँ भी हो जाती हैं, समय-समय पर सहायक नदियाँ भी मिलती रहती हैं। वस्तुतः साहित्य में भी जो प्रवृत्ति एक बार जागरित और विकसित हो जाती

१ वही, १६५।

है वह सदा के लिए लुप्त या म्लान नहीं हो पाती। हिंदी-साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। इसमें जो प्रवृत्ति एक बार जागरित हुई वह किसी न किसी रूप में निरंतर बनी रही। किसी काल में जब कोई प्रवृत्ति प्रधान होने लगती है तब कुछ समय तक तो पूर्ववर्ती प्रमुख प्रवृत्ति के साथ साथ चलती है पर आगे बढ़कर नूतन प्रवृत्ति प्रधान और पूर्ववर्ती प्रवृत्ति गौण हो जाती है। शृंगारकाल के पूर्व भक्ति की प्रवृत्ति प्रधान थी। पर भक्ति का प्राधान्य होने के साथ ही शृंगार भी अपना सिर उठाने लगा और आगे चलकर वह सर्वांग में उत्थित दिखाई पड़ा। भक्ति की रचना इसके साथ ठिगनी दिखाई देने लगी, पर भक्ति का लोप नहीं हुआ।

शृंगार की प्रवृत्ति का लोप साहित्य में कभी नहीं होता। हिंदी की ही दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राकृत और अपभ्रंश-काल में शृंगार और वीररस की धाराएँ प्रवाहित थीं। हिंदी के वीरगाथा-काल या वीरकाल में शृंगार या प्रेम शौर्य या उत्साह से संपृक्त था। वीरता का जो प्रदर्शन 'रासो'-ग्रंथों में हुआ वह प्रीति और वीरता की गंगा-जमुनी धारा के रूप में। जैसे यूरोप के पुराने काव्यों ('इलियड' और 'ओडेसी') में प्रेम और युद्ध ('लव' एंड 'वार' का मेल था वैसे ही इन काव्यों में भी। प्रेम हेतु के रूप में अंकित है और शौर्य कार्य-रूप में। लोकदृष्टि से विचार करें तो अवगत होगा कि प्रेम और साथ ही उत्साह दोनों के आलंबन लौकिक ही थे। प्रेम और उत्साह के आलंबनों का लौकिकता से अलौकिकता की ओर धीरे धीरे बढ़ाव होने लगा। जयदेव ने संस्कृत में राधा-कृष्ण के प्रेमगीत गाए तो उसकी प्रतिध्वनि विद्यापति के गीतों में हुई। सूरदास तथा कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवियों में प्रेम का लौकिक आलंबन भक्ति का मधुर या अलौकिक आलंबन हो गया और प्रेमलक्षणा भक्ति का वाङ्मय पुंजीभूत हुआ। भागवत के लीलापुरुषोत्तम वृंदावन में अपनी प्रेमलीला का अभिनय करते दिखाई पड़े। भारतीय वीरों के लौकिक वीरोल्लास की गाथा पराजित देश किस मन से गाता और किस कान से सुनता, इसलिए वाल्मीकि के मर्यादापुरुषोत्तम तुलसी के लोकरक्षक भगवान् रामचंद्र का रूप धरकर सामने आए। प्रेम की पुकार न कबीर आदि संतों में मंद पड़ी और न 'प्रेम की पीर' जायसी आदि सूफी कवियों में ठंढी। लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम या भक्ति में परिवर्तित हो गया। काव्य की शुद्ध प्रेमधारा अपना मार्ग खोज रही थी। भक्तिकाल में ही भक्ति से पृथक् होकर शृंगार ने अपना

अलग पथ पकड़ना आरंभ कर दिया, भक्ति के बीच से आने के ही कारण 'शृंगार' के प्रधान आलंबन राधा और कृष्ण ही रहे। नहीं तो प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोकगीतों तक में प्रेम की अभिव्यक्ति ऐसा आवरण लेकर नहीं हुई है। आदिकाल या वीरकाल में लौकिक जीवन के वीरोल्लास का ही चित्रण था। उस समय तक हिंदी-साहित्य ने अपनी 'प्राकृत'-परंपरा ही रक्षित रखी। पर भक्तिकाल में साहित्य संस्कृत की ओर गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण की कृष्णलीला दृष्टिगत रही। अलौकिकता में प्रविष्ट हो जाने से फिर जब कवि लोग जीवन की ओर मुड़े तब 'भाषा' की परंपरा पीछे छूट गई। भक्ति अपनी छाप शृंगार पर छोड़ती गई। कृष्णभक्ति से ही शृंगारिक रचना का संबंध रहा। यह भी एक हेतु है कि शृंगार में परकीया-प्रेम की उक्तियाँ अधिक कही गई। भक्ति में श्रीकृष्ण की वृंदावन-व्यापिनी लीला ही ली गई थी। अपभ्रंश या लोक-वाङ्मय की सी स्वकीया-प्रीति-परक मार्मिकता शृंगारकाल के कवि भूल ही बैठे।

'शृंगारकाल', जिसे इतिहासकारों ने 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' कहा है, साधारणतया संवत् १७०० के आसपास से आरब्ध माना जाता है। विचार करने पर अवगत होता है कि साहित्य की शृंखला में इस काल की कड़ी भक्तिकाल की कड़ी के गर्भ से घूमती हुई आगे बढ़ी है। शुद्ध या पृथक् रूप में शृंगार की प्रस्तावना इससे कम-से-कम सौ वर्ष पूर्व, अर्थात् संवत् १६०० के आसपास, अवश्य हो गई थी। सं० १५९८ में कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' लिखी थी, जिसमें शृंगार रस का दोहों में विवेचन किया गया है अर्थात् लक्षण-लक्ष्य जुटाए गए हैं। उन्होंने सूचित किया है कि और कर्ता बड़े छंदों में रसग्रंथ प्रस्तुत करते हैं, मैंने छोटे छंद अर्थात् दोहा, सोरठा, बरवै में इसका प्रणयन किया। इससे एक ओर तो यह स्पष्ट पता चलता है कि रीतिग्रंथ प्रस्तुत करने का स्फुरण कुछ और पहले का है और दूसरी ओर यह सूचना मिलती है कि वीरता और भक्ति की लपेट से बहुत-कुछ बचकर भी शृंगार अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा था। 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' नाम मानने से यह निश्चय करना अनिवार्य हो जाता है कि अलंकृत या रीतिबद्ध ग्रंथों की अखंड परंपरा कब से और किस आदर्श पर प्रवर्तित हुई। रीति के सिलसिले में 'कृपाराम' का नाम सबसे पहले लिया जाता है; पर भक्ति की प्रभूति ग्रंथराशि सामने पाकर काल की सीमा कुछ छोटी करनी पड़ती है। यदि

आदर्श की बात देखी जाय तो पता चलता है कि अकबर के दरबारी 'करनेस' कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' उसी आदर्श पर निर्मित किए जिस आदर्श पर आगे चलकर अन्य अनेक अलंकार-ग्रंथों का निरूपण हुआ। जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' ही इनके भी आधार थे। अलंकार-निरूपण में जैसे संस्कृत के इन ग्रंथों का सहारा लिया गया वैसे ही रस-निरूपण में भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' का आधार रहा और नायिकाभेद में उन्हीं की 'रसमंजरी' का। चंद्रालोक, रसतरंगिणी और रसमंजरी संस्कृत के पिछले ढँरे की रचनाएँ हैं जिनमें विवेच्य विषय का निरूपण बड़ी ही बोधगम्य शैली से किया गया है। केशवदासजी की 'कविप्रिया' को सामने रखकर यह कहना कि वह वामन, दंडी आदि अलंकारवादी आचार्यों के अनुगमन पर निर्मित हुई है, और हिंदी के आदर्श ग्रंथ कुवलयानंद या चंद्रालोक भिन्न आदर्श पर खड़े हुए हैं, सोलह आने ठीक नहीं है। वामन और दंडी रीतिवादी या अलंकारवादी थे, जयदेव (चंद्रालोक के कर्ता) तो कट्टर अलंकारवादी थे, इनसे भी बढ़कर। वे तो यहाँ तक कह डालते हैं कि काव्य को निरलंकार कहना वैसा ही है जैसे अग्नि को अनुष्ण कहना अर्थात् उनकी दृष्टि में अलंकार काव्य का नित्य धर्म है। ऐसा उन्होंने मम्मटाचार्य का खंडन करने के लिए लिखा है; क्योंकि मम्मटाचार्य ने काव्यलक्षण का विचार करते हुए कहा है कि वह कहीं-कहीं अनलंकृत भी हो सकता है (अनलंकृती पुनः क्वापि)। उसी का यह अलंकारवादियों की ओर से उत्तर था। वामन ने भी ऐसी ही बात कही थी। उन्होंने कहा कि काव्य, सौंदर्य की विशेषता के ही कारण, ग्राह्य होता है (काव्यं ग्राह्यमलंकरात्) और सौंदर्य ही अलंकार है (सौन्दर्य-मलंकारः)। इनकी दृष्टि काव्य के 'सौंदर्य' पर ही थी, उसकी 'रमणीयता' पर नहीं, अर्थात् ये काव्य का बाह्य ही देखते थे, उसका अभ्यंतर नहीं। इसी से रसों और भावों को भी इन्होंने अलंकार मान लिया। ये वस्तुतः आधुनिक शब्दों में 'कलावादी' थे। यह (आलंकारिकों का) संप्रदाय पुराना है। आगे चलकर रस-संप्रदाय खड़ा हुआ। अलंकार्य (वर्ण्य विषय) और अलंकार (वर्णन-प्रणाली) का जो भेद रसवादी आचार्यों ने प्रतिपन्न किया उसका प्रभाव काव्यक्षेत्र के समस्त संप्रदायों पर पूरा-पूरा नहीं पड़ा, अलंकारवादियों पर तो बहुत कम।

केशवदासजी ने 'कविप्रिया' में शुद्ध अलंकारवादी दृष्टि से काम नहीं लिया है। उन्होंने काव्य की सारी सामग्री को 'अलंकार' कहकर वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली का अभेद अवश्य दिखलाया है, पर रसदृष्टि उन्होंने त्याग दी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। दंडी के 'काव्यादर्श' पर ही वह अवलंबित भी नहीं है। बात यह है कि वह केवल 'अलंकार' की दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं की गई है, वह वस्तुतः 'कवि-शिक्षा' की पुस्तक है। उसमें कवि होने का हौसला रखनेवालों को 'कवि-समय' से परिचित कराने का प्रयास ही अधिक है। इसके लिए उसमें अधिक सामग्री 'कविकल्पलतावृत्ति' से उठाकर रखी गई है। वह वस्तुतः काव्य की सीमा, उसका स्वरूप, उसकी धारणा आदि का पता देनेवाली है, इसीसे उसका नाम 'कविप्रिया' है। अलंकारों का प्रतिपादन उसमें वर्णन-प्रणाली की रूपरेखा मात्र खींचने के लिए हुआ है, अर्थात् वह गौण है। यह मानने में कोई आनाकानी नहीं कि केशवदासजी चमत्कारवादी थे। पर वे अलंकार्य और अलंकार का भेद माननेवाले नहीं थे, ऐसा नहीं है। अलंकारों के संबंध में उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ कहा जाय वह सब अलंकार ही है। यदि ऐसा होता तो 'नग्नत्व' दोष उन्होंने स्वीकार ही न किया होता, जहाँ निरलंकार कविता रखी गई है। यही क्यों उन्होंने 'हीनरस' दोष भी माना है; कविता में रस होना उन्हें मान्य है। वही उनकी दृष्टि में काव्यार्थ है। पर वे यह अवश्य मानते थे कि 'भूषन बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त'। पर वह कविता कैसी हो—'जदपि सुजाति सुल-च्छनी सुबरन सरस सुवृत्त'। यहाँ 'सरस' शब्द क्या कह रहा है? यही कि केशव को रस अमान्य नहीं था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' भी तो लिखी है—रसवादी 'साहित्यदर्पण' और 'शृंगार-प्रकाश' के आधार पर। वहाँ रस रसवत् अलंकार मात्र नहीं कहे गए हैं; इसलिए केशवदासजी को पुराना या अलंकारवादी कहकर छाँटने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अब, 'कृपाराम' को शृंगारकाल की सूचना देनेवाला आचार्य या कवि मानने में क्या बाधा है। 'हिततरंगिणी' 'रस-तरंगिणी' का ही आधार लेकर चली जिसके आधार पर हिंदी के परवर्ती सैकड़ों ग्रंथ बने, ऐसा उसका वर्ण्य विषय और नाम तक बतलाता है। इस प्रकार समय के सीमा-निर्धारण में 'आदर्श' का पक्ष मानने पर भी कृपाराम सीमा के बाहर नहीं किए जा सकते।

रही अखंड परंपरा की बात। विचार करने पर परंपरा कृपाराम से भी पहले जाती है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि लोग बड़े छंदों में रसनिरूपण करते हैं वे लोग उनके पूर्ववर्ती ही होंगे—पर वे कौन हैं, इतिहास इस संबंध में मौन है, उसके पास पर्याप्त सामग्री का दारिद्र्य है। पर कृपाराम से लेकर संवत् १७०० तक रीतिग्रंथों की अखंड परंपरा रही है, इस संबंध में इतिहास मुखर है। देखिए—

संवत् (रचनाकाल)	कवि	रचना
१५९८	कृपाराम	हिततरंगिणी
१६१६	गंग	फुटकल
१६१६	मोहनलाल	शृंगारसागर
१६२०	मनोहर	फुटकल
१६२०	गंगाप्रसाद	कोई रीतिग्रंथ बनाया जिसका नाम अज्ञात है।
१६३७	करनेस	कर्णाभरण, श्रुतिभूषण, भूपभूषण
१६४०	बलभद्र मिश्र	नखशिख
१६४०	रहीम	बरवै-नायिकाभेद
१६५०	केशवदास	रसिकप्रिया, कविप्रिया
१६५०	मोहनदास	बारहमासा
१६५१	हरिराम	छंदरत्नावली
१६५७	बालकृष्ण	रसचंद्रिका (पिंगल)
१६६०	मुबारक	अलकशतक, तिलशतक
१६७६	लीलाधर	नखशिख
१६८८	सुंदर	सुंदरशृंगार
१७००	सेनापति	षट्ऋतुवर्णन

इस प्रकार अखंडता का बोध सरलता से हो जाता है। ये सब कवि रीतिबद्ध लिखनेवाले थे, किसी ने लक्षणबद्ध लिखा, किसी ने शास्त्र का अंगोपांग लेकर लक्ष्य मात्र-जैसे नखशिख, ऋतुवर्णन, बारहमासा आदि। परंपरा बराबर जुड़ती चली आ रही है। इनके अतिरिक्त इस शैली में ऐसे कोड़ियों कवि और हैं जिन्होंने बिहारी

जिनमें अधिकतर समस्यापूर्ति के रूप में प्रायः शृंगारिक कविता ही होती थी। संवत् १९५० के उपरांत शृंगार की पुरानी धारा मंद पड़ने लगी और लगभग १९७५ तक आते-आते वह विलीन हो गई। जैसे संवत् १६०० से १७०० तक शृंगार का प्रस्तावना काल या उपक्रमकाल है वैसे ही १९०० से १९७५ तक अवसानकाल या उपसंहारकाल। नई धारा १९०० के आसपास प्रकट हो गई थी, जिसके साथ पुरानी धारा भी चलती रही। इसलिए शृंगारकाल की कड़ी के गर्भ से आधुनिक काल की कड़ी १९०० के लगभग घूमी और १९५० तक आते-आते वह घूमकर आगे चली आई, १९७५ तक उसने अपने को एकदम पृथक् कर लिया।

शृंगारकाल की प्रस्तावनायें भक्तिकाल के भीतर ही हो गई थी। राधा-कृष्ण की जैसी प्रेमक्रीड़ा का वर्णन कृष्णभक्त-कवि कर चले वह शृंगार का बहुत बड़ा अवलंब सिद्ध हुई। राधा-कृष्ण की भक्ति में रसदृष्टि से भक्त कवियों ने तीन ही रस ग्रहण किए थे—वत्सल, भक्ति और शृंगार। 'वत्सल' तो हिंदी में भक्तिकाव्य में ही व्यक्त हुआ और उसके साथ ही लुप्त भी हो गया। श्रीवल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय में कृष्ण के बालभाव की उपासना चलाई। इसी से उनके वल्लभसंप्रदाय के कवियों ने उसकी धारा वेग से बहाई। पर धीरे धीरे कृष्णभक्ति ने जो अनेक रूप धारण किए उनमें 'मधुर रस' या 'माधुर्य भाव' ने प्रधानता पाई। श्रीचैतन्य के गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव ऐसा पड़ा कि 'वत्सल रस' उसमें लीन हो गया। माध्व, निवार्क (टट्टी, अनन्य, राधावल्लभी) जितने कृष्णभक्ति के अन्य संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं उन सबकी उपासना शृंगार-प्रमुख हो गई, उनमें 'राधा' की योजना प्रधान हुई। राधातत्त्व के जुड़ जाने से प्रणय लीला के गीत गाए जाने लगे। फल यह हुआ कि वल्लभ-कुल के भक्त भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला क विस्तार में ही लग गए। इसलिए आगे चलकर वत्सल रस का प्रवाह रुक गया। भक्ति और शृंगार ने मिलकर 'मधुर रस' का रूप धारण किया, जिस रस के भीतर शृंगार रस ने सचमुच अलौकिक रस का रूप पाया। भक्ति की पिछले काटे की रचना काव्य-दृष्टि से शृंगार की ही रचना हो गई, भले ही उसे हम लौकिक शृंगार की सीमा में न घेर सकें पर वह शृंगार का ही परिष्कृत, संस्कृत या ईश्वर-संबद्ध—चाहे जो नाम रखें—रूप हो गई। विनय आदि के रूप में जो थोड़ी सी रचना रह गई उसे ही शुद्ध भक्तिरस की रचना कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगार रस की धारा

को फैलने के हेतु बहुत चौड़ा मैदान मिल गया। पर भारतीय काव्य-परंपरा में आचारनिष्ठता का ध्यान बराबर रखा गया है। शृंगारकाल में कवियों ने नायक-नायिकाओं की प्रेमलीला का निरूपण आरंभ किया तो उसमें स्वकीया के प्रणय के विस्तार का अवकाश न मिला। अपभ्रंश की पुरानी रचनाओं और देश-गीतों में स्वकीया-प्रेम के बड़े ही मधुर एवं मर्मस्पर्शी गार्हस्थ्य दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्तिधारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका संबंध नहीं रहा, अतः स्वकीया की प्रीति के रमणीक स्थलों का संनिवेश उसमें न रह सका। अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दांपत्य-प्रेम रखा गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आकर्षक और आकृष्ट के रूप की लंबी-चौड़ी भूमि परकीया-प्रेम के परिष्कार में दिखाई पड़ी, जिसमें अलौकिक संबंध का आरोप होने लगा। इस प्रकार प्रेम की विवृति के साहचर्य में परकीया-प्रेम के विस्तार को विशेष उत्तेजना प्राप्त हुई। हिंदी-साहित्य को उस समय जिस साहित्य से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ी उसमें परकीया-प्रेम का बाहुल्य था। प्रतिद्वंद्विता से पीछे हटने पर कवियों की हेठी होती थी। अतः नायिका-भेद में परकीया-प्रेम ले लिया गया, पर आचारनिष्ठता को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन श्रीकृष्ण और राधिका माने गए। प्रेम की घोर वासनापूर्ण रचना करनेवालों ने भक्ति की शृंगारिकता की ओट लेने का पूरा प्रयत्न किया। अपनी रचना के लिए वे धार्मिक बुद्धि जगाते हुए कह गए कि 'आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई, नतु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।' लक्षण-ग्रंथों में यह भी कहा गया कि नायक होने योग्य और कोई नहीं, कृष्ण ही हैं; ठीक इसी प्रकार नायिका होने योग्य राधा या गोपी।

यह उद्भावना शृंगारकाल की न थी, बहुत पहले की थी। विद्यापति आदिकाल में ही राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन साहित्यिक दृष्टि से (भक्त की दृष्टि से नहीं) कर गए थे। भक्त जयदेव की पद्धति उन्होंने साहित्य में प्रतिष्ठित कर दी थी ध्यान देने की बात है कि विद्यापति ने भक्त कवियों की भाँति श्रीकृष्ण या राधा को प्रभु या स्वामिनी के रूप में नहीं रखा, यद्यपि उनके शृंगार के पदों या गीतों की सारी रचना कृष्ण और राधा के ही स्नेह की अभिव्यक्ति है, अतः उन्हें भक्त कवि कहना भ्रांतिशून्य नहीं है। उनके राधा-कृष्ण भक्ति के नहीं, शृंगार के देवता हैं।

इस प्रकार रीतिकाल में जितनी रचना हुई उसमें प्रायः हरि और गोपी या राधा का कीर्तन तो मिलता है पर उसे भक्ति की रचना नहीं कह सकते। इन कवियों ने भक्ति की शृंगारमयी रचना का भक्तिवाला अंश त्याग दिया। आवरण के रूप में भक्ति अवश्य रह गई, पर सारी रचना लौकिक प्रेम-प्रसंगों की ही प्रस्तुत होने लगी। शृंगारकाल की सीमा के भीतर शृंगार के अतिरिक्त वीररस और भक्ति-रस की रचना बराबर होती रही। पर वीररस की रचना थोड़ी है और जिन्होंने वीररस की रचना की वे शृंगार की रचना से विरत नहीं थे। भक्ति की जो रचना बाद में हुई उसमें सूरदास आदि भक्त कवियों से भी बढ़ चढ़कर शृंगार की छाप पड़ी। इस प्रकार उस युग में शृंगार ही शृंगार दिखाई देता है। इसी से इसे रीति-काल माननेवाले विद्वान् भी रसदृष्टि से 'शृंगारकाल' कहना उचित समझते हैं।[1]

भक्ति के ही क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण शृंगारकाल में जो व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ी वह मुक्तक रचना की थी। 'कृष्णभक्तों ने श्रीकृष्ण चरित का उतना ही अंश काव्यबद्ध किया जो वृंदावन और मथुरा से संबद्ध था। वे केवल कोमल भावों के ही कवि रहे। प्रबंध के क्षेत्र में जिन बहुवस्तु-व्यापार और घटनाचक्र के प्रवर्तन की अपेक्षा होती है उससे इन्होंने पीछा छुड़ा लिया। कृष्ण की सारी लीला मुक्तक गीतों में गाई गई। अतः भक्ति के जिस क्षेत्र में शृंगारी कवियों ने संबंध जोड़ा वहाँ प्रबंध की भूमि ही नहीं मिली। कृष्णभक्ति-संप्रदायों में कीर्तन का माहात्म्य स्वीकृत था, इसके लिए गीत तो उपयुक्त थे ही, फुटकल लीला ही काम की हो भी सकती थी। गीत-पद्धति का प्रबंध से सदा विरोध रहा है, आज भी है। गीत चाहे बाह्यार्थ-निरूपक हो चाहे स्वानुभूति-प्रदर्शक, वह किसी भाव में कुछ देर तक लीन रखना चाहता है, और लीनता में गहराई चाहता है। प्रबंध में कथातत्त्व भी कुछ पुछ कुतूहल जगाए रहता है, इसी से लीनता की मात्रा सर्वत्र अधिक हो नहीं पाती। जहाँ लीनता पर विशेष दृष्टि रहेगी वहाँ मुक्तक की प्रवृत्ति अवश्य प्रधान होगी, गहरी लीनता को ही लक्ष्य करके प्रबंध-काव्यों में भी गीत रखे जाने लगे हैं, जिनके कारण प्रबंध की स्वाभाविक धारा अवरुद्ध हो जाती है। गीतों की ही गूंज के मेल में शृंगारकाल में कवित्त सवैयों का—विशेष रूप से

---

१ "प्रधानता शृंगार का ही रहा। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'—हिंदी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल-कृत, पृष्ठ २६८।

सवैयों—का अधिक चलन हुआ। कहीं कहीं प्रबंध के क्षेत्र में भी कवित्त-सवैयों की योजना कर दी गई है, जैसे नरोत्तमदास के 'सुदामा-चरित' में। पर उसमें भी संवादों और वर्णन के लिए ही इनका उपयोग हुआ, जहाँ किसी भाव की लीनता ही कवि का लक्ष्य है। कथा कहने के लिए उन्होंने दोहों का विधान किया है। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के उद्धव-शतक में कवित्तों में संवाद या उक्तियाँ बाँधी गई हैं, जिसमें 'गोपी-विरह' की क्रमबद्ध कथा के सहारे उक्तिविधान देखकर भ्रमवश लोग उसे प्रबंध-काव्य या अर्धखंड-काव्य कहने लगते हैं। छंद तो छंद उसका नाम भी मुक्तक-शैली की रचनाओं का है, इस पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

शृंगारकाल में रीतिबद्ध रचयिताओं ने लक्षण-ग्रंथ के निर्माण में हाथ लगाया। यहाँ प्रत्येक विषय का लक्ष्य फुटकल रूप में ही प्रस्तुत हो सकता था। यह कहा जा चुका है कि ये कवि लक्षण-शास्त्र का निर्माण करनेवाले आचार्य नहीं थे। लक्षण के निरूपकों ने स्वतः अपनी कृति से ही लक्षण-ग्रंथ भरे हैं. ऐसी प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में कम थी। लक्ष्य पहले, लक्षण पीछे होता है। संस्कृत में इसी से लक्षणों के उदाहरण प्रायः विभिन्न कवियों या काव्यों से चुने गए हैं। ग्रंथकार का उदाहरण क्वचित् ही होता है, वह प्रायः 'यथा ममापि' ही होता है, दूसरे की रचना उद्धृत कर देने के उपरांत अपनी भी रख दी जाती है। सच विचारिए तो लक्षण-निरूपक आचार्य प्रायः कवि-कर्म से विरत रहता है। भरत मुनि, भामह, वामन, रुद्रट, आनंदवर्धन, धनंजय, अभिनवगुप्त, कुंतक, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्य ही थे; प्रायः कवि-कर्म से विरत। दंडी, राजशेखर, पंडितराज जगन्नाथ आदि अवश्य कवि-कर्म में भी निरत हुए। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' के दोष-प्रकरण में बड़े बड़े कवियों के उदाहरण दिए हैं। इससे चिढ़कर कुछ लोगों द्वारा कसौटी पर कसने के लिए उनकी रचना खोजी जाने लगी तो ग्रंथ के मंगलाचरण के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। सारा रोष उसी पर प्रकट किया गया। अतः स्पष्ट है कि कवि-कर्म और आचार्य-कर्म में भेद करके संस्कृत के शास्त्रकर्ता चले हैं। हिंदी में उलटी गंगा बही। लक्ष्य के पीछे लक्षण न चलकर लक्षण के पीछे लक्ष्य चलने लगा। उदाहरण में अपनी ही कृति गढ़-गढ़कर दी जाने लगी। जहाँ कवि किसी चमत्कार में रम जाता वहाँ उदाहरणों का ताँता लग जाता—एक दो, तीन की गिनती चलने लगती। श्रीपति के 'काव्य-सरोज' में ही दूसरों के कुछ

उदाहरण देने का प्रयास है, उन्होंने दोष-प्रकरण में अपनी रचना न देकर केशवदासजी की रचनाएँ उद्धृत की हैं। ये लोग लक्षण-ग्रंथ के ही अनुगमन पर न लिखते होते तो कवि-कर्म कुछ उच्च आदर्श ग्रहण करता, कदाचित् मुक्तक से प्रबंध की रुचि कुछ जगती। रीति से पीछा छुड़ानेवालों ने अवश्य प्रबंध की ओर भी रुचि दिखलाई। पर श्रीकृष्णलीला का वृंदावनवाला वृत्त इसके लिए नहीं लिया गया। वह मुक्तक के आगे यदि बहुत बढ़ सकता था तो निबंध तक, भक्ति की रचना में दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि के वर्णनात्मक प्रसंग पद्य-निबंध भर कहे जा सकते हैं। प्रबंध के लिए घटनाचक्र चाहिए, वह कृष्ण-जीवन के इस अंश में है ही नहीं। जहाँ इतने ही वृत्त को लेकर प्रबंध-काव्य लिखने की वृत्ति स्फुरित हुई है वहाँ प्रबंधधारा अनवच्छिन्न नहीं रह सकी है, विस्तार करने के लिए अनेक वर्णनों की योजना करनी पड़ी है। इसी से प्रबंध के लिए श्रीकृष्ण का उत्तर-जीवन ही उपयुक्त दिखाई पड़ा। उदाहरणार्थ आलम ने नरोत्तमदास की अनुकृति पर 'सुदामा-चरित्र' लिखा और रुक्मिणी-परिणय का वृत्त लेकर 'श्याम-सनेही' खंडकाव्य प्रस्तुत किया; पर प्रबंध की विस्तृत अर्थभूमि यहाँ भी नहीं थी, इसी से प्राकृतकाल की प्रसिद्ध कथा 'माधवानल-कामकंदला' पर छोटे बड़े कई प्रबंध-काव्य निर्मित हुए। इसी कथा का अत्यधिक विस्तार करके बोधा ने 'विरह-वारीश' की रचना की। फिर भी इन रीतिमुक्त कवियों की भी अधिकांश रचना मुक्तक ही है। इन मुक्तक रचनाओं से हिंदी का एक लाभ भी हुआ। शृंगार के किसी भी अवयव के अत्यंत मधुर और सरस उदाहरण उपलब्ध हो गए। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में भी शृंगार के अंगोपांग की इतनी अधिक और इतनी सरस रचनाएँ न मिलेंगी।

पर इन उक्तियों में अधिकतर भिन्नता न होकर एकरूपता पाई जाती है। कारण भी स्पष्ट है। अधिकतर कवीश्वर लक्षण-ग्रंथ-प्रणेता थे। प्रत्येक विषय पर बँधी-बँधाई उक्तियाँ सब कहते थे, इसी से एकरूप उक्तियों का ढेर लग गया। व्यक्ति-वैशिष्ट्य का जैसा विकास अपेक्षित था वह न हो सका, वह विशेषता कविराज न ला सके जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पृथक् की जा सकती। रीतिबद्ध कवियों की रचना में से यदि 'छाप' निकाल दी जाय तो स्मृति-शक्ति के आधार पर भले

ही कुछ पार्थक्य किया जा सके अन्यथा व्यक्ति-वैशिष्ट्य के आधार पर भेद करना कठिन ही नहीं, असंभव है। प्राचीन संग्रहों में जो किसी एक कवि का छंद किसी दूसरे कवि के नाम पर चढ़ गया है उसका कारण यही है। पुराने संग्रहों का बहुलांश स्मृति के भरोसे संकलित होता था। स्मृति भला कहाँ तक साथ देती। 'शिवसिंहसरोज', 'सुधासर', 'शृंगार-संग्रह' आदि में इनके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। मैं प्रमाणित कर चुका हूँ कि हिंदी में 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' नाम की पोथियाँ किस प्रकार अधिकतर दूसरे कवियों की कृति से सज-धज-कर 'भूषण' के नाम पर आधुनिक संग्रहकर्ताओं की कृपा से चल पड़ी हैं और शिवाजी के दरबार में 'भूषण' की उपस्थिति सिद्ध बतानेवालों के लिए सहायक का काम कर गई हैं। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, पद्माकर, मतिराम आदि कुछ गिने चुने कवियों को ही भाषा-भेद से छाँटा जा सकता है। बिहारी के दोहों की बनावट उन्हें साधारण रचनाओं से पृथक् करती है, पर रसलीन, मतिराम आदि के कितने ही अच्छे-अच्छे दोहे बिहारी-सतसई में घुस गए हैं, जिन्हें 'रत्नाकर' जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' में चुन-चुनकर पृथक् किया। रीतिबद्ध रचयिताओं की अपेक्षा रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवियों की कृति में व्यक्ति-वैशिष्ट्य का कुछ विकास अवश्य स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से इन्हें दूसरों से पृथक् करने में कुछ सरलता होती है। 'घनआनंद' की विरोध की प्रवृत्ति उन्हें औरों से पृथक् करती है। लोकोक्ति-विधान की विशेषता रीतिमुक्त स्वच्छंद 'ठाकुर' को इसी नाम के अन्य दो कवियों से पृथक् करती है, प्रेम के वैषम्य का चटक-मटक के साथ उल्लेख करनेवाले 'बोधा' फूलपत्ती, पक्षी आदि की सूची पेश करनेवाले 'बोधा' से भिन्न हैं। शृंगार-काल की स्वच्छंद काव्यधारा का कुछ महत्त्व इसी से सूचित होता है। पर इन कवियों का भी काव्यार्थ (वर्ण्य) एकरूप ही है, इसे स्मरण रखना चाहिए। इसी से जहाँ स्वकीय रंग कुछ फीका पड़ गया है वहाँ इनकी रचनाएँ भी एकरूप हो गई हैं।

स्वच्छंद धारा

स्वच्छंद का अर्थ है बाह्य बंधन अर्थात् रीति के बंधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में

उदाहरण देने का प्रयास है, उन्होंने दोष-प्रकरण में अपनी रचना न देकर केशव-दासजी की रचनाएँ उद्धृत की हैं। ये लोग लक्षण-ग्रंथ के ही अनुगमन पर न लिखते होते तो कवि-कर्म कुछ उच्च आदर्श ग्रहण करता, कदाचित् मुक्तक से प्रबंध की रुचि कुछ जगती। रीति से पीछा छुड़ानेवालों ने अवश्य प्रबंध की ओर भी रुचि दिखलाई। पर श्रीकृष्णलीला का वृंदावनवाला वृत्त इसके लिए नहीं लिया गया। वह मुक्तक के आगे यदि बहुत बढ़ सकता था तो निबंध तक, भक्ति की रचना में दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि के वर्णनात्मक प्रसंग पद्य-निबंध भर कहे जा सकते हैं। प्रबंध के लिए घटनाचक्र चाहिए, वह कृष्ण-जीवन के इस अंश में है ही नहीं। जहाँ इतने ही वृत्त को लेकर प्रबंध-काव्य लिखने की वृत्ति स्फुरित हुई है वहाँ प्रबंधधारा अनवच्छिन्न नहीं रह सकी है, विस्तार करने के लिए अनेक वर्णनों की योजना करनी पड़ी है। इसी से प्रबंध के लिए श्रीकृष्ण का उत्तर-जीवन ही उपयुक्त दिखाई पड़ा। उदाहरणार्थ आलम ने नरोत्तमदास की अनुकृति पर 'सुदामा-चरित्र' लिखा और रुक्मिणी-परिणय का वृत्त लेकर 'श्याम-सनेही' खंडकाव्य प्रस्तुत किया। पर प्रबंध की विस्तृत अर्थभूमि यहाँ भी नहीं थी, इसी से प्राकृतकाल की प्रसिद्ध कथा 'माधवानल-कामकंदला' पर छोटे बड़े कई प्रबंध-काव्य निर्मित हुए। इसी कथा का अत्यधिक विस्तार करके बोधा ने 'विरह-वारीश' की रचना की। फिर भी इन रीतिमुक्त कवियों की भी अधिकांश रचना मुक्तक ही है। इन मुक्तक रचनाओं से हिंदी का एक लाभ भी हुआ। शृंगार के किसी भी अव-यव के अत्यंत मधुर और सरस उदाहरण उपलब्ध हो गए। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में भी शृंगार के अंगोपांग की इतनी अधिक और इतनी सरस रचनाएँ न मिलेंगी।

पर इन उक्तियों में अधिकतर भिन्नता न होकर एकरूपता पाई जाती है। कारण भी स्पष्ट है। अधिकतर कवीश्वर लक्षण-ग्रंथ-प्रणेता थे। प्रत्येक विषय पर बँधी-बँधाई उक्तियाँ मथ करते थे, इसी से एकरूप उक्तियों का ढेर लग गया। व्यक्ति-वैशिष्ट्य का जैसा विकास अपेक्षित था वह न हो सका, वह विशेषता कविराज न ला सके जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पृथक् की जा सकती। रीतिबद्ध कवियों की रचना में से यदि 'छाप' निकाल दी जाय तो स्मृति-शक्ति के आधार पर भले

ही कुछ पार्थक्य किया जा सके, अन्यथा व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर भेद करना कठिन ही नहीं, असंभव है। प्राचीन संग्रहों में जो किसी एक कवि का छंद किसी दूसरे कवि के नाम पर चढ़ गया है उसका कारण यही है। पुराने संग्रहों का बहुलांश स्मृति के भरोसे संकलित होता था। स्मृति भ्रम कहाँ तक न होगा। 'शिवसिंहसरोज', 'सुधासर', 'शृंगार-संग्रह' आदि में इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। मैं प्रमाणित कर चुका हूँ कि हिंदी में 'शिवराजभूषण', 'छत्रसालदशक' आदि की पोथियाँ किस प्रकार अधिकतर दूसरे कवियों की कृति से संग्रहीत-कर 'भूषण' के नाम पर आधुनिक संग्रहकर्ताओं की कृपा से चल पड़ी हैं और शिवाजी के दरबार में 'भूषण' की उपस्थिति सिद्ध करनेवालों के बड़े सहायक का काम कर गई हैं। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, पद्माकर, मतिराम आदि कुछ गिने चुने कवियों को ही भाषा-भेद से छाँटा जा सकता है। बिहारी के दोहों की बनावट उन्हें साधारण रचनाओं से पृथक् करती है, पर रसलीन, मतिराम आदि के कितने ही अच्छे-अच्छे दोहे बिहारी-सतसई में घुस गए हैं, जिन्हें 'रत्नाकर' जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' में चुन-चुनकर पृथक् किया। रीतिबद्ध रचनाओं की अपेक्षा रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवियों की कृति में व्यक्तिगत विशेषता का कुछ विशेष स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से इन्हें दूसरों से पृथक् करने में कुछ सुविधा होती है। 'घनआनंद' की विरोध की प्रवृत्ति इन्हें औरों से पृथक् करती है। लोकोक्ति-विधान की विशेषता रीतिमुक्त स्वच्छंद 'ठाकुर' को इसी नाम के अन्य दो कवियों से पृथक् करती है, प्रेम के वैचित्र्य का चटक-मटक के साथ उल्लेख करनेवाले 'बोधा' फूलपत्ती, पक्षी आदि की सूची पेश करनेवाले 'पोंगापंथी' भिन्न हैं। शृंगार-काल की स्वच्छंद काव्यधारा का कुछ महत्त्व इसी से सूचित होता है। पर इन कवियों का भी काव्यार्थ (वर्ण्य) एकरूप ही है, इसे स्मरण रखना चाहिए। इसी से जहाँ स्वकीय रंग कुछ फीका पड़ गया है वहीं इनकी रचनाएँ भी एकरूप हो गई हैं।

स्वच्छंद धारा

स्वच्छंद का अर्थ है बाह्य बंधन अर्थात् रीति के बंधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में

प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनों के त्याग का भी संकेत देनेवाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक-नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे उसमें कहीं कहीं कथनशैली की विशेषता के भी दर्शन अवश्य होते थे, पर उसमें न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छंद रूप के दर्शन कहीं होते हैं और न काव्य-पद्धति की साहित्यिक स्वच्छंदता के ही। प्रेम का बाह्य पक्ष ही रीतिबद्ध रचना में दिखाई देता है। यह बाह्य पक्ष भी बँधा हुआ है अर्थात् साहित्य की परंपरा में प्रेम-व्यापार के जो लक्षण निश्चित कर दिए गए उनसे आगे इनकी दृष्टि मार्ग न पा सकी। बाह्य पक्ष की रमणीयता के दर्शन के हेतु भी अंतर्दृष्टि की व्याप्ति और सूक्ष्मता अपेक्षित होती है। यह अंतर्दृष्टि रीतिबद्ध रचनाओं में मंद पड़ गई थी। कुछ चुने हुए दृश्यों को ही देखने दिखाने में जैसे स्थूल दृष्टि पथरा जाती है वैसे इन व्यापारों में अंतर्दृष्टि भी सतत संलग्न रहकर मंद पड़ जाती है। नायिका-भेद में नायिकाओं के सहेटस्थलों, सपत्नियों के ईर्ष्या-कलह, लघु-मध्यम-गुरु मान आदि के कवि-समय-सिद्ध व्यापार ही आते रहे। प्रेम का मन इतने से ही संतुष्ट हो जाता था कि 'जो लहियै सँग सजन तौ धरक नरक हू की न'। ये प्रिय के संग का, शरीर-संबंध का, ही सुख चाहते थे, मानस-संसर्ग की रमणीयता इनमें नहीं थी। ये प्रिय के मन की रमणीयता देखने के या अपने मन की रमणीयता दिखाने के मनोरथी नहीं थे, प्रिय के तन की शोभा देखने और अपनी शारीरिक उछलकूद की मुद्राएँ दिखाने के ही अभिलाषी अधिक थे। बिहारी आदि में मानस-लोक की रमणीयता के दर्शन यत्र तत्र ही होते हैं। बिहारी ऐसे कवियों में जो इस प्रकार के स्थल दिखाई पड़ते हैं वह भी रीति के लक्षणों का अनुधावन सर्वत्र न करने के कारण। अनुधावकों की रचना में यह विशेषता और भी क्षीण है। बिहारी ने प्रेम की जिस चरमावस्था का निरूपण इस दोहे में किया है वह लक्षणकारों में नहीं मिलती—

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम की यह वह चरम अवस्था है जिसमें पहुँचकर प्रेमी या प्रेमिका स्वयम् प्रिय हो जाती है। ज्ञान के क्षेत्र में जो स्थिति ज्ञाता और ज्ञेय की होती है और भक्ति के क्षेत्र में जो स्थिति उपासक और उपास्य की होती है, ठीक वही स्थिति प्रेम के क्षेत्र में प्रेमी और प्रिय की चरमावस्था में होती है। रामकृष्ण परमहंस के

संबंध में प्रसिद्ध है कि वे उस माला-फूल को, जिसे पूजक काली की पूजा के लिए ले आते, अपने ऊपर चढ़ा लिया करते थे। तात्पर्य यह कि ज्ञान, भक्ति और प्रेम की चरमावस्था एक ही निर्दिष्ट होती है। बिहारी की सतसई में प्रेम की उच्चभूमि के दर्शन वहाँ होते हैं जहाँ नायिका कभी प्रिय के द्वारा उड़ाई पतंग की छाया के पीछे-पीछे दौड़ती दिखाई पड़ती है, मरगजी माला भी गले में डाले फूली घूमती है, प्रिय के नखक्षत को सूखने पर आया जान खोंटकर फिर हरा कर लेती है। पर ऐसे उदाहरण रीतिबद्ध कवियों में ढूँढ़ने से ही मिलते हैं। अधिकतर तो सौतों की असूया, मान के त्रिविध रूप, हावों की भावभंगी, खंडिता की व्यंग्यभरी उक्तियाँ ही हैं। विपरीत रति, सुरतांत आदि के बँधे बँधाए और असंस्कृत वर्णनों से इनकी रचनाएँ यदि भरी नहीं हैं तो शून्य भी नहीं हैं। वस्तुतः रीतिबद्ध कवि प्रेम-मार्ग की वक्रता, उसकी चातुरी, उसके बुद्धि-विशिष्ट रूप का ही संभार करते रहे। पर रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग सरल है, इसमें वक्रता का नाम नहीं। चतुराई का लेश भी इसमें घातक होगा—

> अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
> जहाँ सूधे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

रीतिबद्ध कवियों ने दूती, सखी आदि को बीच में डालकर प्रेम का लंबा-चौड़ा संग्राम खड़ा किया है। गुरुजनों के बीच प्रेम के संकेतों का विस्तार से उल्लेख किया है। लोकभय या लोकलाज को मध्य में रखकर प्रेम में बहुत से बँधे-बँधाए खेल दिखलाए हैं। सहेट की लुकाछिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियाँ, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल-कपट से भरे खिलवाड़ में ही मनोरंजन की सामग्री विशेष खोजी है। ऐसी बंधन-मय प्रेमलीला रीतिमुक्त कवियों को नहीं रुच सकती थी। वे लोकभय या लोकलाज का तिरस्कार करके साहस-पूर्वक प्रेम की एकनिष्ठता में लीन होनेवाले थे। इसी से इन खेल-तमाशों से उन्होंने अपने को अलग रखा है। श्रीकृष्ण और राधा या गोपियों का जैसा उन्मुक्त जीवन था वैसा ही बाधा-बंधन-रहित सरल-सीधा प्रेममार्ग इन स्वच्छंद कवियों का भी था। सौ बात की एक बात यह कि ये प्रेम में बुद्धि की कतरब्योंत एकदम नहीं चाहते थे। प्रेम शुद्ध हृदय की भावधारा है, ये हृदय को ही सामने करनेवाले

और हृदय को ही प्रभावित करनेवाले भी थे। हृदय की रीझ ही इनके यहाँ रानी है, बुद्धि तो दासी मात्र—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के स्वच्छंद रूप के ग्रहण से ही अंतरंग और बहिरंग सखियों का विधान यहाँ नहीं। प्रेमी अपनी पुकार स्वतः करता है। विरहनिवेदन के लिए दूती और उपालंभ के लिए सखी की योजना अनपेक्षित समझी गई। इसमें बंधन तो था ही, मध्यस्थ के कारण प्रिय के प्रेम की प्राप्ति निर्बाध नहीं हो सकती थी। दूती या सखी यदि इनके यहाँ कभी आ भी गई तो उसे अपनी बुद्धि का व्यवसाय दिखाने की आवश्यकता नहीं, वह केवल प्रेमी की शब्दावली दुहरा सकती है, अपनी पदावली का उपयोग करने की अपेक्षा नहीं। वह प्रेमी के ही मुख से बोले तो बोले, अपना मुँह न खोले। अतः यहाँ ऐसे तर्कों की आवश्यकता नहीं—

ताके तन ताप की कहूँ मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए तें तुम्हैं ताप चढ़ि आवैगी।—पद्माकर

सच पूछिए तो यहाँ दूती की आवश्यकता ही नहीं—

जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
आवाँ सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

कोई इन विरहाग्नि के तप्त संदेशों को सुन नहीं सकता, जीभ पर भी ये विरह की तप्त बातें नहीं लाई जा सकतीं। हृदय की आँच से ये बातें (वार्ता-वत्ती) स्नेहयुक्त होने के कारण प्रज्वलित हो जाती हैं। इन उक्तियों का रीतिबद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पार्थक्य समझ लेना चाहिए। रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियाँ स्वानुभूति-निरूपिणी हैं। वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिबद्ध वर्णनों की भाँति अनुमान के सहारे नाप-जोख करने नहीं जाते। ये विरही अपनी आग से स्वयम् ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते। हाँ, कभी कभी दूती और सखी के संबंध में इतना अवश्य कह देते हैं कि विरह की अग्नि से भरी बातें दूसरे सुन न सकेंगे, पर यह कभी कहने या कहलाने नहीं जाते कि—

'शंकर' नदी-नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
झारैंगे अँगारे वे तरनि तारे तारापति
या विधि खमंडल में आग मढ़ जायगी।
दोनों ओर छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूमघूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै या वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

इनके यहाँ माघ मास में सारी सृष्टि को क्या, गाँव को भी झुलसानेवाली लुएँ नहीं चलतीं, जाड़े में सखियाँ गीले वस्त्र पहनकर इन विरहियों को देखने नहीं आतीं. छाती पर गुलाब-जल गिरकर उत्तप्त तवे पर गिरे पानी की भाँति छन्न-छन्न करके भाप नहीं बनता, मान के उच्छ्वास से सर और सरिताएँ नहीं सूखतीं। अपनी आह या वेदना की ज्वाला से ये स्वयम् जलते-भुनते रहते हैं, सारी सृष्टि को भस्म करने के लिए रुद्र का तीसरा नेत्र कभी नहीं खोलते या खुलवाते। इनके विरह-ताप की सीमा इन्हीं तक है। ये उड़ान भरनेवाले पक्षी नहीं, बैठकर वेदना की पुकार मचानेवाले पपीहे हैं। इनके ताप से सृष्टि भस्म नहीं होती, कभी-कभी द्रवीभूत अवश्य हो जाती है। पपीहा इनकी पुकार की समानुभूति में पी-पी रटता है, बादल इनके ताप से पिघलकर आँसू गिराते हैं, पवन इनके रोदन के स्वर में स्वर मिलाता है—

विकल विषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जर्‌यौ करै।
जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‌यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्‌यौ सो बनबीथिन रर्‌यौ करै।
बूँदैं न परतिँ मेरे जान जानप्यारी! तेरे,
विरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्‌यौ करै।

और हृदय को ही प्रभावित करनेवाले भी थे। हृदय की रीझ ही इनके यहाँ रानी है, बुद्धि तो दासी मात्र—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के स्वच्छंद रूप के ग्रहण से ही अंतरंग और बहिरंग सखियों का विधान यहाँ नहीं। प्रेमी अपनी पुकार स्वतः करता है। विरहनिवेदन के लिए दूती और उपालंभ के लिए सखी की योजना अनपेक्षित समझी गई। इसमें बंधन तो था ही, मध्यस्थ के कारण प्रिय के प्रेम की प्राप्ति निर्बाध नहीं हो सकती थी। दूती या सखी यदि इनके यहाँ कभी आ भी गई तो उसे अपनी बुद्धि का व्यवसाय दिखाने की आवश्यकता नहीं, वह केवल प्रेमी की शब्दावली दुहरा सकती है, अपनी पदावली का उपयोग करने की अपेक्षा नहीं। वह प्रेमी के ही मुख से बोले तो बोले, अपना मुँह न खोले। अतः यहाँ ऐसे तर्कों की आवश्यकता नहीं—

ताके तन ताप की कहूँ मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए तें तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी।—पद्माकर

सच पूछिए तो यहाँ दूती की आवश्यकता ही नहीं—

जान प्यारे जौऽब कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽब,
आयौं सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

कोई इन विरहाग्नि के तप्त संदेशों को सुन नहीं सकता, जीभ पर भी ये विरह की तप्त बातें नहीं लाई जा सकतीं। हृदय की आँच से ये बातें (वार्ता-बत्ती) स्नेहयुक्त होने के कारण प्रज्वलित हो जाती हैं। इन उक्तियों का रीतिबद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पार्थक्य समझ लेना चाहिए। रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियाँ स्वानुभूति-निरूपिणी हैं। वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिबद्ध वर्णनों की भाँति अनुमान के सहारे नाप-जोख करने नहीं जाते। ये विरही अपनी आग से स्वयम् ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते। हाँ, कभी कभी दूती और सखी के संबंध में इतना अवश्य कह देते हैं कि विरह की अग्नि से भरी बातें दूसरे सुन न सकेंगे, पर यह कभी कहने या कहलाने नहीं जाते कि—

'शंकर' नदी-नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
झारेंगे अँगारे वे तरनि तारे तारापति
या विधि खमंडल में आग मढ़ जायगी।
दोनों ओर छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूमघूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं,
जो पै या वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

इनके यहाँ माघ मास में सारी सृष्टि को क्या, गाँव को भी झुलसानेवाली लुएँ नहीं चलतीं, जाड़े में सखियाँ गीले वस्त्र पहनकर इन विरहियों को देखने नहीं आतीं. छाती पर गुलाब-जल गिरकर उत्तप्त तवे पर गिरे पानी की भाँति छन्न-छन्न करके भाप नहीं बनता, मान के उच्छ्वास से सर और सरिताएँ नहीं सूखतीं। अपनी आह या वेदना की ज्वाला से ये स्वयम् जलते-भुनते रहते हैं, सारी सृष्टि को भस्म करने के लिए रुद्र का तीसरा नेत्र कभी नहीं खोलते या खुलवाते। इनके विरह-ताप की सीमा इन्हीं तक है। ये उड़ान भरनेवाले पक्षी नहीं, बैठकर वेदना की पुकार मचानेवाले पपीहे हैं। इनके ताप से सृष्टि भस्म नहीं होती, कभी-कभी द्रवीभूत अवश्य हो जाती है। पपीहा इनकी पुकार की समानुभूति में पी-पी रटता है, बादल इनके ताप से पिघलकर आँसू गिराते हैं, पवन इनके रोदन के स्वर में स्वर मिलाता है—

बिकल विषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जर्‌यौ करै।
जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्‌यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि के अनंदघन,
पौन बिडर्‌यौ सो बनबीथिन रर्‌यौ करै।
बूँदें न परतिं मेरे जान जानप्यारी! तेरे,
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्‌यौ करै।

इसका वास्तविक हेतु यह है कि इन मनस्वियों ने प्रेम की स्वच्छंदता के साथ उसका अनुदात्त नहीं, उदात्त स्वरूप ग्रहण किया। ये चातुर्य के चक्कर में पिसने-वाले प्राणी नहीं थे, प्रेम-प्यास की ऊँची तान लेनेवाले, घनआनंद की ऊँचाई तक उड़नेवाले चातक थे। इसी से इनका प्रेम एकनिष्ठ था। इस एकनिष्ठता ने इन्हें प्रेम की उस भूमिका में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर प्रेम केवल प्रिय को चाहनेवाला ही रह जाता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है या नहीं इसकी छान-बीन नहीं होती। यहाँ तो प्रिय की ओर से तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी उसे चाहता ही रहता है। तुलसीदासजी ने चातक के जिस एकांगी प्रेम की उच्चता और तीव्रता का विधान अपनी दोहावली के अंतर्गत 'चातक-चौंतीसी' में किया है, प्रेम का वही उदात्त रूप इनमें भी दिखाई देता है। चातक वज्र गिराने पर भी बादल को प्यार करना नहीं छोड़ता—

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप तक पहुँचने के लिए कुछ सोपानों की योजना होती है। पहले किसी का रूप नेत्रों में बसा, किसी के क्रिया-कलाप अपनी ओर खींचने लगे, बस हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो गई। जब तक प्रेमी आकर्षण के इस प्रथम सोपान पर रहता है तब तक वह आकर्षक के दर्शन, सांनिध्य, संलाप तक ही रहता है। तब तक प्रिय के दर्शनादि की उपलब्धि की ही आकांक्षा रहती है। पर इसके अनंतर वह उसके हृदय की खोज में व्यस्त होता है। वस्तु-विशिष्ट प्रेम पहली सीढ़ी तक होता है, पर प्राणी-विशिष्ट प्रेम दूसरी सीढ़ी पर भी चाव के साथ, जिज्ञासा के सहारे अपने पैर रखता है। वह दूसरी सीढ़ी पर चढ़ जाता है, जहाँ वह अपने को प्रिय के लिए अर्पित कर देता है। यदि प्रिय का हृदय उसे नहीं मिलता, प्रिय उससे विमुख भी हो जाता है तो भी वह प्रेम की इस सीढ़ी से उतर नहीं आता, आगे ही बढ़ता है। सानंद न बढ़े, पर वेदना सहने का पूरा साहस बटोरकर वह बढ़ता है, हार मानकर वहीं बैठ नहीं जाता। प्रेम की एकनिष्ठता न उसे बैठने देती है, न लौटने। वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो जायगा उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़नेवाला प्रेमी प्रिय के

निर्दय हो जाने पर जिस कष्ट का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। रीतिबद्ध रचना में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो, यही इनका मूलमंत्र है। विरह सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नहीं बटोर सकती। मन का बल उनके पास उतना नहीं होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने को चेतनता का नहीं, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है—

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौँ समुझै जड़ मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।

प्राणों को जिलानेवाला प्रिय मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है; मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करनेवाला नहीं है। मछली तुरंत प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिए इन दोनों में समता कैसी। यह बात और साफ करके यों कही गई है—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरेँ मिलेँ मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कोँ परसै।

प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीतिमुक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उद्‌गार सुनाते हैं प्रेम की यह विषमता उनमें कहाँ से आई। भारतीय काव्य-परंपरा में दृश्य और श्रव्य काव्य के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में प्रेम के सम रूप का ही विधान है। प्रेम का उद्‌भव दोनों पक्षों में एक सा दिखाया गया है। वाल्मीकि ने राम और सीता में, कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला में, बाण ने कपिंजल और कादंबरी में सम प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है। हिंदी में विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा, पर सूरदासजी तक आते-आते प्रेम में वैषम्य का आरंभ हो गया। सूरदास आदि कृष्णभक्ति-शाखा के आदिम कवियों में इस विषमता की विवृति अधिक नहीं हुई। श्रीकृष्ण को भी

इसका वास्तविक हेतु यह है कि इन मनस्वियों ने प्रेम की, स्वच्छंदता के साथ उसका अनुदात्त नहीं, उदात्त स्वरूप ग्रहण किया। ये चातुर्य के चक्कर में पिसनेवाले प्राणी नहीं थे, प्रेम-प्यास की ऊँची तान लेनेवाले, घनआनंद की ऊँचाई तक उड़नेवाले चातक थे। इसी से इनका प्रेम एकनिष्ठ था। इस एकनिष्ठता ने इन्हें प्रेम की उस भूमिका में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर प्रेम केवल प्रिय को चाहनेवाला ही रह जाता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है या नहीं इसकी छानबीन नहीं होती। यहाँ तो प्रिय की ओर से तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी उसे चाहता ही रहता है। तुलसीदासजी ने चातक के जिस एकांगी प्रेम की उच्चता और तीव्रता का विधान अपनी दोहावली के अंतर्गत 'चातक-चौंतीसी' में किया है, प्रेम का वही उदात्त रूप इनमें भी दिखाई देता है। चातक वज्र गिराने पर भी बादल को प्यार करना नहीं छोड़ता—

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप तक पहुँचने के लिए कुछ सोपानों की योजना होती है। पहले किसी का रूप नेत्रों में बसा, किसी के क्रिया-कलाप अपनी ओर खींचने लगे, बस हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो गई। जब तक प्रेमी आकर्षण के इस प्रथम सोपान पर रहता है तब तक वह आकर्षक के दर्शन, सांनिध्य, संलाप तक ही रहता है। तब तक प्रिय के दर्शनादि की उपलब्धि की ही आकांक्षा रहती है। पर इसके अनंतर वह उसके हृदय की खोज में व्यस्त होता है। वस्तु-विशिष्ट प्रेम पहली सीढ़ी तक होता है, पर प्राणी-विशिष्ट प्रेम दूसरी सीढ़ी पर भी चाव के साथ, जिज्ञासा के सहारे अपने पैर रखता है। वह दूसरी सीढ़ी पर चढ़ जाता है, जहाँ वह अपने को प्रिय के लिए अर्पित कर देता है। यदि प्रिय का हृदय उसे नहीं मिलता, प्रिय उससे विमुख भी हो जाता है तो भी वह प्रेम की इस सीढ़ी से उतर नहीं आता, आगे ही बढ़ता है। सानंद न बढ़े, पर वेदना सहने का पूरा साहस बटोरकर वह बढ़ता है, हार मानकर वहीं बैठ नहीं जाता। प्रेम की एकनिष्ठता न उसे बैठने देती है, न लौटने। वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो जायगा उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़नेवाला प्रेमी प्रिय के

निर्दय हो जाने पर जिस कष्ट का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। रीतिबद्ध रचना में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटो, यही इनका मूलमंत्र है। विरह सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नहीं बटोर सकती। मन का बल उनके पास उतना नहीं होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर जाने को चेतनता का नहीं, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है—

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कोँ लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्योँ समुझै जड़ मीत के पानि परे कोँ प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।

प्राणों को जिलानेवाला प्रिय मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है; मीन का प्रिय उसके प्रेम का अनुभव करनेवाला नहीं है। मछली तुरंत प्राण त्याग देती है, पर प्रेमी साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिए इन दोनों में समता कैसी। यह बात और साफ करके यों कही गई है—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै।
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरेँ मिलेँ मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कोँ परसै।

प्रेम की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए ही रीतिमुक्त कवि अधिकतर प्रेम की विषमता के उद्गार सुनाते हैं प्रेम की यह विषमता उनमें कहाँ से आई। भारतीय काव्य-परंपरा में दृश्य और श्रव्य काव्य के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में प्रेम के सम रूप का ही विधान है। प्रेम का उद्भव दोनों पक्षों में एक सा दिखाया गया है। वाल्मीकि ने राम और सीता में, कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला में, बाण ने कपिंजल और कादंबरी में सम प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है। हिंदी में विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा, पर सूरदासजी तक आते-आते प्रेम में वैषम्य का आरंभ हो गया। सूरदास आदि कृष्णभक्ति-शाखा के आदिम कवियों में इस विषमता की विवृति अधिक नहीं हुई। श्रीकृष्ण को भी

गोपियों के प्रेम में विकल दिखलाकर समता की सुरक्षा बहुत कुछ कर ली गई। पर आगे के कवियों ने श्रीकृष्ण का मानस-पक्ष उतना दिखलाया ही नहीं। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबने लगा। रीतिबद्ध रचना में साफ दिखाई देता है कि संयोग-पक्ष में नायिका के रूप-वर्णन की योजना नायक की उक्ति के रूप होती है, पर विरह-वर्णन में नायिका की विरह-दशा का ही साधारण वर्णन किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग-पक्ष में बहिर्वृत्ति की प्रधानता होती है और वियोग-पक्ष में अंतर्वृत्ति की। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में जहाँ तक हृदय का संबंध है शृंगारकाल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीतिबद्ध रचना में विषमता का बढ़ा-चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छंद धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है। फारसी-साहित्य में प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है और उर्दू में उस परंपरा का निर्वाह आज तक हो रहा है। पिछले काँटे के कृष्णभक्त कवि और स्वच्छंद धारा के रीतिमुक्त कवि सूफी संतों और फारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है। कृष्ण-भक्त कवियों में जो प्रेम का वैषम्य दिखाई देता है उस पर भी विचार कर लेना चाहिए। महाभारत में कृष्ण-प्रेम में वैषम्य की विवृति नहीं है, पर श्रीमद्भागवत में इसकी विषमता स्पष्ट लक्षित होती है। उपासक की भक्ति में लीनता और उपास्य के विरह में आरूढ़ होने के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त ही प्रेम-लक्षणा भक्ति के अनुकूल यह विस्तार हुआ है। ब्रह्म की ओर आत्मा के आकृष्ट होने के आदर्श के कारण यह विषमता सामने लाई गई है अर्थात् उद्धव-ऐसे ज्ञान के अहंकार में चूर व्यक्ति को प्रेमयोग या भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त यह योजना की गई है। क्योंकि भक्ति का प्रथम सोपान है अहम् का लोप, आत्म-विस्मृति। अतः कृष्णभक्ति में प्रेम वैषम्य का प्रसार श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि के प्रसार के साथ ही हुआ। प्रेम का वैषम्य और भक्ति की विषमता में अंतर है। प्रेम में प्रिय-पक्ष में निष्ठुरता, कठोरता, क्रूरता आदि का आरोप होता है, पर भक्ति में नहीं। भक्ति के आलंबन भगवान् के जिस रूप की कल्पना इस क्षेत्र में हुई वह भगवान् में हृदयपक्ष या करुणा के अत्यधिक आरोप को ही लेकर हुई। अतः भक्ति के क्षेत्र में क्रूरता का अधिक आरोप प्रेम-लक्षणा भक्ति में शृंगार का अवयव

अधिकाधिक आने पर ही हुआ। गोपियों की भक्ति के साथ-साथ शृंगार का दृष्टांत प्रबल पड़ने पर ही उसमें श्रीकृष्ण की निष्ठुरता आदि का उल्लेख हो चला। भागवत में यह प्रसंग भ्रमर-वृत्तांत के रूप में जुड़ा हुआ है। कृष्णभक्तों में भ्रमरगीत के भीतर इसी का अधिक विस्तार हुआ। भ्रमर के व्याज से श्रीकृष्ण कितव, छली, कपटी आदि कहे गए, यह भक्ति में माधुर्य भाव के ही कारण। भागवत में वर्णित यह प्रेमयोग कृष्ण-शाखा में सखी-संप्रदाय की उद्भावना का आदर्श ही बन गया। उद्धव तो गोप-वेश ही धारण करके लौटे थे, पर इधर पुरुषों ने भी सखी या गोपी-वेश धारण करना आरंभ किया। मीरा की उपासना तो गोपीरूप में स्वाभाविक जान पड़ती है, पर पुरुषों का गोपी-वेश बहुतों को प्राकृतिक नहीं प्रतीत होता। गोपियों में इस भाव का उदय अत्यंत सान्निध्य के ही कारण प्रदर्शित किया गया है। ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञेय हो था, प्रेम के द्वारा वह प्रेय बनाया गया। चित्त की विश्रांति प्रेमतत्व की योजना के द्वारा भक्ति में ही हुई। ज्ञान के क्षेत्र में तो बुद्धि की ही विश्रांति हो सकती थी। ज्ञान ने ब्रह्म को जाना, पर उसकी कोई कल्पना वह न कर सका। इसी से वह उसे निर्विकल्प, निराकार, निर्गुण आदि कहता आया पर भक्ति की संतुष्टि इससे न हो सकी, उसने उसे साकार और सगुण कर दिया। ज्ञान 'नेति नेति' कहता रहा, पर भक्ति ने 'सर्वं खल्विदम्' का सहारा लिया। वेदांत (अद्वैतवाद) भी तो विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवा, प्रतिबिंबवाद आदि से थककर अजातवाद और प्रौढ़िवाद की शरण गया। उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि जो जैसा है वह वैसा ही है।

तुलसीदासजी ने रामभक्ति का जो आदर्श चातक की साधना द्वारा प्रतिष्ठित किया उसमें भी चातक के पन का निरूपण विस्तार से है। वहाँ बादल को उदार, करुणालु आदि रूप में ही अधिकतर प्रदर्शित किया गया है। केवल कहीं कहीं उसकी कठोरता का निदर्शन प्रेमी-हृदय की उच्चता और दृढ़ता का प्रतिपादन करने के अर्थ जोड़ दिया गया है। कृष्णभक्ति और रामभक्ति के स्वरूप में बड़ा भेद था। रामभक्ति का रूप उपास्य और उपासक से सेव्य और सेवक-भावना को दृढ़ करनेवाला था। स्वयम् तुलसीदासजी ने स्पष्ट शब्दों में काकभुशुंडि के मुँह से कहलाया है—

सेवक-सेव्य-भाव बिन, भव न तरिय उरगारि।

पर कृष्णभक्तों में प्रेमलक्षणा भक्ति की उपासना बढ़ी, 'परानुरक्तिरीश्वरे' का प्राधान्य हुआ। शांत और दास्य भाव से बढ़कर सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव का आनंदातिरेक उपासना का प्रधान अंग हुआ। दास्य भाव उसीमें अंतर्भुक्त हो गया, साधना की चरम सीमा पर पहुँचकर उपास्य-पक्ष में कठोरता का आरोप भी हुआ। यह प्रेम के लौकिक पक्ष के द्वारा अलौकिक पक्ष तक पहुँचने के कारण ही हुआ है। भक्तों द्वारा कथित कृष्णलीला के उपालंभ-परक पद उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति की सूचना देते हों चाहे न देते हों, पर गोपियों की उपालंभ-भावना का विस्तार से वर्णन करने की रुचि प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रेरणा से अवश्य हुई है। भक्ति के इस स्वरूप ने प्रेमभाव के क्षेत्र का कोना कोना छान डालने की रुचि अवश्य उत्पन्न की। प्रेम का अधिक आरोप होने के कारण, मधुररस शृंगाररस के अतिरिक्त और कुछ न रह गया। बहुतों ने उसपर लौकिक स्वरूप इतना अधिक आरोपित कर दिया कि उनकी रचना घोर शृंगारी कवियों से मिल गई।

यह सब होते हुए भी स्वच्छंद कवियों की कृति में यह वैषम्य कृष्णभक्तों की रचना से ही सीधे उतर आया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भक्ति की साधना में प्रेमगत वैषम्य भक्ति की ऊँची और गहरी अनुभूति उद्भावित करने के लिए नियोजित है, प्रिय की वास्तविक कठोरता उसका प्रतिपाद्य नहीं। पर स्वच्छंद कविता में प्रिय की वास्तविक कठोरता का वर्णन विस्तार के साथ और प्रतिपाद्य रूप में स्वीकृत है। यह निश्चय ही फारसी की कविता का प्रभाव है, जहाँ प्रिय की योजना इसी रूप में की जाती है। एक पक्ष तटस्थ रहता है और दूसरा अनुराग-रस से संपृक्त। संस्कृत-कवियों के विरह में इस प्रकार का क्रूर प्रिय-पक्ष नहीं है। इसलिए इस कठोरता या उदासीनता का मूल स्रोत फारसी की काव्यधारा ही है जहाँ प्रधान काव्य-वस्तु (थीम) यही है और जो उर्दू की रचना पर अपना दीर्घकालीन प्रभाव डाल चुकी है। हिंदी के बहुत से मध्यकालीन कवि इस विषमता के वर्णन में लगे। बिहारी पर भी इसका प्रभाव पड़ा था, रसनिधि की रचनाओं में तो शब्दावली तक ज्यों की त्यों उठाकर रख दी गई है। शृंगार के साथ फारसी या उर्दू की रचना में कुछ बीभत्स व्यापार भी लगे रहते हैं। भारतीय परंपरा में जुगुप्साव्यंजक व्यापारों का ग्रहण केवल वियोग-पक्ष में ही विरह की दस दशाओं के अंतर्गत व्याधि, मरण आदि में हो सकता है (आलस्यौग्र्यजुगुप्साः संयोगे वर्ज्याः—रसतरंगिणी)। पर

वहाँ भी छालों का फूटना, पीव-मवाद का बहना कहीं नहीं दिखाई देता। यहाँ शिष्ट रुचि के अनुकूल ही जुगुप्साव्यंजक व्यापार भी रखे गए हैं। रसनिधि ने ऐसे बीभत्स व्यापार भी ग्रहण कर लिए हैं। उर्दू-रचना की इस विभूति का आकर्षण पुराने ही नहीं, अच्छे अच्छे नए कवियों में भी कहीं कहीं दिखाई देता है। प्रसाद जी के 'छिल छिलकर छाले फूटे, मल-मलकर मृदुल चरण से' (आँसू) में इसी का प्रभाव है। कुछ पंडितंमन्य देशी काव्य की मीमांसा में विदेशी प्रभाव की चर्चा से ही रुष्ट हो जाते हैं, उन्हें भारतीय और विदेशी काव्यपरंपरा के यथार्थ स्वरूप का अनुशीलन करना चाहिए।

प्रेम के उदात्त स्वरूप का निरूपण करने के लिए प्रीति-विषमता की स्वीकृति हुई, इसमें वियोग की प्रधानता आवश्यक थी। रीतिबद्ध काव्य-रचना में वियोग के वर्णन शास्त्रस्थिति-संपादन के लिए तो आते ही थे, वस्तुव्यंजना और दूर की उड़ान के लिए भी गृहीत होते थे। संभोग और विप्रलंभ शृंगार में प्रेमी के पक्ष में यह सदा ध्यान में रखने योग्य है कि संयोग में प्रेमी की वृत्ति बहिर्मुख रहती है और वियोग में अंतर्मुख। इसका हेतु भी स्पष्ट है। संयोग में प्रिय सामने रहता है—उसके रूप का निरीक्षण, उसकी मुद्राओं का अवलोकन, उसके संलाप का सुख प्राप्त करने के लिए प्रेमी प्रिय की ओर तो देखता ही है, उसके चतुर्दिक् छाई सृष्टि की ओर भी रागभरी दृष्टि डालता है। सारा संसार उसे प्रेममय, आनंदमय दिखाई देता है। शृंगार में शास्त्राभ्यासियों द्वारा सृष्टि की प्राकृतिक सामग्री जो उद्दीपन के खाते में डाल दी गई है उसका रहस्य यही है। पर वियोग में प्रिय के संमुख न रहने पर वियोगी अपनी सारी वृत्तियों को समेटकर अंतर्मुख हो जाता है। संयोग में सृष्टि से वह सुख का संचय करता था, पर वियोग में उसी से विषाद संचित होने लगता है। सुख, हर्ष, उल्लास आदि आनंदमयी वृत्तियाँ विकासमयी होती हैं, इसी से हृदय में न समाकर बाहर उमड़ पड़ती हैं; पर विषाद, करुणा आदि दुःख-मयी वृत्तियाँ संकोचकारिणी होती हैं, इसी से उनमें सिमटाव होता है, बाहर से अपने को खींचकर विरही सिमटकर भीतर बैठ जाता है। यही कारण है कि अंत-र्वृत्ति के निरूपण पर ही इन कवियों की दृष्टि जमी दिखाई देती है। पर इन कवियों की वियोग-विषयक धारणा रीतिबद्ध कवियों से विलक्षण भी है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता—'यह कैसो सँजोग न जानि परै जु वियोग न क्यों हूँ

बिछोहत है' (घनआनंद)। संयोग में वियोग की खटक लगी रहती है। प्रेमी यह समझकर उद्विग्न रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय—'अनोखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै, मिलेहू मैं मारै जारै खरक बिछोह की' (घनआनंद)। इसी हेतु इन विरहियों को न संयोग में शांति मिलती है न वियोग में। ये वस्तुतः प्रेम की तृषा बढ़ानेवाले हैं—'प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटे घटैगी कानि' (दोहावली)। रीतिबद्ध कवियों में न तो वियोग की यह चरमावस्था कहीं मिलेगी और न उसके स्वरूप का आभास ही। इसलिए ये स्वच्छंद कवि अपनी इस विशिष्ट वियोग-भावना के कारण उनसे पृथक् हो जाते हैं। इनकी प्रेम की पीर विलक्षण है। उसे 'ताकने' के लिए 'हिय-आँखिन' की आवश्यकता पड़ती है।[1]

प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। अतः स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी-काव्यधारा की वेदना की विवृति के साथ सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। सूफियों का विरह-वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी ने 'पदमावत' में भी प्रेम की पीर का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सूफी अपनी सांप्रदायिक भावना के अनुसार सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, 'रनचन' को विरह के बाणों से विद्ध मानता है, पशु-पक्षी के रोएँ और पंख उसे विरह की बाणावली दिखाई देते हैं, सारी सृष्टि उसे परमपुरुष के वियोग में कलपती जान पड़ती है। सूफियों के विरह और भारतीय भक्ति-मार्ग के विरह में भेद है। सूफियों का विरह यदि शाश्वत नहीं है तो जीवन में अपरिहार्य अवश्य है, कभी-कभी बेहोशी में ही संयोग-सुख क्षण भर के लिए मिल सकता है। पर भारतीय भक्त का विरह ऐसा नहीं है। इसका कारण सूफियों के ब्रह्म की निर्गुण निराकार-भावना है। भक्तिमार्ग ने तो निर्गुण को ज्ञान-क्षेत्र के लिए छोड़कर उपासना में उसका सगुण-रूप ही ग्रहण किया है। इसी से भारतीय भक्त को विरह ज्वाला में निरंतर तपते रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन स्वच्छंद कवियों ने फारसी-काव्य-गत वेदना की विवृति के साथ इस 'प्रेम-पीर' का स्वागत किया। इनकी रचना में वियोग के आधिक्य का कारण यही है। लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी-काव्य की वेदना की विवृति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों

---

१ समुझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन प्रेम की पीर तकी।

— घनआनंद कवित्त।

की प्रेम-पीर से। कृष्णभक्ति के अंतर्गत विरह की पुकार का अवकाश पाकर ये कवि कृष्ण और गोपियों की विरह-दशा की ओर स्वभावतः उन्मुख हुए। इसी से सूफियों की भाँति रहस्यदर्शिता के व्याख्यान की व्यापक वृत्ति इनमें नहीं रह गई। निर्गुण को त्याग कर सगुण की ओर प्रवृत्ति हो जाने से इनमें रहस्य की वृत्ति विस्तार न पा सकी। भारतीय भक्तिमार्ग अपने प्रकृत रूप में रहस्यदर्शी नहीं रहा—उसे रहस्य, गुह्य, गोप्य आदि की आवश्यकता नहीं थी। ब्रह्म का सगुण रूप सामने रहने के कारण ही ऐसा हो सका है, भले ही सगुण की कामना के मूल में रहस्य हो, पर भक्तिसाधना में वह नहीं रहा। पर बाद में सखीभाव की उपासना का प्रसार होने पर रहस्य भी थोड़ा बहुत इन भक्तों में अवश्य आ गया है। 'यह रहस्यभावना सूफी भावना से प्रभावित है या स्वगत विकास है'—इस विवाद में पड़ना अप्रासंगिक होगा। स्वच्छंद कवियों में सूफियों के संपर्क और प्रभाव के कारण कहीं-कहीं रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना से मेल खाती हुई इन कवियों की वृत्ति कृष्णभक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियों में से कई अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम की एकनिष्ठता के उपासक हुए। प्रिय की ओर से प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण में न पाकर, या उसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा खड़ी हो जाने के कारण, ये संसार से विरक्त हो गए। ऐसी दशा में इनके लिए दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण-संप्रदाय का अनुगमन करते या सगुण-संप्रदाय में दीक्षित होते। निर्गुण में रूप की योजना न होने के कारण उसकी उपासना इनके चित्त के लिए अभिमत नहीं हो सकती थी, अतः इन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छंद वृत्ति लीन की। रसखानि और घनआनंद दोनों ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है—

आनँद-अनुभव होत नहिँ बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥—(रसखानि)

ज्ञानमार्ग से उत्कृष्ट बताते हुए घनआनंद ने भक्तिमार्ग या प्रेमाभक्ति की यही विशेषता बताई है कि भोगियों का भोग या विषयानंद उसमें पर्यवसित या तिरोहित हो जाता है—

ज्ञान हूँ तेँ आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैँ भोगी भोग जात ग्वै।

जान 'घनआनँद' अनोखो यह प्रेमपंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

कृष्ण-भक्ति की ओर इनके आकृष्ट होने और उसमें लीन हो जाने का वास्तविक कारण यही था। इन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोमग के कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिबद्ध 'बिहारी' निंबार्क (राधातत्त्व-प्रधान) संप्रदाय में दीक्षित थे। अपनी 'सतसई' के आरंभ में राधा से बाधा-हरण करने की प्रार्थना करके उन्होंने अपना संप्रदाय व्यक्त भी कर दिया है। पर वे भक्तों की श्रेणी में नहीं बैठाए गए। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नहीं है। घनआनंद ने अंत में भक्ति-संप्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का 'सुजान' नाम वे भूल न सके। श्रीकृष्ण का 'सुजान, जान, जानराय' आदि विशेषण रखकर वे उनकी प्रेममयी गाथा निरंतर गाते रहे। इन स्वच्छंद कवियों की आत्माभिव्यक्ति के लिए कृष्णलीला सामग्री का काम कर गई। रीतिबद्ध कवियों ने कृष्णलीला के प्रसंग बराबर लिए हैं, पर वे भक्त नहीं माने जाते, न माने जा सकते हैं। 'आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई नतु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को बहानो है' लिख देने से कोई भक्त नहीं माना जा सकता। इन स्वच्छंद कवियों ने हृदय के योग के साथ भक्ति की रचनाएँ की हैं। ये साधन के रूप में ही कृष्णलीला का उपयोग करते थे। कृष्ण-भक्तों की भक्ति-भावना परिमित, सांप्रदायिक या अनन्य दिखाई देती है। श्रीकृष्ण से आगे वे प्रायः नहीं बढ़ते। इन प्रेमोन्मत्त गायकों ने उदारतापूर्वक अन्य देवी देवताओं को भी ग्रहण किया। यदि कहा जाय कि यह उदारता भक्ति का लक्षण है तो पूछना पड़ेगा कि 'रहीम' ने अपनी भक्ति-भावना उदार रखी है, पर वे भक्त कवि नहीं माने जाते। 'सेनापति' रामोपासक थे, राम की कथा के साथ उन्होंने कृष्ण-कथा भी 'कवित्त-रत्नाकर' में संनिविष्ट की है; पर वे भक्त नहीं, शृंगारी कवि ही स्वीकृत हैं। इसलिए रसखानि, आलम, शेख, घनआनंद आदि को शुद्ध भक्त कहने में हिचक होती है। सूरदास या अन्य भक्त कवि जैसे पद के अंत में 'सूर के प्रभु', 'सूर के स्वामी', 'परमानंद के प्रभु', 'हीन के स्वामी' आदि पदावली का उपयोग करते हैं, वह प्रवृत्ति भी इन कवियों में नहीं दिखाई देती। पद्माकर, मतिराम, देव आदि की जैसी उक्तियाँ हैं वैसी ही इनकी भी हैं। यदि बिना भक्त कहे संतोष न

होता हो तो विधि मिलाने के लिए यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इनकी रचना के प्राय: तीन खंड हैं। प्रथम खंड में इनकी रुचि रीतिबद्ध रचना की ओर दिखाई देती है, जिसमें इनकी ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें इन्होंने काव्यक्षेत्र में अपनी वाणी की परख या जाँच की है। दूसरे खंड में इन्होंने रीतिबद्ध रचना का त्याग कर दिया है और स्वच्छंद रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया है। तीसरे खंड में इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई हैं। इन कवियों का लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हो, सो भी नहीं है। सबसे अधिक विरोध 'रसखान' के संबंध में संभावित है। पर 'रसखानि' ने स्वयम् प्रेम को साध्य कहा है—

जेहि पाएँ बैकुंठ अरु हरिहूँ की नहिँ चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

श्रीवल्लभाचार्यजी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य अवश्य कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह कभी न भूलना चाहिए। पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं—

इक अंगी बिनु कारनहिँ, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

श्रीवल्लभाचार्यजी के अनुसार भगवद्भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है—उसे ही एकांगी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए। पर 'रसखानि' लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्ति-मार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कविंदों—सबसे पृथक् स्वच्छंदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहता हो तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है। स्वच्छंदता इनका नित्य लक्षण है। यही कारण है कि इन्होंने काव्यशैली की दृष्टि से भी भक्तों से प्रस्थान-भेद सूचित किया। कृष्ण-भक्तों की अधिकतर रचनाएँ गीत में ही मिलती हैं। काव्य की प्राचीन कवित्त-सवैया-वाली शैली में उन्होंने पूरी आस्था नहीं दिखाई। भगवदुपासना के रागरंग के लिए राग रागिनियों के अनुकूल पदन्यास करनेवाले गीत ही उन्हें अधिक रुचे हैं। इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ पद की भी अवश्य है; पर इनकी एक प्रकार से

प्रवृत्ति-बोधिनी कृति कवित्त-सवैयों में ही है—बीच-बीच में दोहे, सोरठे और छप्पय भी आ गए हैं, यह दूसरी बात है। इनके स्वच्छंद प्रेममय कवि-पक्ष के अनुकूल इस तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'रसखानि' ने भी भक्तों की 'गीति-रीति' का त्याग कर दिया है।

कृष्णभक्त कवियों में प्रबंध-रचना का स्फुरण नहीं हुआ। रीतिबद्ध शृंगार की रचना करनेवाले भी प्रबंध की ओर उन्मुख नहीं हुए। भक्तिकाल के भीतर सूफी प्रेममार्गी कवि अलबत्त प्रेमकथा के द्वारा अपनी सांप्रदायिक प्रेम-पीर व्यक्त करते थे। इन स्वच्छंद कवियों ने भक्ति और रीति दोनों की सांप्रदायिकता से पृथक् रहने का प्रयास किया, अतः इनका प्रेम-प्रबंधों की ओर मुड़ना स्वाभाविक था। 'आलम' ने माधवानल-कामकंदला, सुदामाचरित्र और श्यामसनेही नामक तीन प्रबंध-काव्य प्रस्तुत किए। पहले में कामकंदला नाम्नी वेश्या के प्रति माधवानल नामक प्रेमोन्मत्त व्यक्ति की प्रीति काव्यबद्ध की गई है। दूसरे में सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण के निःस्वार्थ प्रेम का बखान है। तीसरे में रुक्मिणी के प्रेम और परिणय की कथा है। इस प्रकार प्रेम के विविध रूपों को काव्यबद्ध करके 'आलम' ने अपने स्वच्छंद प्रेमपंथ का प्रमाण दे दिया है। न तो 'सुदामाचरित्र' की चर्चा चलानेवाले नरोत्तमदास भक्त कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं और न 'रामचंद्रचंद्रिका' का 'प्रकाश' करनेवाले केशवदासजी भक्तशिरोमणि ही मान जाते हैं—यद्यपि 'दास' दोनों ही हैं। अतः श्रीकृष्णविषयक रचना से ही किसी को भक्तों की मंडली में बिठा देना बहुत स्थूल लक्षण लेकर काव्येतिहास का विवेचन करने बैठना है। 'माधवानलकामकंदला' प्राकृत-काल की कदाचित् कल्पित कथा है, जिसमें थोड़ी-सी विक्रमादित्य की ऐतिहासिक कथा भी जुड़ी है। यह कथा मूल में प्राकृत ही रही होगी, संस्कृत में इसका प्राकृत से अनुवाद हुआ होगा—वैसे ही जैसे गुणाढ्य की 'बड्डकहा' का संस्कृत में संक्षेप हुआ। इसके प्राकृत-रूप का प्रमाण यह है कि संस्कृत में इसके जो अनुवाद हुए उनमें भी प्राकृत की गाथाएँ ज्यों की त्यों रखी हुई हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में संस्कृत में जो प्रेमकथाएँ कल्पित वृत्त लेकर गद्य में लिखी जाती थीं उन्हीं की परंपरा में प्राकृत काल की ये रचनाएँ भी हैं। जैसे प्राकृत और अपभ्रंश की और बहुत-सी सामग्री लुप्त हो गई वैसे ही यह कथा भी अपने मूल रूप में। यही 'माधवानलकामकंदला' शुद्ध भारतीय प्रेम-काव्यों की

परंपरा में दिखाई पड़ती है। सूफी प्रेमकाव्यों में कल्पित कथाओं पर, या कहीं-कहीं कुछ ऐतिहासिक आधार से भी युक्त होकर, जैसी रहस्यमयी कृतियाँ लिखी गईं उनसे यह सर्वथा भिन्न है। 'बोधा' ने भी माधवानलकामकंदला-चरित्र या 'विरह-वारीश' प्रस्तुत किया, पर उसमें भी सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति रहस्यदर्शी पक्ष का समावेश नहीं है। अर्थात् कोई समासोक्ति, अन्योक्ति या अन्योपदेश (अलेगरी) नहीं है—भले ही उसमें सूफी 'इश्क-मजाजी' और 'इश्क-हकीकी' की चर्चा हो पर काव्य-वस्तु में अध्यवसान का विधान नहीं हुआ है। इस प्रकार स्वच्छंद प्रेम के वृत्तों के ग्रहण द्वारा इस काव्य-धारा में प्रबंध की प्रवृत्ति के स्फुरण का भी संकेत मिलता है, जो रीतिबद्ध कवियों के बाँटे किसी प्रकार भी नहीं आ सकता था। 'आलम' के अन्य ग्रंथ पौराणिक या ख्यात वृत्त लेकर चले हैं। उनमें भी प्रेम के स्वच्छंद और व्यापक रूप के ग्रहण का आभास स्पष्ट है।

रीति की शृंखला में बँध जाने से कवियों ने प्रकृति की ओर से भी अपनी दृष्टि खींच ली थी। भक्तों ने भी प्रकृति का कोई अच्छा उपयोग नहीं किया। प्रकृति को अपनी दृष्टि से देखने और उद्दीपन के बंधन को तोड़कर चलने का प्रयास नहीं दिखाई देता। सेनापति की रचना में प्रकृति कहीं-कहीं उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिश्र का 'कृष्णचंद्रिका' नामक प्रबंध-काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है, पर उधर किसी समीक्षक की दृष्टि अभी नहीं गई है। कालिदास, भवभूति आदि पुराने संस्कृत-कवियों की भाँति उस प्रबंध-काव्य में गुमान मिश्र ने प्रकृति के खुले दर्शन कराए हैं। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित 'कृष्णायन' भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। प्रकृति के खुले मैदान (महोबा, बुंदेलखंड) में रहनेवाले इन कवियों की सहृदयता प्रशंसनीय है। पूर्वोक्त स्वच्छंद कवियों में प्रकृति-दर्शन की स्वच्छंद रुचि भी जगी है। इनके यहाँ प्रकृति उद्दीपन के पाश से मुक्त दिखाई पड़ती है। रीति का व्यवहार अधिक होने का दुष्परिणाम जो होना चाहिए था वही हुआ—कवियों ने अपनी काव्यदृष्टि खो दी; प्रकृति को अपनी दृष्टि से निरीक्षण करना वे छोड़ बैठे। कुछ कवियों ने परंपरा का तिरस्कार करके वसंत में मयूर का नृत्य अवश्य दिखाया और वर्षा में कोकिल-कंठ अवश्य खोला, पर इससे आगे वे भी कुछ न कर सके। वसंत का वर्णन करते हुए स्वच्छंद-वृत्ति-विशिष्ट 'द्विजदेव' ही ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति-दर्शन के लिए अपनी

दृष्टि स्वच्छंद करके बाहर निकले हैं। शास्त्र-दृष्टि से काम न लेकर उन्होंने आत्म-दृष्टि का पूरा उपयोग किया। 'विरह-वारीश' में बोधा ने भी प्रकृति का वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छंद-वृत्तिबद्ध रखा है। अतः इन कवियों की स्वच्छंदता ने यथार्थ काव्यदृष्टि सामने करने का पूर्ण उद्योग किया है, इसमें संदेह नहीं रह जाता। प्रकृति इन्हें कैसी दिखाई पड़ी, इसका विचार यहाँ अपेक्षित नहीं।

स्वच्छंद दृष्टि ने देश के आनंदोल्लास में भी इन कवियों को संलग्न किया। वसंत-वर्णन के अंतर्गत होली के त्योहार का उल्लेख करने के आगे रीतिबद्ध कर्ता नहीं बढ़े। गुलाल की गरद और केसर की कीच तक ही वे रह गए। इन त्योहारों का चित्र उपस्थित करने की ओर इनकी दृष्टि स्वाधीनता के साथ प्रसरित न हुई। 'ठाकुर' ने अपनी रचना में बुंदेलखंड के आनंदोल्लासमय जीवन के कुछ चित्र रखकर देश के इस सांस्कृतिक वैभव की ओर भी लोगों की दृष्टि खींची। हम तो अपने नागरिक जीवन के अभिमान में अपना प्राचीन संस्कार भी खोते जा रहे हैं! नगरों में त्योहारों का वह उल्लासमय रूप सामने नहीं आता जो भारत के जीवन का प्राण रहा है। गाँवों में इस दृष्टि से अपने जीवन का रूप अच्छा और रमणीक दिखाई देता है। जो प्रांत या प्रदेश नागरिक जीवन की पंकिलता से दूर या विच्छिन्न हैं उनमें अब भी देश की इस विभूति के बड़े भव्य दर्शन होते हैं। बुंदेलखंड में हमारा जीवन-खंड अपने प्राचीन रूप में अब भी बहुत-कुछ सुरक्षित है। 'ठाकुर' कवि ने उस उल्लासमय जीवन में से अखती, गनगौर, वटसावित्री बरगदाई), होली आदि के बड़े ही प्रभावुक चित्र सामने किए हैं। रीतिबद्ध कवियों में से किसी-किसी ने बुंदेलखंड से संबद्ध होने के कारण 'गनगौर' का उल्लेख भर कर दिया है, जैसे पद्माकर ने; पर उसका चित्र उपस्थित करने की अभिरुचि नहीं दिखाई दी है। काव्यशास्त्र में इन त्योहारों का उल्लेख तो है नहीं, फिर रीतिबद्ध कवि इनका अभिनंदन करने क्यों दौड़ते।

स्वच्छंद कवियों ने इसी से रीति की रचना आरंभ में स्वीकृत करके भी त्याग दी। उसका जितना अंश उन्होंने लिया वह भी परिमित है; कुछ चुने हुए प्रसंग ही अंगीकृत हैं। नेत्रव्यापार की कुछ उक्तियाँ सभी कवियों में पाई जाती हैं। भक्त, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त—सभी कवियों ने नेत्रों पर उक्तियाँ बाँधी हैं। 'सूरसागर' में तो इस प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि कोई चाहे तो नेत्रों

की उक्तियों का हिंदी के पुराने कवियों के काव्य से बहुत बड़ा संग्रह हो सकता है। एक छोटा-सा संग्रह निकला भी है, पर उसमें भी चमत्कारातिशय-युक्त रचनाएँ ही संकलित की गई हैं। वैसी भी इन उक्तियों को हम रीतिबद्ध रचना के अंतर्गत नहीं ले जा सकते। खंडिता की उक्तियाँ भी इन कवियों में पाई जाती हैं। 'बिहारी' की भी कोई एक-तिहाई रचना खंडिता की उक्तियों से निर्मित हुई है। रसखानि, आलम, ठाकुर, घनआनंद—सबमें खंडिता की उक्तियाँ मिलती हैं। इसके हेतु का विचार करना भी आवश्यक है। बात यह है कि जो कवि दरबारी थे, उन्होंने तो उर्दू या फारसी की काव्यरचना के रकीबों और माशूकों के जोड़तोड़ में खंडिता को दरबार में पेश किया। भारतीय परंपरा में उन्हें खंडिता की उक्ति ही उससे मेल खानेवाली दिखाई पड़ी। लोगों की क्रीड़ा में विशेष संलग्न होने का कारण दरबारी कवियों में तो दरबारी ढंग ही प्रतीत होता है। स्वच्छंद कवियों ने इनका ग्रहण इसी से किया कि प्रेमवैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्यपद्धति में यही बात अनुकूल दिखाई पड़ी। फारसी-ढंग का प्रेम वे देशी प्रणाली के अभिमानी होकर दिखा नहीं सकते थे, प्रेम की गंभीरता पर भी तो उनकी दृष्टि आरंभ से ही थी, अतः रीतिबद्ध कवियों का यही काव्यार्थ उन्हें सुभीते का जान पड़ा। पर खंडिता की इनकी उक्तियों में भेद है। [illegible] नायिका-भेद के भीतर धीराधीरादि और खंडिता के रूप में अंतर दिखाई देता है। खंडिता में अधिकतर सपत्नी के संसर्ग से उपलब्ध नायक के शरीर पर के चिह्नों पर ही विशेष दृष्टि रहती है और वह भी बेढंगे चिह्नों पर। जैसे—भाल पर महावर का चिह्न, आँखों में पान की पीक, अधरों में अंजन, छाती पर 'बेगुन की माला' आदि। रीतिबद्ध कवियों ने इन विशेष चिह्नों की उद्धरणी पर ही विशेष ध्यान दिया है; खंडिता के हृद्गत भावों पर उनकी वृत्ति प्रायः नहीं जमी है।

धीराधीरादि में भी वचनावली की कठोरता या कोमलता को ही उन्होंने लक्ष्य किया, उक्ति के साथ लिपटकर हृदय सामने न आ सका; पर स्वच्छंद कवियों ने खंडिता के चिह्नों की उद्धरणी पर ध्यान न देकर उसका हृदय दिखलाने का प्रयत्न किया है। उक्ति खंडिता की ही है, इसके लिए किसी एक चिह्न का संकेत करके वे भाव के विधान में लग गए। पर इस प्रकार की उक्तियों में भी उनका मन नहीं रम सकता था, अतः उन्होंने इनका भी त्याग कर दिया। सुरतांत या

विपरीत रति आदि की कुरुचिपूर्ण रचनाएँ स्वच्छंद कवियों की रचना में प्रायः नहीं मिलतीं। जहाँ मिलती हैं वहाँ उनकी आरंभिक रचना के रूप में, जब उन्होंने हाथ आजमाने के लिए रीतिबद्ध रचना की सरणि स्वीकृत की थी। बाद में ऐसी रचना की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की। 'बोधा' में ही कुछ बाजारू रंगढंग कहीं-कहीं मिलता है। यह उनपर फारसी की रचना का आरंभिक प्रभाव है। रीतिबद्ध लक्ष्य-कारों में जो स्थिति 'रसनिधि' की है, भक्तों में जो रूप 'कुंदनशाह' का है, वैसा ही स्वच्छंद कवियों में 'बोधा' को समझना चाहिए। जो आत्मविस्मृत होकर बाहरी रंग में रंग गए हैं। कुशल हुई कि 'बोधा' ने अपनी सारी रचना इसी प्रकार की नहीं रखी। घनआनंद, ठाकुर आदि ने तो विदेशी रंग ढंग ग्रहण करने की पद्धति बताई। विदेशीपन इनकी काव्यधारा में घुल गया। 'बिहारी' ने भी रसनिधि की अपेक्षा विदेशीपन को बड़े कटकीने से ओढ़ा है, वीभत्स व्यापार कहीं ग्रहण नहीं किया।

स्वच्छंद कवियों ने अपना वैभव केवल हृदय की उदारता और प्रेम के निर्मल रूप में ही नहीं दिखलाया, भाषा और अभिव्यंजन शैली में भी दिखलाया। रीतिबद्ध रचना प्रचुर परिमाण में हुई, हिंदी का भांडार सुंदर उक्तियों और रमणीक प्रसंगों से भर गया। किसी काव्यांग के उदाहरण की कमी नहीं रह गई, एक से एक रचना छाँटकर निकाली जा सकती है—भले ही वे रचनाएँ प्रायः एक ही प्रकार की हों; पर उनमें कवि की क्षमता के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष भी अवश्य दिखाई देता है। यह सब होने पर भी भाषा का परिष्कार उनके द्वारा वैसा न हुआ जैसा होना चाहिए था। बिहारी, मतिराम, पद्माकर ऐसे दो-चार कवियों को छोड़ दें तो रीतिबद्ध रचना करनेवालों में भाषा की सफाई के दर्शन न हो सकेंगे। भूषण, देव आदि बड़े उत्कृष्ट कवि थे; पर शब्दों का अंगभंग इन्होंने पर्याप्त किया है। कवियों ने न तो प्राकृत, अपभ्रंश आदि के पुराने शब्दों को ही जो व्रजभाषा की बोलचाल से उठ गए थे—छाँटकर पृथक् किया और न रूप की एकता का ही विचार किया। पश्चिमी व्रजभाषा और पूर्वी अवधी की पदावली का ऐसा सम्मेलन हुआ कि व्रजभाषा का व्याकरण प्रस्तुत करनेवाले अब उनके पृथक् पृथक् रूपों का भेद ही नहीं कर पाते—एक ही लाठी से सबको हाँकने लगते हैं। पूर्वी और पश्चिमी प्रयोगों में भेद है। 'सुघर' शब्द व्रज में 'चतुर' अर्थ में आता

है, अवधी में 'सुंदर' अर्थ में। पछाहँ में 'सुठि' चलता है 'सुंदर' के अर्थ में, पर पूरब में 'अति' के अर्थ में। 'हेरना' पछाहँ में 'देखने' को कहते हैं, पूरब में 'खोजने' को। पर इन सब प्रयोगों का ऐसा एकीकरण हो गया कि भेद करना सचमुच बहुतों के लिए कठिन है। देशी ही नहीं, विदेशी शब्दों की भी आकृति बदल गई। पर स्वच्छंद कवियों में यह बात नहीं दिखाई देती, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इन्होंने न शब्दों का अंगभंग ही किया है और न प्रयोगों को बिगाड़ा ही। रसखानि और घनआनंद ने तो ब्रजभाषा का ऐसा स्पष्ट और ठीक रूप प्रस्तुत किया कि उसके आधार पर ब्रज का पुष्ट व्याकरण बन सकता है। 'दास' जी ने ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिन कवियों की तालिका उपस्थित की है उन सबकी भाषा का अध्ययन करने पर उसी भाषा का ज्ञान होगा जिसमें ब्रज और अवधी दोनों का मेल है। सब प्रकार के मेल से बनी भाषा ही ब्रजभाषा रह गई। 'ब्रज' काव्य की भाषा थी, इसलिए उसमें सब प्रकार के प्रयोग मिला दिए गए। काव्य-भाषा के लिए कुछ विस्तार अपेक्षित भी है, पर भाषागत भेद बना रहना भी आवश्यक है; ब्रज की मूल प्रवृत्ति का तिरस्कार ठीक नहीं जान पड़ता। रसखानि और घनआनंद ने ब्रजभाषा का गठा हुआ ही रूप रखा, बिहारी ने भी उसका मूल साहित्यिक रूप सुरक्षित रहने दिया। दो-चार प्रयोग अलंकार-छंद आदि की विवशता के कारण उसमें भले ही पूरब के भी आ गए हों, पर वे सरलता से पहचाने जा सकते हैं।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लड़ी बाँधनेवालों की अपेक्षा इनकी व्यंजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनआनंद ने तो ऐसे ऐसे पथों से भावना को ले जाने का साहस किया है जिनपर पुराने कवि तो गए ही नहीं, नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

(१) मो से अनपहचान को पहचाने हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी 'पुकार मौन में' है तो उधर नेत्रों में 'कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लहौ न परवि गति ऊलट अनेरे की।

रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
ऐ किधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की।

'रंग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रंग ही धुले बिना बच सकता है, पर यहाँ नेत्रों के प्रवाह में ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नहीं जा सकता। वाह्यार्थ-वैशिष्ट्य (आब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा स्वात्मवैशिष्ट्य (सब्जेक्टिविटी), कौन जाने!

इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं; हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिए। वस्तुतः ये सुंदरता के भेदों— रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कविताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनआनंद ने 'विरोधाभास' का बहुत सहारा लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नहीं पड़ने पाया है—

देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं।

आँखें स्वभाव से ही निपेटिनी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भस्मी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमें जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है; सब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा में खा लेने पर भी पेट नहीं भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। श्लिष्ट 'भसमी बिथा' में घनआनंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ नहीं है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनआनंद की सारी रचना भरी पड़ी है। निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनंद की कृति से पृथक् किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अनन्य पहचान-चिह्न' से इनकी कृतियों के छाँटने में पूरी सहायता मिल सकती है। विरोध वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की शैली प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कहीं-कहीं

दिखाई देता है, पर केशवदास जी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी हारी हम आप हीं निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के साहचर्य में 'निर+दई' भी है। पर 'निर + दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ में कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनआनंद और ठाकुर ने ब्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवालों में कहाँ। लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनआनंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि, पदध्वनि तो दूर रहे, इन्होंने पदांशध्वनि से भी जगह जगह काम लिया है। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू बहिये अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण, जिस प्रकार आपने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढ़े हैं—जैसे, 'दिनदानी' के ढर्रे पर 'दिनहीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनआनंदजी ब्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'ब्रजभाषा-प्रवीण' और 'भाषा-प्रवीण' दोनों ही थे।

आनंदघन

आनंद, आनंदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही कवि के समझे जाते थे। हिंदी में संगीत के सबसे बड़े संग्रह-ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनंद' और 'आनंदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने दि मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ६२, संख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनंद और आनंदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी

सभा (काशी) की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन का पार्थक्य माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उसकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है—

कायथ-कुल आनंद कवि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संवत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥

—(खोज, १९२३-१० बी)।

अथवा

रितु बसंत संवत्त सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम के पाठ॥

जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अंक २; अप्रैल, १९४३ में मेरा 'शिवसिंहसरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख) । इस प्रकार भी दोनों के समय में ४० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो जमीन-आसमान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है । इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' पृथक् पृथक् कवि हैं ।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे ? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त 'दिल्लीवाले आनंदघन' के अतिरिक्त १४४।१ संख्या पर एक दूसरे 'आनंदघन' का विवरण भी इस प्रकार दिया है—"आनदघन, ग्रंथ-आनंदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचनाकाल—१७०५, विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।" किंतु श्रीक्षितिमोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक विस्तृत लेख लिखकर वृंदावन के 'आनंदघन' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है । 'सरोज' में भी एक कवि 'आनदघन' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय स० १६१७ दिया गया है (पृष्ठ ४११) । इन 'घनआनंद' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के अभेद की भी सभावना श्रीज्ञानवती त्रिवेदी लिखित 'घनआनंद' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११) । इसलिए विस्तार से विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है । 'सरोज' में दिल्लीवाले 'आनदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं (पृष्ठ ११-१२); एक है 'आपु ही ते' प्रतीकवाला सवैया (देखिए आगे) और दूसरा यह है—

जैहैं सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो तन भूलि चितैहैं ।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहैं ।
साँची हौं भापति मोहिं कका की सौं प्रीतम की गति तेरि हू ह्वैहै ।
मो सों कहा अठिलात अजासुत कैहौं ककाजो सों तोहूँ सिखैहैं ।

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है । हाँ, गुरुजनों से 'केशव-पुत्रवधू' के संबंध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैये में वर्णित है । कहते हैं कि जब प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके आत्मज विषय वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' ('प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) की रचना करनी पड़ी । इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो

गया। वे दर्शन के ग्रंथ काँख में दबाए घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक्त होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थीं कवयित्री। अजासुत ने प्रकृत्या उसे आते जाते देख जब अपनी 'बोली-बानी' में कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे मैं काकाजी से कहकर तुझे भी अध्यात्मविद्या की शिक्षा दिलाऊँगी, जिससे तुझे भी वैराग्य हो जाय. तेरी भी वही गति हो जो मेरे पतिदेव की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३३५ संख्या पर 'केशव-पुत्रवधू' का उल्लेख है— "रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सारसंग्रह' का विवरण भूमिका में यों दिया है—"संवत् १८०० का प्रवीण कवि द्वारा संग्रहीत सारसंग्रह, पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। पर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्य-भाषा-पुस्तकालय के हस्तलेख-सग्रह (संख्या ८५६) के १२५ वें पन्ने पर यही एक सवैया केशव-पुत्रवधू के नाम पर दिया गया है। केवल एक ही उदाहरण है। अतः यह 'आनदघन' या 'घनआनंद' की रचना नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। अब 'सरोज' (पृष्ठ ८२) में 'घनआनंद' के नाम पर उदाहृत रचना देखिए—

गाइहैँ देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहैँ।
पाइहैँ पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहाँ हरि को चित लाइहैँ।
लाइहैँ आछे द्विजातिन को अरु गोधन-दान करैँ चरचाइहैँ।
चाइ अनेकन सोँ सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहैँ।

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनद' नाम है अवश्य, पर 'आनदघन' और 'घनआनद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनदघन' या 'घनआनद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। व्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का

अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का सयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वंदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इससे यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कविंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते बेढंगा हो गया है। 'चाइ' के बदले 'चाहहीं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनंद' विशेषण न हो। जो कुछ भी हो इस संबंध में सवैया है संदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनंदघन' (महात्मा लाभानंदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। उनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समयसुंदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद्र (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन-स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव-संग्रह' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख)। इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६७८ के अनंतर ही ठहरता है। इनकी प्रशस्ति लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने सं० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवासी हुए। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'छप्पनभोगचंद्रिका' में कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का समसामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन बच सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत-सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कौं वार्‌यो।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी

एक साथ विराजते हैं।" (राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७२)। इससे भी पता चलता है कि घनआनंदजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसी से उतारे प्रतिचित्र का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर खाना बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्रीआनंदघनजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेव-शरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदासजी' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, सं० १९९९, पृष्ठ ३८०)। इससे वृंदावनवासी आनंदघनजी का समय अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में भी सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

घनआनंद मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस बखेड़े को छोड़िए कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे या दरबार के 'मीर मुंशी'। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था बादशाह ने इनका गाना सुनने की हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में उन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय जिस पर ये आसक्त हैं तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया।

फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अंत में ये वृंदावन चले गए और वहाँ निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। अंत में कहा जाता है कि मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले में ये मारे गए।

इतिहास में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। सबसे पहले नागरीदासजी के जीवनचरित्र में बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह संकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। मेरे शिष्य स्वर्गीय विद्याधर पाठक ने बड़े परिश्रम से इस भ्रांति का निराकरण करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उसके अनंतर श्रीशानवती त्रिवेदी ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है। सं० १८४६ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पद-संग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीकामवन के मंदिर मलेछनि करि जो उतपात भयौ ताकौ हेत जो रसिकनि के विचार में आयौ सो लिख्यौ है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनंद की कथा से यह 'वार्ता' कुछ मिलती है। श्रीवृंदावन-दासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह-उत्कंठा-बेली' में इस प्रकार किया है—

> जमन कछू संका दई व्रजजन भए उदास।
> ता समये चलि तहाँ ते किये कृस्नगढ़ वास ॥

(खोज, १९१७–२४ एफ्)।

अब इधर जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई है उससे इसी की पुष्टि होती जाती है कि घनआनंदजी का निधन मथुरा में ही हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमदशाह के आक्रमण में ही मारे गए। अब्दाली ने एक बार सन् १७५७ (सं० १८१३) और दूसरी बार सन् १७६१ (सं० १८१७) में मथुरा पर आक्रमण किया था। घनआनंदजी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण के अनंतर तो ये जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनंदघनजी के ग्रंथों के जो बृहत् संग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका-मोद' भी है। इसके अत में ये स्वयम् लिखते हैं—

गोपमास श्रीकृस्न-पच्छ सुचि।
संवत्सर अठानवे अति रुचि।

यह 'संवत्सर अठानवे' १७९८ है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण सं० १७९६ में हुआ और दिल्ली तक ही परिमित रहा। संवत् १७९८ में आनदघनजी ग्रंथ की रचना कर रहे हैं अर्थात् उसके दो वर्षों के अनंतर भी जीवित हैं। इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये सं० १७९६ में नहीं मारे गए। इनकी मृत्यु या हत्या नादिरशाही में कदापि नहीं हुई। पर ये अब्दाली के दोनों आक्रमणों में से पहले में मारे गए या दूसरे में इसका निश्चय कर लेना चाहिए। सं० १८१२ में आनदघनजी कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह नागरीदास के साथ दिखाई देते हैं "जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और घनानद कृष्णगढ़ आए थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंद के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव के सान्निध्य में आनंदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर के महाराज जी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराज ने उनके कवित्तों की बड़ी प्रशंसा की। तब आनंदघन जी ने कहा कि तुम प्रशसा करनेवाले कौन ? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करैं तो श्री गोवर्धनजी करैं। यह कहकर वहाँ से बिदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नही चलेंगे पीछे ही जायँगे सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना जाता है कि मथुरा में कत्लेआम करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े-थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों-त्यों यह ब्रजरज में लोटते रहे, ऐसे देह त्याग किया।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७३)।

ब्रज से नागरीदास और घनआनंद के प्रस्थान का संवत् 'नागरसमुच्चय' में कवीश्वर जयलाल ने यह दिया है—

अठारह सै ऊपरै संबत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तेँ कियो पयान॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या को संवत् १८१३ समाप्त हो जाता है और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् १८१४ का आरंभ होता है। अब्दाली का सन् १७५७ में कत्ले-आम १ मार्च से ६ मार्च तक हुआ था। 'इंडियन एफिमरीज' के अनुसार यह समय फाल्गुन शुक्ल दशमी से चैत्र कृष्ण प्रतिपदा तक पड़ता है। इसलिए घन-आनंदजी इस आक्रमण में नहीं मारे गए। अब्दाली का हमला सं० १८१३ में हुआ था, सं० १८१४ में नहीं इसका प्रमाण 'खोज' के एक विवरण में मिलता है।

चाचा हितवृंदावनदासजी की 'हरिकलावेलि' के विवरण में लिखा है—"काबुल वा कंधार का रहनेवाला एक कलंदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ में और दूसरी बार सं० १८१७ में व्रज पर चढ़ आया था।"—(त्रैवार्षिक खोज-विवरण, १९१२-१४—१९६ के)

इस 'हरिकलावेलि' के आरंभ में ही लिखा है—

ठारह से तेरहीं वरष हरि यह करी।
जमन विगोयो देस विपति गाढ़ी परी।
तब मन चिंता बाढ़ी साधु पतन करे।
हरिहीं मनहुँ सिष्टि-संघार-काल आयुध धरे॥ १॥

दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
'अहो नाथ तुम जन हते, भए कौन विधि पोच॥ २॥
बार बार सोचत यहीं गए प्रान बौराइ।
संत करे वध जमन ने यह दुख सह्यो न जाइ॥ ३॥
महर फरुखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास।
चैत्रसुदी एकादसी तहाँ भयो इक रास॥ ४॥
तीन पहर रजनी गई वे कवि कीयो गान।
तहाँ एक कौतुक भयो जाको करौं बखान॥ ५॥
आनँदघन को ख्याल इक गायो खुलि गए नैन।
सुनत महा विह्वल भयो मन नहिं पायो चैन॥ ६॥
ऐसेहू हरि-संत-जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लीनौ सोच दबाइ॥ ७॥

आनंदघनजी का ख्याल किसी 'इक' ने गाया। सुनकर वृंदावनदासजी विह्वल हो गए, उनके चित्त में स्थिरता नहीं रही। ऐसे ख्याल के निर्माता आनंदघनजी के समान हरि-सत-जनों को यवनों ने मार डाला। पर कब? क्या संवत् १८१३ में? न संवत् १८१७ में। यह तो लेखक आरंभ में ही कहता है कि इस या इन आक्रमणों में ऐसे-ऐसे सत मार डाले गए। लेखक ने आगे चलकर सं० १८१७ में दूसरे आक्रमण का उल्लेख किया है। सं० १८१३ में तो वह फरूखाबाद में गंगा के किनारे था। सं० १८१७ में तो उसने आनंदघनजी के शव को प्रत्यक्ष अपनी आँखों देखा था। महात्मा आनन्दघनजी की 'व्रजरज' में मिलने की इच्छा थी। उनकी यह साध पूरी हुई। उनके शव पर आँसू बहाता हुआ कवि संवत् १८१७ में आषाढ़ बदी रविवार को कहता है—

> बिरह सौं तायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
> धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
> एहो व्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौं,
> कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तरी है।
> गाढ़ौ वृज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
> रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
> वृंदाबन हित रूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
> ऐपै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है॥ १७७॥

हरि तो 'धूल ही उड़ाते रहे', पर भक्त की निष्ठा ही सत्य निकली कि शरीर व्रजरज में ही मिला, खंड-खंड कण-कण होकर।

मुहम्मदशाह रँगीले और उसके अमीर-उमरावों ने पतन की किस सीमा तक मुगलवंश को पहुँचा दिया था इसका भी स्पष्ट उल्लेख है—

> नीत पातसाहै ऊक्यौ सूबनि मनसूब चूक्यौ
> बहुत दिन निजाम कूक्यौ काबिल दरेरो किये।
> वेस्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते
> रज-तम की धार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियै।
> दिल्ली भई बिल्ली कटैला कुत्ता देखि डरी
> भूल्यो मुहमदसाह पहिले अब काह ढोकियै।

बाबर हिमायुँ को चलाऊ अब बंस भयो
ताको यह फैल्यो सोक परजा करम ठोकिये।

आनंदघनजी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है उसे अब सत्य मानकर हिंदीवालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माणकाल यह है—

ठारह सै सत्रहों वर्ष गत जानिये।
साढ़ वदी हरिवासर वेलु बखानिये॥

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। आनंदघन-ग्रंथावली में 'आनंदघन' के नाम पर जो रचनाएँ दी गई हैं उनमें 'ब्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पंजाबी का ही है। 'आनंदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दोहे ब्रजभाषा में भी रखे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पंजाबी में हैं और रागकल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या तुक जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के संग्रह में घनआनंद' का यह सवैया—

आपुहीं तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ में।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउँ में।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसो न चाहिय प्रीति के भाउ में।
मोहन मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एक ही गाउँ में।

किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। शृंगार-संग्रह में इसे घनआनद के नाम पर ही दिया गया है। सुजान की अन्य दो रचनाएँ भी वहीं से नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कवित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनो चित्त चाय चाय।
अब क्यों कहत गुरु लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम कासों कहौं जाय जाय।

ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' तो सों
तेरे बिन देखें आखैं रहैं झर लाय लाय।
दूर जौ बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय।

सवैया

वेद हू चारि की बात कों बाँचि पुरान अठारह अग मैं धारै।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति मैं ;वार ते पारै।
राग कों आदि जिती चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के लारै।
हीनता होय जौ हिम्मत की तौ प्रबीनता लै कहा कूप मैं डारै।

—सुधासर, पन्ना २३४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय बँधाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार में गाना गाते सकुचा रहे थे? सुजान ही जानें।

इधर मुझे अजयगढ़ राज्य से प्राचीन कवियों का एक संग्रह मिला है जिसमें घनआनंद के कवित्तों के संग्रह के अनतर 'अथ सुजान के कवित्त' शीर्षक से 'सुजान' के ग्यारह कबित्त दिए हुए हैं, जिनमें एक तो 'पहिलें तौ नैनन' प्रतीक वाला है और शेष ये हैं—

मन मेरो तुमै यह लागि चुक्यौ अब कोऊ कछू किन कैबौ करौ।
वह मूरत मोहनी रंगभरी सु दया धरि चित्त दिखैबौ करौ।
यह वीनती मेरी सुजान कहै चित दै इतनी सुनि लैबौ करौ।
कबहूँ जिय आवै तबै सुनि प्यारे मया करिकै इत ऐबौ करौ॥
हेतपगी रसभीँनी चितौनि चितै हम त्यौं अँखियान मैं आवत।
रूप सलूँनो दिखाय महा हिय मैं अति आनँद को घन छावत।
सुजान ए प्रान लगे तुम ही सों सु क्यौं निरमोही कहा तन तावत।
मोहनी डारि कै मोहन जू वह मोहनी मूरत क्यौं न दिखावत॥

तेरी छबि मोहनी ने मेरो मन मोहि लीनौ,
चित दै इतीक यह बात न बिसरि जा।
तोहि बिन देखें मोहि कल न परति हाय,
दै करि दिखाई पीर बिरह की हरि जा।

कहत सुजान कान्ह रूप के निधान वह
मूरत किसोर मेरी आँखिन मैं धरि जा।
का जी यह लाल तेरो जो पै यह बात साजी,
मन नाहि राजी तौ नजरबाजी करि जा॥

तुम्हरे विरह तें विकल दिनरात गोपी,
रही मुरझाय कबहूँ न देखी हसती।
कोलाहल केलि जहाँ जहाँ कीन्ही तहाँ रची,
चीन्ही वा कालिंदी-कूल कुंज-डार डसती।
रावरे रहत ते लहत सब ठौर दिल,
अब इन्हें द्वारिका है सोनमई लसती।
मेरे लेखें यह व्रज ऊजर सुजानराइ,
जिहीं ओर बसै कान्ह तिहीं ओर बसती॥

ऐसी जो रुखाई पहिले ही बनि आई ही तौ,
वैसे हिलमिल काहे रीझ भीजियतु है।
आपनो जौ मन फेरि लीनौ मेरे लालन तौ,
आगले को मन क्यौं न फेरि दीजियतु है।
तुम तौ सुजान कान आन की न चिंता तुम्हें,
नाहक परायो तन ऐसे छीजियतु है।
बिना प्रीत प्यारे कोऊ काहे को परेखो करै,
प्रीत ही कों प्रीतम परेखो कीजियतु है॥

सीख सुनै नहि मो मन नेकु सु तौ तन देखिकै ऐसो लुभानो।
लाज तजी कुलकान तजी सब लोक चवाई मैं नावँ धरानो।
सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानौ।
नेह लगाय कै पीठ न दीजियै हाय इती बिनती उर आनौ॥

तुम्हरो लखि रूप किसोर सुनौ उरझयो मन क्यौं सुरझाइयै जू।
बिन देखें तुम्हें यौं सुजान कहै विरहानल मैं तन ताइयै जू।
कबहूँ इन आँखिन कों वह मोहनी मूरत लाल दिखाइयै जू।
मन आवै तबै रुचि सों सुनि प्यारे मया करिकै इत आइयै जू॥

'राग-कल्पद्रुम' में यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर पद कह रहा है कि रचना उसके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द 'मुहम्मद सा' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कहि' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना!

इधर मुझे जो दूसरी नवीन उपलब्धि हुई वह 'घनआनंद' पर किसी अज्ञात रचयिता के भड़ौए हैं। कहा जाता है कि ये संवत् १८१२ विक्रमीय में संगृहीत 'जस कवित्त' नामक संग्रह में के हैं। इनसे और कई बातों के अतिरिक्त 'सुजान' का 'हुरकिनी' और 'तुरकिनी' होना सिद्ध हो जाता है—

"कायथ आनंदघन महा ००००० हो। सु ब्रज की कटा मैं आयौ। परंतु अपजस वाकौ थिर है। ताकौ बर्नन—

कबहूँक खुजावत मैं छुवती तिहि आनँद कौं तब हौं सरतौ।
तब रेंगतौ केहुक अंगन पै निज देह तिहीं रस सों भरतौ।
कहुँ चौंकि कै भागनि मो गहती तब हौं उन हाथन सों मरतौ।
वह ईस कहूँ घनाअनँद कों जौ सुजान-इजार कौ जूँ करतौ॥

करै गुरनिंदा वह हुरकिनी कौ बंदा महा
निरघिनी गंदा खात पानीर औ नान है।
बैन कौं चुरावै ताकौ मजमून लावै कूर
कबिता बनावै गावै रिजौली सी तान है।
सुरा-घट-सोखी देह माँस ही सों पोखी, बिप्र
गैयन को दोषी रूप धरे अभिमान है।
पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसौ
मुड़िया अनंदघन जानत जहान है॥

ढफरी बजावै डौम ढाढ़ी सम गावै काहू
तुरकैं रिझावै तब पावै झूठौ नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
तजि राम नाम वाकौं पूजै काम धाम है।
... ...
लोहा ज्यौं लगाम जैसे चलनी को चाम है।

पीवै भंगकुंडा संग राखै ०० गुंडा ००
भखुंडा आनंदघन मुंडा सरनाम हैं ॥
मुदित आनंदघन कहत विधाता सों यों
खाल को आसन दीजो गारी मोहिं गावैगी।
मो मुख को पीकदान करियौ, सुजान प्यारी
तुरकिनी तुनकिनी थुकै सुख पावैगी।
धोती को इजार दुपटी को पेसवाज और
देहुगे रुमाल ताको पूछना बनावैगी।
पगिया-पायंदाज कीजियो गरीबनिवाज
भरि गएँ मो मन पलिंग पर आवैंगी ॥"

भड़ौए के कर्ता महोदय घनआनंद से बहुत ही चिढ़े हैं। 'जूँ' 'पीकदान' आदि बनने के अभिलाप की कल्पना में भड़ौआपन भरपूर है, पर अन्यत्र तो गाली-गलौज है। फिर भी इससे घनआनंद के वृत्त संबंधी तथ्यों के कुछ कण तो मिल ही सकते हैं।

जैन और वृंदावनवासी आनंदघन के अतिरिक्त एक तीसरे आनंदघन भी हैं। ये तीसरे आनंदघन नंदगाँव के थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवनवृत्तों से प्रकट है कि वे सं० १५६३ में नंदगाँव गए थे। उस समय उन्होंने नंदगाँव के मंदिर में भगवद्दर्शन किए थे। उस मंदिर में श्रीनंदबाबा, श्रीयशोदा, श्रीबलराम और श्रीकृष्ण के विग्रह थे। इन विग्रहों की स्थापना श्रीआनंदघनजी ने की थी। ये विग्रह श्रीनंदीश्वर पर्वत से प्रकट हुए कहे जाते हैं और प्रकट करनेवाले श्रीआनंदघनजी ही थे। आनंदघनजी श्रीचैतन्यदेवजी से मिले थे अर्थात् उस समय वर्तमान थे। इस प्रकार नंदगाँववासी आनंदघनजी का स्थिति-काल विक्रम की सोलहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। ये ब्राह्मणकुलोद्भव शुद्ध भक्त थे। इनके रचे दो-चार पद हैं जो नंदगाँव के मंदिरों में समय समय पर गाए जाते हैं।

इस प्रकार तीनों आनंदघनों का उपस्थिति-काल निम्नलिखित हुआ—

नंदगाँववासी आनंदघन	सोलहवीं शती का उत्तरार्ध
जैन आनंदघन	सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध
वृंदावनवासी आनंदघन	अठारहवीं शती का उत्तरार्ध

नंदगाँव के आनंदघन 'खरोट' गाँव के थे। यह गाँव 'जोसीकलाँ' (मथुरा) के निकट है और आनंदघनजी के कुलवाले अब भी वहाँ रहते हैं। नंदगाँव के मंदिर के अधिकारी इन्हीं के वंशज हैं। आनंदघनजी के वंशजों का वृत्त यों है—
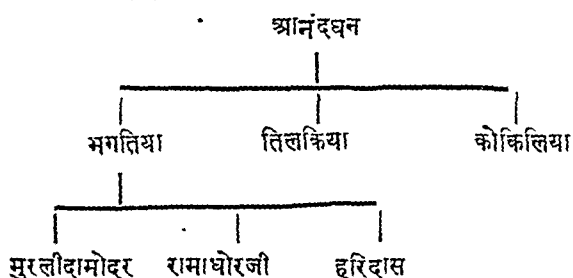
नंदबाबा की सेवा का भार भगतिया के उक्त तीनों वंशजों पर है। तिलकिया के वंशज मनसादेवी के मंदिर के अधिकारी हैं। कोकिलिया के वंशज श्रीयशोदा-नंदन की सेवा में रहते हैं। उल्लिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो कवित्त-सवैये और पद आदि रचनाएँ प्राप्त हैं वे वृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनंदघन और घनआनंद दोनों रखते थे। कदाचित् इनका नाम घनानंद था। इससे यह सिद्ध है कि जैन आनंदघन की रचनाओं को छोड़कर हिंदी में इस नाम से प्रचलित रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। अतः उनका विचार इसी दृष्टि से होना चाहिए।

कृतियाँ

अब घनआनंद की कृतियों का विचार कीजिए। 'घनआनंद-आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनंद-कवित्त—(००–७६)।
२ आनंदघन के कवित्त—(६–१२५, २६–१२ ए)
३ कवित्त—(२६–११६ डी)
४ स्फुट कबित्त—(३२–७ सी)
५ आनंदघनजू के कबित्त—(४१–१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ बी)
७ सुजानहित-प्रबंध—(२१–११६ बी)
८ कृपाकंद-निबंध—(२–६६)
९ वियोग-वेलि—(१७–८ बी, २६–११६ बी)
१० इश्कलता—(१२–४९, २२–७ ए)
११ जमुनाजस—(४१-१० क)
१२ आनंदघनजू की पदावली—(२६–११ बी, दि० ३१–६)
१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए; २६–११६ ए)
१४ सुजानविनोद—(२३–१४)
१५ कवित्त-संग्रह—(३२–७ बी)
१६ रसकेलिवल्ली—(००–७९)
१७ वृंदावन-सत—(३२–७ डी)।

इनमें से 'वृंदावन-सत' तो श्रीहरिदासजी की शिष्य-परंपरा में माधवमुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधोमुदित प्रसंस हंस जिन रति-रस गायौ।
तिनको हौं निज अंस रहसि-रस तिन तें पायौ॥

इनकी छाप थी 'भगवंत', पर 'आनदघन' पद ने जैसे औरों को धोखा दिया वैसे ही 'खोज' के साहित्यान्वेषक को भी। निम्नलिखित दोहे में उसने 'आनंदघन' को पकड़ा, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी विनती पर भी ध्यान न दिया—

यह विनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक दै चित्त।
अपनो मोको जानि कै दया करहुगे नित्त॥
वृंदावन आनंदघन, अति रस सों रसवंत।
...जिय डरत हौं, यह विनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग पचास वर्ष पहले की है—

'संवत दस सै सात अरु सात बरप है जानि।'

'रसकेलिवल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है। 'कवित्त-संग्रह' और 'सुजान-विनोद' भी परकालीन नूतन संग्रह हैं। इनमें कुछ छंद नए भी मिलते हैं जो

'घनआनंद-कबित्त' अथवा 'सुजानहित' में नहीं हैं। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनआनंद-कबित्त' ही हैं, जिनका संग्रह 'व्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने संग्रह के आदि और अंत में 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के ही संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता व्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप का बोध दोहों में कराया है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं, इनका कविताकाल सं० १७८० (जन्मकाल नहीं, जैसा 'मिश्रबंधु-विनोद' में माना गया है) है। यदि ये वे ही व्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनंद-कबित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है। इस संग्रह में कुल ५०५ छंद हैं। बीच में दो सोरठे और तीन दोहे भी हैं जिनकी संख्या हस्तलेख में पृथक् नहीं गिनी गई है। प्राचीन काल में मनहरण, घनाक्षरी, सवैया-झूलना सबकी संज्ञा कबित्त थी। तुलसीदासजी की कवित्तावली में भी कबित्त शब्द का ऐसा ही अर्थ किया गया है। इस संग्रह में कबित्त शब्द इसी अर्थ का बोधक है। आरंभ में २ तथा अंत में ६ कुल ८ छंद व्रजनाथ के हैं और घनआनंद की प्रशंसा में लिखे गए हैं।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्युनिसिपिल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन क्रम से संग्रह है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहों-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०५ छंद हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कबित्त' और 'सुजानहित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनंद-कबित्त' में 'कृपाकंद-निबंध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे 'दानलीला' का बड़ा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है। दोनों का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कबित्त की कोई अस्त व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया

हुआ संग्रह जान पड़ता है। इसके संग्रहकर्ता कौन थे ? पता नहीं। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधाबल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितगुलाब, हितध्रुवदास, हितशृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि।

'कृपाकंद-निबंध' की पहले केवल एक ही प्रति मिली थी। छतरपुरवाले बृहत् ग्रंथ में भी इसका संकलन है। 'व्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकांड' यही है। रोमी अक्षरों की कृपा से 'कृपाकांड' का कांड उपस्थित हुआ। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (बादल—कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका संग्रह भी छतपुरवाले ग्रंथ में था। पर कुछ लोगों का यह समझना भ्रम है कि रचना खड़ी बोली की है। भाषा इसकी ब्रज ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैं। दोनों एक ही हैं। यह भी संकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीं रखे गए हैं, अंत में कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदों को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीं छोटे कहीं बड़े हैं। कहीं कहीं पद अधूरे ही हैं। 'व्रजमाधुरीसार' में जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैं और 'खोज' के विवरणपत्रों का मिलान करने से एक संख्या का अंतर पड़ता है। दूसरी प्रति नहीं मिली, अतः उसका पता नहीं चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय (कामवन) में भी पहले थी, पर संप्रति उसका पता नहीं चला। दोनों प्रतियों में कोई अंतर नहीं है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहों और पद-संग्रहों में भी 'घनआनंद' छाप के छंद और 'आनंदघन' छाप के पद मिलते हैं। 'खोज' के अतिरिक्त मिश्रबंधु-विनोद में छतरपुर राजपुस्तकालय के बृहत् ग्रंथ का विवरण यों दिया गया है—
"५४२ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ संवत् १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर

के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०४४ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं---प्रियाप्रसाद, ब्रजव्योहार, वियोगवेलि, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, ब्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, ब्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद ।" (—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)

'घनआनंद और आनंदघन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन होने के अनंतर 'निंबार्कमाधुरी' के संपादक श्रीबिहारीशरणजी ने मुझे घनआनंद या आनंदघन के एक हस्तलेख का पता दिया और मैं वृंदावन पहुँचा । हस्तलेख की प्रतिलिपि करने पर निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला—

१ प्रेमसरोवर
२ ब्रजविलास
३ सरसवसंत †
४ अनुभवचंद्रिका †
५ रंगबधाई †
६ प्रेमपद्धति
७ कृपाकंदनिबंध * †
८ वृषभानुपुर-सुषमा
९ गोकुलगीत
१० नाममाधुरी †
११ गिरिपूजन
१२ यमुना-यश *
१३ विचारसार
१४ प्रीतिपावस *
१५ दानघटा*
१६ इश्कलता*
१७ भावनाप्रकाश †
१८ कृष्णकौमुदी †
१९ धामचमत्कार †
२० प्रियाप्रसाद †
२१ वृंदावनमुद्रा †
२२ ब्रजस्वरूप
२३ गोकुलचरित्र
२४ प्रेमपहेली
२५ रसना-यश
२६ छंदाष्टक
२७ त्रिभंगी छंद
२८ गोकुलविनोद †
२९ ब्रजप्रसाद †
३० मुरलिकामोद
३१ वियोगवेलि * †
३२ प्रेमपत्रिका * †
३३ मनोरथमंजरी
३४ पद * †

उक्त सूची में जिन पर 'तारा' (*) चिह्न लगा है वे ग्रंथ 'घनआनंद और आनंदघन' नामक संग्रह में मैंने प्रकाशित कराए थे। जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे ग्रंथ छतरपुरवाले संग्रह में भी संकलित हैं। शेष पंद्रह ग्रंथ इसमें अधिक हैं। इस संग्रह के प्राप्त हो जाने के अनंतर मेरे मित्र श्री० केसरीनारायणजी शुक्ल को लंदनसंग्रहालय के हस्तलेख-विभाग में दूसरी ही प्रति मिली जिसमें निम्नलिखित ग्रंथों का संग्रह है—

१ प्रियाप्रसाद-प्रबंध * †
२ ब्रजव्यौहार *
३ वियोगवेलि * †
४ कृपाकंदनिबंध * †
५ गिरिगाथा *
६ भावनाप्रकाश * †
७ गोकुलविनोद
८ ब्रजप्रसाद * †
९ धामचमत्कार * †
१० कृष्णकौमुदी * †
११ नाममाधुरी * †
१२ वृंदावनमुद्रा * †
१३ पदावली * †
१४ कवित्त-संग्रह
१५ प्रेम-पत्रिका * †
१६ रसवसंत * †
१७ अनुभवचंद्रिका * †
१८ रंगबधाई * †
१९ परमहंस-वंशावली * †
२० मुरलिकामोद †
२१ गोकुलगीत †
२२ ब्रजविलास-प्रबंध †
२३ ब्रजस्वरूप †

जिनपर तारा (*) लगा है वे छतरपुरवाले संग्रह में संकलित हैं और जिन पर कटार (†) का चिह्न है वे वृंदावनवाले संग्रह में हैं। सब मिलाकर घनआनदजी की निम्नलिखित कृतियाँ अद्यावधि हिंदी में ज्ञात हो सकी हैं—

१ सुजानहित
२ कृपाकदनिबंध
३ वियोगीवेलि
४ इश्कलता
५ यमुना-यश
६ प्रीतिपावस
७ प्रेमपत्रिका
८ प्रेमसरोवर
९ ब्रजविलास
१० सरसवसंत
११ अनुभवचंद्रिका
१२ रंगबधाई
१३ प्रेमपद्धति
१४ वृषभानुपुर-सुषमा

१५	गोकुलगीत	२८	रसनायश
१६	नाममाधुरी	२९	गोकुलविनोद
१७	गिरिपूजन	३०	ब्रजप्रसाद
१८	विचारसार	३१	मुरलिकामोद
१९	दानघटा	३२	मनोरथमंजरी
२०	भावनाप्रकाश	३३	ब्रजव्यवहार
२१	कृष्णकौमुदी	३४	गिरिगाथा
२२	धामचमत्कार	३५	ब्रजवर्णन
२३	प्रियाप्रसाद	३६	छंदाष्टक
२४	वृंदावनमुद्रा	३७	त्रिभंगी छंद
२५	ब्रजस्वरूप	३८	कवित्त-संग्रह
२६	गोकुलचरित्र	३९	स्फुट
२७	प्रेमपहेली	४०	पदावली

४१ परमहंस-वंशावली

'ब्रजवर्णन' का पता केवल छतरपुरवाले हस्तलेख से चलता है। अभी तक वह प्राप्त नहीं है। यदि वह 'ब्रजस्वरूप' ही हो तो घनआनंद के सभी ग्रंथ प्राप्त हो गए। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं। 'दानघटा' वही है जो 'घनआनंद-कवित्त' में संख्या ४०२ से ४१४ तक संगृहीत है। परमहंस-वंशावली में 'घनआनंद' ने अपनी गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अतिरिक्त 'बिहार उड़ीसा रिसर्च जरनल' के आधार पर घन-आनंद की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

संप्रदाय

परमहंस-वंशावली प्राप्त हो जाने से 'घनआनंद' के संप्रदाय के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता। कहा जाता है कि 'नामूला तु जनश्रुतिः'—जनता में प्रच-लित अनुश्रुति निराधार नहीं होती। पहले से ही प्रसिद्ध है कि घनआनंद ने निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। इस परमहंस-वंशावली से यही प्रमाणित हो जाता है।

इसमें गुरु-परंपरा का उल्लेख इस क्रम से है—नारायण—सनकादि—निंबादित्य—श्रीनिवासाचार्य—विश्वाचार्य—पुरुषोत्तमाचार्य—विलासाचार्य—स्वरूपाचार्य—माधवाचार्य—बलभद्राचार्य—पद्माचार्य—श्यामाचार्य—गोपालाचार्य—कृपाचार्य—श्रीदेवाचार्य—सुंदरभट्ट—पद्मनाभभट्ट—उपेंद्रभट्ट—रामचंद्रभट्ट—वामनभट्ट—कृष्णभट्ट—पद्माकरभट्ट—श्रवणभट्ट—भूरिभट्ट—माधवभट्ट—श्यामभट्ट—गोपालभट्ट—बलभद्रभट्ट—गोपीनाथभट्ट—केशवभट्ट—गंगलभट्ट—श्री केशव (काश्मीरी)—श्रीभट्ट—हरिव्यास—परमानिंध (परशुराम)—हरिवंश—नारायणदेव—वृंदावन (देव)।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि घनआनद का निधन-संवत् १८१७ है। इनका जन्म कब हुआ या ये वृंदावन कब पहुँचे इसका संकेत कुछ भी नहीं मिलता। इतिहास-ग्रंथों में इनका जन्म-संवत् अनुमान के सहारे १७४६ माना गया है। परमहंस-वंश के निंबार्क-संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव का समय सं० १७५६ से १८०० तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक १७५६ ही तक संभव हो सकता है। यदि उक्त अनुमित जन्मकाल ठीक माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि इनकी वय दीक्षा के समय १३ वर्ष की थी, जो इनके जीवन-वृत्त को देखते असंभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी वय २५-३० की अवश्य माननी पड़ेगी। अतः इनका जन्म-संवत् १७३० के आसपास संभाव्य है।

परमहंस-वंशावली से पता चलता है कि किन्हीं शेष से इन्हें परंपरा की रीति का ज्ञान हुआ। जिज्ञासा होती है कि ये शेष कौन थे। मंडन कवि कृत 'जयशाह-सुजस-प्रकाश' की भूमिका में उसके संपादक विद्याभूषण श्रीव्रजवल्लभशरणजी लिखते हैं—"उस समय जयपुर के श्रीनिंबार्कीय मठ-मंदिरों का प्रबंध श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य प्रकांड विद्वान् जयरामजी शेष के निरीक्षण में रहा।" 'उस समय' का तात्पर्य है श्री वृंदावनदेवाचार्य के अनंतर अर्थात् सं० १८०० के पश्चात् से १८६० तक। वहीं वे लिखते हैं—"उनके पश्चात् १८६० सावन सुदी १३ तक महाराजा प्रतापसिंहजी ने राज्य किया। उस ६० वर्ष के समय में श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी के पश्चात् १८२४ तक श्रीगोविंददेवाचार्यजी और १८४१ तक श्रीगोविंदशरणदेवाचार्यजी महाराज आचार्य-पीठासीन हुए।" श्रीगोविंददेवाचार्यज

यहाँ 'परमा' परशुरामाचार्य जी का सखीनाम है। इनका लोक-व्यवहार का नाम उन्होंने अपनी 'भोजनादि धुन' में स्पष्ट दिया है—

परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिवंस-हंस ईस्वर बिभु॥

जिन्हें इस बात का पता न होगा वे 'परमानिधि' को अपाठ या अपपाठ मानेंगे और यह अनुमान करेंगे कि हो न हो 'परमानिधि' के स्थान पर मूल में 'परसुराम' ही रहा होगा। 'परमानिधि' के बदले 'परसुराम' दोहे में ठीक ठीक बैठ जाता है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। इसका उत्तर सरल नहीं है। पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'परमहंस-वंशावली' का प्रयोग संप्रदाय के ही लोगों के लिए है। उन्होंने कहा भी है कि यह 'गुरुमुखी' लोगों के लिए है,—

परमहंस-बंसावली रची सर्चा इहिँ भाय।
कंठ धारिहैं गुरुमुखी सुखदाई समुदाय॥

इसीसे एक स्थान पर यह 'रहस्यमय' नाम भी दे दिया जिससे अंतरंग-मंडल के लोगों को यह संकेत मिल जाय कि लेखक का उसमें भी प्रवेश है।

अब आचार्यों के सखीनाम देखिए—

श्रीहरिव्यासदेव	...	हरिप्रिया सखी।
श्रीपरसुरामदेव	...	परम सहेली।
श्रीहरिवंशदेव	...	हित अलबेली।
श्रीनारायणदेव	...	नित्य नवेली।
श्रीवृंदावनदेव	...	मनमंजरी।

संप्रति घनआनंदजी के सखीनाम का पता न संप्रदायवालों को है, न साहित्यवालों को, पर इनकी नवीन प्राप्त दो पुस्तकों से इनके सखीनाम का संकेत मिलता है 'वृषभानपुरसुषमावर्णन' में स्पष्ट कहा गया है :—

नीको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसानैं ही सुंदर खेरो।

यह नाम स्वयम् श्रीराधा ने रखा है—

राधा नावँ बहुगुनी राख्यो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यो।

बहुगुनी की कला कब प्रदीप्त होती है इसे भी जान लीजिए—

रीझनि दिवस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला दर आनौं।
ताही सुरहि साथ कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गासनि खोलौं।
दुरी बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ न परत कछू तब।

'प्रियाप्रसाद' में भी यह नाम श्रीराधा का रखा हुआ कहा गया है—

राधा धर्यौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ।

'बहुगुनी' सदा श्रीराधा के साथ रहती है अथवा श्रीराधा बहुगुनी का साथ नहीं छोड़ती। 'बहुगुनी' तान-गान में प्रवीण है, श्रीराधा के मित्र को वह अपने इस गुण से रिझाया भी तो करती है—

राधा सब ठाँ सब समै रहति बहुगुनी-संग।
तान रसन-गुन-गान को लै बरसावति रंग।
राधा अचल सुहाग के ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी रिझवति राधा-मीत।

घनआनंद जी संगीत के बहुत अच्छे जानकार थे, जनश्रुति में यह प्रसिद्ध है। किशनगढ़ से प्राप्त चित्र में उनकी प्रशस्ति में 'गानकला में अति कुसल' लिखा है। चित्र में वे सितार लिए वीरासन से बैठे हैं। राग-रागिनियों में इनके सहस्राधिक पद मिलते हैं और कविता में कहीं कहीं मृदंग ठनकता जान पड़ता है ऐसे ढंग से पदावली रची गई है।

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै ।
जोग-वियोग की रीति मैं कोविद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै ।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै ।
भाषा-प्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै ॥ १ ॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरै लखैं सब बुद्धि-चकी ।
जग की कविताई के धोखैं रहैं, ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी ।
समझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥ २ ॥

कवित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरविंद-वृंद,
निरखत नसत सकल ताप ही के हैं ।
कैधौं सुवरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं ।
कैधौं अदभुत जलधर 'ब्रजनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं ।
चोर चित्त-वित्त के कि पैठि बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कवित्त घन जी के हैं ॥ ३ ॥

प्रगटे सुघन सुबरन स्वाति-जल जेते,
बसे छंद-बंद-रीति सुकति-अधार हैं ।
सुंदर विमल बहु अरथ-निधान देखो,
अचिरज-नेह-भरे झलकै अपार हैं ।

कहै 'ब्रजनाथ' वहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।
ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार हैं॥ ४॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत पंड बढ़ै, हिय सोच उपावै।
चित्र-विचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआनँद-वानि वखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै॥ ५॥
कोटि विषै करि ओट महा नहिँ नेह की घोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रवाह अथाह परे नहिँ आप ही आप विचच्छन मानै।
पूँछ-विषान विना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै॥ ६॥
विनती कर जोरि कै बात कहौँ जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौँ जू।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीँ उहि खेत सौँ जू।
जु पढ़े बिन क्यौँ हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैँ करि चेत सौँ जू।
[रस-स्वादहि पाय विषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौँ जू] ॥ ७॥

—ब्रजनाथ।

सुजानहित

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
एक अचंभो भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे।
टारें टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥ १ ॥

आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरैं न सुजान की घेरी।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥ २ ॥

रूपनिधान सुजान लखें बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदें महा अकुलानिमई है।
बूड़त ज्यौं घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥ ३ ॥

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड़, मीत के पानि परे कौं प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ४ ॥

पाठांतर—१-नेक-नीके। २-दीठिहि-दीठि की (राम)। ४-नीर०-नीर सनेह। रीति-नीति (प्रयाग)। पानि-पानैं (कवित्त)।

शब्दार्थ—[१] तारे=पुतलियाँ। तारे=ताले। [२] अनेरी=विलक्षण। नेरी=थोड़ा भी। [३] ऊखिल=पराया, अपरिचित। सलाक=शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली)। ज्यौं=जी। [४] समानै=सम, तुल्य। पानि=

कहै 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
वरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।
ए जू सुनौ मित्त चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हैं,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जन-नैननि रोष बढ़ावै।
ज्यौं तरुनी-तन-रूप निहारत पंड बढ़ै, हिय सोच उपावै।
चित्र-विचित्र के भेद सराहत ज्यौं दृगमंद न काहू सुहावै।
त्यौं घनआनँद-बानि बखानत मूढ़ सुजाननि आनि सतावै ॥ ५ ॥
कोटि विषै करि ओट महा नहिँ नेह की चोटहि जो पहचानै।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ तऊ हठि बादन ठानै।
चाह-प्रवाह अथाह परे नहिँ आप ही आप विचच्छन मानै।
पूँछ-विषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानै ॥ ६ ॥
विनती कर जोरि कै बात कहौं जौ सुनौ मन-कान दै हेत सौं जू।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सौं जू।
जु पढ़ै बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौं जू।
[रस-स्वादहि पाय विषाद बहाय रहौ रमि कै इहि नेत सौं जू] ॥ ७ ॥

—ब्रजनाथ।

सुजानहित

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तैं इन नैननि नेकु निहारे ।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे ।
एक अचंभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे ।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥ १ ॥

आँखि ही मेरी पै चेरी भई लखि फेरी फिरैं न सुजान की घेरी ।
रूप-छकी, तित ही बिथकी, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी ।
प्रान लै साथ परी पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी ।
पायनि पारि लई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥ २ ॥

रूपनिधान सुजान लखैं बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है ।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है ।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदें महा अकुलानिमई है ।
बूड़त ज्यौ घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥ ३ ॥

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै ।
प्रीति की रीति सु क्यौं समझै जड़, मीत के पानि परे कौं प्रमानै ।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ४ ॥

पाठांतर—१–नेक–नीके । २–दीठिहि–दीठि की (राम) । ४–नीर०–नीर सनेह । रीति–नीति (प्रयाग) । पानि–पानैं (कवित्त) ।

शब्दार्थ—[१] तारे=पुतलियाँ । तारे=ताले । [२] अनेरी=विलक्षण । नेरी=थोड़ा भी । [३] ऊखिल=पराया, अपरिचित । सलाक=शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली) । ज्यौ=जी । [४] समानै=सम, तुल्य । पानि=

मेरोई जीव जौ मारत मोहिँ तौ प्यारे कहा तुम सौँ कहनो है ।
आँखिन हूँ पहचानि तजी कछु ऐसोई भागनि को लहनो है ।
आस तिहारियै हो घनआनँद कैसेँ उदास भएँ रहनो है ।
जान है होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ॥ ५ ॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैँ उपहास-कहानी ।
एक बिसास की टेक गहाय कहा वस जौ उर और ही ठानी ।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी ।
यौँ उघरे घनआनँद छाय कै हाय परी पहचानी पुरानी ॥ ६ ॥

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही ।
दीठि कौं और कहूँ नहिँ ठौर फिरी द्रग रावरे रूप की दोही ।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही ॥ ७ ॥

पहिलेँ घनआनँद सींचि सुजान कहीँ बतियाँ अति प्यार-पगी ।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी ।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैँ कौन घरी सु लगी ।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी ॥ ८ ॥

हित भूलि न आवति है सुधि क्यौँ हूँ सु यौँ हूँ हमैँ सुधि कीजत है ।
चित भूल तौ भूलत नाहिँ सुजान जु चंचल ज्यौ कछु धीजत है ।
दृढ़ आस की पासनि कंठ तेँ फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है ।
अब देखियै कौ लौँ घिरैं घनआनँद आव को दाव सो दीजित है ॥ ९ ॥

५—जौं तौ—तौ जौ । ८—बियोग०—बियोग बलाय की लाय (कौंक०) ।
९—भूलि—भूलि (राम) ।

हाय । प्रमानैं = प्रमाणित करता है । जान = सुजान । [५] जान = सुजान ; चतुर । [६] उघरे = प्रकट गए । [७] दोही = दुहाई । [८] बियोग० = वियोगाग्नि । बिसास = विश्वासघात । घरी० = घड़ी लग गई, कैसा समय आया । [९] ज्यौं = जो । धीजत है = स्थिर होता है । पास = पाश, फंदा ।

रसमूरति स्याम सुजान लखैं जिय जो गति होति सु कासौं कहौं।
चित चुंबक-लोह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटै नहिं जेतो गहौं।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१०॥
मन-पारद कूप लौं रूप चहैं उमहै सु रहै नहिं जेतो गहौं।
गुन-गाड़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं।
घनआनँद चेटक-धूम मैं प्रान घुटैं न छुटैं गति कासौं कहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥११॥
मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं।
जिहिं बानक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासौं कहौं।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक-आँच दहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१२॥
रससागर नागर स्याम लखैं अभिलापनि-धार-मँझार बहौं।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासौं कहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१३॥
सजनी रजनी-दिन देखैं बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं।
अँसुवा हिय पै चिय-धार परै उठि स्वास भरै सुठि आस गहौं।
घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं॥१४॥
दुख-धूम की धूँधरि मैं घनआनँद जो यह जीव घिरयौ घुटिहै।
मनभावन मीत सुजान सौं नातो लग्यौ तनको न तऊ टुटिहै।

१२-हेरि न-हेरनि (भदा०)। लहौं-लहै (प्रयाग) १४-उठि-सुठि। सुठि-सुचि (काँक०)। नीर-तीर। १५-न ताऊ-तनऊ (प्रयाग)। जीवन-

आब = जीवन। दाव = दावाग्नि। [१०] चुहटै = चिपटा है। उहटै० = हटता नहीं। [११] पारद = पारा। कूप = कुप्पी। गाड़ = गड्ढा। चेटक = जादू। [१२] छीवति न = छूती नहीं। [१३] गुण ; डोर, रस्सी। [१४] सुठि = सुंदर। [१५] तनकौ = थोड़ा भी। धन = धन्या, प्रेमिका। घुरि = कसकर।

धन जीवन प्रान को ध्यान रह्यौ, इक सोच बच्यौऽब सोऊ लुटिहै ।
धुरि आस की पास उसास-गरैं जु परी सु मरैं हू कहा छुटिहै ॥१५॥

अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा ।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि छ्वै धपि धाय छकै छवि छाय छवा ।
घनआनँद यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा ।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि परयौ न टरयौ मन मेरो झवा ॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगी लसैं पीक-पगी पलकैं ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि फबीं सुथरी अलकैं ।
अँगराति जम्हाति लजाति लखैं अंग अग अनंग दिपैं झलकैं ।
अधरानि मैं आधिये बात धरैं लड़कानि की आनि परैं छलकैं ॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित ।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस-मंडित ।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित ।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥१८॥

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई ।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भैंटन आई ।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई ।
तो मुख लाल गुलालहि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥१९॥

जीवति (राम),जीवनि (प्रयाग)। १६-तरवा-'तरवों' आदि तुकांत (प्रयाग)। १७-फबीं-भबीं । लसैं-लसैं (राम) १८-रँगीले-रसीले (काँक०)। हियौ-हियैं (राम)। १९-भैंटन-भेपन (कवित्त)। लखैं-बिपैं (काँक०)।

पास = फंदा । [१६] धपि = शीघ्रता से। छवा = पैरों का टखना । पायनि० = पैरों के हाथ में पड़ा हुआ (वश में होकर)। झवा = पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईंट का टुकड़ा, झाँवा । [१७] रस-आरस = आनंद में लीन होने से उत्पन्न आलस्य । सुथरी = सुंदर, मनोहर । लड़कानि = मस्ती, ललक । [१८] आनँद० = आनंद की मदिरा पीकर मत्त । चोज = मस्ती । [१९] लाल =

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोयन लेत लगाय कै संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यौं हूँ प्रमानौं।
तो कटि-भेदहिं किंकिनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौं ॥२०॥

क्यौं हँसि हेरि हरयौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई। 11
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी इते पै न जानियै कौनें पढ़ाई ॥२१॥

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै।
गसि गौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै।
सुधि लेत न भूलि हू ताकी सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै।
अब याही परेखैं उदेग-भरयौ दुख-ज्वाल-परयौ जुरझै मुरझै ॥२२॥

रूप के भारनि होति है सौंहीं लजौंहियं दीठि सुजान यौं भूली।
लागियै जाति, न लागी कहूँ निसि, पागी तहीं पलकौ गति भूली।
बैठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली।
आए हौ भोर भएँ घनआनँद आँखिन माँझ तौ साँझ सी फूली ॥२३॥

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ, 12
कैसैं रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।

प्रिय। [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है। बूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रों से। तानौ = उसकी तान; फैलाओ। भेद = रहस्य। हौं जानौं = मेरी समझ में ऐसा ही आता है। [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियों पर। [२२] छंदनि = छल-कपट से। दुरी० = छिपी गाँठ को। परेखैं = पछतावे में। जुरझै = जलता है। [२३] भूली = झुकी हुई है। समतूली = योग्य, तुल्य। साँझ० = अर्थात आँखें

चातक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
सुजान-रूप-बावरो बदन दरसायहौ ।
बिरह नसाय दया हिये मैं बसाय आय,
हाय कब आनँद को घन बरसायहौ ॥ २४ ॥

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखौ सुनै ।
मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
रीझ की उझिल घनआनँद रह्यौ उनै ।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बूड़ति गहैं गुनै ।
नेह लाय रूखे अब कैसैं हूजियत हाय,
चंद ही के चाय ज्वै चकोर चिनगी चुनै ॥ २५ ॥

तरसि तरसि प्रान जानमनि-दरस कौं,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत है ।
बिषम बिरह के बिसिष हियैं घायल ह्वै,
गहवर घूमि घूमि सोचनि ससत है ।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत है ।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
करटनि सौं आसा-पट कटि ले कसत है ॥ २६ ॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैं,
फूल रस-भूले घनआनँद अनत ही ।

२५–चिनगी–चिनगैं (राम)। २६–लोभी–लोभी [?] ।

लगते हैं; [२४] अनोखे० = आप के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] चिनगी = आग भी। उझिल = उड़ेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ। गुनै = गुन; रस्सी [?]। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = ग्रस्त

कैसैँ सुधि आवै बिसरैँ हू हो हमारी उन्हैँ,
नए नेह पाग्यौ अनुराग्यौ है मन तहीं ।
कहा करैँ जो तैँ निकसति न निगोड़ी आस,
कौनैँ समझी ही ऐसी बनिहै बनत ही ।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतैँ तमी तारनि कौँ तारनि गनत ही ॥ २७ ॥

एड़ी तैँ सिखा लौँ है अनूठियै अँगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैँ रही री सनि ।
सहज सुछबि देखैँ दबि जाहिँ सबै बाम,
बिन ही सिँगार और बानिक बिराजै बनि ।
गति लै चलनि लखैँ मतिगति पंगु होति,
बरसति अंगरंग-माधुरी बसन छनि ।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाय,
लागै चौंध चेटक अमेट-ओपी भौंहैँ तनि ॥ २८ ॥

रतिरंग-रागे प्रीति-पागे रैन-जागे नैन,
लागेई आवत घूमि घूमि छबि के छके ।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि मैँ,
कबहूँ उमगि रहैँ कबहूँ जके थके ।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-बलकनि उनमदि न कहूँ सके ।
सुखद सुजान घनआनँद पोखत प्रान,
अचिरजखानि उघरैँ हू लाज सौँ ढके ॥ २९ ॥

गसत–फसत (प्रयाग)। २८–री–है (राम)।

होता है। कटनि = ढब से। [२७] तमी = तमिस्रा, रात । तारनि० = आँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अँगेट = अंगदीप्ति। चेटक = जादू। अमेट० = घुमाव से चमकती । [२९] बलकनि = उफान, प्रवाह ।

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तेँ।
काँवरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौं,
लाड़नि सु लसि हुलसति मति चोरतेँ।
बड़े मैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर ऊँची रहै रूप-जोर तेँ।
सहज बनी है घनआनँद नवेली नाक,
अनबनी नथ सौं सुहाग की मरोर तेँ ॥ ३० ॥

केलि की कलानिधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छवि-छाँह पै छिपैयै सौनि।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि।
पिय - अंग - संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति - तरंग रस - बिबस उर - मिलौनि।
झुलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥ ३१ ॥

अंग अंग स्याम-रंग-रस की तरंग उठै,
अति गहराई हिय प्रेम-उफनानि की।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै अँखियानि की।
महाछवि-नीर तीर गए तेँ न टरयौ जाय,
मोहनता-निधि बिधि पुहमी पै आनि की।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-ज्यारी,
वृंदावन-सोभा सींव सुख-सरसानि की ॥ ३२ ॥

३०—ओर-टोर (राम)। ३२—गहराई-घहराय।

[३०] बेह=छिद्र। ठौन=ठवनि, मुद्रा। मति०=बुद्धि को चुराती हुई। अनबनी=बेसरी। [३१] सौनि=सोने (कुंदन) का लाल वर्ण। लाज०=लज्जा से युक्त। [३२] पूर=प्रवाह। पानिप=जल; शोभा। आनि=लाकर। भान=वृष-

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसैं सुहाति वसी तहाँ नाँसी ।
ज्याय हितै हनियैं न हितू हँसि बोलन की कित कीजत हाँसी ।
पोखि रसै जिय सोखत क्यौं गुन बाँधि हू डारत दोष की फाँसी ।
हाहा सुजान अचंभो अयान जु भेदि कै गाँसहि बेधति गाँसी ॥ ३३ ॥

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरत हेरन की गति ।
जोबन घूमरे नैंन लखैं मति-बौरी भई गति बारि कै मोमति ।
बानी बिलानी सुबोलनि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हति ।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तैं होति कहा अति ॥ ३४ ॥

आड़ न मानति चाड़-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी ।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि क्यौं पीठि जु दीठि सहेटी ।
मेरी है मोहिं कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी ।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ॥ ३५ ॥

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे ।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौं दुख-दोष-भरे ।
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ॥ ३६ ॥

३३—अयान—अजान । जु—ज्यौं (राम) । ३६—हिय—हित ।

भानु (राधा के पिता) । ज्यारी = जिलानेवाली । [३३] नाँसी = मारने की बान । भेद० = हृदय से पीड़ा की गाँठ काटकर भाले की नोक चुभ रही है । [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई । थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी गति रुक गई । घूमरे = मतवाले । मोमति० = अपनत्व को निछावर करके । अन० = न चाहनेवाली की चाह मारकर भी जिला रही है । जान० = जान (सुजान ; जी) के जी की बात नहीं समझ पड़ती । [३५] आड़ = परदा । चाड़ = उत्कट इच्छा । लाग = लगन । सहेटी = घुमक्कड़ । निपेटी = भुक्खड़ । [३६] हिय० = हृदय का पोषण ।

चाह-चढ़्यौ चित चाक-चढ़्यौ सो फिरै तित ही इत नेकु न धीजै ।
नैक थकैं छवि-पान छकैं घनआनँद लाज तौ रीझनि भीजै ।
मोह मैं आवरी है बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै ।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नावँ न लीजै ॥ ३७ ॥
पहलैं अपनाय सुजान सनेह सौं क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू ।
घनआनँद आपने चातिक कौं गुन-बाँधिलैं मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यौं बिष घोरियै जू ॥ ३८ ॥
रति-साँचैं ढरी अछवाई भरी पिँडुरीन गुराइयै पेखि पगै ।
छवि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सौं लोभी खरो रस झूमि खगै ।
घनआनँद एँड़िनि आनि मिड़ै तरवानि तरे तैं भरै न डगै ।
मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥ ३९ ॥

कवित्त

तोरै लाज-दामै सु छुटावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सोखति सयान की ।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै, प्रान
पैठि उमगावै टैंठ मेटति गुमान की ।
धुनि मैं बतावै मौन, थकनि जतावै गौन,
हौं न जानौं कौन बिधि सीखी तीखी तान को ।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै बन बंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥ ४० ॥

३७-सु । सु यौं-महा । प्यारे-मीत (राम) । ४०-टैंठ-ऐंठि ।

[३७] न धीजै = ठहरता ही नहीं । आवरी = व्याकुल । दसा० = मेरी दशा दिनदिन दुःख से क्षीण ही होती जाती है । [३८] तेह = रोष । गुन = गुण ; डोर बाँधिलैं = बँधे हुए को । बिसास = विश्वास । [३९] अछवाई = अच्छाई, सुंदरता । मुरवा = एड़ी के ऊपर चारो ओर का घेरा । खगै = लीन हो जाता है । मिड़ै = चिपक जाना है । भरै = समय काटता है । [४०] दाम = रस्सी । चेटक = जादू । मैन = काम । धुनि० = ध्वनि में मौन हो

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै । १५
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारथौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥४१॥

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागति नाहिं सुभाय निमेखैं ।
जो रस-रंग अभंग लह्यौ सु रह्यौ नहिं पेखियै लाखनि लेखैं ।
हौ घनआनँद एहो सुजान तऊ ये दहूँ दुखहाई परेखैं ।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखैं ॥४२॥

पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं ।
रोकि रही उर-मेड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं ।
भीजि बरैं थिय-धार परैं हिय आँसुनि यौं पजरैं बिरहा दौं ।
आनँद के घन मीत सुजान है प्रीति मैं कोनी अनीति कहा गौं ॥४३॥

फैलि परी धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति ।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।
क्यौं बचियै भजियै घनआनँद बैठि रहैं घर पैठि ढँढोरति ।
जोन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज वियोगिनि बोरति ॥४४॥

४२—निमेखैं—'निमेखौं' आदि । दुखहाई—दुखदाई (राम) । ४४—परी—रही ।

जाने का संकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है। थकनि०=उसकी गति (गौन) रुकने का इंगित करती है। [४१] आन= शपथ । सहारियै=सहारा दीजिए । [४२] दुखहाई=दुखिया । आँखिन०= आँखों ने अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी संभव कर लिया) पर वे अपना किया स्वप्न में भी (भूलकर भी) नहीं देखतीं । [४३] उर०=उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेड़ थी वह भी बह गई, छाती फट गई । दौं=अग्नि । गौं=घात । [४४] धर०= पृथ्वी से आकाश तक । मरीचि०=किरणों की लहरें । तरेरना=थपेड़ा देना ।

कवित्त

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरै दाव आवहीं।
हारहि उतारि जीतैं मीत-धन लच्छिन सो,
चोप-चढ़े नैन चैन-चुहल मचावहीं।
रंग सरसावै बरसावै घनआनँद,
उमंग-ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन।
क्यौं हनियै हित पालि सुजान दया बिन ब्याध-वियोग के हाथन।
सालत बान समान हियैं सु लहे घनआनँद जो सुख साथन।
देहु दिखाय दई मुखचंद लग्यौ अब औधि-दिवाकर आथन ॥४६॥

रंग लियौ अबलानि के अंग तैं च्वाय कियौ चित चैन को चोवा।
और नवै सुख सोंधे सकेलि मचाय दियौ घनआनँद ढोवा।
प्रान-अबीरहि फैंट भरे अति छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥४७॥

रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।
नैन मिलैं उर के पुर पैठतैं लाज लुटी न छुटी तिनका सी।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गढ़ासी।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

४५—आवहीं—पावहीं। नैन-चैन। (राम)। ४८—चमूप-भूप (प्रयाग)।

दैदोगनि = ध्यान देकर ढूँढ़ती हैं। [४५] चीते = मनचाहे। जिवारी = जिलानेवाली। पैज = प्रतिज्ञा। हार = माला; पराजय। दियरा = और तो दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर जोग (संयोग) जगाते हैं उसे सिद्ध कर रहे हैं। [४६] चुगो = चारा। आथन लग्यौ = अस्त होने लगा। [४७] ढोवा = लुटाई। बिगोवा = विनष्ट। [४८] मवासी = गढ़पति। गढ़ासी = विध्वंस करनेवाले। सची = बनाई।

कवित्त

आसहि अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर एहो ऐँचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सौँ दुहेली दसा को कहै ।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौँ,
हाथ साथ लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौँ उड़्यौ रहै ॥ ४९ ॥

बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसैँ नीचियै परै ।
अंतर-पुढ़ाई फटै चटकत साँस-बाँस,
आस-लाँबी-लता हू उदेग-झर सौँ जरै ।
दुख-धूम-धूँधरि मैँ घिरे बुटै प्रान-खग,
अब लौँ बचे हैँ जो सुजान तनको ढरै ।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही हरै ॥ ५० ॥

जल-बूड़ी जरैँ दीठि पाय हू न सूझ करैँ,
अमी पियैँ मरैँ मोहिं अचिरज अति है ।
चीर सौँ न ढकैँ, बानी बिन बिथा बकैँ,
दौरि परैँ न निगोड़ी थकैँ बड़ी भूतागति है ।
खुलैँ तारे लगैँ आँखैँ तारी त्यौँ न पगैँ पिय,
नीँद-भरी जगैँ इन्हैँ अनोखियै रति है ।
गुन बँधैँ कुल छूटैँ आपो दै उदेग लूटैँ,
उत जुरैँ इत टूटैँ आनँद बिपति है ॥ ५१ ॥

५०—हरै—दरै (राम) ।

[४९] गुनै = डोर को । दुहेली = दुःखमयी । [५०] पुढ़ाई = दृढ़ता ; पुष्टता । झर = ज्वाला । अरस = आलस्य ; नीरसता । [५१] भूतागति = भूत का सा

रूप - गुन - मद - उनमद नेह - तेह - भरे,
छल-बल-आतुरी घटक-चातुरी पढ़े ।
घूमत घुरत अरचीले न मुरत नेकौ,
आनन सौं खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े ।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
साँचे घनआनँद खुले सकोच सौं मढ़े ।
ऐने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ॥ ५२ ॥

अंजन गंजत दीठि, मंजन मलीन करै,
रंजन-समाज-साज सजै उर-पीर को ।
भूषन दगत, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर, अंग सोखै संग चीर को ।
जीवो विप-ज्वाल जीतै, बीतै घनआनँद यौं,
बन भौन कौन है धरैया अब धीर को ।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तैं सरस वहै परस समीर को ॥ ५३ ॥

बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं ।
कहि कहि आवन सँदेसो मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौं ।

५२—नैंधो-क्यों हूँ (राम) । गो—में (प्रयाग) । ५४—(राम) में नहीं है ।

व्यापार, विलासमय चाल । गुन = गुण ; डोर । [५२] तेह = रोष । अरचीले = नटखटवाले । अनेरे = अन्यायी, दुष्ट । [५३] मंजन = मार्जन, स्नान । रंजन = प्रसन्न करनेवाले व्यापार । [५४] आस० = आशा के फंदे में । खरे० = अति व्यग्रता में । पयानि = प्रयाण । न थिरत = ठहरते नहीं, पकड़े नहीं जा सकते । निदान = अंत में । अधर० = ओठों पर आ लगे हैं । पयान = प्रयाण ।

झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौ।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौ ॥ ५४ ॥

सवैया

जोरि कै कोरिक प्राननि भावते संग लियेँ अँखियानि मैं आवत।
भीजे कटाछन सौं घनआनँद छाय महारस कौं बरसावत।
ओट भएँ फिरि या जिय की गति जानत जीवनि हैं जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥५५॥
लाखनि भाँति भरे अभिलापनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाड़िली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझे सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥५६॥
सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेहनिधान सुजान सजीवन औचक ही उर-बीच पधारे।
सौतिन तैं पिय पाय इकौसैं भरे भुज सोच-सकोच निवारे।
बैरिनि दीठि जरौ घनआनँद यौं जिनि लै पल-पाट उघारे ॥५७॥

कवित्त

दरसन-लालसा-ललक-छलकनि पूरि,
पलकनि लागै लगि आवनि अरवरी।
सुंदर सुजान मुखचंद को उदै बिलोकैं,
लोचन-चकोर सेवैं आरति-परव री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भरि भारी,
बाढ़ी चोप चुहल की हिय मैं हरवरी।

५७–नेहनिधान–रूपनिधान (काँक०)। जिनि–जिय (राम)।

[५५] भीजे = सरस। [५६] पन = प्रतिज्ञा। [५७] इकौसैं = अकेले, एकांत मैं। [५८] अरवरी = व्याकुलता। आरति = दुःख। परव = पुण्यकाल; पूर्णिमा।

बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरवरी ॥ ५८ ॥

वैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलह मदन मयमंत है ।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सुरस मधुराई को न अंत है ।
मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है ।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सौंच्यौ,
तेरे तन-वन सदा बसत बसत है ॥ ५९ ॥

ललित तमालनि सौं वलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसैं लह्यौ सुखसार है ।
मधुर विनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद-उदगार है ।
बन की बनक देखैं कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनै को पुकार है ।
बिन घनआनँद सुजान अंग पीरे परि,
फूलत बसंत हमैं होत पतझार है ॥ ६० ॥

देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठ न परत जानि दीठ किधौं छल है ।
दीपति-समीप की बिछोह माहिँ जोहियत,
आरसी-दरस लौं परम ध्यान जल है ।
निपट अटपटी दसा सौं चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै ।

हरवरी = हड़बड़ी, उतावली। भीजत = बढ़ती है। सरवरी = शर्वरी, रात।
[५९] वैस = (वयस्) उम्र। [६०] झेलि = प्राप्त करके, भोग करके।

कहा कहौं आनँद के घन जानराय हो जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है ॥ ६१ ॥
तू ही गति मेरे मति नोछावरि करी, तेरे
रूप हेरैं चोप-कूप गिरी लेज लाज की ।
सुनि हो सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
प्रीति-सिंधु परे आस तो हित जहाज की ।
कीजै मनभाई इती कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की ।
हाहा दीन जानि याकी विनती लीजिये मानि,
दीजे आनि औषदि वियोग-रोगराज की ॥ ६२ ॥

सवैया

है निसवादिल जात रसौ मन तेरं सुभाव मिठासहि पागैं ।
आन दै जान कहौं तुव आनन लागि न आन सौं लोयन लागैं ।
चैन मैं सैन करैं सब ओर तैं भावते भाग जो तो मिलि जागैं ।
रंग रचैं सुठि संग सचैं घनआनँद अंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥६३॥

कवित्त

सब सौं चिन्हारिहि विसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे को जक जागियै रहै ।
देखि देखि सुख भोय हँसि परैं रोय रोय,
चौंकैं चकि चाहनि मैं चिंता पागियै रहै ।
तोरि लाज-साकरैं घिरे हैं सोभा-साकरैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै ।

६४–परी–आली । सुजान–मुकुंद ।

पतझार = पतझड़ ; प्रतिष्ठा की हानि । [६१] नीठ = कठिनाई से । दीठ = (दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य । छल = भ्रांति । अनमिले० = न मिलने का ही पोषण होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं । [६२] लेज = रस्सी । [६३] निस-वादिल = स्वादहीन । सुठि = सुंदर । [६४] साँकरें = श्रृखलाएँ । साँकरें =

ऐसी कछु बानि चाह-बावरे दृगनि परी,
दरस-सुजान लालसाई लागियै रहै ॥ ६४ ॥
पल-दल-संपुट मैं मुँदै मन मोद मानै,
आरस-विभावरी ह्वै होत भौंरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसैं,
लसत सु ऐसैं अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तैं रूप-मकरंद-पान करै पुनि,
बड़ी भूतागति हेरैं मो मति हिराई है।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६५ ॥

सवैया

रिस-रूसनैं रूखियै ऊठ अनूठियै लागति जागति जोति महा।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बानी सु बोलनि की कहियै धौं कहा।
ननिहारनि हेरि न हारति दीठि औ पीठि दियैं समुहात लहा।
घनआनँद प्यारी सुजान दै कान अहा सुनियै यह बात हहा ॥६६॥

कबित्त

उर-गति ब्यौरिबे कौं सुंदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सौं मिलन अभिलाखियै।
बातैं रिस-रस-भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखियै।
भाग जागैं जौ कहूँ बिलोकैं घनआनँद तौ,
ता छिन की छाकनि के लोचन ही साखियै।

६५—पुनि—पुन्य (राम)। ६६—यह—हित (राम)।

संकट मैं। आस० = आशा का फंदा पड़ा रहता है। [६५] भौंरहाई = भौंरों का मँडराना। भूतागति = भूत की सी दशा, विलक्षण बात। [६६] ऊठ = उमंग। ननिहारनि = (आप का मुझे) न देखना। [६७] गाँस० = छोटी

भूलै सुधि सातौ दसा-बिवस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछू भाखियै ॥ ६७ ॥

सपने की संपति लौं भई है मलोलमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ।
जकी है थकी हौं जड़ताई पागि जागि पीर,
धीर कैसैं धरौं मन सो धन भराँ गयौ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पह के फटत क्यौं रे हिये फटि नाँ गयौ ॥ ६८ ॥

रावरे गुननि बाँधि लियौ हियौ जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है।
उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाय,
क्यौं करि बचाय दीठि यौं करि दुरति है।
तुम हूँ तैं न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीले हू परे तैं गरैं गाँठि सी घुरति है।
कैसैं घनआनँद अदोषनि लगैयै खोरि,
लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है ॥ ६९ ॥

पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक-गति है।
भूषन उतारि अंग अंगहि सम्हारि, नाना,
रुचि के विचार सौं समोय सीझी मति है।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जानैं दसा अति है।

६९—बचाय—नचाय (प्रयाग)। तैं गरैं—पैं हियें। लिलार—लिखार (राम)।

फाँस। सुधि० = पाँचो ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि। [६८] भराँ = खो गया, चोरी चला गया। पह = पौ। [६९] जानी = समझी। लिलार = माथा,

मोद-मद-छाके घूमैँ रीझि भीजि रस झूमैँ,
गहैँ चाहि रहैँ चूमैँ अहा कहा रति है ॥७०॥
हित के हँकारौ तौ हुलासनि सहित धावै,
अनखि बिडारौ तौ बिचारो न कछू कहै ।
पाल्यौ प्यार को तिहारौ तुम ही नीकैँ निहारौ,
हाहा जनि टारौ याहि द्वारौ दूसरौ न है ।
आनँद के घन हौ सुजान आन दियैँ कहौँ,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै ।
देखैँ रूप रावरो भयौ है जीव बावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि परयौ दहै ॥७१॥

सवैया

मुख-चाहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहैई झरै ।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग बने बिन कैसैँ वियोग टरै ।
कबहूँ जौ दई-गति सौँ सपनो सो लखौँ तौ मनोरथ-भीर भरै ।
मिलि हू न मिलाप मिलै तनको उर की गति क्यौँ करि ब्यौरि परै ॥७२॥
ऐ मन मेरे कहा झरी तैँ तजि दीन चल्यौ जु प्रबीन ह्वै तो सौ ।
ल्याई न काहुवै आँखि तरे हौँ कहूँ कबहूँ करि तेरो भरोसौ ।
मीत सुजान मिल्यौ सु भली भई बावरे मोसौँ भरयौ कित रोसौ ।
सोचत हौँ जिय मैँ अपने सपने न लहौँ घनआनँद दोसौ ॥७३॥
आपु अनंग न संग को रंग भरयौ रिस आनि कै अंग पजारत ।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत ।
और अनीति कहाँ लौँ कहौँ घनआनँद जो कछू आपदा पारत ।
कैसैँ सुहाति सुजान तुम्हैँ हितू मानि दई कोऊ ऐसैँ बिसारत ॥७४॥

७२–भीर–भीज । ७३–भई–झरी ।

भाग्य । [७०] धन = धन्या, प्रिया । सीझी = भिनी हुई । [७१] आन = शपथ । मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत । [७२] झरै = झड़ी ही । भीर = भीड़, मेला । [७४] आपु० = अंगों की सी बनावट काम मैँ नहीँ,

रीझ तिहारी न बूझि परै अहो बूझति हैँ कहो रीझत काहैँ ।
बूझि कै रीझत हो जु सुजान किधौँ बिन बूझ की रीझ सराहैँ ।
रीझ न बूझो तऊ मन रीझत बूझि न रीझै हू ओर निबाहैँ ।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआनँद रीझ औ बूझहि चाहैँ ॥७५॥

कवित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौँ ज्यौँ पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौँ त्यौँ तन ताँवरे तचै ।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकैँ हियो,
गहकि गहकि गहबरनि गरैँ मचै ।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहैँ,
कैसैँ घनआनँद सुजान बिन ज्यौं बचै ।
महकि महकि मारै पावस-प्रसून-बास,
आसनि उसास दैया को लौँ रहियै अचै ॥७६॥

ललित उमंग-बेली आलवाल-अंतर तैँ,
आनँद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी ।
आगम-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी ।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैँ इन है पढ़ी ।
कंचुकी तरकि मिलै सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल महा बढ़ी ॥७७॥

७६–गरैँ–हियैँ (राम)।

यह अनंग है। ऐन = घर। [७५] बूझ = बुद्धि। मूझत = बेसुध होता है। [७६] ताँवरे = ताप से। गहबरनि = व्याकुलता। चहकि० = जला देती है। अचै = पीकर। [७७] सगुनौती = अर्थात् मंगलपाठ। [७८] कौंधा = चमक,

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं ।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे इत चातक प्रान तपै तरसैं ।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि यौं अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित हा अँखियाँ उघरी बरसैं ॥७८॥

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान पै वारिबे की अभिलाष सरौं ।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं ।
घनआनँद कीजै बिचार कहा महा रंक लौं सोच-सकोच ररौं ।
चित-चोपन चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥७९॥

कवित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोरिक चवाई क्यौं न,
तोरौ सब कोऊ करि सोरौ मेरैं को सुनै ।
नेह-रस-हीन दीन अंतर मलीन-लीन,
दोष ही मैं रहै गहै कौन भाँति वे गुनै ।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसैं धौं करौं उनै ।
टरै नहीं टेक एक यहै घनआनँद जौं,
निंदक अनेक सीस खीसनि परे धुनै ॥ ८० ॥

नीके नैन ऐन आय चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैं हिय सियरात है ।
एरी मेरी सहज लड़ीली अरबीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहैं लाड़ौ लड़कात है ।
रूप-मद-छाके तैं गँवेली गरबीली ग्वारि,
तोहि ताकैं रूपौ उमगनि उमदात है ।

७८–इत–दृग (राम) । ८१–आय–पाय । दियैं०–दीजै पिय सों न मानै यौं (राम) ।

झलक । थ्यावस = स्थिरता, धैर्य । [७९] चौचँद = शोर । [८०] चवाई = बदनामी करनेवाले । खीस = लज्जा । [८१] अरबीली = हठी । लाड़ौ = प्यार

आनँद के घन सों न कीजै मान जान प्यारी,
दान दियैं पियै सों न मानै वाँ ही जात है ॥ ८१ ॥

सोभा को निकेत नेत भाखत निगम जाहि,
ताके सुख हेत मीनकेत रसखेत है ।
सकल बननि सिरमौर ठौर ठौर जाकी,
राखैं चख-ढौर और थाकें चित-चेत है ।
राधा-पद-अंकित बिराजि रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तें दीपति उपेत है ।
मधुर विनोद जहाँ आनँद-पयोद-झर,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥ ८२ ॥

सवैया

तेरो निकाई निहारि छकैं छवि हू को अनूपम रूप कढ़्यो है ।
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ़्यो है ॥
आनँद के घन राग सों पागि सुजान सुहागहि भाग बढ़्यो है ।
लाड़ तें लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ़्यो है ॥८३॥

घूँटै घटा चहुँघा घिरि ज्यों गहि काढ़े करे जो कलापिन कूकैं ।
सीरो समीर सरीर दहै, चहकै चपला चख लै करि ऊकैं ।
एहो सुजान तुम्हैं लगे प्रान सु पावस यौं तजि थ्यावस सूकैं ।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरो चित मैं कित चातिक-चूकैं ॥८४॥

अंजन त्यौर ही ताक्यौ करै नित पान लखै मुख-त्यौं रँग-चायनि ।
औरो सिँगार सदा घनआनँद चाहैं उमाह सों आपने दायनि ।

८२-नेत–जोरि (भदा०) । ढौर–ठौर (काँक०,प्रयाग) । ८३–सुहागहि–सुहागिल (काँक०) । ८४–ज्यों–कै (राम) ।

भी बहल जाता है । गँवेली = गाँव की रहनेवाली । [८२] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है । राखै० = नेत्र उसे ही देखते हैं । उपेत=युक्त । [८३] चोज = उमंग । [८४] कलापी = मयूर । चहकै = जलाती है । ऊकैं =

तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि ।
ऐ परि नाच कै साँच छकौ जु लट्टू भयौ लाग्यौ फिरै तुव पायनि ॥८५॥

मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-लाहौ ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान पै चाहैं परे तुम नेकौ न चाहौ ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराहौ ।
कै बिपरीति मिलौ घनआनँद या बिधि आपनी रीति निबाहौ ॥८६॥

कबित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं मेल मानि लीजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यौ उर पूरि कै ।
उठी है उदेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारी चिंता चूरि कै ।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मेटि दियौ,
जान प्यारे नेरे जाय मारौ फित दूरि कै ।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीरै घनआनँद यौं धूरि कै ॥ ८७ ॥

सवैया

मिहँदी लगि पायनि रंग लहै सुठि सौंधो सु अंगनि संग बसै ।
तरुनाइयै कोक पढ़ै, सुघराई सिखावति है रसिकाई रसै ।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै ।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु तैं आपु लसै ॥८८॥

८८–लगि–रँग । तरुनाइयै–तरुनाई पै । गसै–वसै (राम) ।

उल्का, लुक । ध्यावस = धैर्य । [८५] त्यौर = चितवन । ऐ परि = ऐ परि = फिर भी । [८६] चाहैं = चाह में पड़े हैं । [८७] नेरे० = निकट (अनुकूल) होकर फिर दूर (प्रतिकूल) होकर । [८८] सुठि = सुंदर, उत्कृष्ट । सौंधो = सुगंध, इत्र आदि । कोक = कोकशास्त्र के निर्माता । सुघराई = चतुरता ।

कवित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरव को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है।
जाकी जोति जागैं रस पागैं हो चकोर-नैन,
बुध कवि मित्रन को पोखै मन चैन है।
नेह-निधि वाढ़्यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन सो निहारौं मन मैं न है।
विरह विडारि औ विदारि दुख-तम कव,
सींचैगो स्रवन कहि सुधासने वैन है॥ ८९॥

मोहिं दीठि-कारन हौ दुख-तम-टारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हौ कहाँ लौं कहौं जसै।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम ही तैं पियौं या तिहारे रूप के रसै।
वात अटपटी वढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लागै जो पै वीच वरुनी वसै।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यौं विचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौ दीन की दसै॥ ९०॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं,
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की।
धूम कौं न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं वरै,
ढरै नैन नीर वीर! हरै मति आह की।
जतन बुझै हैं सव जाकी भर आगैं, अव
कवहूँ न दवै भरी भभक उमाह की।

८९–मन–कहूँ (राम)।

[८९] अपूरव = पूर्वेतर दिशा ; अद्वितीय। बुध = ग्रह ; पंडित। कवि = शुक्र ; काव्यकर्ता। मित्र = सूर्य ; सखा। निधि = समुद्र। [९०] भटभटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना। [९१] घट = शरीर। वीर = हे सखी।

जब तैं निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तैं अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ९१ ॥
अवधि सिराएँ ताप-ताते ह्वै कलमलाय,
आपु चाय-बावरे उमहि उफनात हैं।
दरस-दुखारे चैन-बंचित बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय तहीँ मड़रात हैं।
इते पै अमोही घनआनँद रुखाई, डर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैं।
जानि अनखौँहीँ बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैं ॥ ९२ ॥

साहस सयान ज्ञान ताकत तुम्हैं सुजान,
तब ही सबनि तजी अब हौँ कहा तजौँ।
रावरेई राखे प्रान रहे, पै दहे निदान,
यौँ ही इन काज लाज बिन हूँ खरी लजौँ।
ऐसी कै बिसारी गौँ तिहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ ढरौ अजौँ।
कौन बिधि कीजै कैसैँ जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौँ ॥ ९३ ॥

घेरयौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे फानुस के दीप हौ।
लोचन-पतंग संग तजै न तौऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौँ भरे ध्यान-सीप हौ।

९२-डर-उर। ९४-भरे-धरे (राम)।

मति० = 'आह' करने की चेतना। झर = ज्वाला। उमाह = उमंग। [९२] सिराएँ = बीत जाने पर; ठंढी पड़ने पर। अनखौँहीँ = रूठनेवाली। [९३] सयान = चतुरता। निदान = अंत में। गौँ = घात। बिसासी = विश्वासघाती। भाजत = भागते हो। भजौँ = भजती हूँ। [९४] घट = शरीर; फानूस

ऐसैं कहौ कैसैं घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ ।
दीठि-आगे डोलौ जो न बोलौ कहा बस लागै,
मोहिं तौ वियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥ ९४ ॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि है हूजत क्यौं करुवे गहि दोसनि ।
आपुन त्यौं तकियै सकियै कहि हाहा हठीले न रूसियै रोसनि ।
तासौं इती अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि ।
वारियै कोरिक प्रान सुजान हौ ऐ परि यौं मरियैगो मसोसनि ॥ ९५ ॥

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे अहो भूलि हू नीके न जानत हौ ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ ।
घनआनँद सोऊ न भूलत क्यौं जु पै भूलि ही कौं ठिक ठानत हौ ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनी किन मानत हौ ॥ ९६ ॥

कवित्त

रूप की उझिल आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह - ओपी अरुनई है ।
उपटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है ।
महारस-भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
ओछी ओक धरैं प्यास-पीर-सरसई है ।

९७-उपरि-उलटि । ओछी-आछी (राम) ।

की हाँड़ी । अंतराय = विघ्न । पटनि० = परत पर परत करके लपेटे वस्त्र । फानुस = फानूस । पतंग = फतींगा । सुरत० = स्मृति के शासक । [९५] मीठे = मधुर ; प्रिय । करुवे = कड़वे ; विमुख । त्यौं = ओर । भिजई = सरस की । ऐ परि = फिर भी । ९६] भूलि रहे = मगन हो रहे हैं । सुधि० = आप मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अतः मेरी सुध इसी बहाने आप के मन पर चढ़ती रहती है । सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे

कैसैं घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥ ९७ ॥

नीकी नासापुट ही की उचनि अचंभे-भरी
मुरि कै इचनि सौं न क्यौं हूँ मन तैं मुरै ।
रूप-लाड़ जोबन-गरूर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै ।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सी रुरै ।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान पै दुरै ॥ ९८ ॥

अलग भयौ है लगि तुम्हैं और ठौरन तैं,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियै ।
क्यौं हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियै ।
खरक दुहेली हो असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कहौ कौन बिधि टोहियै ।
जब तैं सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि तारे,
आँखिन बसे हौ सब सूनो जग जोहियै ॥ ९९ ॥

सवैया

दृग छाकत हैं छबि ताकत ही मृगनैनी जबै मधुपान छकै ।
घनआनँद भाजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै ।

९८—जोबन—जीवन (राम) । ९९—लगि—ल[illegible] अदा०) ।

भूलने को ही क्यौं नहीं भूल जाते । भूलि कै = भूले भटके । [९७] उझिल = उमड़ाव । तेह = तीखापन । उपटि = उभर कर । ओछी = छोटी । ओक=अंजली । [९८] न मुरै = हटती नहीं । मिहीं० = मंद मधुर स्वर से । रुरै=छा जाती है । ढुरै = मुद्रा के साथ मड़ती है । [९९] सुलग्यौ० = सुलगता (जलता) रहता है ; भली भाँति लगता है । खरक = खटक । दुहेली = दुखद । दीठि० =

पल खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै वलकैऽरु थकै ।
अलवेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी हैं लाज थकै ॥१००॥

कवित्त

जब तैं निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तैं गही है उर आन देखिवे की आन ।
रस-भीजे वैननि लुभाय कै रचे हैं तहीं,
मधु-मकरंद-सुधा नावौं न सुनत कान ।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिवासर करत गान ।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै विराजै तिन ही को ध्यान ॥१०१॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी ।
नीकें सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी ।
चाह लै वाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जोवन साखी ।
नैनन पानि विराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥१०२॥
सोभा-सुमेरु की संधितटी किधौं मान-मवास गढ़ास की घाटी ।
कै रसराज-प्रवाह को मारग वेनी विहार सौं यौं दृग दाटी ।

१००–मधु–छवि (काँक०) । १०१–इन–है न (भदा०) । १०२–जोवन–जीवन (काँक०) ।

दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है । [१००] मधु = शराब । भीजि = शरूर चढ़ने पर । वलकै = नशे मैं उमंगित होती है । इकौसी = अकेली । [१०१] आन = अन्य । आन = शपथ । ज्यारी = जिलानेवाली । [१०२] पानिप = शोभा । गुन = गुण ; डोर । पाट = रेशम । ही = हृदय । चाह = इच्छा । नैननि० = नेत्रों के हाथ मैं । राखी = रक्षा का

कांम-कलाधर ओपि दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी ।
जान की पीठि लखैं घनआनँद आनन आन तैं होति उचाटी ॥१०३॥
ढिग बैठे हू पैठि रहै उर मैं धरकै खरकै दुख दोहतु है ।
दृग-आगे तैं बैरी कहूँ टरै न जग-जोहनि-अंतर जोहतु है ।
घनआनँद मीत सुजान मिलैं बसि बीच तऊ मति मोहतु है ।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहतु है ॥१०४॥

कबित्त

गहैं एक टेक टारि दीने हैं बिवेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहि रितौत हैं ।
कैसैं कही जाय हेली इनकी दुहेली दसा,
जैसैं ये बियोगी निसिबासर बितौत हैं ।
कहिबे कौं मेरे पै अनेरे घेरे जाहिँ नाहिँ,
अति ही अमोही मोहिँ नेकौ न हितौत हैं ।
जब तैं निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तैं अनोखे नैन काहू न चितौत हैं ॥१०५॥
तैं मुँह लगाई तातैं मोहिँ मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है ।

१०२–सधितटी–सिंधुतटी । किधौँ०–सोभित मान-मवास की (राम) । दाटी–डाटी । ओपि–कोपि (कॉक०) । १०४–धरकै०–घर कै दुख को सुख । जग–जगि । मति–मन (राम) । १०५–नैन०–दृग काहिँ ।

डोरा । [१०३] सुमेरु = पहाड़ ; मेरुदंड । संधितटी = संधिस्थल । मवास = पहाड़ी किला । गढ़ास = गढ़न । रसराज = श्रृंगार ; जलराशि । बिहार०–हिलने से । दाटी = प्रतीत होती है । ओपि० = घोटकर चमकाई । पाटी = पट्टी, पटिया । आन = अन्य । उचाटी = उच्चाटन । [१०४] ढिग = पास । जोहने० = देखने के समय बीच में से झाँकता रहता है । [१०५] रितौत = खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं । हेली = हे अली । दुहेली = दुखद । अनेरे = विलक्षण, अपरिचित ।

तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छवि,
क्यों धौं इन नैनन तैं नींद गई नसि है ।
छोरि छोरि डारे जे जे भूषन विदूषन से,
तहीं तहीं लगि लोभी मन गयौ गसि है ।
आरस-रसीलो घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सौं मेरी मति लीनी कसि है ॥१०६॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातैं,
यातैं वाय बावरो डराय काँपिबो करै ।
थोरे थिर गुन मैं विराजै बीचि आभा ऐन,
नैन हेरैं हेरनि हिये मैं भूख लै भरै ।
नैकौ सनमुख भएँ दीजै सब तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै ।
ताकौं तो उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
ओछी उपमानि को गरूर छोरे लौं गरै ॥१०७॥

वेध्यौ लै बिसासी मोह गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि घनो मेरो मरम महा पिराय ।
हित न लखाय क्यौं हूँ धाय हाय कहा करौं,
जरौं बिपज्वाल पै न काल कैसैं हूँ निराय ।
जीवन की मूरि जाहि मान्यो तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई गई हेरि हौं हिराय ।
है री घनआनँद सुजान बैरी पैंडे परयौ,
दै री अब ऊतर यौं धीर हू चल्यौ धिराय ॥१०८॥

१०७–बीचि–चिर (राम)। १०८–हित–होत ।

न हितौत=हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते। [१०६] सोई=सोई हुई। सोई=वही। गसि गयौ=चिपट गया। [१०७] चलदल० =पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है। निपात=पतन। वाय=वायु। बीचि=लहर ; चंचलता । ऐन=भरपूर । पीठि देना=विमुख होना। नीठि=कठिनाई से । तो=तेरा। [१०८] मरम=मर्मस्थल। न निराय=

सवैया

जिन ही बरुनीन सौँ वेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
विष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौँ रस मैँ अब रोष दिखावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०९॥

उर आवत है अपने कर ह्वै बर बेनी बिसाल सौँ नीकैँ कसौँ ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियेँ अनखौँहैँ सुभाव के त्रास त्रसौँ ।
घनआनँद यौँ बहु भाँतिनि हौँ सुखदान सुजान-समीप बसौँ ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौँ ॥११०॥

साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैँ बिना ही कमान सौँ जोटैँ ।
दीसैँ जहाँ के तहाँ सु चलैँ अति घूमति है मति या चख-चोटैँ ।
घाय को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैँ ।
प्रान सुजान के गान-बिँधे घट लोटैँ परे लगि तान की चोटैँ ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन ।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौँहन ॥११२॥

११०–विसाल–विलास । कसौँ–गसौँ (राम) । नै–मैँ (काँक०) ।
११२–रावरी–रावरे (राम) । मति–मन (काँक०) ।

निकट नहीँ आता । पैँड़े० = पीछे पड़ा । धिराय = धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०९] तिन० = उन्हीँ नेत्रोँ के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीँ नेत्रोँ को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । विष० = विषयुक्त । अजौँ = अब भी । [११०] नै = झुककर । [१११] सुर० = स्वररूपी बाण । जोट = प्रतिपत्ती पर । चाड़ = उत्कंठा । [११२] गोहन = साथ । दीठि० = दृष्टि को

कवित्त

मोहिं दुख-दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिंता मोहिं चूरि तोहि राखै निधरक है।
रवाय कै जगावै मोहिं विहँसावै स्वावै तोहि,
तेरँ भूल भरै मोहिं सालै ज्यौं करक है।
तोहि चैन-चाँदनी मैं सरसै हरष-सुधा,
मोहिं जारै वारै है विपाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,
नेह की विपमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोवन-रूप-अनूप-मरोर सौं अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखोली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥११४॥
गोरे डँडा पहुँचानि विलोकत रीझि रँग्यो लपटाय गयो है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैं पुनि आभा-तरंगनि संग रयो है।
नीलमनीनि हियेलैं घनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयो है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयो है ॥११५॥

११३–दोखै–सोखै। तोहि०–पोखै सुख तोहि मोहिं। मोहिं०–चिंता चिता। वारै–मारै (राम)। ११५–पुनि–इन (राम)। छयो–घयो (कॉक०)।

दुह लेता है। सौंहन=शपथैं। [११३] रवाय=रुलाकर। करक=कड़क, टीस। अरक=अर्क, सूर्य। अतरक=अतर्क्य। [११४] गुन=गुण; डोर। चोख=फुरती। ऊठ=उठान। अमैंठी=उमेठी हुई। गरैंठी=टेढ़ी। टैंठी=(प्राकृत टंटा) चंचल। [११५] गोरे=गौर। डँडा=बाहु। पहुँचा=कलाई। पहुँची=एक गहना। रयो=लीन हो गया। हियेलैं=पछेली।

सवैया

जिन ही बरुनीन सौँ वेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
बिष-भोए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहि पिवावत हौ ।
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौँ रस मैँ अब रोष दिवावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाव कहूँ फिरि मारन चाव जिवावत हौ ॥१०६॥

उर आवत है अपने कर द्वै बर बेनी बिसाल सौँ नीकैँ कसौँ ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि कियैँ अनखौँहँ सुभाव के त्रास त्रसौँ ।
घनआनँद यौँ बहु भाँतिनि हौँ सुखदान सुजान-समीप बसौँ ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नै नित पायनि ऊपर सीस घसौँ ॥११०॥

साँच के सान-धरे सुर-बान पै छूटैँ बिना ही कमान सौँ जोटैँ ।
दीसैँ जहाँ के तहाँ सु चलैँ अति घूमति है मति या चख-चोटैँ ।
घाय को चाव बढ़ै घनआनँद चाड़नि लै उर आड़नि ओटैँ ।
प्रान सुजान के गान-बिँधे घट लोटैँ परे लगि तान की चोटैँ ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन राखत लै गहि गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेत है हो करि दीठि को दोहन ।
सूझ सबै जु टरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखै कहा जौ न दीसौ इते पर हाहा सुजान तिहारियै सौँहन ॥११२॥

११०–बिसाल–बिलास । कसौँ–गसौँ (राम) । नै–मै (काँक०) ।
११२–रावरी–रावरे (राम) । मति–मन (काँक०) ।

निकट नहीँ आता । पैँड़े० = पीछे पड़ा । धिराय = धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०६] तिन० = उन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कटा हृदय सिलाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । बिष० = विषयुक्त । अजौँ = अब भी । [११०] नै = झुककर । [१११] सुर० = स्वररूपी बाण । जोट = प्रतिपक्षी पर । चाड़ = उत्कंठा । [११२] गोहन = साथ । दीठि० = दृष्टि को

कवित्त

मोहिं दुख-दोष दोखै तोहि तोखै पोखै सुख,
चिंता मोहिं चूरि तोहि राखै निधरक है।
ख्याय कै जगावै मोहिं बिहँसावै खावै तोहि,
तेरैं भूल भरे मोहिं सालैं ज्यौं करक है।
तोहि चैन-चाँदनी मैं सरसै हरष-सुधा,
मोहिं जारै वारै है विषाद को अरक है।
कहूँ घनआनँद घमँड़ि उघरत कहूँ,
नेह की विषमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोवन-रूप-अनूप-मरोर सौं अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूघरिवारियै ऊठ अमैंठी।
सूधे न चाहै कहूँ घनआनँद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी।
पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाएई डोलत टैंठी ॥११४॥
गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पन्ननि की पहुँचीन लखैं पुनि आभा-तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीनि हियेलैं बनी रुचि-रूप-सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीनि चितै घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११५॥

११३–दोखै–सोखै। तोहि०–पोखै सुख तोहि मोहिं। मोहिं०–चिंता चिता। वारै–मारै (राम)। ११५–पुनि–इन (राम)। छयौ–घयौ (कॉक०)।

दुह लेता है। सौंहन=शपथैं। [११३] ख्याय=खिलाकर। करक=कड़क, टीस। अरक=अर्क, सूर्य। अतरक=अतक्यं। [११४] गुन=गुण; डोर। चोख=फुरती। ऊठ=उठान। अमैंठी=उमेठी हुई। गरैंठी=टेढ़ी। टैंठी=(प्राकृत टंटा) चंचल। [११५] गोरे=गौर। डँडा=बाहु। पहुँचा=कलाई। पहुँची=एक गहना। रयौ=लीन हो गया। हियेलैं=पछेली।

कबित्त

प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसैं मथि मन पै सरूप ठहरायौ है।
ताहि एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं हेरैं सरसायौ है ॥११६॥

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन छाय कै।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं अति सोच बाढ्यौ,
बिना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै।
बानिक-निकाई नीकैं हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोच दीजियै बताय कै।
एक ठावँ दुहुनि बसैयै सरसैयै सुख,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥११७॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तैं टरी।
बोलनि चितौनि चारु डोलनि कपोलनि सौं,
चाहि चाहि रंक लौं सु संपति हियैं धरी।
ऐसैं ही मैं सहज बिरह कित हू तैं आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी।

११६—पयोदधि—महोदधि। उमडि—उमगि। हेरैं—देखैं। ११७—सोच—सोऽच। सरसैयै०—सुख—दुख कैसे (राम)। ११८—कपोलनि—कलोलनि।

[११६] बार=इस ओर का तट, किनारा। सरूप=प्रेम का रूप। [११७] सुरस=जल; आनंद, प्रेम। [११८] प्रानदान=जीवनदायिनी।

अब घनआनँद सुजान प्रानदान भेटौं,
विधि बुधिआगर पै जाचत वहै घरी ॥११८॥
प्रानन के प्रान एहो सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै ।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं विसास हरि ता हियै ।
भीजे घनआनँद विराजौ निधरक तुम,
वाहि चिंता-चिता-बीच ऐसैं अब दाहियै ।
सब विधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौं रसीले गुननगननि सराहियै ॥११९॥

सवैया

देखि सुजान छके घनआनँद ढीठ भए सु न नीठ सकोचत ।
चाह के दाह भरे कित तैं नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत ।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत ।
नैन असोचिन की गति हेरि कै बीतत री निसिवासर सोचत ॥१२०॥
तेरे बिना ही बनाय की बानिक जीतैं सची-रति-रूप-भलापन ।
को कवि सो छवि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिंगार-कलापन ।
कान ह्वै तान को रूप दिखावति जान जबैं कछु लागै अलापन ।
नाचहि भाव के भेद बतावत, है घनआनँद भौंह-चलापन ॥१२१॥

कवित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबो अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन ।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा तिहारौ,
आप त्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन ।

११९—सहज—असह । १२०—छके—छए (राम) ।

[११९] भीजे=सरस, सुखी । [१२०] नीठ=कठिनाई से भी । नीरद=बादलों सी अश्रुवृष्टि । पानिप=पानी ; शोभा । [१२१] बनावट=सजावट । **सची=** इंद्राणी । अलापन = उत्तमता । कलापन = **समूह** । चलापन = **चंचलता** ।

जतन कहा बनाऊँ तुम ही तेँ तुम्हैँ पाऊँ,
　　रावरोई गुन गाऊँ बावरे लौँ हितलीन ।
रहौँ लागि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
　　एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन ॥१२२॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
　　तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो ।
निघटत नाहिँ मो घटाई, उघटत क्यौँ हूँ,
　　रावरी बड़ाई आहि प्रीतिपन पारिबो ।
एहो घनआनँद सुजान एक टेक ही सौँ,
　　चातक बिचारे को है जीवन बिचारिबो ।
यातेँ निसदिन रस बरस दरस ओर,
　　टक जक लाय लोभी करत निहारिबो ॥१२३॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौँ मेरी दौर,
　　नाहि और ठौर, काहि साँकरै सम्हारियै ।
दरसन-दान दीजै भावते सुजान, रहे
　　आसा लागि प्रान आन बोलत तिहारियै ।
गुनमाला फेरौँ, निगुनी ह्वै नित हित हेरौँ,
　　बिरह - अधीर टेरौँ पीरहि निवारियै ।
पन तन ताको जो हो काचो सो तौ आहि पाको,
　　आनँद के घन प्रीति-साको न बिगारियै ॥१२४॥

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
　　रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।

१२२–बनाऊँ–बताऊँ । गुन–जस । १२३–रस०–सब रस दरसाएँ और (राम)। १२४–हो–हौँ । पाको–याको (कॉक०) ।

[१२२] अजानता=अज्ञान । जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ । रसरासि=आनंद की राशि; समुद्र । [१२३] निघटत०=घटती नहीं । उघटत=कहने से । जीवनि= जीना । [१२४] साँकरै=संकट में । आन=दुहाई । माला=समूह; जपमाला ।

देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकें आय,
राखौं परचाय पै निगोड़े चलैं धाय धाय।
विरह-विषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै मुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय।
ऐसैं घनआनँद विहाय न वसाय दाय,
धीरज विलाय विललाय फरौं हाय हाय ॥१२५॥

वैनन मैं बोलै, नैन-ऐन चैन सौं कलोलै,
गैन-संग डोलै पै न परस-परोस है।
हेरति हिरावैं, एक ठौर हू न लहौं ठावैं,
झुरि मुरझावैं वीर ऐसी पीर को सहै।
पाय न परति वात प्रान पैठि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेलो रस-रोस है।
आपने किये की छाँह वैठियै वखानै जग,
वे तो घनआनँद मो देखन हीं दोस है ॥१२६॥

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछि धूम करैं कौन पै घिर।
नाच की चटक लसै अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लोयन लगे फिरैं।
अभिनै-निकाई निरखत ही विकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं।

१२५—फरौं—कहौं (राम)। १२६—पैठि-पौढ़ि। हीं—को (राम)। १२७—मत-वारी-मतवारौ। प्यारी—प्यारौ (भदा०)। मटक—सटक। अभिनै—अनिनय (कॉक०)।

तन = ओर। साकौं=ख्याति। [१२५] निगोड़े = बुरे (गाली), पैर से हीन। तावरेन = ताप, ज्वर। न वसाय = वस नहीं चलता। [१२६] ऐन = घर। गैन = गमन। परस० = स्पर्श की निकटता। वीर=हे सखी। पाय०=समझ में नहीं आती। प्रान० = प्राणों में लेटकर, वसकर। [१२७] घूमरे = मत्त। अभिनै = अभिनय, नाट्य। सोधौ = खोज भी। कनावड़े = दबैल।

राते तरवानि तरैं चूरे चोप-चाड़-पूरे,
पाँवड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥१२७॥

अंग अंग छाई है उदेग-मुरझानि महा,
साँस लैबो आली गिरि हू तैं गरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
जोवन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारै कौन,
विरह-विषम-जुर जीबो करुवौ लगै ॥१२८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत है।
तोखे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत है।
कौन कौन बात को परेखो उर आनियै हो,
जान प्यारे कैसैं विधि-अंक टारियत है।
थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत है ॥१२९॥

गोकुल-नरेस नंद-बंस को प्रसंस चंद,
सोभा-सुखकंद प्रेय - अमिय - निवास है।
सो नित चकोर-चोप तो हित भरयो ही रहै,
सुनिहै सुजान कौन माधुरी - बिसास है।

१२८–मुरझानि–उरझानि ; विषम–विषाद (राम)। १२९–अंक–आँक (प्रयाग, काँक०)।

[१२८] सलत = धुसते हैं। तूल = रूई। हरुवौ = हलका। [१२९] सिराए = शीतल हुए। परेखो = पछतावा। विधि० = भाल में ब्रह्मा के लिखे अक्षर।

उचित जु होइ ऐसैं मेरे मन आई,
जैसैं बाढ़यौ घनआनँद सुदृष्टि-झर आस है।
जगत मैं जोति एक कीरति की होति है पै,
तो तैं राधे कीरति के कुल को प्रकास है ॥१३०॥

सवैया

फल होत दियैं सम कै अधिकै वरनैं कवि कोविद यौं सब ही।
विपरीति लखी यह रीति अहो, परतीति-गही मति मोह वही।
उत कौं घनआनँद गौं है यहाँ, इत की जु सुजान परी सु सही।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित्त कै अरपैं हम चित्त लही ॥१३१॥
नैन कहै, सुनि रे मन! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हम ही तैं भयौ है।
लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है ॥१३२॥
नाच लटू ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि।
त्यौं सुर-साँच-सवाद सनैं मन झूठियै लागति बीन की बोलनि।
नेकु हँसैं सु करोरिक चंदनि चेरो करैं दुति-दंत-अमोलनि।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥१३३॥
मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौ न छकै को।
भूल कौं सौंपि तवै जु सवै सुधि काहू की कानि कनौड़त कै को।

१३०–चंद–चंदि। सो–जो। सुनिहै–सुनियै। विसास–विलास। उचित–उदित। जु होइ–जुन्हाई (राम)। बढ़ायौ–बाढ़ी (काँक०, प्रयाग)। तो तैं०–राधिका तौ (राम)। १३१–परी–वनी (राम)। १३२–गुन–मन (काँक०)। १३३–मन–मत (प्रयाग)।

[१३०] झर = झड़ी। कीरति के० = कीर्ति (राधिका की माता का नाम) का वंश प्रकाशित है। [१३१] सम० = बराबर या अधिक। [१३२] तनकौ० = उन्हें मन में ही छिपा रखा है। [१३३] लड़ीलियै = सुहानेवाली। [१३४] मादिक = मदिरा। न छकै० = कौन मत्त नहीं हो जाता। कानि कै को कनौड़त =

प्राननि वारि निवारि कै लाजहि ऐसी बनै विन काज, सकै को ।
बावरे लोगन सौं घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥१३४॥
जान प्रवीन के हाथ को बीन है मो चित-राग-भरयौ नित राजै ।
सो सुर साँच कहूँ नहिँ छाड़त ज्यौं ही बजावै लियैं मन बाजै ।
भावती मीड़ मरोर दियैं घनआनँद सौगुने रंग सौं गाजै ।
प्यार सौं तार सु ऐंचि कै तोरत क्यौं, सुघराइयै लावत लाजै ॥१३५॥

कवित्त

पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनो है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी ।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिनरैन,
वगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी ।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
बिरह-अंगारनि मगारि हिय होरी सी ॥१३६॥

चोप-चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-कीचि कै ।
घात लै अनूठी भरैं चेतक चितौन-मूठी,
धूँधरि चिलक-चौंध बीच कौंध सौं टिकै ।
भीजे घनआनँद सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै ।

१३५–लावत–लाजत (राम)। १३६–परि–परी (राम)। अंग अंग–मानो अंग (काँक०)।

मर्यादा का विचार करके कौन दबता है। सकै०=कौन सँभाल सकता है। [१३५] राग=प्रेम ; गान। सुघराइयैं=चतुरतर को। [१३६] दुहेली=कष्टमयी। होला=होरा, लपट में भुना अनाज का हरा पौदा। मगारि=जला कर। [१३७] चाँचरि=चर्चरी राग, होली का गान। चेतक=जादूभरी।

रूप-अलबेली सु नबेली एरी तेरी आँखि,
ताकि छाकि मार छुरिहाई न कहूँ छिकै ॥१३७॥

सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल हौ,
दीन के दरद कौं देखो दुखानि कहा दरौ।
सुजस-मयंक हौ पै लागत कलंक बड़ौ,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ।
मेरो दोष देखौ तौ परेखो है अलेखैं पै जू,
मीन डोलैं निधि पैलैं चूकिलन गादरौ।
चातिक बिचारो घनआनँद पुकार जानै,
मूँदि क्यौं सकत है निदरि गए बादरौ ॥१३८॥

सवैया

सोए हूँ अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निरयौं करि।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि।
पै मनसा मधि रागत पागत लागत अंकनि जागन ज्यौं करि।
ऐसे सुजान बिलास-निधान हौ सोएँ जगे कहि क्योंरियै क्यौं करि ॥१३९॥

कहियै किहि भाँति दसा सजनी अति ताती कथा रसनाहि दहै।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि नहै।

१३७—चेतक-चेतक। बीच—बीज (सभा)। १३८—मेरो—मेरे। अलेखें—अलेखो (राम)। डोलैं—डोलै (प्रयाग)। १३९—१४०—प्रेम निधि। अंकनि—अंगनि (राम। जगे—जगैं (काँक०)।

घूँघरि = धुंध। चिलक = चमक दमक। छुरिहाई = छेदी भेदनेवाली। न छिकै = छिँकती नहीं। [१३८] डोलैं = निमित्त। निधि = समुद्र। गादरौ = शिथिल। मूँदि० = बादलों के हट जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ में खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलों को नेत्रों में कब तक बंद किए रह सकता है। [१३९] निरयौं करि = निश्चित होकर या रयौं करि = काम के रंग से भीगे। सोएँ० = सोने में भी जगे रहते हैं। [१४०]

घनआनँद जान न कान करैँ इत के हित की कित कोऊ कहै ।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै ॥१४०॥

कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैँड़े ।
वैठि सभा मधि न्यारे रहैँ, पुनि रोकत चेटक लौँ दृग-पैँड़े ।
कौन पत्याय कहै घनआनँद हैँ सब सूधे सयान सौँ ऐंड़े ।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥१४१॥

नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखै ।
नीके सुधानिधि-रूप छक्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखै ।
जैसैँ सुजान लखैँ घनआनँद नेही न आन हियैँ अवरेखै ।
ऐसैँ उजागर हैँ जग मैँ परि चंदहि एक चकोरहि देखै ॥१४२॥

कवित्त

नेही की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन दब के ।
चाड़ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो ह्वै,
कैसैँ गनै बनै जेऽब ओटपाय तब के ।
खेल अलबेले हियो खूँदैँ घनआनँद यौँ,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के ।
कहिबे कौँ कोउ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥१४३॥

१४२—लखैँ—लसैँ (काँक०)। १४३—जेऽब—जब (प्रयाग)।

ऊतर० = उत्तर के पैर में मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते। [१४१] अमैँड़े = मर्यादा न माननेवाले। चेटक = जादू। बैँड़े = टेढ़े। [१४२] न अवरेखै = नहीं ले आता। उजागर = प्रकाशपिंड। [१४३] बिलोय = मथकर। चाड़ = उत्कंठा। ओटपाय = उपद्रव। परेखौ = फल। चाँदनी० = उजाले में चोरी कर लेनेवाले। मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपंखों की सी आँखें हो जाते हैं, बेकाम।

सवैया

साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै ।
नैननि वेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै ।
फागु के चाय चुए भरि भाय सौं छाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै ।
नैंसिक हेरियै मेरियै सौंहैं सु एरी सुजानं यौं चेरियै मोहि कै ॥१४४॥

विन बूझ असूझ विरंचि की वेस सनेहू न लागनि गैल गईं ।
जिन वावरी रोग-वियोग-भरी रचि ये हम कौं तम-जोग दईं ।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलापनि लाखनि भाँति रईं ।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भईं ॥१४५॥

चातुर ह्वै रस-आतुर होहु न वात सयान की जात क्यौं चूकै ।
ऐसी अठाननि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग हूकै ।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद, कौंवरे अंग सुजान-वधू के ।
चोली-चुनावट-चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के ॥१४६॥

कवित्त

गाँसनि गसीले सुरसीले गरुवाई भरे,
जकरि पकरि और ओरनि तैं छोरी हौं ।
मोहन महा ढरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन उररि पैठि वैठि उर भोरी हौं ।

१४४-अँगेट-अँगेठ (कॉक०, प्रयाग)। फागु-दाय। सु एरी-ढरारे।
१४५-कौ०-रचे सपनेहूँ (राम)। १४६-रईं-दईं। कित-किनि (प्रयाग)।
ढिग-जिन (राम)। दाग-अंक (कॉक०, प्रयाग) ; होत (कवित्त)।

[१४४] अँगेट = अंगदीप्ति । गुनै० = गुणरूपी डोर से युक्त करके । नैसिक = थोड़ा। सौंह = सामने। [१४५] वेस = प्रिय का वेश रूप। तम० = अंधकारमय। रईं = युक्त हुईं। [१४६] अठान = अकरणीय। परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छूओ मत। उतू = एक औजार जिससे वेलवूटे वनाते हैं या चुनावट डालते हैं। उसके कोमल शरीर पर चोली में वने उतू

नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तीर आएँ बिरह-गहर लै झकोरी हौं।
तरिबो सुन्यौ हो गुन गहैं घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहि बोरी हौं ॥१४७॥

सवैया

बात अनोखी कहा कहियै सुनि बैठे सरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो।
है घनआनंद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ॥१४८॥

कवित्त

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौंहैं न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तैं मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की ज्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहो लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिये तैं टरैं न ये अनखि कर टारिबो ॥१४९॥

१४७-सु रसाले-औ गहर (राम)। १४८-बात-चाह। सुनि-सजि (राम) छीबो-दीबो (कवित्त)।

के दाग भी उभड़ आते हैं। [१४७] उररि=बरबस हृदय में धँसकर। गहर=गहराई। [१४८] बौरई=पागलपन। दुख०=छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुड़ता। अनमीच=बिना मृत्यु के। [१४९] अन०=न मानना जीति०=जीत का लाभ। सुठि=उत्कृष्ट या अत्यंत। अनखि=झुँझलाकर।

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन की दब।
मोहि लियौ हँसि जोहि छबीले कहौं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रच्यौ तब।
आस-भरयौ गहि द्वार परयौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥१५०॥

कवित्त

आरति के ऐन, चौसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप छाजैं साजैं दीठि ईठि त्यौं अचूक।
पूरे पन-राचे छाकि पाकि चूरे मत काचे,
ताचे साँच आँच के टरैं न टेक तैं कछूक।
रूप-उजियारे जान प्यारे हूँ निहारे जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंध हाँम मरैं चाहैं तिन रीस करैं,
ऐसैं अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥१५१॥

ललित लसौंहीं सु ढरौंहीं नेकु सौंही भएँ,
त्यौं ही रहि गहैं गौं ही डोलति न डीठि है।
हठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठे,
देखी बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति मुरि दीनैं कीनैं मान,
जान प्यारी बिरचैं हूँ राचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहिं यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥१५२॥

१५०—जोहि—हेरि (राम)। या—वा (काँक०)। १५१—टेक—टक (राम)। लाभ—लाख (प्रयाग) १५२—बोलनि—बोलिबे (प्रयाग)।

[१५०] दब = दबाव। [१५१] ईठि त्यौं = प्रिय की ओर। मत० = कच्चे मत (सिद्धांत)। ताचे = तपाए। कनौड़ = संकोच। ऊक = लुक। रीस = बराबरी। अरबरैं = हड़बड़ी मचाते हैं। [१५२] बसीठि = दूतत्व। बिरचैं० = विमुख होने

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग विराजति रंगमई ।
घनआनँद जोवन-माती दसा छवि ताकत ही मति छाक छई ।
वसि प्रान सलोनी सुजान रही चित पै हित-हेरनि-छाप दई ।
वह रूप की रासि लखी तब तैं सखी आँखिन कैं हटतार भई ॥१५३॥

कबित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
　　कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप विचारियै ।
आरसी जौ मम दीजै बूझ कौं असूझ कीजै,
　　आछे अंग हेरि फेरि आपो न निहारियै ।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
　　लाड़िली लसनि ताकी प्राननि तैं प्यारियै ।
रीझौ रीझि भीजै घनआनँद सुजान महा,
　　वारियै कहा सकोच सोचन ही हारियै ॥१५४॥

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
　　लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की ।
निपट नवेली नेह-मेली लाड़-अलबेली,
　　मोह-ढरहरी भरी बिरह-रितौन की ।
लोने लोने कोने छ्वै छबीली अँखियानि के सु,
　　रंचकौ न चूकै घात औसर-वितौन की ।
एरी घनआनँद बरसि मेरी जान तेरी,
　　हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की ॥१५५॥

१५४—आपो न—आपनो (काँक०) ।

पर भी मर्जाद का सा न मिटनेवाला राग (प्रेम; रंग) है । [१५३] छाक=नशा । हटतार=हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला, टकटकी । [१५४] गहर=गहराई, गहरी । पानिप=पानी; शोभा । [१५५] उघरि० = प्रेम का उद्‌घाटन । भरी० = विरह दूर करने में लगी हुई । लोने=सुंदर । औसर० =अवसर को

सोभा-वरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सु रसीली हँसि हेरैं हरै विरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि मैं,
देखी पैज-पूरी प्रीति-नीति कौं थपति है।
जाके गुन बँधैं मन छूटै और ओरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥१५६॥

छाए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
सो मन अँदेस आली साँसनि रुँधै गरै।
मोरनि की कूकैं सुनि उठति हिये मैं हूकैं,
चूकैं नहीं चातिक करेजो काढ़िवे अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै।
घेरि घूँटि मारै चहूँघा तें घनआनँद यौं,
वादर अडवरनि डावाँडोल ज्यौं करै ॥१५७॥

जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर,
उजागर सुजागर विलास-रसमसे हौ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
विधिना वनाय वाने अंग अंग लसे हौ।
छवि-निखरे ह्वै खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन गूढ़ गाँसनि सौं गसे हौ।

१५६—ओरनि—ठौरनि (राम)। १५७—वादर०—वादरनि आडंबर (काँक०,प्रयाग)।

ठीक ठीक विताने की बात। [१५६] सील=शिष्टता; आर्द्रता। स्वादनि०= स्वादों का ऐश्वर्य। पानिप=पानी; शोभा। उकति०=उक्ति के छोटे आकार मैं उसके अपार सौंदर्य को भर सकना असंभव है। [१५७] हूकैं=पीड़ाएँ। करेजो०=कलेजा निकालने पर अड़े हुए। अडंवर=वादल मैं सूर्यकिरणों से

भोर भएँ आए भाँति भाँति मेरे मन भाए,
एहो घरवसे राति कौन घर वसे हौ ॥१५८॥
तिन हूँ तेँ हरई भई है गुरुजन आगैँ,
पुरजन-पुंज मैँ कहानी सी धौँ कौन काज ।
तो हित वोहित जानि मोहित विहंग मन,
आसा-गुन वँध्यौ हेरि नेह को सरितराज ।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी वात,
हाहा घनआनँद अमैड़नि के सिरताज ।
सुंदर सुजान ह्वै सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नेकौ लाज हू तजेँ की लाज ॥१५९॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीँ न हाँ है ।
कै अपने सपने हूँ न सोचत, मो चित ऊखिल ही लौँ तहाँ है ।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनिमूरति जान जहाँ है ।
हाय दई न वसाय विसासी सौँ ठौर-रहेन कौँ ठौर कहाँ है ॥१६०॥
जान सजीवन-प्रान लखैँ विन आतुर आँखिन आवत आधे ।
लोग चवाई सवै निरदै अति वान से वैन अयान सौँ साधे ।
को समझै मन की घनआनँद औरई वेदन वौरई नाधे ।
पीर-भरयौ जिय धीर धरै नहिँ कैसैँ रहै जल जाल के वाँधे ॥१६१॥

१५८—उजागर०—हौ जगत—उजागर । राति–आज (राम) ।
१६१–जाल–लाज (काँक०) ।

लखाई छाना । [१५८] सुजागर = सचेत, सुज्ञान । रसमसे = रस मैँ मगन
घरवसे = उपपति । [१५९] हरई = हलकापन । हित = अपनाव । वोहित =
जहाज । मोहित = मुग्ध । सरितराज = समुद्र । अमैड़ = मर्यादा को न मानने-
वाला । [१६०] पानि० = हाथ मैँ, वश मैँ । कै० = अपने वश मैँ करके या
अपने किए को । ऊखिल = अपरिचित, अजनवी । [१६१] आधे = आधे होकर ।
चवाई = वदनामी करनेवाले । वौरई० = पागलपन ने ठान रखी है (विलपण

कवित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन विधि है।
चलनि चितौनि बंक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू कौं सिधि है।
अंग अंग केलि-कला-संपति-विलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६२॥

अघट घटाई भरयौ निपट निघरघट,
मो घट क्यौं रावरी बड़ाई लौं निबटिहै।
नीके करि देखौ न परेखौ उर आनौ, मानौ,
जान प्यारे पूरी पैज हाहा कैसैं हटिहै।
दानी सनमानी दीन-दारिद-दलन है कै,
अति ही अचंभो जो कचाई-तन डटिहै।
जियैगो पियैगो रस कोऊ दुखी चातिक तौ,
आनँद के घन को कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६३॥

आँखैं जो न देखैं तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखैं लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ तैं,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।

१६३–दीन०–दासन पै आनि दया हियहु लगौ। जियैगो०–जित तित लागी एक तेरी आस (संग्रह)। निबटिहै–निपटिहै (राम)।

वेदना)। [१६२] विधि=ब्रह्मा; रीति। रिधि=ऋद्धि ; ऐश्वर्य। निधि=खजाना। [१६३] अघट० = न घटनेवाली तुच्छता से युक्त। निघरघट = ढीठ। परेखो =

हो जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे,
चातिक बिचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६४॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैं मेरे प्रान संग,
जीवो कछू भ्रम ही सो मानि लीजियत है।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो विचार कीजियत है।
रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लोनी जोति,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारियै जू,
ताहि कहौ कैसें धौं बिसारि दीजियत है ॥१६५॥

सहज-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रीस की।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग-भरे भाल सीस की।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
केलि-समै उपमा लसति बिसे-बीस की।
मानौ घनआनँद सिंगार-रस सौं सँवारी,
चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की ॥१६६॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद घमड़ि आछी बनि है।
मंजन कै अंजन दै भूषन-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंहीं बंक तनि है।

१६६–भाग–सुभ (राम)।

भेद। तन = ओर। [१६४] न चूकनि० = चूक मैं डालकर परीक्षा मत लीजिए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए। [१६५] जीवो० = अपने जीने को भ्रम समझती हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम = शरीर के धर्म। अदेह = देहाध्यास शून्य। [१६६] रीस = बराबरी। चिहुर = चिकुर, केश।

अंग अंग नूतन निकाई-उम्किलनि छाई,
भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है ।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है ॥१६७॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकैं भरयौ उर कै कजरौटी ।
रोमहि रोम सुजान विराजत सोचि तचै मति की मति औटी ।
प्रेम बली न करै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति लौटी ।
मीत मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६८॥

कवित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं ।
दीह दुख-दव हिय जारि उर अंतर,
निरंतर यौं रोम रोम त्रासनि तचायहौं ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चलायहौं ।
ऐसैं घनआनँद गड़ी है टेक मन माहिं,
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ॥१६९॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस ।
नैनउ धारि दियैं बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस ।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैं सदाई अमावस ॥१७०॥

१६७—छाई—झाँई (काँक०) । १६९—दीह०—दुख-दव हिय जारि अंतर उदेग आँच । निरंतर०—रोम रोम त्रासनि निरंतर । सम्हारि—सहारि । गड़ी—गही(कवित्त) । १७०—नैन उघारि हिये (काँक०) ।

[१६७] घमड़ि=विराव,सजाव । मंजन=मार्जन,स्नान । उम्किलनि=वृष्टि । [१६८] कजरौटी=कज्जली रखने का पात्र । [१६९] न सकायहौं =न डरूँगा । [१७०]

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अधबीच ही छाँड़ी ।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंड़ी ।
क्यौं करि थाह लहौं घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी ।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ॥१७१॥

दोहा

जानराय ! जानत सबै, अंतरगत की बात ।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ॥ १७२ ॥

सवैया

आनन की सुघराई कहा कहौं जैसी बिराजति है जिहि औसर ।
चंद तौ मंद मलीन सरोरुह एक हू रंग न दीजियै जो सर ।
नैन अन्यारे तिरीछी चितौनि मैं हेरि गिरै रतिप्रीतम को सर ।
जान हियैं घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली की चौसर ॥१७३॥

घूँघट काढ़ि जो लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि ।
नैननि-बैननि मैं तिहि ऐन सु होत कहाऽब सजे पट-साजनि ।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि ।
देखत देखत दीसि परैं नहिं यौं बरसै घनआनँद लाजनि ॥१७४॥

लाड़-लसी लहकै महकै अँग रूपलता लगि दीठि-झकोरैं ।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन त्यौं चख होत चकोरैं ।

१७१–काज–बात (कॉक०)। है जग०–है जग जाचत (कॉक०)। लहौं–लहै (कवित्त)। १७३–सुघराई–सुधराई (सभा)। की-के (कॉक०, प्रयाग)। १७४–तिहि–अति (कॉक०)।

आवस = ओस, भाप । कलपाय = गरमी से व्याकुल होता है । थ्यावस = स्थिरता, धैर्य । [१७१] कनौंड़ी = दुर्बल, बदनाम । औंड़ी = गहरी । डौंड़ी = डुग्गी । [१७२] अंतरगत = मन । [१७३] सुघराई = बनावट की सफाई । सर = समता । रति = काम का बाण । चौंसर = चार लड़ों की माला । [१७४] सकेलति = समेटती है । ऐन = घर । छाजनि = छाया ;

मौन भली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरैं ।
रीझ बिलोएई डारति है हिय, मोहति टोहति प्यारी अकोरैं ॥१७५॥

कवित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैंठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, गति बोलनि हरैं हरी ।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली है सुरति बेली आँचर टरैं टरी ।
परम सुजान भोरी बातनि छकाए प्रान,
भावति न आन बेई हियरा अरैं अरी ।
फंद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैं,
मुख सुखकंद मंद उघरि परैं परी ॥१७६॥

सवैया

तै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे ।
कैसो सँजोग बियोग धौं आहि ! फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तैं न्यारे ॥१७७॥
खोय दई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है ।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तैं न दाह दग्यौ है ।
जानि परै नहिं जान ! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है ।
सोचनि ही पचियै घनआनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ॥१७८॥

कवित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं ।

१७५—चकोरैं—भकोरै (प्रयाग)। १७६—निरैठी गरैठी (काँक०)। बेली—बौरी (राम)। १७७—औ सोच—असोच (काँक०, प्रयाग)। १७८—मौन—मान (प्रयाग)। चाकि—चौंकि (काँक०, प्रयाग)। तैं न—तन (कवित्त)। दाह—दाग। (काँक०)।

लज्जा। [१७५] लहकै = हिलती है। टोहति = टटोलती है। अकोरैं = आलिंगन (की मुद्रा)। [१७६] निरैठी = मस्त। हरैं = धीरे से। [१७७]

जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी वीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥१७९॥

चारु चामीकर चंद चपला चंपक चोखी,
केसरि-चटक कौन लेखैं लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारी जाहिं जान प्यारी
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-सानी राजति रवाँनी दसा,
तरुनाई - तेज - अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियँ,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१८०॥

सवैया

रूप-खिलार दिवारी कियँ नित जोवन छाकि न सूवे निहारै।
नैननि सैन छलैं चित सो चित-चाव भरयौ निज दाव बिचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सयान बिसारै।
जीव बिचारो परयौ अति सोचनि हारि रह्यौ सु कहा फिरि हारै ॥१८१॥

१७९-उपरानी-उपरानी (कॉक०, प्रयाग)। अधार-अहार (कॉक०, प्रयाग)। १८०-चारु-चमक (भदा०)। जाहिं-नहिं (कवित्त)। १८१-चित-चित (कवित्त)। बिचारै-बिचारै (कॉक०)।

धौं = न जानें। [१७८] आहि० = लगा हुआ है। [१७९] अतन = कामोपचार से। निपेटिनि = पेट्ट। भसमी० = भस्म करनेवाली पीड़ा ; भस्मक रोग, जिसके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय तृप्ति नहीं होती। [१८०] चामीकर = सोना। चटक = रंग। अवरेखियति० = दिखाई जाती है। रवाँनी = (रमानी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८१]

कवित्त

विकच नलिन लखैं सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि बहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं विराग-गुरझनि है।
जहाँ जानप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यों परै विषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सों,
क्यों हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८२॥

तब है सहाय हाय कैसैं धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह-दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं विषम विषाद-बेलि वै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि विजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले ॥१८३॥

रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी! निबरैं न मैन-आरतैं।
ऐसे दिनहीन पैं दया न आई दई तोहि,
विष-भोयो विषम वियोग-सर मारतैं।

१८२–लखैं–देखैं (भदा०)।

चित=कौड़ी का चित पड़ना। चेटक=जादू। हारि०=मुग्ध हो रहा है। [१८२] विकच=खिला हुआ। विराग=उदासी की मुरझाहट। रूप=सौंदर्य; चाँदी। गुन=गुण; बत्ती। गुरझनि=गाँठ। चटपटी=वेग। [१८३] वै=बोकर। गौहन=साथ। हेली=क्रीड़ाशील या हे अली। [१८४] मैन०=

दरस - सुरस - प्यास भाँवरे भरत रहौं,
　　फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं याँऽव द्वार तैं ।
जीवनअधार घनआनँद उदार महा,
　　कैसैं अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥१८४॥

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नीवँहि रोपैं ।
लाज-कढ़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं ।
अंजन-अंजित-श्री घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं ।
तेरी सौं एरी सुजान तो आँखिन देखि ये आँखि न आवति मोपैं ॥१८५॥

कवित्त

कंठ-काँच-घटी तैं वचन चोखो आसव लै,
　　अधर - पियालैं पूरि राखति सहेत है ।
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
　　काननि ह्वै प्राननि पिवाय पोषै चेत है ।
छकेई रहत रैनिद्यौस प्रेम - प्यास - आस,
　　कीनी नेम - धरम - कहानी उपनेत है ।
ऐसे रस-वस क्यौं न मोवै और स्वाद कहौ,
　　रोम रोम जाग्योई करत मीनकेत है ॥१८६॥
चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
　　सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है ।　३२
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
　　ता बिन बिचारनि हौ जोति-जाल तमी है ।

१८४–नौं–नीं (प्रयाग)। गुन–गन (प्रयाग)। पै–कौ (कौक०, प्रयाग)।
१८५–औं–सौं (कौक०, प्रयाग)।

काम-नाना-नार्पे। दिनदीन = दिनदिन दीन। [१८५] पानिप = शोभा। ओपैं = चमकाती हैं। [१८६] आसव = शराब। उपनेत = उत्पन्न। मीनकेत = काम-

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहिं चकोरन की कमी है ॥१८७॥

रिसभरी भोरिवे कौं देखी सुनी प्रीति-नीति,
नायक रसीलो चिनै विनती महा करै।
चोप चाय दायनि सौं अमित उपायनि सौं,
ज्यौं ही बनै त्यौं ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन है अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारैं न टरति नेकौ,
हार्‌यौ सब भाँति जो विचारो सो कहा करै ॥१८८॥

सवैया

३४

जीवन हौ जिय की गति जानत जान! कहा कहि बात जतैयै।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नेसिक ही हँसि दैन मैं पैयै।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तैं क्यौं अरसैयै।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै ॥१८९॥

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत ही,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे को। ३५
कहा कहौं कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुरुर्‌यौ न उरुर्‌यौ बनाव लखि जूरे को।

१८८—टारैं—तऊ (कांक०, प्रयाग)। १८९—गति—सब (कवित्त)। सु—जु (प्रयाग)।

देव। [१८७] अमी = अमृत। तमी=रात्रि। [१८८] दाय = दावँ। लहा = लाभ। [१८९] सौंज = सामग्री। नेसिक = थोड़ा।

जाही जाही अंग परयौ ताही गरि गरि सरयौ,
हरयौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को।
अब चित देखें जान प्यारे यौं आनंदघन,
मेरो मन भँवै भट्ट! पात है बघूरे को ॥१९०॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही! जोहि।
सो ही मोही सौं कठिन, क्यौं करि सोही तोहि ॥१९१॥

सवैया

उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात-बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सौं सु लसै हुलसै रस-रूप-मनी।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥१९२॥

कवित्त

याहि आएँ आवन की आसा उर आय बसै,
चाहै निरचाहै नित हित-कुसरात कौं।
है री वह बैरी घेरी उघर्यौ बिगोवनि पै,
ओछो जरि गयौ गोवै कहा भेद-बात कौं।
मधुर सरूप याहि देखियें अनंदघन,
पोखै जानप्यारे-संग रंग-मनजात कौं।

१९०—भाजनि–भाजनि (कोक०, प्रयाग)। गरि०—रंग संग रस्यौ (प्रयाग); रंग संग रस्यौ (काशि०)। १९२—बनी–मनी (प्रयाग) मधि–मग (कोक०, प्रयाग)। पध०—पग धारनि (काशि०)। १९३—भेद–बेद (कोक०)। संजोग–सजाय (कवित्त)।

[१९०] सुरच्यौ=भली भाँति बस गया। गरि० = गलकर चुक गया या गड़ गड़कर मर मिटा। बघूरे=बवंडर। [१९१] मोही = मोहित किया। जोहि= देखकर। सो ही = वह मेरा प्रेम-प्रदर्शक हृदय। मोही = मुझसे कठोर हो गया। सोही = यह बात तुम्हें कैसे फबती है। [१९२] बनी = दुलहिन। पदारथ = रत्न; पद का अर्थ। बूझनि = बुद्धि, मति। [१९३] कुसरात = कुशल। बैरी = बदनामी करने योग्य। बिगोवनि = नष्ट करने के लिए।

साँझ सही साथिनि सँजोगहि सँजोय देत,
लाग्यो रहै गोहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥१९३॥

बिष लै बिसारयौ तन. कै बिसासी आपचारयौ.
जान्यौ हुतो मन ! तैं सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति,
नीकैं सहि, असह-उदेग-दुख सेल सो ।
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
परयौ आय औचक वियोग बैरी डेल सो ।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं अनंदघन,
होत कहा हेरैं रंक ! मानि लीनौ मेल सो ॥१९४॥

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह-गुरझनि,
मुरझि मुरझि निसिदिन डाँवाँडोल है ।
आह की न थाह दैया कठिन भयौ निबाह,
चाह के प्रवाह घेरयौ दारुन कलोल है ।
वे तो जान प्यारे निधरक हैं अनंदघन.
तिनको धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै ।
आगैं न बिचारयौ अब पाछैं पछताएँ कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है ॥१९५॥

अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है ।

१९४–बिसारयौ–बिसाह्यौ (प्रयाग) । तन–तव (काँक०, प्रयाग)। आपचारयौ–आपचाह्यो (काँक०. प्रयाग) । सहि–आहि (कवित्त) ।

मनजात = काम । सही = सचमुच. ठीक । [१९४] बिसारयौ = भूल गए; विपाक्त बनाया । आपचारयौ = मनमानी । सेल = बरछी । डेल = ढेला । [१९५] आह की = 'आह' करने की ; अपने मान की, हियाव

६६

ज्यौं बुधि सौं सुघराई रचै कोऊ सारदा कौं कविताई सिखावै ।
मूरतिवंत महालछमी-उर पोत-हरा रचि लै पहिरावै ।
रागवधू-चित-चोरन के हित सोधि सुधारि कै तानहिं गावै ।
त्यौं ही सुजान तियै घनआनँद मो जिय बौरई-रीति रिझावै ॥२०३॥

कवित्त

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस है जीव धीर होत लोटपोट है ।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा,
घूमैं मति गति-आसैं, प्यास की न टोट है ।
चलत सजीवन - सुजान - दृग - हाथन तैं,
प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट है ।
जब जब आवै तब तब अति भावै ज्यावै,
अहा कहा बिषम कटाच्छ-सर-चोट है ॥२०४॥

सीस लाय, दृग छ्वाय, हिये पै बसाय राखौं,
इते मान मान आवैं प्रानन मैं लै धरौं ।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परमि कपोलनि सौं मंजन कियो करौं ।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिंधु कौं तरौं ।
यातैं घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं ॥२०५॥

२०३–रचै–रचै (कौकि०, प्रयाग)। कविताई–सुघराई (कौकि०)। भर्दै०–मन भर्दै (कवित्त)।
२०४–मन–हैत (कौकि०)। [illegible] मैं यह [illegible] की पर्ची है। [illegible] = [illegible],
[illegible] = [illegible], [illegible]; [illegible] मैं यह [illegible]। सुघराई = चतुरता। पोत = काँच
[illegible]। [२०३] बुधि = बुद्धि की अधिष्ठात्री। [illegible] = [illegible]। [२०४] गति० = [illegible] पाने की
[illegible]। बौरई० = पागल होने का ढंग। [२०५] [illegible] = [illegible]
[illegible] से। टोट = (त्रुटि) कमी। रुचि = कांति।

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहाँ पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।
जान प्यारे जौऽव कहूँ दीजियै सँदेसो तौऽव,
अवा सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह-भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥२०६॥

सवैया

कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुख-रासि निरंतर।
दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु वियोग के तेह तचे परतंतर।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर।
जानैं वेई दिन-राति, बखानैं तैं जाय परै दिन-राति को अंतर ॥२०७॥

कवित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैवे कौं रसीलो रसधाम है।
जीवन बरसिवे अनंदघन आपुन पै,
चातिक तैं कोटिगुनी जक आठो जाम है।
आरति पराई सोई जानै न बखानैं बनै,
देखैं दसा औरै बिसरत बिसराम है।

२०६—लिखाए—लखाए (काँक०, प्रयाग)। बहकि—चहकि (वही)। काहू—कहूँ (कवित्त)।

श्रद्धा उमड़ती है। के ल० = क्रीड़ा की माधुरी से भरे। [२०६] पाँगुरी = पंगु। राती = अनुरागमयी; लाल। दसा = विरहावस्था; वत्ती। नेह = प्रेम; तेल। बातैं = बातें; बत्तियाँ [२०७] तेह = तीखापन, आँच। परतंतर = अधीन होकर। जाय० = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियों में इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनों विपरीत सी लगने लगती

साधा तन हेरियै निवेरियै सु बाधा वारि,
प्राननि आधार तिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०८॥

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरैं जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै विचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग-रूँधियै मरौं।
हाय कौन वेदनि बिरंचि मेरे बाँट कीनी,
निवटि परौं न क्यौं हूँ, ऐसी विधि हौं गरौं।
आनंद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि, अचंभे सौं जरौं भरौं ॥२०९॥

मुख देखैं गोहन लगे फिरैं चकोर भौंर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति रीझि चायनि सौं पायन-परस कीजै,
रसलोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान-संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसें हू निगोड़े नैन कैसैं चैन पावहीं।
सींचियै अनंदघन जान प्यारे जैसैं जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं ॥२१०॥

अंग-अंग-आभा-संग द्रवित स्रवित ह्वै कै,
रचि मचि लीनी साँझ रंगनि घनेरे की।
हँसनि लसनि आछी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छबि-हेरे की।

२०८–पनारस–गुलाल न (राम)। मैं–में (राम)। २०९–सोंचनि–सोचनि (राम)। २१०–सो०–सोंचि लिये औरै–और (राम)। कांजै–काजै (राम)। है। [२०८] सेंवे=स्मरण करने के लिए। साधा=साध, उत्कंठा। [२०९] निवटि०=मरा नहीं हूँ पर समाप्त नहीं हो जाता। भरौं=दिन काटता हूँ।

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२११॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं विरंचि बनाई।
रूप की लोभिनि रीझि भिजाय कै हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरैं बिन पाँख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई ॥२१२॥

कवित्त

साखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि द्वै पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान आनि कै सलिल बूड़ैं,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सौं,
प्रेम की परख दैया कठिन महा अहै।
पिय-मनसा लौं बारी मिहँदी अनंदघन,
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै ॥२१३॥

सवैया

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गन छावत।
देखैं कहा? सपने हू न देखत नैन यौं रैनदिना झर लावत।

२११–छवित–छवित (काँक०)। मूरति–सूरति (काँक०)। अकि–ऐकि (काँक०)। २१२–आन–औन (काँक०, प्रयाग)। दुखहाई–दुखदाई (काँक०)। २१४–गन–गुन। सपने–सपनो (राम)। लखैं–परै (काँक०)। तन–तव (काँक०, प्रयाग)।

[२१०] गोहन = साथ। गोय० = छिपा लूँ। [२११] सौंज = सामग्री। अनेरे = विलक्षण। [२१२] आन = अन्य, बुरी। [२१३] पखान = पत्थर, पक्ष। [२१४] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध

जीव सोच सूखै गति सुमिरैं अनंदघन,
किंतहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥२१७॥

तपति उसास, आँधि रूँधियै कहाँ लौं देया,
बात बूझैं सैननि ही ऊतर उचारियै।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलेखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै।
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसो वैस,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥२१८॥

कहाँ एतो पानिप विचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चुहल चित्त जगियै रहति है।
तपति - बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥२१९॥

२१७–समाज–समान (काँक०)। एतो–इतौ (प्रयाग।। चोप०–चोप ही हू (काँक०, प्रयाग)। चुहल–चहल (कवित्त)। जगियै–लगियै (राम)।

का उपहार। [२१७] हित = प्रेम के फंदे फेंका करते हैं। दै = देकर (भेजकर)। उघरि = उचटकर, पृथक् होकर। घुरि = घुलकर, भली भाँति मिलकर। [२१८] वैस = (वयस्) उम्र। रावरी० = यदि आप का वश चले, आप कर सकें तो। [२१९] केसू = किंशुक के फूल। चाँचरि = (चर्चरी) वसंत के गाने।

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति, आवत गरो रुक्यौं ।
सेइ मरौं सुधा तो सुभाय के मिठास, ताकी
आसा लै दहनि, मैं चरन-कंज सौं लुक्यौं ।
इते पै जौ रोष कै रसीली हियो पोढ़ौ करौ,
तौ न कहूँ ठौर जीवे हू को भगरो चुक्यौं ।
ऐसैं सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हाहा जात ज्यौं फुक्यौं ॥२२३॥

सुधा तैं स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंदा, भई नई रीति है ।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति विपति पारै, बड़ी विपरीति है ।
महागुन गहै दोषै, औषदि हू रोग पोषै,
ऐसैं जान ! रस माहिं विरस अनीति है ।
दिनन को फेर मोहिं, तुम मन फेरि डारयौ,
एहो घनआनँद ! न जानौं कैसैं बीतिहै ॥२२४॥

२२३–ऐसी–एही (कॉक०, प्रयाग)। सेइ०–साध मारे (कवित्त)। सौं–त्यौं (कॉक०, प्रयाग)। लुक्यौं–दुक्यौ (प्रयाग)। ठौर–गैर (राम)। जीवे०–जी को वे हू (कवित्त)। २२४–माहिं–साधौं (कॉक०)। एहो–अहो। कैसैं–कैसी (राम)। २२५–सोस–सौंस (राम)। विषम–विप-समुद्देग (कवित्त)। चक–चक्र (राम)। पै–क्यौं (कॉक०, प्रयाग)।

न देखना [या 'निहारना' को अकर्मक मानें तो न देखा]। हूँ=हाँ। ढरि०=रात बीत चली। ढरी०=चंद्र मुखवाली होकर भी न ढली (चंद्रमा से ही ढलना सीख लेती)। [२२३] साध०=यदि तेरी स्वाभाविक माधुरी की इच्छा करूँ तो वह सुधा ही मारे डाल रही है। यदि (शीतलता के लिए) चरण-कमलों में छिपना चाहूँ तो उनकी आशा जलाती है। उनके प्राप्त होने की भी संभावना नहीं। रोष=जोश, साहस। [२२४] विरस=नीरसता।

गरल गुमान की गरावनि दसा को पान।
करि करि, द्यौस रैनि प्रान घट घोटिबो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि सीस पावँ राखि,
विषम उदेग-बान-आगँ उर ओटिबो।
जान प्यारे औ न मन आनैं तौ अनंदघन,
भूलि, तू न सुमिरि परेखैं चक चोटिबो।
तिन्हूँ यौं सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो ॥२२५॥

विकल विषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जरयौ करै।
जीवन-अधार-पन पूरित पुकारनि सौं,
आरत पपीहा नित कूकनि करयौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडरयौ सो वन-वीथिनि ररयौ करै।
बूँदैं न परतिं मेरे जान जान प्यारी! तेरे,
विरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै ॥२२६॥

सवैया

पलकौ कलपै कलपौ पलकै सम होत सँजोग बियोग दुहूँ।
बिपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझै कछु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै तौ समै लहियै न सुहूँ।
तिन हेरैं अँधेरैं ई दीसै सबै, बिन सूझ तैं पून्यौ अबूझ कुहूँ ॥२२७॥

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चढ़ावत।

२२६—पुकार०—पुकार सुनि (काँक०, प्रयाग)। २२७—तिन—तित (राम)। २२८—दसान—दसाहि (प्रयाग); दसादि (काँक०)। प्यासे—प्यारे। चढ़ावत—

[२२५] गरावनि=गलानेवाली। पावँ०=डटकर। उर०=छाती पर सहना। परेखैं=कटाक्ष से घायल होने का पछतावा। [२२६] बिडरयौ=नष्ट हुआ सा होकर। [२२७] पलकौ०=संयोग में कल्प भी पल के समान शीघ्र बीतता था। सुहूँ=

यों घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत ।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत ॥२२८॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयो ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघरयो उनयो ।
चित चाह-निबाह की बात रही, हित के नित ही दुख-दाह दयो ।
उर आस बिसासन त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयो ॥२२९॥

कवित्त

मोरचंद्रिका सी सब देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं ।
जाहि सूक तिन हूँ सो देखि भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसैं पहचानहीं ।
जान प्रानप्यारे के बिलोकैं अबिलोकिबे कौं,
हरष - बिषाद - स्वाद - वाद अनुमानहीं ।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनंदघन,
तेई आँखैं साखैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२३०॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छकै ।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन की चायनि लुभाय रहि ना सकै ।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्यौं हो,
कपित करनि केलि-चाव-दावँ ही तकै ।

चढावत (कवित्त) । २३०–रहैं–फिरैं (कौंक०, प्रयाग) । तिन०–तेन हूँ सो देखत भूली की (वही) । अविलोकिबे–अवलोकिबे (कौंक०) ।

(शुद्ध) पूरा, ठीक । कुहूँ = अमावस्या । [२२८] मायल–प्रवृत्त । मेरे० = अर्थात् मेरी कविता का उद्‌गार स्वाभाविक है । [२२९] उनयो = छाना । बिसासन = विश्वासघातों के भय से । [२३०] बिलोकैं० = प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं । साखैं० = वस्तुतः वे ही ठीक आँखें हैं । अन्य

कै छकि छायौ सिँगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी ।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौँ पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥२३८॥

कित जाउँ लै जान-सजीवन! प्रान कौँ आन के लेखे न छाँहौँ धिजौँ ।
इहि साल दहौँ नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लोचन-वारि भिजौँ ।
दुरि आपुन पै हू इकौसैँ मिलौँ घनआनँद यौँ अनखानि छिजौँ ।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौँ सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौँ ॥२३९॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीच तज्यौ तरसै ।
वह रूप छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै ।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।
बिछुरैँ मिलैँ मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौँ परसै ॥२४०॥

कबित्त

तेरे देखिबे कौँ सब ही त्यौँ अनदेखी करी,
तऊ जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे ।
सुनि निरमोही एक तोही सौँ लगाव मोही,
सोही कहि कैसैँ ऐसी निठुराई अति रे ।
बिष सी कथानि मानि सुधा पान करौँ जान!
जीवन-निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे ।

२३९-छाँहौँ-छाँहैं (काँक०)। आपुन०-आप नए हू (कवित्त)। रीझि०-रीझनि (काँक०)। २४०-मीच-मीत (कबित्त)। छटा न-छटानि (काँक०)। दसा-कथा (वही)।

धुएँ मैँ लपटौँ की भाँति। सिँगार=शृंगार (कविपरंपरा मैँ यह श्यामवर्ण माना जाता है)। [२३९] न धिजौँ=नहीँ समझा जाता। दुरि०=फिर भी स्वयम् अपनी ही ओर से छिपकर आपसे अकेले मैँ मिलती हूँ। डर०=दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीँ देख पाती। अपनी इसी विलक्षण रीझ पर रीझकर खीझती रहती हूँ। [२४०] वह=मीन। यह=मेरा मन। न सहारि=सँभाल नहीँ सकता। यह=मेरा मन। तपै=तपता है। आवरी=व्याकुल। थरसै=त्रस्त होती है।

जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हति कै हितूनि, काहू कहूँ पाई पति रे ? ॥२४१॥

लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है विकलताई ठगी सी सदा रहौं।
जियरा उड़्यौ सो डोलै हियरा धक्योई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं।
ऊनो भयौ जीवो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं। ५१
तेरे तौ न लेखो, मोहिं मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहा लहौं ॥२४२॥

कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, उर
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै तन सूकियै।
क्यौं करि बितैयै, कैसैं कहाँ धौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवन तैं चूकियै। ६२
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मरि गई आसरो न जित ढूकियै ॥२४३॥

अधिक बधिक तैं सुजान ! रीति रावरी है,
कपट - चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी। ५३

२४१–तजै–तू हू (राम)। जाहि०–नहि जौन (कॉंक०)। कहूँ–काहू (कवित्त)। २४२–करै–रहै (कॉंक०)। सब–बस (कॉंक०)। पै–यौं (कॉंक०, प्रयाग)। २४३–मति–गति (कॉंक०, प्रयाग)। ढूकियै–ढूकियै (प्रयाग)।

[२४१] पति=प्रतिष्ठा। [२४२] जियरा=जीव, प्राण। हियरा=हृदय, छाती। धक्यौई०=जलता ही रहता है। दौ=दावाग्नि। खोयबो०=खाने का ही लाभ होता है, अपने को खो बैठती हूँ। [२४३] आपु त्यौं०=अपनी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाती। रितैयै०=मन कहाँ हलका करूँ।

गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
　　मरै न जियै, सो महा बिपम दया-छुरी ।
हौं न जानौं. कौन धौं ही या मैं सिद्धि स्वारथ की,
　　लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी ।
कैसैं आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
　　बनक - निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४४॥

बिप को डवा है कै उदेग को अँवा है, कल
　　पलकौ न चाहै अथवा है चक्र बात को ।
बीजुरी को बंधु किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
　　महामोह-अंध दंड अतन-अलात को ।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
　　आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-घात को ।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
　　कैसैं हित सीख्यौ जू तिहारे पच्छपात को ॥२४५॥

मेरो जीव तोहि चाहै, तू न तनकौ उमाहै,
　　मीन-जल-कथा है कि या हू तैं बिसेखियै ।
ता बिन सो मरै, छूटि परै, जड़ कहा ढरै,
　　मरौं हौं, न मरौं जान ! हियैं अवरेखियै ।
पलकौ बिछोह-आगै कलपौ कलप लागै,
　　बिलपौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै ।

२४४–मरै०–मरहि न जियै (राग)। ही०–हो या (प्रयाग)। या–वा (काँक०) बनक–बानक (प्रयाग); बानिक (काँक०)। २४५–डवा–टिवा (कवित्त)। मोह–मोद (काँक०)। तलफनि–तलफति (काँक०)।

जीवन० = मरूँ भी तो उनके बिना कैसे मरूँ। मीचौ = मृत्यु भी। छ्किये= छिप सकूँ। [२४४] चुगौ=चारा। निपाँख=पंख से हीन; पक्ष या सहायक से रहित। ही = थी। बनक = वन की वस्तु, फँसाने का चारा; सजधज। [२४५] डवा = थैला। अँवा = आँवाँ। चक्र बात० = बवंडर। अतन० =

सूनो जग हेरौं रे अमोही ! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखँ लेखियै ॥२४६॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन ही सौं कछु बोलति है ।
ननिहारनि ओर निहारि रही उर-गाँठि-त्यौं अंतर खोलति है ।
रिस-संग महा रसरंग बढ्यौ, जड़ताइयै गोहन डोलति है ।
घनआनँद जान पिया के हियँ कितकौ फिरि बैठि कलोलति है ॥२४७॥

तुम साँची कहौ हित के चित की कित भूल-भरे इत आय परे ।
कि कहूँ पहिली परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे ।
बलि बैठौ सुजान तौ को बरजै धरि पावन पावन नैन करे ।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौं जिहिं रग-तरंग तरे ॥२४८॥

कहियै सु कहा रहियै गहि मौन, अरी सजनी उन जैसी करी ।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनौ दिखाय मिठास-डरी ।
इत काहू सौं मेल रह्यौ न कछू, उत खेल सी है सब बात टरी ।
घनआनँद जान सयान की खानि भुराई हमारेई पैंड़े परी ॥२४९॥

अब यौं उर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँन बोलियै री ।
अरु जौ निलजे है मिलौं तौ मिलौं, मन तें गस-गूज न खोलिय री ।
दृग देखन की कछु सौं हैं नहीं, इन गोहन भूलि न डोलियै री ।
घनआनँद जान महा कपटी चित काहैं परेखनि छोलियै री ॥२५०॥

२४७–ननिहारनि–बनिहारनि (कौंक०) । रिस०–रिस रंग (प्रयाग) । २४८–धरि०–धरिपाइन । २४९–भुराई–बुराई (कौंक०) । २५०–री–जू (प्रयाग) तें–सों (कौंक०) ।

काम के अलातचक्र का दंड है । जंत्र = यंत्र । [२४६] भरौं = दिन काटती हूँ । [२४७] उर० = मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है । गोहन = साथ । फिरि० = रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई । [२४८] चित की = चित की बात । पावन = पैरों को । पावन = पवित्र । [२४९] डरी = डली, टुकड़ा । भुराई० = भोलापन मेरे पीछे पड़ गया है । [२५०] गस = गाँस की लपेट ।

कबित्त

मुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
वैरी सु अनंग पीर पारै जरि गयौ ना ।
इते प बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तैं जु नयौ ना ।
तीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
वेधै मन कौं कपूत पिता-मोह-मयौ ना ।
पवन - गवन - संग प्राननि पठायहौँ तौ,
जान घनआनँद को आवन जौ भयौ ना ॥२५१॥

सवैया

बारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हास-बिकासहि पूजति ।
पाठ कियौ करै आठ हू जाम,सु बोलनि सीखिबे कोकिला कूजति ।
वे घनआनँद रीझि छए तकि तो छबि आन क्यौं आँखिन छूजति ।
एरी बसंत-लजावनि कंत सौं जान ह्वै मानमई कित हूजति ॥२५२॥
अधरासव-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे ।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार खगे सब अंग अनंग-दगे ।
करि खंडन गंडन मंडन दै निरखे तैं अखंडित लोभ लगे ।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५३॥

कबित्त

राधा नवयौवन बिलास को बसंत जहाँ,
अंग अंग रंगनि विकास ही की भीर है ।
प्यारो बनमाली घनआनँद सुजान सेवै,
जाहि देखि काम के हिये मैं नाहिं धीर है ।

२५१—पारै—पावै (काँक०, प्रयाग) । तैं जु—नेकु (वही) । तीखे—जीए (काँक०) । २५२—आन—और (प्रयाग) । २५३—कर—करि (काँक०) ।

[२५१] पिता = अर्थात् मन । [२५२] भजैं = सेवा करते हैं । [२५३] खगे = लगे । गंडन = कपोलपाली । [२५४] साँसन = श्वासों से ।

सुरनि - समाज साजै कोकिला-कुहूक राजै,
सँसन अनेक सुख - सौरभ - समीर है।
स्वेद - मकरंद औ मनोरथ मधुप - पुंज,
मंजु वृंदावन देस जमुना के तीर है ॥२५४॥

सवैया

निसद्यौस खरी उर-माँझ अरी, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यौँ चख ढोर रहे, ढरि गौ हिय ढोरनि वाहनि की।
चट दै कटि पै वटि प्रान गए गति सौँ मति मैँ अवगाहनि की।
घनआनँद जान लखी जब तैँ जक लागियै मोहिँ कराहनि की ॥२५५॥

किहि नेह विरोध बढ्यौ सब सौँ उर आवत कौन के लाज गई।
जिहि के भरि भार पहार दबै, जग-माँझ भई तिन तैँ हरई।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैँ, मन-मानिक ही अनखानि ठई।
घनआनँद जान अजौँ नहिँ जानत, कैसे अनैसे हौ हाय दई ॥२५६॥

इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसैँ उराहनो दीजियै जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हैँ चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥२५७॥

२५४–देखि०–देखैँ कामहू के हिय मैँ न (काँक०, प्रयाग)। सुरनि–सुरत (प्रयाग)। राजै–जानै (राम)। स्वेद-स्वाद। औ–को (राम)। २५५–ढोर–ठौर (प्रयाग) कौर (काँक०)। ढोरनि–एरनि (काँक०)। वटि–वढ़ि (कवित्त)। २५६–किहि–कित (प्रयाग)। नेह–वेह (काँक०)। जिहि–कित (काँक०, प्रयाग)। मानिक०–मानि कहा (काँक०)। ठई–छई (काँक०)। हौ–हैँ (कवित्त)। २५७–हमारियौ–हमारि हू (काँक०)।

[२५५] ढोर० = साथ लगे। वाह = प्रवाह। चट० = कमर को फुरती से घुमाकर। जक = रटन। [२५६] हरई = हल्कापन। अनखानि = रूठना; अन+खानि, खान से अलग। अनैसे=बुरे। [२५७] बाँट=हिस्सा। चाड़=

बधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, हति कै गति रावरी क्यौँ हूँ न बूझि परै ।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ कि न सूझि परै ।
घनआनँद यौँ अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै ।
दिनरैन सुजान-वियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥२५८॥

कबित्त

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, वारी
तो सो और कौन, मन ढरकौँहीँ बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौँ समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै ।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै ।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैँ राखौँ पूरि,
धूरि तिनि पायनि को हाहा ! नेकु आनि दै ॥२५९॥

एक आस एकै बिसवास प्रान गहैँ बास,
और पहचानि इन्हैँ रही काहू सौँ न है ।
चातिक लौँ चाहैं घनआनँद तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै, बिसारि दीनी मौन है ।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया घाय कैसो लौन है ।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसी तुम करौ तौ बिचारन कौँ कौन है ॥२६०॥

२५८–क्यौं०–क्यौँ करि। २५९–एरे–अरे (काँक०, प्रयाग)। वारी–बीरी (कवित्त) ; वारि (संग्रह)। २६०–एक–एकै (संग्रह)। बिचारन–बिचारिन (काँक०, प्रयाग)।

उत्कंठा । [२५८] आवरी=व्याकुल । मूझि०=मुरझा जाता है । न जूझि०=मर नहीँ जाता । [२५९] वारी=निछावर होती हूँ । अंत=अन्यत्र या अंत मेँ । पीठि०=पहचानकर विमुख हो गए या पहचान से विमुख हो गए । [२६०] गहैँ०=ठहरते हैं । कौँ=के लिए ।

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रानप्यारे,
कहाँ तैं दुरयौ सो वैरी आड़े आनि है भयौ ।
जियरा विचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ ।
रावरे हू रंचक विचारि देखौ जानमनि,
कौन के सहाय आय महादुख यौं दयौ ।
मारि टारि दीजै ऐसो नीच बीच भलो नाहिं,
वहै रसभीनो घनआनँद रहै छयौ ॥२६१॥

अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्राननि खरे खगौ ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठो आय,
महा निरमोही मोह सौं मढ़े हियो ठगौ ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई - भरे रोम रोमहि अमी पगौ ।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥२६२॥

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को ।
नैननि वैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को । ७८
राग विराग धमार त्यौं धार सी, लौटि परयौ ढँग यौं सब ही को ।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६३॥

सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई ।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पाएँ भई कछु रीति नई । ७९

२६१–निपट–निपटै (काँक०, प्रयाग) । २६४–लखि–लगि (प्रयाग) ।

[२६१] आड़े=सामने । [२६२] खगौ=धँसते हो । उघरे=पृथक् हो । [२६३] सौंधे=सुगंधित पदार्थ । अबीर=अभ्रक का चूर्ण, बुक्का । ही=हृदय । धमार=होली के गान । धार=तलवार । [२६४] बिस०=विश्वासघातिनी (रात्रि) ।

अभिलाषनि आतुरताई-घटा तब ही घनआनँद आनि छई ।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६४॥

मन जैसैं कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसैं सुजान ही हौ ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥२६५॥

लगियै रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निसद्यौस कटै ।
करि भीर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ हिय तैं न हटै ।
घनआनँद जान-सँजोग-समै, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै ।
सपनो सो टरै फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढ़त घोटि घटै ॥२६६॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥२६७॥

कवित्त

करुवो मधुर लागै वाको बिष अग भएँ,
याहि देखैं रस हू मैं कटुता बसति है ।
वाके एक मुख ही तैं बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्राननि गसति है ।

२६-–लगियै–लगिबै (काँक०) । २६६–घोटि–घोरि (प्रयाग) ।
२६७–इत–यहाँ (कवित्त) । लला–कहौ (वही) ।

[२६५] लौ=लगन । अंतर=मन । गौ=चला गया । उघरौ०=जगत् हट गया । [२६६] बिसमै० = बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में लीन हो जाती है । चेटक = माया । [२६७] बाँक=वक्र । निसाँक = निःशंक । आँक=अंक, चिह्न । मन=हृदय ; ४० सेर । छटाँक=थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग । 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाँछ' होता है अथवा छटा+अंक = शोभा की

सुंदर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासौं कोटिगुनी है लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिं डाहनि डसति है ॥२६८॥

कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौं ही,
चातक! घातक त्यौं ही तू हू कान फोरि लै।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जो लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६९॥

सवैया

बैरी बियोग की ऊकनि जारत, कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौं, कान ह्वै घातक।
सोचनि ही पचियै बचियै कित, डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनँद जाय छए उत, पैंड़े परयौ इत पातकी चातक ॥२७०॥

कवित्त

अंतर मैं बासी पै प्रवासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।

२६८–तासौं–तातैं (काँक,० प्रयाग)। २७०–ऊकनि–हूकनि (कवित्त) ह्वै–हैं (प्रयाग)।

झलक। [२६८] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ। सरबंग = सर्वांग। लहरि = विष का दौरा। डरारी = डरावनी। बिसारी = विषैली। डाहनि= नागिन से होड़ लगाकर। [२६९] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले। पैंड़े० = पीछे पड़े। कलापी = मोर। घेरौ० = घेरनेवाली सेना। बजमारे=वज्र मारनेवाला; वज्र का मारा हुआ, दुष्ट। घोरि०=गरज ले। [२७०] ऊकनि=जलन

लोचननि तारे ह्वै सुझावौ सब सूझै नाहिँ,
बूझी न परति, ऐसेँ सोचनि कहा दहौ।
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न अजान यातेँ,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैयै नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ ॥२७१॥

सवैया

कित को ढरि गौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सोँ आनि निहोरत हे।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौँ सब भाँतिन भोरत हे।
मन माहिँ जौ तोरन ही, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यौँ जोरत हे ॥२७२॥

घनआनँद प्यारे सुजान! सुनौ जिहि भाँतिन हौँ दुख-सूल सहौँ।
नहिँ आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौँ।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौँ।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय! दूरि तेँ पाय गहौँ ॥२७३॥

बिरहा-रबि सोँ घट-व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैँ इकलौ छतियाँ।
हिय-सागर तेँ दृग-मेघ भरे उघरे बरसैँ दिन औ रतियाँ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौँ दई कैसेँ लिखौँ पतियाँ।
नित सावन डीठि सु वैठक मैँ टपकैँ बरुनी तिहि ओलतियाँ ॥२७४॥

२७१—वासी—बास। प्रवासी—प्रवास (प्रयाग)। सूझै—सूझौ (राम)। २७४—इक लौ—इकली (कवित्त)। नित—तित (काँक०) ओलतियाँ—वैलतियाँ (काँक०, प्रयाग)।

से। तन=ओर। तक=टकटकी। पैँड़े०=पीछे पड़ा। [२७१] अंतर=मन। अंतर=पार्थक्य। जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। खोय=जीवन नष्ट करके। लहा=लाभ। [२७२] ढार=ढलन। मो०=मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे। बिसवासी=विश्वासघाती। [२७३] चहौँ=देखती हूँ। [२७४] घट=शरीर। खिवैँ=चमकती हैं। इक लौ=एक ही ढंग से, निरंतर।

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं, उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसिबासर फूलनि, भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकैं।
घनआनँद घूँघट-ओट भए तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी! निज नैन बिसेषि सुजान छकैं ॥२७५॥

कवित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! बिछुरें तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हू मैं मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसैं धरौं धीर बीर! अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की।
देखैं अनदेखैं तहाँ अटक्यौ अनंदघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥२७६॥

सवैया

क्यौं हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंड़े पर्यौ बिरहा बजमारो।
ज्यौं बहरै न कहूँ छिन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो।
ऐसी बढ़ी घनआनँद बेदनि दैया उपाय तें आवै तँवारो।
हा हा भरौं इकली, कहौं कौन सौं, जा बिधि होत है साँझ सवारो ॥२७७॥

कवित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तैं बढ़नि लियैं आई है।

२७५–पियके–पिय तो (वही)। कौतुक–कौतिक (काँक०)। २७६–खरक–बरक (वही)। अनदेखैं–मन देखैं (वही)। २७७–इकली–अकली (कवित्त), अकिली (प्रयाग)।

ओलतियाँ=छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी। [२७५] भायनि=भावों से भरकर। न ब्यौरि०=निर्णय नहीं कर पाते। [२७६] हिलग=चाह। खरक=खटक। टोह=खोज। [२७७] तँवारो=मूर्छा। सवारो=

जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रहौ, मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुख-लता झालरति मुरझाई है।
आली ! घनआनँद सुजान सौं बिछुरि परैं,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥२७८॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहा कहूँ लागनि है।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखैं नख तें सिख लौं बिष-पागनि है ॥२७९॥

कवित्त

घर वन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इते हू पै जान ! भई नई बिरहामई।
विषम उदेग-आगि लपटैं अँतर लागें,
कैसैं कहौं जैसैं कछू तचनि महा तई।
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियो,
वचिबो अचंभो, मीचौ निदर करै गई।
आनँद के घन लखैं अनलखैं दुहूँ ओर,
दईमारी हारी हम आप हौ निरदई ॥२८०॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोषन तैं।
जिय ! ता बिन यौं अब आतुर क्यौं तब तौ तनकौ बिरमायौ न तैं।

२७९–कहा०–कहौ कहा (कवित्त)। २८०–फूटि०–फूटि फटि (संग्रह)।

सवेरा। [२७८] अंतक=यम। झालरति=झलराते ही, लहलहाते ही। आपौ=अपनापन ; आप, जल ('घन' के साहचर्य में)। [२७९] सुखमै=सुखमय। [२८०] अँतर=अंतर, मन। तपनि=ताप। निदर०=निरादर करके मृत्यु भी चली गई। निरदई=निर्दय ; निर+दई, दैव के शासन से परे। [२८१]

घनआनँद जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हतँ ।
अधबीच परयौ दुख-ज्वाल जरै सठ! को सुख कौं हठि द्वार दतैं ॥२८१॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ ।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि विसेख्यौ ।
ऐसो हियो-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ परि बाँचि न देख्यौ ॥२८२॥

जीव की बात जनाइयै क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८३॥

तोहि तौ खेल, पै मो हिय सेल सो, एरे अमोही बिछोह महा दुख ।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो दहैगो, परयौ लहि तू तौ सदा सुख ।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियैं रुख ।
ऐसी सुहाई तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुराइहौ जो मुख ॥२८४॥

छप्पय

महो-दूध सम गनै, हंस-बग भेद न जानैं ।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानै ।
चदन-ढाक समान, राँग-रूपौ सँग तोलैं ।
बिन बिवेक गुन-दोष मूढ़-कवि व्यौरि न बोलैं ।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन ।
सपने हूँ न बिलंबियै, छिन तिन ढिग आनंदघन ॥२८५॥

२८३–जनाइयै–जनावत (काँक०)। २८४–दहैगो–पै क्यौं न (कवित्त)। सुहाई–सुहाय (वही)। २८५–बग–बक (कवित्त)। सँग–सम (वही)।

बिरच्यौ=उदास हो गया। को०=किस सुख के लिए दरवाजे पर चिपके रहैं। [२८२] पन=प्रतिज्ञा। न अवरेख्यौ=नहीं अंकित की। [२८३] आगौ=अग्रगण्य, बढ़कर। पीर०=पीड़ा नहीं समझता। रागौ=गाना। [२८४] सेल=बरछा (कष्टदायक)। [२८५] महो=मट्ठा। ढाक=पलाश। राँग=राँगा।

कहियै काहि जताय हाय जो मो मधि बीतै ।
जरनि बुझौं दुख-जाल धकौं, निसिबासर ही तै ।
दुसह सुजान वियोग वसौं ताही सँजोग नित ।
बहरि परै नहिँ समै गमै जियरा जित को तित ।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन ।
ऐसी बिरचि बिरंचि को कहा सरयौ आनंदघन ॥२८६॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसी चितौनि कहौ कहाँ पाई ।
वंक महाबिष-भोवन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई ।
यौँ घनआनँद चेटक मूरति लै जल अंतर ज्वाल बसाई ।
कैसैँ दुराइहैँ जान अमोही, मिलाप मैँ एतियौ ऊखिलताई ॥२८७॥

कबित्त

मिलत न क्यौं.हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैँ किये बिसाल जे बिछोह-छत हैँ ।
प्रीतम अनेरे मेरे घूमत घनेरे प्रान,
विष - भोए विषम - बिसास - बान - हत हैँ ।
प्यार मैँ पटम पूरो, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जान परी जान ये अमोहिन के मत हैँ ।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लै कहाँ तैँ बीच पारे परवत हैँ ॥२८८॥

२८६–काहि–कहा (काँक०) । जरनि–जरि न (वही) । २८७–जल–जब (राम) । २८८–विसाल–विलास (काँक०) । पटम–परम (कवित्त) ।

रूपौ=चाँदी भी । कवि=पंडित । ब्यौरि=विवेक करके । [२८६] बुझौँ=बुझती हूँ ; शिथिल पड़ती हूँ । धकौँ=तपती हूँ । बहरि०=समय कटता नहीं । गमै=भटकता है । सरयौ=काम निकला । [२८७] विष=विष मिला देनेवाली । सुधाई=अमृत से ही । सुधाई = सीधापन । चेटक = मायाविनी । ऊखिलताई= अजनबीपन ; उष्णता । [२८८] मिलत० = नहीं भरते (घाव) । अमिलताई=

अनाकनी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा-त्यौं न दीठि डोलिहै ।
मौन हू सौं देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै ।
जान घनआनँद ! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगी टेक टरैं कौन धौं मलोलिहै ।
रुई दियें रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥२८९॥

सवैया

घनआनँद जान ! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै ।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आए समाजन कौं सजि कै ।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै कित या विधि सौं भजि कै ।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अति हीन हूँ दीन गए लजि कै ॥२९०॥

कवित्त

रूप-उजियारे जान ! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं ।
सुखद सुधा त हँसि हेरनि पिवाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से जमैं ।
सुंदर सुदेस आँखैं बहुरयौ बसाय, आय,
बसिहौ छबीले जैसैं हुलसि हियैं रमैं ।

२८९—जानियैगी—देखियैगी (काँक०, प्रयाग) । मेरियै—मेरियौ (प्रयाग) ।
२९०—घन संकट—घन संकट (वही) । पूरन—पूरि न (वही) ।

फटे रहने की बान ; खटाई (अम्ल) अर्थात् कपट । छत=घाव । अनेरे=दूर ; विलक्षण । बिसास=विश्वासघात । पारे=डाले । [२८९] आरसी=(आदर्श) दर्पण । त्यौं = ओर । बुलाय०=आप को बुलाकर तब मेरी मूकता (मौन) बोलेगी । पैज = प्रतिज्ञा । मलोलिहै=पछताएगा । बहरायबे की=बहलाने की; बधिर बने रहने की । [२९०] भजै०=कहाँ भागे । भजि कै=अर्थात् प्रेम करके ।

ह्वैहै सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
रसहि बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं ॥२६१॥

सवैया

किंसुक-पुंज से फूलि रहे सु लगी उर दौ जु बियोग तिहारैं ।
मातो फिरै, न घिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारैं ।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल उसासनि-डारैं ।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारैं ॥२६२॥

जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ ।
संगम-रंग अनंग उमंगनि झूमि न आनँद-अंबुद छावतौ ॥
लाड़िलो जोबन त्यौं अधरासव चोपनि लोभी मनैं नहिं प्यावतौ ।
तौ उर-दाहक प्राननि गाहक रूखे भए को परेखो न आवतौ ॥२६३॥

कवित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये विकल नैना ताहि नपि नपि रे ।
हिये मैं उदेग आगि लागि रही रातद्यौस,
तोहि कौं अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे ।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे ।
जीवे तैं भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२६४॥

२६१-हियें-हियो (काँक०, प्रयाग)। रसहि-सुरस (कवित्त)। २६२-तिहारैं-निहारैं (प्रयाग)। कढ़े-कटे (काँक०, । २६३-प्यार-पार (काँक०)। प्यावतौ-भावतौ (कवित्त)।

[२६१] तमैं=अंधकार को। जमैं = यम को। सुदेस=अच्छी बस्ती। भाग०=भाग्य से उद्घाटित, भाग्य से भरी। रस=जल, आनंद। [२६२] मनोज=कामदेवरूपी हाथी। पात०=पत्तों का गिरना। डारें=उच्छ्वासरूपी डाल में। [२६३] आनँद=आनंद का बादल ; घनानंद। अधरासव=होंठ का आसव (शराब)। परेखो=पछतावा। [२६४] देख=देखते हुए। हिराने=खो गए।

तोहि सब गावैं एक तोही कौं बतावैं वेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे ॥२९५॥

चंदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै, एक देखिबे कौं रहै द्वै।
ज्ञान हू तैं आगैं जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना कैं छाले परैं प्यारे नेह-नावँ छ्वै ॥२९६॥

२९५–ध्यावैं–धावैं (प्रयाग)। कैधौं–क्यौं धौं (वही)। २९६–द्वै–द्वै (संग्रह)। भोग०–भोगलात।

पिराने=दुखने लगे। पल=पलकें। थाके=थक गए, रुक गए। दुहेली=दुःख की। [२९५] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निरगुन=निर्गुण (ब्रह्म); गुणहीन; आकाश। दई=दैव के शासन को न माननेवाला। [२९६] सोऊ=चकोर भी। एक०=वे एक ही हैं केवल देखने में दो हैं, प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी में अभेद हो जाता है। भोगी०=विषयी भी जिसमें डूबकर वशीभूत हो जाते हैं। विषयानंद को भूलकर प्रेमानंद में मग्न हो जाते हैं। भूले=बेहोश, प्रेममग्न। सुधि के०=सतर्क होकर चलनेवाले नहीं चल सकते। कैं=के ऊपर। [२९७] प्यास पाना=प्यास को समझना ('पीर पाना' की भाँति)।

सवैया

घनआनँद जीवन-रूप सुजान ह्वै पावत क्यौं दृगप्यास नहीं ।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से सु कहूँ पहचान की बास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं ॥२९७॥

सूने परे दृग-भौन सुजान जे ते बहुरयौ कब आय बसायहौ ।
साचनि ही सुरभ्यौ पिय जो हिय सो सुख सींचि उदेग नसायहौ ।
हाय दई घनआनँद ह्वै करि कौं लौं बियोग के ताप तसायहौ ।
एहो हँसी जिन जानौ हहा, हमैं खाय कहौ अब काहि हँसायहौ ॥२९८॥

कबित्त

जहाँ तें पधारे मेरे ननिनि ही पाँव धारे,
बारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौ ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फेँट छोरि बैठौ,
मोहिं वा बिसासी को हो ब्यौरो बूझिबे घनौ ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसें आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ ॥२९९॥

नित ही अपूरब सुधाधर-बदन आछो,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है ।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस - तम - संग रंग - राँचनि पगत है ।

२९८-साँचि-साँचि (वही) । तसायहौ-तपायहौ (कवित्त) । काहि-सौतैं (काँक०, प्रयाग) । २९९-हो-है (कवित्त) ।

कुसुमाकर=फुलवाड़ी । बास = गंध, पता । [२९८] साँचि=कर । [२९९] पैंड़=डग । झूठ०=झूठ की सत्यता से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा । हित०=

सुनि जान प्यारी ! घनआनँद तैँ दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौँ चोपनि खगत है ।
नीठि दीठि परैँ खरकत सो किरकिरी लौँ,
तेरे आगैँ चंद्रमा कलंक सो लगत है ॥३००॥

उघरि नचे हैँ, लोक-लाज तैँ बचे हैँ, पूरी
चोपनि रचे हैँ, सुदरस-लोभी रावरे ।
जके हैँ थके हैँ मोह-मादिक छके हैँ अन-
बोले पै बके हैँ दसा. चीतैँ चित चाव रे ।
औसर न सोचैँ घनआनँद बिमोचैँ जल,
लोचैँ वही मूरति अरबरानि आवरे ।
देखि देखि फूलैँ ओट भएँ भ्रम भूलैँ, देखौ
बिन देखैँ भए ये बियोगी दृग बावरे ॥३०१॥

सवैया

कित जोग-कथा सु बृथा ही बकौ, यह तौ तब ही अनुमानि लई ।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दै प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई ।
घनआनँद वे हू सुजान हुते, किहि गौँ हठ कै सठ-हानि लई ।
ब्रज खेत हो हेत सुमारनि को तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥३०२॥
चूर भयौ चित पूरि परेखनि एहो कठोर ! अजौँ दुख पीसत ।
साँस हियैँ न समाय सकोचनि हाय इते पर बान कसीसत ।

३००–कलंक–कलंकी (कवित्त) । ३०१–भएँ०–भ्रमन ही (कवित्त) । ३०२–जोग–लोग । बकौ–करौ (कवित्त) । खेत०–देखत होत (वही) ।

प्रेम के कच्चेपन से पुष्ट । [३००] अपूरब=अद्वितीय, पूर्वेतर दिशा । सुधाधर=चंद्रमा, सुधा+अधर, अमृतपूर्ण होंठ । मित्र=सूर्य ; सखा, प्रेमी । कला=चंद्रमा की १६ कलाएँ ; विद्या । नीठि=कठिनाई से । [३०१] मादक=शराब । चीतैँ=सोचते हैं, ध्यान मेँ लाते हैं । लोचैँ=कामना करते हैं । अरबरानि=हड़बड़ी, घबराहट । आवरे=शिथिल, दीन । [३०२] गौँ=घात । सठ०=पूँजी

ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असीसत ।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०३॥

ज्यौ बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सो आहि बिदेह को लेखौ ।
देखति जो अखियाँ दुखिया नित बैरियौ की सुपने सु न देखौ ।
हौ तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि की राखौ न रेखौ ।
हथि दई यह कौन भई गति प्रीति मिटे हूँ मिटै न परेखौ ॥३०४॥

कवित्त

दूध - धाराधर झूमि झर लायौ ब्रज पर,
पूत भयौ नंद कैं सभागो परिवार को ।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ़्यौ निधि मंगल अपार को ।
नीरस परयौ हो सबै जगत रसीले बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार को ।
जिये औ जियैंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति-मंडन उदार को ॥३०५॥

कुल-उजियारी सु दुलारी लली कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है ।
राधा नाम नीको घनआनँद अमी को सोत,
रंचक उचारैं रसरानी होति बानी है ।
सबै जग मंगल-निकेत भयौ याहि आएँ,
महा - प्रेम - संपति - बिलास - ठकुरानी है ।
गोकुल प्रकास्यो ब्रजचंद के उदोत आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावल रवानी है ॥३०६॥

३०४–हौं–हे (प्रयाग) ।

की हानि । [३०३] कसीसत=खींचते हो । [३०४] ज्यौ०=जी बहलता नहीं । [३०५] धाराधर=बादल । सभागो = भाग्यशाली । निधि=समुद्र । [३०६] लली०=माता कीर्ति की पुत्री । सिहानी=मुग्ध हो गई । रावल=राधा का

हैहै कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन को पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करिकै, वियोग-ताप मेटिहौं।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा गो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय तास मद फेटिहौं ॥३०७॥

सोए बहुतेरो, मेरो सोच हू निवेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग! जगौगे।
पीर-भरे लोचन! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगौगे?।
अंग अंग! कौ लौं तुम्हैं दहैगो अनंग कहूँ,
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौगे ॥३०८॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥३०९॥

३०७—तास—ताप (कवित्त)।

ममान। रवानी=आनंद के प्रवाह में मग्न। [३०७] खरी=उत्कट। अमी०=अमृत का भांडार। उरमंडन=हृदय के भूषण, प्रिय। [३०८] रसोत=दारुहल्दी से बनी एक औषध जो आँख के घाव में लगाई जाती है; रसवत्, रसमयता। [३०९]

कवित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह भूलि हू न हातो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याकैं महा मोह मो बिना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥३१०॥

बिरह तपत आछे आँसुन सौं चायनि च्वै,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्रानिनि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियैं मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि वारी,
हाहा इन नैननि अतीत किन हूजियै ॥३११॥

चोरयौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तैं सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदै महा हियौ।

३१०–भूलि–नेक (कवित्त)। याकैं–याको (वही)। ३११–चायनि०–च्वाय चोवा (कवित्त)। वारी–धारि (संग्रह)। इन–नेकु (कवित्त)।

गर्सौं = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ [३१०] पैंड़े=पीछे पड़े। न हातो०= दूर नहीं होता। [३११] मंजन=माँजना, रगड़ना। अतीत=अतिथि।

वारी मति, हारी गति कहाँ जाहिं नाहिं ठौर,
मारत परेखो देखो हितू ह्वै कहा कियौ ॥३१२॥

सवैया

अँसुवानि तिहारे वियोग हरी वरषा-रितु वेलि सी वाल भई ।
हिय-खोपनि चोपनि-कोंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय गई ।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित्त नई ।
वलि नेकु मया करि हेरौ हहा अवला किधौं फूलि रही तुरई ॥३१३॥

कवित्त

आरसी उसास ज्यौं तुपार तामरस त्यौं ही,
आतप के ताप रंग-ढंग नवनीत को ।
पावक तैं पारो काँजी छिये हूँ विचारो छीर,
वारुनी सौं सुचि जैसैं लेखौ कफ गीत को ।
ऐसैं घनआनँद विचार - वारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत को ।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिवो लहा है यौं दुहेलो मन मीत को ॥३१४॥

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी वियोगहि सौंपनि ।
जाय लुभाय रहे तित ही जित चाड़ भई है नई चित-चौंपनि ।
नाहर आय वसंत भयौ नख-केसू रतौंहैं किये हिये-खौंपनि ।
क्यौं घनआनँद यौं वचियै जिय जात विध्यो अनियारियै कौंपनि ॥३१५॥

३१२–मारत–मानतु (संग्रह)। ३१३–हरी–ही सौं (कवित्त); भरी (काँक०)। खोपनि–पोपनि (संग्रह)। घूमनि–धूमनि (प्रयाग)। ३१५–लुभाय–भुलाय (कवित्त)।

[३१२] छंद = छल। अंत = निदान, अंत में। [३१३] खोपनि = फटन। कौंप=कोंपल। [३१४] तुपार=पाला। तामरस = कमल। वारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। दुहेलो=कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश में आने-वाला। [३१५] नाहर = सिंह। केसू = किंशुक, पलाश। रतौंहैं = रागमय;

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम छैल ! अनेकन सौं सरसौ ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौ तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ ।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-ढिग ह्वै सु कहूँ किन दूर हू तैं दरसौ ॥३१६॥

लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सौं पागि जगाए ।
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए ।
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान धरौ डग ढीलियै लागौ सुहाए ।
भोर हूँ ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छल छूटन पाए ॥३१७॥

कवित्त

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
वाहि ढूँढ़त हो मेरी मति गति गई खोय है ।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि सो बसत बन गोय है ।
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन जागैं गयौ सोय है ।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातैं नैन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१८॥

सवैया

घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै बिनती कर जोरि करौं ।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अजू धरि ध्यानहिं दूरि तैं पाय परौं ।
मन भायो वियोग मैं जारिबो जो तौ तिहारी सौं नीकैं जरौंऽरु भरौं ।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहो हित-हीन, सु या दुख-बीच असीच मरौं ॥३१९॥

चाइ—चाह (वही) । ३१८—सो—कै । गोय—जोय (वही) । ३१९—अजू—अहो (कवित्त) ।

रक्त से भरा । चोंप = चिराव, वेध । कौंपनि=कौंपलों से ; नोकों से । [३१६] त्यौं=ओर । दया० = दया करके । [३१७] चौचँद=क्रीड़ा, कौतुक । का०= किस छल से छूटकर यहाँ तक आए । [३१८] जोय=देखकर । [३१९]

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैई पढ़े ।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, कहियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े ।
न कहूँ दरसौ, बरसौ विष वारि सु ये अपराध गढ़े न कढ़े ।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप-चढ़े ॥३२०॥

जिनकौं नित नीकें निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं ।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान की धारनि धोवति हैं ।
घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं ।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥३२१॥

पहिलैं पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा ।
इत के हित बैर लियौ उत है, बित ज्यौहरि-ब्यौहरि लोभ लहा ।
घनआनँद मीत सुनौ अरु ऊतर दूर तें देहु न देहु हहा ।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥३२२॥

सुधि होती सुजान! सनेह की जो तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू ।
छिन जाते न बाहिर, जौं छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू ।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू ।
कहियै सु कहा अब मौन भली नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३२३॥

कवित्त

छाया छियैं लागति सु जागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाँहौं न दिखाति है ।
रोम रोम रही भोय रोय परौं भरौं साँस,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है ।

३२०–कहियै–करियै (वही) । ३२२–इत–इन (काँक०) । बित–करि (कवित्त) । न देहु–सुजान (काँक०) ।

अमीचं=बिना मृत्यु के ही । [३२०] पपीहा०=चातकपन ही । [३२१] दुखहाई=दुख की मारी । जगे०=खुली हैं, पर कुछ देखती नहीं । [३२२] ज्यौहरि०=जी हरने के व्यापार में लाभ के लोभ से । [३२३] दोष०=दोष गुण से

जान प्यारी दूरि ही तैं चेटक चरित कोटि,
मति उपचारिन की हेरत हिराति है।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हू सौं,
लगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है ॥३२४॥

सवैया

किहि बान ठनी, हौ सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान करयौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भरयौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच ररयौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम परयौ ॥३२५॥

कवित्त

गतिनि तिहारी देखि थकनि मैं चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चितारि दोऊ हैं न हो हमारैं तातैं,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥३२६॥

सवैया

सो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन, यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन हूँ दूनो बिदेह तैं दाहक।

३२४–उपचारिन–उपचारनि (संग्रह)। गति–चाह (वही)। ३२५–बान–ठान (कवित्त)। ३२६–कहूँ–कहुँ (कौक०, प्रयाग)। चितारि–चिन्हारि (कवित्त)। गतिनि–गति सुनि हारी (संग्रह)।

लगते। हमैं०=मेरा हृदय पहचान पाते। [३२४] छियैं=छूने से। चेटक=माया। उपचारी=औषध का यत्न करनेवाला। [३२५] निहकाम=कामना-हीन। [३२६] गति=दशा; चाल। परनि=पतन, स्थिति। अरति०=

चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अनाहक ।
प्रान धरोहर है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिगे गाहक ॥३२७॥

कवित्त

मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं ।
रति - रसना - सवाद - पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सौं माँजिहौं ।
जान प्रानप्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौं ।
कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखैं सुख
सुधा - हेत मन - घट - दरकनि राँजिहौं ॥३२८॥

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैं और रुची तौ रुचै न तुम्हैं बिन मोहिं जियौ जू ।
आँखिन मैं ढरि आय रहे सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू ।
सूल भयौ गुन जो जिहि अंग कौ दीप सो बारि वियोग दियौ जू ।
हाय सुजान ! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू ॥३२९॥
सखि सूधे सुभाय लख्यौ मग जात सो टेढ़ो ह्वै प्राननि बीच खग्यौ ।
मुसक्यानि गई मुसक्यानिहि मैं मन सो धन नेकु निहारि ठग्यौ ।
घनआनँद भीजे कटाछन सौं रस पागि लई तन स्वेद जग्यौ ।
जसुदाकृत पुन्य के पुंजनि को फल पापनि मो अँखियानि लग्यौ ॥३३०॥

३२७–धरोहर–हरोहर (कवित्त)। ३२८–पाय०–पिय चूमे (काँक०)। देखैं सुख–देखैं (कवित्त)। राँजिहौं–सुठि राँजिहौं (वही)। ३२९–ढरि०–ढरिआई (कवित्त) जिहि–तिहि। ३३०–प्रानन–सारग। (कवित्त)। कटाछन–कछ्रा छिन (काँक०)। पापनि–पापिनि (राम)।

अड़ती है। [३२७] बलकै = बकता है। बलाहक = मेघ। बिदेह = कामदेव। अनाहक = व्यर्थ। [३२८] राँजिहौं = टाँका लगाऊँगी। [३२९] खग्यौ = धँस गया। [३३०] रूखे = उदासीन; चिकनाहट से रहित। चिकने = भिनकर; चिकना-

हाय बिसासी सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकने अति, सोहौ ।
आपुनपौ अरु आप हु तैं करि हाते हतौ घनआनँद को हौ ।
कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तैं न बिछोहौ ।
मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥३३१॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद कला-कुल-धारी ।
सोभा - समूह भई घनआनँद मूरति अंग अनंग - जिवारी ।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार विलास मैं रासबिहारी ।
मेरो मनोरथ हू वहियै, अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥३३२॥

अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ ।
देखि रहौं, अनदेखैं दहौं सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ ।
जान ! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरु काहि सुनाऊँ ।
यौं घनआनँद रैनदिना नहिं बीतत, जानियै कैसैं बिताऊँ ॥३३३॥

गई सुधि-अंग, भई मति पंग, नई कछु बात जनावति हौ न ।
दुराव कियैं कहा होत सखी ! रँग और भयौ ढँग ऊतर कौ न ।
हिय धरको, तन स्वेद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानिहु तौ न ।
बढ़ायहौ बेदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥३३४॥

कवित्त

कहौं जो सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानें मन बारे की कहैऽब को सुनै सु कौन ।
निधरक जान अलबेले निखरक - ओर,
दुखिया कहैं या कहा तहाँ की उचित हौ न ।

३३१-बिसासी-सनेही (कवित्त)। ३३२-अंग-रंग (वही)। ३३३-नहिं०-न बितीतत। ३३४-जनावति-जतावति (कवित्त)।

हट से युक्त होकर। करि० = दूर करके। [३३१] जा० = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जिवारी=जिलानेवाली। मनोरथ हू० = मेरे मनोरथ (मन के रथ) को भी चलाइए जैसे अर्जुन का रथ चलाया था। [३३२] अंक = गोद। [३३३] धरको = धड़कन। तौ० = तो नहीं थी। [३३४]

पर - दुख - दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
दरकौंहूँ देखि कै बिवस बकि परी मौन ।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास सौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३५॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखास मरौं, इत की तौ चितार रही न उनै ।
रचि कौन से घात लियौ है हियो, त्रिन हेरैं न जीव बिचारि गुनै ।
घनआनँद ऐसी दसानि घिरैं दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै ।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३६॥

कवित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे ।
गुपत लपट जाकी तम ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अर कै रहे ।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे ।
बारिद सहाय सौं दवागिनि दवति देखौ,
बिरह-नवागिनि तैं नैना झर कै रहे ॥३३७॥

सवैया

सावन-आवन हेरि सखी ! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी ।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी ।

३३५–कहैऽब०–कहौऽब को सुनौ (कांक०) । कहा०–कहैऽब । कौ–को (कवित्त) ३३६–दिखास-दिखाई । चितार–चिन्हारि । घिरैं–घिरयौ (कविश) । ३३७–तम–तन (राम); तुम (काँक०) । नवागिनि–दवागिनि (राम) ।

न्हाने = छुटपन मैं । निखरक = खटक से रहित । [३३५] दरकौंहूँ = दलने-वाले । भसम = भस्म करनेवाली । [३३६] मुख = मौखिक प्रेम या मुँहदेखा स्नेह [३३७] गुरु = बड़े । अर = अड़ करके । [३३८] सम्हारि = जब सँभाल

बूँदैं लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी ।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी सौं लागति आँखिन देखी ॥३३८॥

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियैं परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ॥३३९॥

जान छबीले कहौ तुम ही जौ न दीसौ तौ आँखिन काहि दिखाऊँ ।
स्रौन-सुधाई सनी बतियानि बिना इन कानलि लै कहाँ प्याऊँ ।
हाय मरयौ मन पीर तैं प्रीतम ! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ ।
चाहत जीव धरयौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३४०॥

निसद्यौस उदास उसास थकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी ।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी ।
इत की गति कौन कहै को सुनै मन हा मन मैं यह पीर पकी ।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गैल सँदेसन हूँ की थकी ॥३४१॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन खंडन खेद अखंड-कला को ।
ज्यौं सरस्यौ जब ही दरस्यौ बरस्यौ घनआनँद हेत-झला को ।
सूछम मो. पै भरयौ अतुलै सुख रंक बिभौ जुग नैन-पला को ।
प्रीतम लौं हिय राखत हाथ, बिछोह मैं ज्यावत मोह छला को ॥३४२॥

घूमन सोन्न लगे कच पायनि चायनि चित्त मैं चाह घनेरी ।
आँखिन प्रान रहे करि थान, सुजान ! सुमूरति माँगत नेरी ।

३३९—के—की (काँक०, प्रयाग) । अँसुवानि०—अँसुवानहिँ (कवित) ; …कौं (काँक०) । ३४०—स्रौन—कान (कांक०, प्रयाग) । मरयौ—मनौ (प्रयाग) ३४२—खेद—बेद (कवित) ।

करनी चाहिए, तभी भूल बैठे । [३३९] परजन्य = पर्जन्य, बादल , पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए हो । जीवन = जल; प्राण । [३४०] स्रौन = श्रवण, कान । सौं = शपथ । [३४१] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध । टकी = टकटकी । [३४२] मंडन = गहना । हेत० = प्रेमरस की वृष्टि । पला =

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निवेरी ।
भूलनि जीतति आपुनपौ वलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सवेरी ॥३४३॥
लजचौंहीं लगौंहीं, भईं तुम सौंहीं इतै अँखियाँ सुख-साध-भरीं ।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अरराय परीं ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जरीं ।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं ॥३४४॥

कवित्त

सुरति करौं तौ विसरे जौ होहिं जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग- मूरति महा रहैं ।
सुधि करैं वेई सुधि हू की ऐसी भूलि जाय,
वेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं ।
गूढ़ि गति ब्यौरिबे की भूलियौ सुरति मोहिं,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैं ।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिन ही मैं तेई सुधि मैं सदा रहैं ॥३४५॥

सवैया

जब तैं तुम आवन-आस दई तब तैं तरफौं कब आयहौ जू ।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन ! जान सुभाय हौ जू ।
विधि के दिन लौं छिन वाढ़ि परे यह जानि वियोग वितायहौ जू ।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥३४६॥
अंगनि पानिप-ओप खरो, निखरी नवजोबन की सुथराई ।
नैननि चोरति रूप के भौंर अचंभे-भरी छतिया-उथराई ।

सरस्यौ–तरस्यौ (संग्रह) । रंक–रंग (राम) । ३४५–महा–कहा (काँक०) ।
ब्यौरिबे–धारिबे (संग्रह) ।

पलड़ा । [३४३] घूमत=चक्कर खाता हुआ । थान=स्थान, डेरा । नेरी=निकट ।
रोर=शोर । सवेरी=शीघ्र । [३४४] अरराय०=टूट पड़ीं । [३४६] जान=
ज्ञानी । वियोग०=वियोगदूर करेंगे । रसा=पृथ्वी । [३४७] सुथराई=सफाई ।

जान - महा - गरुवें - गुन मैं घनआनँद हेरि रत्यौ थुथराई ।
पैने कटाछनि ओज मनोज के वानन वीच विंधी मुथराई ॥३४७॥

अभिलापनि लाखनि भाँति भरीं वरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं ।
घनआनँद जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं ।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं ।
जब तैं तुम आवनि-औधि वदी तब तैं अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४८॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तैं तुम आवनि-औधि वदी ।
वरसौ कित हूँ घनआनँद प्यारे पै वाढ़ति है इत सोच-नदी ।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी ।
कब आयहौ औसर जानि सुजान वहीर लौं वैस तौ जाति लदी ॥३४९॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की ।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रवीनन की ।
वरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की ।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के, रुचि मीनन की ॥३५०॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिलीनन की रति के मन हौ ।
सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जिवावत प्रान कृपा-तन हौ ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोपन, तोपन रंक महा धन हौ ।
जन-सोच-विमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३५१॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
असमान दान-मान हौ, समान काहि दीजियै ।

३४७–हेरि०–घेरि रह्यो (वही) । ३४८–रुमांच–रोमांच (प्रयाग) । चाहनि–वाहनि–(काक०) । टग–टक (प्रयाग पल–पग (काँक०) । माँपति–नाँपति (प्रयाग) ।

उथराई=किंचित् उठान । रत्यौ०=रति भी थोड़ी पड़ गई । मुथराई=कुंदपना [३४८] टग=टकटकी । [३४९] मैन=मदन, काम । मदी=मद, शराव । वहीर=सेना का सामान । जाति०=समाप्त होने पर आ रही है । [३५०] निधि=समुद्र । [३५१] पतिलीन=प्रतिष्ठाहीन ।

रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै ।
टगी लगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै विहारियै उमंग-रंग भीजियै ।
पयोद - मोद छाइयै, विनोद कौं बढ़ाइयै,
विलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५२॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई बहुते दिन नेकु दिखाई ।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय ! कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई ।
बातैं बिलाय गई रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई ।
साँच कि संभ्रम हो घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५३॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तैं महासुख पायौ ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रसमै घनआनँद छायौ ।
ये गुन क्यौं न रचै सजनी ! उन रंग-रचे अधरानि रचायो ॥३५४॥

कवित्त

जीवहि जिवाय नीकैं जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिं जथारथ करत हौ ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन की निधि कौं धरत हौ ।
चाह - बेली - सफल - करन घनआनँद यौं,
रस दै दै उर - आलवालहि भरत हौ ।

३५३–उमग्यौ–उमइयौ (कॉक०, प्रयाग) । गुन–गुनि (संग्रह) रचै–सचै (प्रयाग), सजीवन सौं (कॉक०) । उन०–उन रूप रचे (प्रयाग), उनसौं परचे (कॉक०) । ३५४–सुजान–जू जान (कॉक०, प्रयाग) ।

[३५२] अमान = प्रमाण से परे या निरभिमान । पयोद० = घनआनँद ; आनँद के घन । [३५३] संभ्रम=भ्रांति मात्र । [३५४] सिरावन=ठंढा करनेवाले ; दूर

प्यार सौं छकौंहीं ढरकौंहीं मृदु बानि-बस,
विवस है आप ही तैं मो पर ढरत हौ ॥३५५॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुंदर स्याम ।
चलौ चलियै मिलि दैन बधाई भई अब ही सब पूरनकाम ।
जसोमति सौं झगरा अगरो करि लेहु रुचै जिहि जो अभिराम ।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५६॥

मुख-चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावति ना ।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-मधि, साँस सुहावति ना ।
घनआनँद जान तुम्हैं विन यौं गति पंगु भई मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ विना सुधि आवति ना ॥३५७॥

कवित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद-मोह तैं ।
जीवन-बरस घनआनँद दरस आछो,
सरस परस सुख सींच्यौ हँसि जोहतैं ।
अचिरजनिधि है तिहारी सब बिधि, प्यारे !
कृपा होति फलित ललित लता छाँह तैं ।
मिलन तैं ज्यौं ही विछुरन करि डारयौ, बारी
त्यौं ही किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तैं ॥३५८॥

सवैया

रस-रैंनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सौं अंगनि मोरति है ।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कौरिक वारने, को रति है ।

३५८–है–हौं (कवित्त) । ३५९–हियौ–हियैं (-राग) ।

छकौंहीं = छका देनेवाली, संतुष्ट करने
करनेवाले । [३५५] निधि = भंडार । चाहनि = देखना । सुधि-
वाली । [३५६] अगरो = बड़ा, भारी । [३५७] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण । [३५९]
आवति ना = होश नहीं आता । [३५८]

अँखियानि मैँ छाकनि की अरुनाई, हियो अनुराग लै बोरति है ।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैँ डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३५९॥

मुख-स्वेद-कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली ।
मद-जोवन, रूप-छकीँ अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली ।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-बेलि फली ॥३६०॥

कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कढ़ै कि जियैँ गहि काढ़ै ।
अमीनिधि पै बिप-सार स्रवै, हिम-जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै ।
सु या पति-संग न जानति, है घनआनँद जान-बिछोह की गाढ़ै ।
बियोग मैँ बैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जु सँजोग हू बाढ़ै ॥३६१॥

हुलास-भरी मुसकानि लसैं, अधरानि तैं आनि कपोलनि जागै ।
छुटीँ अलकैं मृदु मंजु मिहीँ स्रुतिमूल छलानि अनी मुरि लागै ।
बड़ी अँखियानि मैँ अंजन-रेख लजीली चितौनि हियो रस पागै ।
सुहाग सोँ ओपित भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ॥३६२॥

कवित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय थाँवरो ।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि उर 'गोरी गोरी' जपै नित साँवरो ।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनैँ सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास ब्रज-भाँवरो ।
कलाधर केलि को, सुफल बानी-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो ॥३६३॥

३६२—हियो—हियैं (कवित्त)।

को० = रति भी क्या है। [३६०] रली = युक्त। चोज = उमंग। [३६१] या = रात। [३६२] मिहीँ = पतली। अनी = नोक। सुहाग = रोली की बिंदी। [३६३] थाँवरो = थाला। भाँवरो = आवर्त। नाँवरो = नाम।

सहज सुहायौ राधा-माधौ मन भायौ,
कुंज-पुंज छबि छायौ घनआनँद-निवास है।
रितुनि को चिंतामनि रसनि सौं रह्यौ सनि,
देखैं बनै जैसो बनि राजै सु प्रकास है।
दंपति-सुजान फूली केलि कै फलित सदा,
कलित ललित लीला-बलित-बिलास है।
ऐसे बनराजै बरनत बानी क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजै चाहत बिकास है ॥३६४॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ, होति रही है सदा चित-चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रची ती।
प्रान-पपीहन के घन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनीती।
जानौं कहा अनुमानौं हियैं, हित की गति कौं, सुख सौं नित बीती ॥३६५॥

जित चाहत हौ तित जाय मिलै, चित रावरो कोबिद-केलि-कला।
जिनकौं तुम भोरि बिसास करौ सु न साँस भरै बपुरी अबला।
घनआनँद जान! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह-भला।
नटनायक लायक सायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६६॥

हम सौं हित कै कित कौं नित ही चित-बीच बियोगहि बोय चले।
सु अखैबट-बीज लौं फैलि परयौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठियै आय सुजान ज्यौं रवाय कै रोय चले ॥३६७॥

३६४-राधा०-राधा माधव के मन भायौ कुंजपुंज छायौ (राम)। दंपति०-दंपति सुजान केलि बेलि (वही)। रितुराजै-रितुराजौ (वही)। ३६५-धन-घन (कवित्त)। ३६६-जित-जिन (प्रयाग)। पाय-परै (वही)। ३६७-नित-हित(कवित्त)। छाय-छाह (प्रयाग)। हम-हमैं (वही)। ज्यौं-जौ (वही)। रवाय-हाय (संग्रह)।

[३६४] बै=द्वारा। बनराज=वृंदावन। [३६५] धुर कौ=अत्यंत। ती=थी। हित=प्रेम [३६६] बिसास=विश्वासघात। कला=क्रीड़ा, वृत्ति। पाय०=समझ में नहीं आती। [३६७] अखैबट=अक्षयवट। समोय=अनुरक्त होकर।

कवित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान कौं पै,
ढकी लाग-आग की लपेटँ जीव ही सहै।
वे तौ गौं गहेले हौं गहाऊँ सो न गहैँ गैल,
रहैं छैल भए नए लेस ताहू को न है।
पातनि तकत, मूल भूले फिरैं फूले वृथा,
आली! वनमाली जू के फल की कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
ते ह्यौं घर वसे, ह्यौं उजारि वसि को रहै ॥३६८॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन उरे हौ, गाढ़े
रंगनि घुरे हौ घनआनँद सुजान जू।
उर वैठे दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निवाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
हँसि हँसि खवावत हौ, छाहीं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तैं आन जू।
सूझत हौ वूझत हौ चाखत हौ भाखत हौ,
रहत हौ राखत हौ मौन हौ वखान जू ॥३६९॥

महा अनमिलन-मिलेई मिलौ जव मिलौ,
ऐसे अनमिल के मिलाए हौ हमैं दई।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिले होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई।

३६८-गहेले-गवेले (काँक०, प्रयाग)। ३६९-मिलन-मिले न (प्रयाग)। उरे-त्रुरे (वही)। घुरे-धुरे (वही)। वैठे-वैठि (राम)। आपै-आयै (प्रयाग)। चाखत-चाहत (कवित्त)।

[३६८] गौं०=अपनी घात को ही समझनेवाले। तावरी०=गरम क्यों होती है। घर०=दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। [३६९] उरे=दूर, पृथक्। मौन०=आपके निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं। [३७०] जई=अंकुर।

इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी अमिलता की लागी जिय मैं जई ।
तुम हूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै. दाहै जऊ जरियौ गई ॥३७०॥

सवैया

नीके नए अति जी के लगौं हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक ।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहोरि दै हाथ सज्यौ भटनायक ।
पौन-तुरंग चढ़्यौ वनि यौं वनितानि अहेरैं कढ़्यौ दुखदायक ।
हौ घनआनँद जान कहाँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३७१॥
राधे सुजान इतै चित दै, हित मैं कित कीजति मान-मरोर है ।
माखन तें मन कौंवरो है यह वानि न जानति कैसैं कठोर है ।
साँवरे सौं मिलि सोहति जैसी कहा कहियै कहिवे को न जोर है ।
तेरो पपीहा जु है घनआनंद है व्रजचंद सु तेरा चकोर है ॥३७२॥
नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निखरे-सुखरे सुखदायक हैं ।
घनआनँद भूमि कटाछन सौं, रसपान-तृपाहि सहायक हैं ।
जिय-वेधन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन सायक हैं ।
घिरि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निवटे नटनायक हैं ॥३७३॥
राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै ।
दीठि मिलैं मुरि पीठि दई हिय-हेत की वात सकै कहि को है ।
सैननि ही वरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि मोहै ॥३७४॥
वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं विचारो अमी ।
अरु वंक विसाल रँगीले रसाल विलोचन मैं न कटाछ कमी ।

३७१—चाप—चाय (प्रयाग) । ३७२—इतै—चितै (कवित्त) । है यह—है यह (प्रयाग) । सु—पै (कवित्त) । ३७३—हैं—हौ (कवित्त) । सायक—लायक (वही) ।

[३७१] चहोरि=सँभालकर । [३७२] कौंवरो=कोमल । [३७३] निखरे०=साफ-सुथरे । निवटे=पूरे, पहुँचे हुए । [३७४] सैननि=संकेतों से ।

घनआनँद जान अनूपम रूप तेँ रीति नई जिय माँझ रमी ।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइयै की लछमी ॥३७५॥

सब ठौर मिले, पर दूरि रहौ. भरि पूरि रहे जिहि रंग भिलौ ।
इहि लायक हौ वहु भायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ॥
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊखिल से कहूँ हेत हिलौ ।
हम और कछू नहि चाहति हैँ छिनकौ किन मानस-रूप मिलौ ॥३७६॥

मानस को बन है जग पै बिन मानस को बन सो दरसै सो ।
जे बनमानस ते सर से तिन सौँ मिलि मानस क्यौँ सरसै हो ।
हाय दई ! ढरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै मो ।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान जहाँ घनआनँद कौँ बरसै जो ॥३७७॥

बात सुजानन की घनआनँद डारति आहि अचेत किये चित ।
काननि पैठि कै प्राननि वेधति, दीसै नहीँ अकुलानि यहै नित ।
क्यौँ भरियै, करियै सु कहा, हमैँ आनि बनी इन लोगन सौँ इत ।
भीर मैँ हाय अकेले अधीर हैँ रीझहि लै रिझवार गए कित ॥३७८॥

चलिवे मधि वैठि रहे हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ ।
किहि ठाँ तिहि बास कहाँ पुनि सो इहि संग विचारि कै रंग रलौ ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पोप पलौ ।
जग मैँ छल सो वलि जीवन कौँ कल सौँ तुम ही किन ताहि छलौ ॥३७९॥

३७५–अरु–बरु (कौंक०) । ३७६–बसु०–बहौ नायक (कवित्त) । ३७७–को बन सो–के बन सो (कवित्त) । जहाँ–हहा (वही) । ३७८–नहीँ–नई (संग्रह) यहै–नितै (वही) । ३७९–ठाँ०–ठानहिँ (कवित्त) ।

[३७५] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी । [३७६] भिलौ=लीन होते हो । ऊखिल=अपरिचित । हेत०=प्रेम ठानते हैं । मानस०=जिस रूप मैँ मन आपको देखना चाहता है । [३७७] मानस=मनुष्य । मानस=मन । बन०=बनमानुस । सर०=साधारण तलैया । मानस=मानसरोवर । [३७८] भरियै=दिन काटूँ । [३७९] जग०=संसार मैँ मेरा यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्यौं नहीँ

जात चले उहि गावँ सबै जिहि ठावँ को ठीक न सूझत काहू ।
कैसो मिलाप लियौ इन मानि मिले मग आनि अनेक उलाहू ।
पौन के भौन रहे बसि गौन मैं आपनी आपनी चाह उमाहू ।
आहि नहीं मधि सोई सुजान जु है घनआनँद ओर-निबाहू ॥३८०॥
मंजुल वंजुल-पुंज-निकुंज अछेह छबीलो महारस-मेह तैं ।
द्यौस मैं रैन सो चैन को ऐन, पै जोति जग्यौ जगि दंपति-देह तैं ।
हास-बिकास बिलास-प्रकास सुजान समान अदेह के तेह तैं ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर डुलै बिजना भरि नेह तैं ॥३८१॥

कवित्त

मद - उनमाद - स्वाद मदन के मतवारे,
केलि कै अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं ।
सुपने सुरति पागैं महा चोप अनुरागैं,
सोए हू सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं ।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥३८२॥

सवैया

बात के देस तैं दूरि परे, जड़ता नियरे सियरे हिय दाहैं ।
चित्र की आँखिन लीनैं विचित्र महारस-रूप-सवाद सराहैं ।

३८०—सूझत—बूझत (कवित्त)। मिलाप-मिलाय (प्रयाग)। मानि-भौन (कवित्त)। मग—मन(वही)। पौन—कौन(वही)। जु—सु (वही)। ३८१—जग्यौ-पग्यौ (कवित्त)। डुलै—ढुलै (वही)। ३८३—जड़०—जियरे सियरे हियरे दुख दाहै (कवित्त)।

छल लेते। [३८०] जिहि०=जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीं। उलाहू=(उल्लास) उमंग। उमाहू=उत्साह । ओर-निबाहू=अंत तक निर्वाह करनेवाला। [३८१] वंजुल=अशोक। अछेह=अखंड। अदेह=कामदेव। तेह=प्रचंडता। [३८२] अवार०=देर तक। भोए=युक्त। [३८३] कठप्रेम=वह प्रेम

नेह कथैं सठ नीर मथैं हठ के कठप्रेम को नेम निबाहैं ।
क्यौं घनआनँद भीजे सुजाननि यौं अमिले मिलिबो फिरि चाहैं ॥३८३॥
हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी ।
टपक्यौई परै यह अंकुर ओस लौं ऐसी कछू रस-रीति घुरी ।
बिछुरैं कित सांति मिले हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलानि-छुरी ।
तुम ही तिहि साखि सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी ॥३८४॥
नाहिं पुकार करै सुनि आहिन, को कित है केहि दोप लगैयै ।
संगम पै बिछुरे मरियै, इनि भाँतिन क्यौं जियराहि जरैयै ।
ओटनि-चोटनि चूर भयौ चित, मो बिन हो किन बाहिर ऐयै ।
है घनआनँद मीत सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥३८५॥
आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु करी नहिं लौटनि ।
द्यौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि ।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझे बिन ढंग अनंग सरौटनि ।
हौ सुचितै घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥३८६॥
द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनैं ।
कहि कौन सकै दुति लेस कछू जिहि राधिका मोहन हूँ बरनैं ।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छवि छाकि धरे मधुरे चरनैं ।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनैं ॥३८७॥
लाल लपेटी सुही जुही-माल सिँगार को साज बिराजति खोही ।
पीरी पिछौरिया फेट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही ।

३८४–टपक्योई–पटक्यौई (कवित्त)। ओस०–आँसलौं (वही)। साखि–साधि (संग्रह)। ३८५–है–है (कवित्त)। केहि–किन (काँक०)। इनि–यहि (कवित्त) ३८७–दुति०–उहि बेस (कवित्त)। सरनै–बरनै (काँक०)।

जो प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [३८५] पुकार=आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [३८६] करौटनि=करवटें बदलने में। सरौटनि=शिकन, सलवट। [३८७] मधुरे=प्रिय। बनराज=वृंदावन। [३८८] सुही=

फूले कदंब-तरैं करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छवि सोही।
आजु सखी घनआनँद चाहि न जानति होऽब कहाँ तब कोही ॥३८८॥

स्याम-मनोहर आगम रूप कि सोहै महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि की यह रासि किधौं हरि हेरनि गैनी।
अंजन सी मनरंजन है ब्रजचंद-चकोरन कौं सुखदैनी।
भाव बढ़ै चित चाव चढ़ै रँग-रैनि किधौं रसराज की रैनी ॥३८९॥

कवित्त

अभिलाषी प्रिय के दृगनि प्रतिबिंबधारी,
मन बित जामैं अद्भुत चित-चोरना।
किधौं साँवरे की गोरी भावना सरूप धार्‌यौ,
ताही मैं दिपति जान प्यारी छवि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि लालसानि भोई,
सातिक सिथिल होति नीबी बर-डोरना।
राग अनुराग भाग सुभग सुहाग-भीजी,
रीझनि छबीली झूलै सरस हिंडोरना ॥३९०॥

सवैया

कैसैं करौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।

३८८—लाल-भाल (कवित्त)। चाहि-वाहि (वही) कहा०—कहौं कत तोही (वही)। ३८९—आगम—ता तम (कवित्त)। हेरनि—हेरत (वही)। ३९०—मन—मानि (राम)। बिन—बिनु। ३९१—हिय-हित (कॉक०)। औसर—ओरस (प्रयाग)। तनकै-तनकौ (कवित्त)।

लाल। खोही=पत्तों की छतरी। पीरी०=पीला दुपट्टा। [३८९] सैनी=श्रेणी, पंक्ति, समूह दृग तार=पुतली। गैनी=मार्ग। रँग=आह्लाद। रैनि=रजनी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज=शृंगार (श्याम वर्ण)। रैनी=खूँटी [३९०] छबि०=शोभा की पराकाष्ठा। सातिक=सात्त्विक भाव। नीबी=फुफुँदी। [३९१] चेटक=मायावी। चेत=चेतना।

चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकै मिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ ॥३९१॥
जान हौ ए जू जनाऊँ कहा, न गए कितहूँ जु कहाँ इत आयहौ।
दीसौ दुरे उर दाहत क्यौं उर तें कढ़ि यौं उर मैं कब छायहौ।
मोसौं बिछोहि कै मोहि भया करि मो मधि रावरे सूधे समायहौ।
ऐसी वियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरायहौ ॥३९२॥
दृग दीजियै दीसि परौ जिनसौं इन मोर-पखौवनि को भटकै।
मन दै फिरि लीजियै आपु नहीं जु तहाँ अटकै न कहूँ मटकै।
करि बंदन दीन भनै सुनियै दुख-फंदन मैं कब लौं लटकै।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकै ॥३९३॥

कवित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध जाहि,
आए सो हरष औ विषादहू न गत को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन मैं,
रस छाकै ताकै वाहि ठगिया ठगत को।
ताही न्यारो मिल्यो जो विचारो सो तौ ताहू मधि,
ताहि रंग ढग राखै सुमन पगत को।
ऐसी दसा जाग्यौ भाग जागैं जो जगाय भेंटै,
प्रेम मैं जगत जिहि खेम मैं भगत को ॥३९४॥

सवैया

प्राननि प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर पीरक हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ न्यारे गहौ क्यौं।

३९२–जनाऊँ–जनाहु (कवित्त)। समायहौ–सुभाय हौ (वही)। आय–आप (प्रयाग) ३९३–तहीं–नहीं (कौंक०)। दुख–भ्रम (कवित्त)। स्याम–मीत (प्रयाग)। ३९४–जाहि–ताहि। विषादहू०–विषादन दगत। वाहि–जाहि। जाग्यौ–भाग्यौ। खेम–प्रेम (वही)।

[३९२] जान=ज्ञानी। सिरायहौ=ठंढी करोगे। [३९३] मोर०=मोरपंख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै=नाचे, चंचल बना रहे। खटक=वेदना। [३९४]

मोहन रूप सरूप-पयोद सों सींचहु जो, दुख-दाह दहो क्यों ।
नावँ धरे जग मैं घनआनँद नावँ सम्हारो तो नावँ सहो क्यों ॥३९५॥

सोरठा

जौ लौं जगै न मूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख ।
वही होय अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥ ३९६ ॥

कवित्त

वेई कुंज-पुंज जित तरैं तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आएँ अब गहन ज्यौं गहि गो ।
सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सींची जिन,
वही जमुना, पै आली! वह पानी बहि गो ।
वहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
ताहि छियैं देह दैया महा दुख दहि गो ।
वेई घनआनँद जू जीवन कौं देते तिन,
ही को नावँ मरिनि के मारिबे कौं रहि गो ॥३९७॥

इतै अनदेखैं देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकनी ही सौं बाँध्यौ दीठि-तार है ।
जान घनआनँद बिनाऽब सुबनक हेरैं,
धीरज हिरात सोच सूखत बिचार है ।
छीन अति दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है ।
तेरैं बहरावनि रुई है कान बीच, हाय
बिरही बिचारिनि की मौन मैं पुकार है ॥३९८॥

३९६–मूल–मूल (राम) । होय–होत । ३९७–ज्यौं–सो (वही) आली–हेली । ताहि–नाहिँ । नावँ०–नाम मारिनि । ३९८–बिनाऽब–बनाव (संग्रह) । ठगिया=ठग । [३९५] पीरक=पीड़ा देनेवाले । [३९६] मूल=अर्थात् ईश्वर । [३९७] गहन=ग्रहण की दुःखदायिनी छाया । बीचि=लहर । [३९८] बहरा-

सवैया

लरिकाई-प्रदोष मैं खेल खग्यौ हँसि रोय सु औसर खोय दयौ ।
बहुरौ करि पान विषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धुंध सौं चातिक-नेम लयौ ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तैं भोर भयौ ॥३९९॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै ।
धर अंबर खूँदि खगै न कहूँ जियरा इन सोचन बीच बरै ।
घनआनँद जौ गुरु-ज्ञान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै ।
मिटि जाहिं विचार-विकार सबै तब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥४००॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन भाव अनेक लै एक से पोहै ।
दै मन मंजु सुमेर तहाँ बिबि ओर गतागत कै न बिछोहै ।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै ।
या विधि जो सुमिरै घनआनँद मो मत साधु-सिरोमनि सो है ॥४०१॥

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौ कहा रस-ढार सो ।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो ।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, बान-जिवाई न जानत मार सो ।
मोत सुजान सिरावत तो दृग है घनआनँद रंग अपार सो ॥४०२॥

५. ३९९–खेल०–टोड़ लग्यौ (राम) । बहुरौ–बहुरयौ । धुंध०–धूँधरयौ (वही) । ४००–बरै–जरै (राम) । ४०१–लै–सो (राम) । ४०२–तो–मो (राम) । है–ह्वै (वही) ।

चनि=बहलाना या बहरापन [३९९] प्रदोष=संध्याकाल । विषै=विषय, भोग-विलास । तमी=रात्रि । धुंध=माया मे आच्छन्न । केसनि=वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैं । [४००] पारद=पारा । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । खगै न=लगता नहीं । रसायन=वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो [४०१] गुन=गुण; तागा । सुमेरु=माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया । बि बि=(द्वि) दोनों । गतागत=जाना आना । [४०२]

मोहिँ निहोरिहै तू जु घरीक मैँ, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासौँ नहीँ ठहरै ठिक मान को, क्यौँ हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान ह्वै, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की तिनि तान भरी, कित भौँहनि तानति ॥४०३॥

कान्ह ! परे वहुतायत मैँ अकिलैनि की वेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न विथा विमनैन की मानौ कहा तुम ।
वौरे वियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौँ घनआनँद जू पहचानौ कहा तुम ॥४०४॥

कवित्त

पानिप अनूप रूप जल कौँ निहारि मन,
गयौ हो विहार करिवे कौँ चाय ढरि कै ।
परथौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि मैँ,
अति ही अपार ताहि कैसेँ सकै तरि कै ।
धीर-तीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौँ,
विवस विचारो थक्यौ वीच ही हहरि कै ।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िवे तेँ वच्यौ को सिवार कौँ पकरि कै ॥४०५॥

सवैया

कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिँ संग, तिहारी तरंग तकेँ मति बौरै ।
गढ़ौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै ।
महा छल छाय, खुले हौ बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ॥४०६॥

४०३–ह्वै-है (राम) । ४०५–कैँ–कौँ (राम) । ४०६–लखावत–लगावत (काँक०) ।

बान०=बाण मारकर जिलाना । मार=काम । [४०३] निहोरिहै=खुशामद करेगी । ठिक=स्थिरता । सठ०=बुरा रोष । [४०४] अकिलैनि=अनन्य प्रेमिका की । विमनैन=विमनस्कौँ की । [४०५] सिवार=केशौँ का उपमान । [४०६]

कवित्त

इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै ।
पीरियै पिछौरी छोर सीस पै उलटि राखैं,
केसर विचित्र अंग भाव रंग सौं सनै ।
मुरली मैं गौरी धुनि ढौरी घनआनँद तैं,
तेरे द्वार ठठकनि ऊठम घने ठनै ।
हाहा हे सुजान ! आजु दीजै प्रान-दान नेकु,
आवत गुपाल देखि लीजै वन तैं वनै ।।४०७।।

भएँ अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
ताहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे ।
जीवै जग मारि राख्यो झूठियै प्रतीति साँच,
साँचै झूठ जानि कछू औरै अभिलाखि रे ।
कृपावल पैयै कैसैं पंगुहि न नैंवैयै निधि,
ऐयै जैयै भूलनि सुध्यैं सुधाहि चाखि रे ।
जीवन मरत जौ पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं समीपैं करि राखि रे ।।४०८।।

सवैया

व्रजनाथ कहाय अनाथ करी, कित है हित-रीति मैं भाँति नई ।
न परेखो कछू, पै रह्यो न परै, ठकुराइति-प्रीति अनीतिमई ।
घनआनँद जानहिं को सिखवै, सुखई रस सींचि जु वेलि वई ।
सुधि-भूलि सवै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए हैं दई ।।४०९।।

४०७-ढौरी-टेरि (राम)। तैं-है। ठठकनि-टहकनि। ऊटम-ऊधम (वही)
४०८-पंगुहि०-पंगुहीन धैयैं (राम)। ४०९-हैं-ए (राम)।

निदान=रोग के कारण की पहचान। [४०७] सुही=लाल। गौरी=गौरी राग।
[४०८] भूलनि०=सुध को भूल जाना। मीचु=मृत्यु। [४०९] भाँति=ढंग।

कवित्त

बासर बसंत के अनंत ह्वै कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारैं जु निहारैं जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालान पै फूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनँद सुजान! सुनौ बाल-दसा,
चंदन-पवन तैं पजरि सियराति है
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग
दूरि देस जायबे कौं प्यारी नियराति है ॥४१०॥

फागुन महीना की कही ना परैं बातैं दिन-
रातैं जैसैं बीतत सुने तैं डफ-घोर कौं।
कोऊ उठै तान गाय, प्रान बान पैठि जात,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सौं,
कासौं कहौं सहौं हौं बियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४११॥

दोहा

गोरी! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप।
दावानल सो पान ये करत बिरह-संताप ॥४१२॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ।
इत मो मधि मेरियै रीति रचौ, उत वाहि निबाहन सौं सरसौ।

४११–पैठि–वैठि (प्रयाग)। चुहल–चहल (राम)।

ठकुराइति०=बड़ों की प्रीति। [४१०] राति=अँधेरा ही अँधेरा। पजरि०=प्रज्व-
लित होकर ठंढी पड़ जाती है। [४११] घोर=ध्वनि। चुहल=विनोद। [४१२]

रसनायक मायक, लायक हो कितहूँ झर लाय कहूँ तरसौं ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम ही सब रंग मिले दरसौं ॥४१३॥
इक तौ जग-माँझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौ मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देखि सकै न बड़ो बिधि क्रूर, वियोग-समाजहि साजि पिलै ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो लै मिले तें कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥४१४॥
मनमोहन तौ अनमोह करौ. यह मोहित होत फिरै सु कहा ।
अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोप महा ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ चित दै इतनी हित-बात हहा ।
जिय जाचक है जस देत बड़ो, जिन देहु कछू किन लेहु लहा ॥४१५॥
अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं ।
आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं ।
जौ घनआनँद ऐसी रुची, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं ॥४१६॥

कवित्त

होनि सौं मढ़यौ पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायबे बनाई रहठानि है ।
साँचो झूठ देखियै सुपेखनै लौं पेखियै हो,
सोई लखि लैहै जाहि पूरी पहचानि है ।
वही घनआनँद है पोखत सुजाननि कौं,
नीर न्यौरि छीर पीवो हंसनि की वानि है ।

४१३–निबाहन–निबाहिनि (राम) । ४१४–कहौ–कहा (प्रयाग) । ४१७–लौं–लैं (राम) । हो–है । लैहै–जैहै । पीवो–पीयै । उपजि–उपजै (वही) ।

स्यामघन=श्रीकृष्ण ; काले बादल । [४१३] तरसौं=त्रस्त करते हो । [४१४] बास=गंध । पिलै=टूट पड़ता है । धीर० = धैर्य को निगल जाती है । [४१५] अपढार=बेढंगे तौर से ढलनेवाला । लहा=लाभ । [४१६] अभागिनि०=मैं अभागिनी विपत्ति सहूँ । अकि=अथवा । [४१७] होनि=अस्तित्व, सत्ता । अनहोनि=अन-

कैसो अचरजखानि दीसि परयौ जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकी उपजि बिलानि है ॥४१७॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चाँचरि दै, बहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नेन हियँ हरि सूझ सम्हार सबै करि नाक नचाय रह्यौ।
घनआनँद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तैं सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनो सकै कित रावरो ह्वै विरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१८॥

मनमोहन नावँ रहै सु करौ, पन की पटिहै वह जो वटिहै।
वहु ओरनि लै भटकावत यौं, अटकावत क्यौं न कहा घटिहै।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी दिसि को हटिहै।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू द्दग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै ॥४१९॥

कवित्त

रास मैं सुरस दसौ दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चुहल चोख आप-आपनी मची।
सुधाई सौं भरे सुर साँचे साधैं लघु गुरु,
भीजी धुनि सुनि मति राग-रंग ह्वै रची।
पौन गौन थकि स्रौन रूपियै जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मौन कछू लै पची।
रीझि घनआनँद रही है छकि छाय तहीं,
यातैं अब रीझनि कहूँ न रंचकौ बची ॥४२०॥

४१९–पटिहै०–पढ़िहै बढ़ि (काँक०)। वटिहै–चटिहै (कवित्त)। यौं–क्यौं (वही)। ४२०–मैं०–सिंधु (राम)। चोख–चोप। है–है (वही)।

स्तित्व, असत्यता। रहठानि=रहने का स्थान। साँचो०=यह असत् सत् दिखाई पड़ता है। सुपेखनै०=देखने को तो यह सुंदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है। उपजि०=इसकी उपज ही नाश है। [४१८] चौचँद=बदनामी। करि०=नाक के बल। [४१९] पन की०=इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी। वटिहै=समाप्त हो जायगी। खोरि=दोष। नम०= अर्थात् मरणासन्न हो जायगी। [४२०] मौन०=मौन ने

सवैया

हम सौं पिय साँचियै बात कहौ मन जौ मनत्यौ अरु नाहिं कहूँ ।
कपटी निपटै, हिय दाहत हौ, निरदै जु दई डरु नाहिं कहूँ ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे थरु नाहिं कहूँ ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ घरु नाहिं कहूँ ॥४२१॥

कवित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हो हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसैं दोष जू ।
बिनाई कहैं करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहैं क्यों न करौ दान प्रान-परितोष जू ।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू ।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥४२२॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं राँचै मन,
मौन होत सोई सुख मुख पुनि ल्यावई ।
मौन मिहीं बात है समझि कहि जानौ जान,
अमी काहू भाँति को अचंभैं भरि प्यावई ।
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझ घनआनँद निबेरै याहि न्यावई ।
कहैं कौन मानै, पहचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहिं मारि मारि ज्यावई ॥४२३॥

४२१-रची–चची (कांक०)। सौन०–औ जड़कियै (राम)। यानैं–पावैं (वही)। ४२२-हौ–हो (राम)। बिनाई–बिना ही। दान–दीन (वही)। ४२३–मौन होत–मोहन हौ (राम)। कहँ०–कहै कोऽत्र (वही)।

ही वह स्वाद कुछ पचा पाया। वह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है। [४२१] मन०=आपका मन कहीं अन्यत्र अनुरक्त नहीं है। [४२२] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। [४२३] मिहीं=सूक्ष्म, गूढ़। कान०=जिसके नेत्रों में कान हों, जो

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बातहि पेखि लै ।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै ।
बात की बात सुवात बिचारिबो सूछमता सब ठौर बिसेखि लै ।
नैननि-काननि बीच बसे घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥४२४॥

कबित्त

सुधि करँ भूल की सुरति जब आय जाय.
तब सब सुधि भूलि कूकाँ गहि मौन काँ ।
जातेँ सुधि भूलै सो कृपा तेँ पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौँ या भरोसैँ सुधि हौन काँ ।
मेरो सुधि-भूलहि विचारियै सुरतिनाथ !
चातक उमाहै घनआनँद अचौन काँ ।
ऐसी भूल हू सौँ सुधि रावरी न भूलै क्यौँ हूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन काँ ॥४२५॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौ जलपै अब यौँ मन क्यौँ करि फूलिहै जू ।
मिटिहै तबहीँ तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू ।
घनआनँद भूलनि की सुधि काँ मति बावरी ह्वै रही झूलिहै जू ।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥४२६॥

कबित्त

रसिक रँगीले भलो भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैँ ।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझँ रिझवार हैँ ।

४२४–सूछमता–है छमता (कबित्त) ४२५–अचौन–उचौन (काँक०) ।
४२४–सूछमता–है छमता (कबित्त) ४२५–अचौन–उचौन (काँक०) ।

[४२४] अलेख=ब्रह्म । [४२५] अचौन=आचमन, पीना । [४२६] झूलिहै=समाप्त हो जायगी । [४२७] अचाह०=देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले ।

चाह-आलवाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
नित हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैं ॥४२७॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहै चाह वहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित ब्योरि सकौं हित की बतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लखौ सु लिखौ किहि भाँति परै पतिया ॥४२८॥

कवित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखौ,
सब ही के जिय नेको मीच सौं न है चिन्हारि।
होनि सो सही है अनहोनि हूँ वही है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न सोच कोउवै विचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कहै कौन,
ऐसी जाहि सूझै दीजै प्रानौ तिहि बूझि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनँद मैं,
उघरि छए हैं पै पसारो आपनो पसारि ॥४२९॥

सवैया

पीठि दियैं सब दीठि परैं निमुहैं, जग ईठिनि कौन सकेरै।
दौरि थक्यौ जित ही तित ही नितहीं चितयौ न कहूँ हित हेरै।
कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहिं टेरै।
नैननि काननि सौंहीं सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥४३०॥

४२८—बरराय—बहराय (कॉंक०)। ४२९—सो०—सही हैहै (राम)। प्रानौ०—प्रान तेहि चूकि। पसारो—पसारि (वही)। ४३०—नितही—तिनही (राम)।

जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए कल्पवृक्ष हैं। [४२८] बरराय०=बर्राने लगती है। [४२९] मीच=मृत्यु। चूकि=भूलकर, बिना विचार किए ही। [४३०] निमुहैं=बिना मुँह के। सकेरै=सकेलै, एकत्र करे।

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत ।
चाहनि चोप उमाह उमंग पुकारहि यौं नित प्रान पुकारत ।
हौ घनआनँद छाय रहे कित यौं असम्हारहि नाहिँ सम्हारत ।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति हौ, अति या विधि आरत ।।४३१।।
हम आपनो सो बहुतेरो पचैँ कि बचैँ अपलोक तेँ एकौ घरी ।
न रहै बस नैसिक तान भिदै छिदै कान ह्वै प्रान सुतीखी खरी ।
घनआनँद बौरति दौरति ढौरति ढूँढ़ियौ पैयत लाज न री ।
कित जाहिँ कहा करैँ कैसैँ भरैँ यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ।।४३२।।

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भरयौ,
पानिप अपार धरैँ जोवन अदेह को ।
उठ्यौ काहू भाँति धीर ओरनि अपूरब पै,
इते पै फुहीनि चैन प्रान मन देह को ।
दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहिँ देहिँ स्वाद-सुख आनँद अछेह को ।
मोहिँ नीको लागत री राधे तेरे लोने इन
अंग अंग अररात रंग मेह नेह को ।।४३३।।

सवैया

बरसैँ तरसैँ सरसैँ अरसैँ न कहूँ दरसैँ इहि छाक छईं ।
निरखैँ परखैँ करखैँ हरखैँ उपजीं अभिलाषनि लाख जईं ।
घनआनँद ही उनए इन मैँ बहु भाँतिनि ये उन रंग रईं ।
रसमूरति स्यामहिँ देखत ही सजनी अँखियाँ रसरासि भईं ।।४३४।।

४३२–पचैँ–करैँ (राम)। अपलोक–अवलोक तेँ–(काँक०); अवलोकनैँ (संग्रह)। ४३३–धीर–धरि (प्रयाग)। ओरनि–वोरनि (काँक०)।

आगर=अत्यत। [४३१] आरति०=आप वेदना से रहित हैं। [४३२] अपलोक=बदनामी। [४३३] अदेह=रूपहीन। अपूरब=अपूर्व, अनुपम; पूर्व से इतर दिशा। अछेह=अछेद्य; अखंड। [४३४] जईं=अनुरक्त हुईं।

छप्पय

चलनि रही मँडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू।
छल सो जीवन देखि तऊ तिहि छलनि छल्यौ तू।
वृथा वाद पचि मरयौ सवद-सोधौ न धरयौ तू।
अंत गहैगो मौन कह्यौ कवहूँ न करयौ तू।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैवो कहाँ।
चित चलाय नित है अचल, घनआनँद चलिवो जहाँ ॥४३५॥

सवैया

जिय सूझ करो हठि बूझत जौ कि वृथा रुचि वीच पच्यौ परि क्यौं।
अरु भूलि गई सुधि ऊतरु की अपराधन तैं न वच्यौ डरि क्यौं।
घनआनँद त्यौं सुनि लेहु अवै सु वजायहै साँच खच्यौ टरि क्यौं।
कित कौं करतूतिहि खोरि लगै नित या विधि मोहिं रच्यौ हरि क्यौं ॥४३६॥
हारे उपाय. कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैंऽरु मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर विना हित-मूरति कौन सम्हारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहैं पिय-पायनि पारै ॥४३७॥
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न प्रौन. करै इहि भाय कौं गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि विचारि. विचारत क्यौं न कहा विरमै।
गति बूझि परी. किन सूझत रे, कहिवो न छियै किहि धाँ सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै विसमै ॥४३८॥
रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कव काननि पान करायहौ जू।
गति हंस-प्रसंसित सौं कव धौं सुख लै अँखियान मैं आयहौ जू।

४३५—तू-तैं (प्रयाग)। ४३६—जौ-हौं (राम)। त्यौं-तौ। सु०—सुनै जाय है। टरि—ढरि। लगै—लई। हरि—मरि (वही)। ४३७—आँसू—आँसुनि (कौंक०)। सम्हारै—सहारै (राम)। ४३८—छियै—छिपै (राम)।

[४३५] छल=भ्रांति, मिथ्या। सबद०=वास्तविक वात की खोज। चित०=चित्त मैं विचार करके। [४३६] पच्यौ=परेशान हुआ। साँच०=सत्य असत्य कैसे होगा। खोरि=दोष। [४३८] धाँ=प्रकार, तरह। [४३९] रस=प्रेम; जल।

अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यौ मन तैं मनमोहन पायहौ जू ।
चित-चातक के घनआनँद हौ रटना परि रीझनि छायहौ जू ॥४३९॥

कबित्त

बीतनि को रूप तूँ ठहरि हेरि गए बीते,
ऐसैं जरि जग मैं निसा अहा बिताव रे ।
ठहरनि बातनि तैं बहुरि अहुरि नीकैं,
निहचै सौं हियो भरि संसय रिताव रे ।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हेत-बात सुनि हाहा चेतहि चिताव रे ।
ऐसैं रंग रचै जौ बचै तौ घनआनँद ह्वै,
तचै कैसं ताप आप जीवन हिताव रे ॥४४०॥

सवैया

चितवै जिहि भाँति, सकौं सहि क्यौं, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ ।
सु न जानत जीवत कौन सी आस, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ ।
घनआनँद कैसे सुजान हौ जू उहि सूखनि सोच न छाँह छियौ ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी बनाय कै प्यार कियौ ॥४४१॥

कबित्त

सबद-सुरूप वहै जानन सुजन चहै,
अचिरज यहै औरै होत सुर लाग मैं ।
वेद-भेद ताके जानि परी यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाव पावत बिभाग मैं ।
पूरि तानै बानै पहचानै घनआनँद जौ,
पाँवड़े करत रीझि प्रानपति आगमैं ।

४४०–तूँ०–झूठ हेरि (राम) । गए–गयो । जरि–जगि । निसा–कहा । निहचै०–नह्यो सो न हियो मारि । तचै–नचै (वही) । ४४१–चितवै–बितवै (प्रयाग); चितयौ (कवित्त) ।

[४४०] बीतनि=क्षणभंगुरता । बहुरि०=अहुर बहुर कर, किसी प्रकार बचकर । रिताव=खाली कर, दूर कर । [४४१] न हितात=अच्छा नहीं लगता । बनाय

सूछम उसास गुन वुन्यौ ताहि लखै कौन,
पौन पट रँग्यौ पेखियत रंग-राग मैँ ॥४४२॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यो, जु परथौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि तो, गुन-माल बिसाल गनै गन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे विधि आनँद के घन ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ मन लै हू गए पै बसौ मन ही ॥४४३॥

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैँ अनमिले कछू करि न सकौँ तरक।
जियौँ तुम हीँ तैँ बिना तुम्हैँ मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि बैरी ऐसो राखियै मरक।
देखि देखि ढूँढौँ दुख-दसा देखि मिलौ हाहा,
मीत ओ बिसारो यह कसकै नई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौँ,
आरस जग्यौ है कैसैँ सोई है कृपा-ढरक ॥४४४॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भरथौ अति उत्तम नीच मैँ।
नीरसता सरस्यो नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैँ।
ऐसो अचेत जु साँच कियो भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैँ।
ज्वाल जरथौ अब होत हरथौ हरि नेकु, कृपा घनआनँद-सीच मैँ ॥४४५॥

४४२—यहै—चहै (राम)। ताके०—ताको जानि परथौ। पावत—तिन ही। बानै—ठानै। पेखियत—देखियत (वही)। ४४३—गनै—गुनै (राम)। ४४४—बैरी०—ऐसी जियै (राम)। ४४५—न—सु (राम)।

कै=कृत्रिम। [४४२] सुर=ध्वनि। लाग=प्रीति। आगमैं=आगमन मैं। गुन=सूत। [४४३] तन=ओर। बिसरै०=विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति मैं लगे रहते हैं। [४४४] मरक=खिँचाव। करक=पीड़ा। [४४५] भ्रम=मिथ्या।

आयौ महारसपुंज भर्यौ घनआनँद रूप-सिँगार को मौरै।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरै।
मोहन-बाँसुरिया सी बजै मधुरे गरजैँ धुनि मैँ मति बौरै।
आज की मोरनि की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरै ॥४४६॥
धर अंबर तैँ जु कछू लखियै सु समै गुन-बीतनि रूप बन्यौ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक ठान ठन्यौ।
घनआनँद तौ सहजै सब जान तकौ रहि जानि जौ बोध जन्यौ।
उत की इत की सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४७॥

दोहा

सहज रचै सोई बचै, बृथा पचै संसार।
सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्यौहार ॥४४८॥
सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारैँ सीस ॥४४९॥
हरि तुम सौँ पहचानि को, मोहिँ लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ फिरौँ, वसौँ कृपा के देस ॥४५०॥
मोसे अनपहचान कौँ, पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौँ, त्यौँ पुकार मधि-मौन ॥४५१॥

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौँ कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-पयोद ह्वै सरस सींचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुभाव-सर भरे हो।

४४६—को—के (राम)। ४४७—धर—घर (कॉक०)। समै—सबै (राम)। ठहरै—वहरै (वही) उतकी०—उन की इनकी (राम)। ४४८—संसार—ह्वै सार (राम)। ४५०—फिरौँ—रहौँ (राम)।

[४४६] मोरै=मुकुट ही। सुदेस=उत्तम। [४४७] गुन-बीतनि=गुणरहित। चेटक=माया, जादू। बोध०=बोध उत्पन्न हो। [४४८] सहज=सरल, स्वाभाविक [४५०] कृपा०=कृपा में ही। [४५१] कृपा०=जैसे आपके नेत्रों में कृपा के

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय, हाय अंग-अंग-संग रंग ररे हौं।
ऐसैं क्यौं सुखैये सोच-तापनि, हरयौ के हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४५२॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५३॥

सवैया

रस चौचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी।
समुहाय तहाँ हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि ताक तकी कुच की।
उत मूठि-गुलाल उठैं उकसैं सु लगैं पहिलैं छतिया हुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकाँ उचकी ॥४५४॥

कबित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वैहै खेह खिन ही मैं,
नाते सब हाते परि रहैगो नहीं रे नाम।
फूलै भ्रम भूलै कित झूलै मोह फंदनि तू,
तनकौ सम्हारै किनि प्रानन के संगी स्याम।
जागत हू सोवै खोवै समै सो रतन बौरे,
पाय घनआनँद तचै अचेत काम धाम।
आएँ औधि-ओसर उसासहू उसरि जैहै,
धरेई रहैंगे धनधाम धंधे धूमधाम ॥४५५॥

४५२—जनाय-जनाई (राम)। जुगति—सुगति (काँक०)। सर भरे—गद्दभरे (राम)। रंग—रस (वही)। ४५३—बरसौ—दरसौ (राम)। बरसौं—दरसौ (वही)। ४५५—मोह—भ्रम (संग्रह)। उसासहू—उसासहि (राम)।

कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन में है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५२] ढरहरे=द्रवीभूत। आनँद०=आनंद के बादल; घनआनंद। निरभर=पूर्ण; निर +भर=जो भरा न हो। नीठि=किसी प्रकार भी। [४५३] ऐन=घर। हित=प्रेम या लिए। [४५५] खेह =धूल। हाते=दूर

सवैया

संग लगे फिरौ हौँ अलगौ रहौँ मोहुवै गैल लगावत क्यौँ नहीँ ।
नीरस रावनि ही सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यौँ नहीँ ।
ढीलो परयौ तुम तैँ घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौँ नहीँ ।
जागत सोवत से हौ कहा वहौ सोवत मोहिँ जगावत क्यौँ नहीँ ॥४५६॥

मन मेरो अनेरो घनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौँ ।
सुखकंद अहो ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही सौँ लरौँ ।
अनमोह भए जु न मोहत हौ मनमोहन या बिधि याहि भरौँ ।
घनआनँद ह्वै दुख-ताप तपावत क्यौँ करि नावँहिँ नावँ धरौँ ॥४५७॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित ही अँसुवा ढरिबोई करैँगी ।
पावन-साध असाध भई इहि जोवनि यौँ मरिबोई करैँगी ।
हाय महादुख है सुखदैन बिचारौ हियैँ भरिबोई करैँगी ।
क्यौँ घनआनँद मीत सुजान कहा अँखियाँ बरिबोई करैँगी ॥४५८॥

सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौ न थिरै ।
निसिद्यौस घुमेरिनि भौँरि परयौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै ।
घनआनँद भीजत सोचनि सूखत थाकनि दौरि सम्हारि गिरै ।
तन तौ यहि लाज घिरयौ घर मैँ बन मैँ मनमोहन-संग फिरै ॥४५९॥

कबित्त

बिरह की बेदनि तैँ गिरे जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आएँ दुख दूनो है ।
बिलखत छाँड़ो द्यौस चारिक चिन्हारी करि,
बारि दियौ हिये मैँ उदेग को अभूनो है ।

४५६–अलगौ–अलगै (राम) रहौँ–हिहौँ (काँक०)। वहौ–कहौँ (राम)। ४५७–सौँ–तेँ (खोज)। अनमोह–मनमोह (काँक०)। भरौँ–अरौँ (खोज)। तचावत–तपावत। क्यौँ०–भावते (वही)। ४५८–यौँ०–कौँ (कवित्त)।

होकर। काम०=कामना के घर में। उसरि०=छिन्नभिन्न हो जायगा। धूम०= धूम-धक्कड़। [४५६] गुन=गुण; डोर। खगावत=मिलाते क्यों नहीं; कसते क्यों नहीं। [४५७] अनेरो=दुष्ट। [४५८] साध=उत्कंठा। असाध=असाध्य। भरि

ऐसैं कैसैं कौ लौं रूँधि राखियै पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद विहूनो है।
वसत हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४६०॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तैं हटै नहिं हाय हितैवो।
लेखो कहा हमसौं है तुम्हैं हमहीं है घरी जुग कोटि वितैवो।
पूरि परेखैं रह्यौ चित-चातक हौ घनआनँद कैसैं रितैयो।
आँखि बिसासिनि आस गही न तजैं इतनै पर बाट चितैवो ॥४६१॥

देख तुम्हैं तव लेखैं लिखैं लिखिवो लखिवैं भई आहि अहा गति।
एक सां आँसुनि वाढ़ि वहैं न रहैं झरना लौं गहैं सु महा गति।
यौं दिनराति मरैं घनआनँद देखौ बिचारि कै नेकु हहा गति।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहौ नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति ॥४६२॥

हौ सु भले हौ कहा कहियै हम आपने पूरन भाग लहे हो।
आँखि निगोड़िन हीं यह दोप अजू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हो।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय किते उमहे हो।
लै मन बैठि रहे तव त्यौं अव क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हौ ॥४६३॥

रूप-सुदेस को राज करयौ करौ छत्र-गुमानहिं सीस धरे जू।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चोप चहूँ दिसि चौर ढरे जू।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरे जू।
राचत हैं तुम्हैं जाचत यौं ब्रजजीवन रावरी आस करे जू ॥४६४॥

बांई=दुख से दिन काटना। [४५९] घुमेरनि०=वेसुध रूपी भँवर में [४६०] गिरै=शिथिल हो रहे हैं। गात=गात्र, अंग। अभूनो=आग। दुहेलो=दुःखमय। बिहूनो=विहीन, रहित। [४६१] हितैवो=प्रेम करना। [४६२] अहा गति=आनंद की स्थिति। महा गति=तीव्र चाल। हहा गति=हाय दुर्दशा। कहा गति=क्या वश! । [४६३] गाँस=फंदा। [४६४] दिन-दूलह=प्रतिदिन दूलहा,

तुम्हैँ देखि जियौँ पियौँ रूप-अमी घनआनँद प्यारे सदा सौँ कहौँ ।
मिलि जाहुँ तुम्हैँ रँग नीर लौँ पाय पै हाथ मिलौ नहीँ तासौँ कहौँ ।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौँ कहौँ ।
सुनि ऊतर देत न तौऽब कहौ कि तुम्हारे सवादहि कासौँ कहौँ ॥४६५॥

प्रीति के दाँवहि बैर सो लैन कौँ ताकि रही भरि कै अभिलाखनि ।
चातक-चोपनि चाहति ही घनआनँद अंग सवादिली चाखनि ।
लाज-लपेटी लखावति क्यौँ करि सील मैँ साह तेँ सौगुनी साखनि ।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर वहै हियरा धरि राखनि ॥४६६॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाष-महोदधि-मंजन कै ।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ वसी मन-रंजन कै ।
तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै ।
घनआनँद-रूप निहारन कौँ ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६७॥

नंद के आनँदकंद उदै ब्रजचंद बधाएँ सबै मिलि जाहीँ ।
नैन हियैँ सुनि ही कै जियैँ अभिलाष चकोरनि तेँ अधिकाहीँ ।
दूध दही रु मही की नदी वही गोकुल गाँव-गरथारिन माँहीँ ।
आनँद को घन चोपन सौँ अति ही बरसै सरसै हित-छाँहीँ ॥४६८॥

गोकुल-घाँ तेँ कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है ।
रानि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है ।
चाह-समद्र सुनेँ सरस्यौ घनआनँद नैनन कौँ रसकंद है ।
आजु लखौ सजनी रजनी-दुति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६९॥

कवित्त

गोकुल-गरथारिन मैँ महा गहमह माँची,
गोपी-गोप उमहे बधाएँ ब्रज-ईस को ।

सदा दूल्हा । [४६५] अपढार=सरलता से ढलना । [४६६] सवादिली = स्वादिष्ट । साख=प्रतिष्ठा । [४६७] पद०=चरण कमलों से । [४६८] गरथारि= छोटी गली । [४६९] घाँ=ओर । सुछंद । पूरब०=पूर्वजन्म के भाग्य से ।

कान्ह कुलमंडन प्रगट भए भूरि-भाग
भादौं कृस्न-पाख आठैं उदै रजनीस को।
पूरी है कुलाहल की धुनि-धारा चहूँ ओर,
आनँद को घन घोरै बोलत असीस को।
कामना-सुतरु छायौ फूल-संग फल पायौ,
औसर अनूप आयौ उर-बकसीस को ॥४७०॥

मुकुट मनोहर मैं लटक-अटक भरि,
घूमरे बिलोचन चलावै काम-कटकै।
केसरि की खोरि रोरि पारत निहारैं मन,
दौरि दौरि अंग-संग रगनि त्यौं भटकै।
कहा कहौं हेली मनमोहन अनूप रूप,
इतै मान बाँसुरी हटावै लाज-हटकै।
देखैं घनआनँद रसीलो मृदु मूरति कौं,
ऐसी कौन बावरी सयान लैन पटकै ॥४७१॥

सवैया

झुकि रूप-तरंगनि जाल परे गुनमाल बिसालनि लै फँदईं।
उफनाय उठ्यौ रससिंधु हियौ मुखचंद लखैं अभिलाष छईं।
घनआनँद औसर के बस ह्वै मति औ गति केतियौ संग गईं।
जित ही जित मोहन गौन कियौ अँखियाँ तित ही तित क्यौं न भईं ॥४७२॥

तीर ही जाके महाछबि-भीर सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँव री।
बासिन के दृग-तारन-पुंज की मूरति मंजु लसै तिहि ठाँव री।
ऐसैं रसामृत पूरित ह्वै भरिबोई करै अभिलापनि भाँवरी।
है अमुना जमुना घनआनँद साँवरे-संगम रंगनि साँवरी ॥४७३॥

कवित्त

मन के मनोरथ - महोदधि - तरंगनि मैं,
अति ही तरल गति प्रबल प्रचंड है।

[४७०] गहमह=चहल-पहल। ब्रज०=नंद महर के यहाँ। उर०=हृदय को दान कर देने का। [४७१] लाज०=लज्जा की हिचक। पटकै=परेशान हो। [४७३]

एक एक बीचि-बीच सायर असेष जहाँ,
सूखौ राखि बोरैं तीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है बिथक्यौ है ओज,
खोजैं सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पपीहा,
सोभासीवँ जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७४॥

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं नित नाथ बिसासनि मारत हाय तऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुबास भरी घनआनँद है दुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरी रसना सौं कहा कहियै बकि सोई उठै कित कौ कस कीजै ॥४७५॥

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गुंज न।
नीरस की रसिकाई कहा सब ही बिधि है सठ रे भठ-भुंजन।
प्रेम पिकीन की प्यास भर्यौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-पुंजन।
सीरी सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट की उन कुंजन ॥४७६॥

नीकी नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति ओप बढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि फँदी फिरि चोपनि मोहन मंत्र पढ़ी है।
रीझनि भीजे सुधा-रत स्याम सदा घनआनँद ऐंड़ अढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ी है ॥४७७॥

प्रेम के पाले परै जिय जाको धरै कल क्यौं अकुलानिमई है।
दीसत देखौ दसौं दिसि प्रीतम कौन अनूठियै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यौ तब लाज सम्हारै सु बीति गई है।
जाहुँ कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भैंट भई है ॥४७८॥

४७४–सुजान०–सुरूप को पपीहा करि (संग्रह)।

अमुना=इस प्रकार। [४७४] बीचि=लहर। सायर=सागर। महिमंड=महिमावान्। सिखंड=मोरपंख। [४७५] खिसियौ=रोष से हिचकती हुई भी। कस०=खींची जाय [४७७] अढ़ी=लगी। [४७९] बनायनि=भली भाँति।

तजि के रंगनि संग अलीन लै झूलत फूल सौं प्यारे बनायनि ।
सामुही ह्वै सखि बैठति द्वै इक झूलति आप गँसावति पायनि ।
साँवरे छैल तहाँ रचि ताकहीं यौं मिहँदी लौं लग्यौ घुरि चायनि ।
गीतनि भास भिदै घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७९॥

हरि राधा जहाँ जहाँ राजत है वह ठौर जथारुचि रंजन है ।
सु सँजोग वियोग महारस रूप तिही तित ही मन मंजन दै ।
न मिलै बिछुरै कतहूँ न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन जै ।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं व्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४८०॥

गोकुल की वर बानिक नैन सदा लखिबोई करै अनिमेखनि ।
मंडित मोद अखंडित रूप भरौ मन रोमहि रोम सुदेखनि ।
मोहन ही सबके धन जीवन प्रीति रची रसरीति बिसेखनि ।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह, असेखनि ॥४८१॥

तुम्हैं प्रान लगे तुम प्राननहूँ मनमोहन मोह न मानियै जू ।
निठुराई सौं कौ लौं निबाहियैगी कबहूँ तो दया उर आनियै जू ।
दरसे तैं कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातिक दानियै जू ।
बरसौ सरसौ अरसौ न दई जग-जीवन हौ जग जानियै जू ॥४८२॥

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ही राखौ ।
बंसी बजावनि रीझि रिँगावनि पाननि ताननि खेत ही राखौ ।
एहो सुजान सुनौ घनआनँद चातक त्यौं अब हेत ही राखौ ।
जाचै तुम्हैं अरु राचै कहूँ न जहाँ जब जैसैं सचेत ही राखौ ॥४८३॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि बेस-बिलास निहारियै हूँगे ।
कानन बीच बसैं भरि प्यास अमीनिधि बैननि पारियै हूँगे ।
यौं घनआनँद ठौरहि ठौर सम्हारत हैं सुसम्हारियै हूँगे ।
प्रान धरे मुरझैं उरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगे ॥४८४॥

४८५-अचंभे०-अभै भरयौ लेखिय (संग्रह) ।

[४८०] मंजन=मार्जन, स्नान [४८१] असेखनि=परीपूर्ण । [४८२] सोहन= शोभन । अरसौ=आलस्य मत करो । घुरि=घुलकर । भास=ध्वनि । [४८३]

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं ।
संग सदा तित की सूधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं ।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचंभे भरथौ लखि ऊखिल-भाँतैं ।
यौं घनआनँद-ओर उनै उघरै किनि रे मन ! तू सब घाँ तैं ॥४८५॥

कबित्त

मेरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद इते पै साखि सुनौ प्रानपति है ।
अंतर मैं रहौ पै न अंतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँपति है ।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते तौ तुम जानौ अति है ।
कहौ हाय बूझति हौं सूझति मलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो तिहारी यह गति है ॥४८६॥

सवैया

भरि-जोबन-रंग अनंग-उमंगनि अंगहि अंग समोय रहे ।
उर फागुन-दावँ को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे ।
घनआनंद चोपहि चोपनि लै उर चौचंद नेकु न सोय रहे ।
दृग रावरे छैल खिलार महा कहा नीके गुलाल मैं भोय रहे ॥४८७॥

गोरे कपोलनि लाल गुलाल की भोय रही कछु पोंछिऊ पाछैं ।
दर्पन देखि हियैं हुलसै सुलसै छवि छ्वै मुसक्यौंही कटाछैं ।
ओठ पै मानिक-ओप अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं ।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्राननि तोखति पोखति आछैं ॥४८८॥

कन-स्वेद भयौ सु विराजत यौं उडुपौ नभ तारनि संग भयौ ।
मद लाली चढ़ै अति ओप बढ़ै मुखचंद तैं प्रात-पतंग भयौ ।

४८६-उहयौं०-नव (संग्रह) ।

रिँगावनि=चलाना। [४८५] ऊखिल=अपरिचित। घाँ=ओर। [४८६] साख०=
मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८७] चौचँद=बदनामी। भोय०=डूब रहे। [४८८] पोंछिऊ०=

भयौ आदिहि कंज कुमोदनि के, रति-अंत चहैं भ्रम-भंग भयौ ।
घनआनँद ओज मनोज-उमगनि अंगनि अद्भुत रंग भयौ ॥४८९॥

लाल के तोही मैं प्रान बसैं तुहूँ जानति प्रीति की रीति सयानी ।
ज्यौं ब्रजजीवन जीवत तो बिन त्यौं कहा मीन मरै बिन पानी ।
तो हित-प्यास भरयौ घनआनँद आस पपीहन तैं अधिकानी ।
राधे हठीली कहै किनि है, कब तैं यह रूठनि है मनमानी ॥४९०॥

मुख देखत ही पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै ।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन त्यौं तब ही कबहूँ को हिलै ।
घनआनँद रोमहि रोम भिजै रसरंग-समोदनि अंग झिलै ।
उनसौं मिलि जो बिछुरै सजनी सु न जानति हौं किहि भाँति मिलै ॥४९१॥

परदेस बसे बस है विधि के जिय जीवत यौं कछु नाहि नई ।
जु परै सु सहैं कित कासौं कहैं जग दीसि परयौ सब सुंनिमई ।
घनआनँद जान मिले न कहूँ इहि हेत सम्हार अचेत भई ।
यह तौ सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मीत लई ॥४९२॥

नित हौ चित हौ हित हौ कित हौ इत हौ इतने पै उदेग दहैं ।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनँद कासौं बिथाहि कहैं ।
बसि एकहि बास बिसास करौ बस नाहिं बिसासी बनौ सु सहैं ।
हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ, तुम संग बसौ हम न्यारी रहैं ॥४९३॥

देखि विचारि विचारै सँचारहि कौनहीं कौन सवाद पग्यौ तू ।
राचि पच्यौ बहु प्रीति सुरीतिनि लाग लच्यौ अलगाय लग्यौ तू ।
यौं भ्रम भूलि परयौ स्रम कै, अब लौं सुधि ना बिन बोध ठग्यौ तू ।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौं जड़ क्यौं न जग्यौ तू ॥४९४॥

करि बैर बिसासिनि बाँसुरिया सब ही कुल मैंड की एँड दली ।
मँडराति रहै धुनि कानन मैं मन प्रान पगे रहैं रंग रली ।

४९५—धुनि—पुनि । मन०—ब्रजमोहन (संग्रह) ।

पौंछने पर भी । काछैं=पास । [४८९] उडुप=चंद्र । पतंग=सूर्य । [४९०] तिन०=उनकी ओर होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का हिल रहा है । झिलै=कष्ट सह रहा है । [४९४] लच्यौ=नमित । [४९५] भटभेर=मुठभेड़ ।

घनआनँद क्यौँ बचियै भटभेर अचानक होत गरयारँ गली।
कित जाहिं कहा करैँ कैसँ रहैँ मनमोहन गोहन लागि छली ॥४९५॥

रूप-निकाई अनूप कहा कहौँ अंगनि जोति सुरंगनि जागति।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा कियँ पिय-लोचन पागति।
और सिंगारनि की सब ही रहौ याहि बिचारत ही मति रागति।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतिन के तरवानि तैँ लागति ॥४९६॥

ब्रज की छबि हेरि हरयौ हित होत, खली मिलि जूथनि जूथ जुही।
घन घोरि घुरे चहुँ ओरनि तैँ बरसैँ परसैँ सरसैँ सु फुही।
तिहि कुंजन मैँ रसपुंज-भरे बिहरैँ हरि-राधिका चोप उही।
घनआनँद नैन-पपीहन कौँ नित ही रसरासि रहौ समुही ॥४९७॥

कवित्त

भले ही रसीले अरसीले सुनि हूजियै न,
गुननि तिहारे उरभयौ है मन गाय गाय।
काननि सुनो है तैसँ आँखिन हू देखैँ जात,
दीखत नहीँ औ सब ठावँ रहे छाय छाय।
ऐसँ घनआनँद अचंभे सौँ भरे हौ भारी,
खोए से रहत जित तित तुम्हैँ पाय पाय।
एक बास बसे सदा बालम बिसासी, पै न
भई क्यौँ चिन्हारि कहूँ हमैँ तुम्हैँ हाय हाय ॥४९८॥

सवैया

सुनि कै गुन रावरे बावरे लौँ उरभानि सुरूप की बानि परी।
दरसे बरसे सरसे परसे घनआनँद रीभ बिकानि परी।
प्रगट्यौ न कहूँ अब यौँ उबरे गति जानि परी जु न जानि परी।
रसदानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९९॥

४९७–घुरे–जुरे (संग्रह)। ४९८–अचंभे–अभेद। (संग्रह)।

गरयारँ=गलियारा, छोटी गली मेँ। [४९६] तरवानि०=पैरोँ से आग लगती है, नख से सिख तक भस्म होने लगती हैँ। [४९७] फुही=सीकर हलकी वृष्टि। उही=वही। समुही=समुख। [४९८] बालम=प्रिय। [४९९] बाँट=हिस्से मेँ।

घातनि ठानत वातनि छानत चायनि दायनि जाचि रहे हौ ।
यौं घनआनँद चाँचरि देत न हाथ लगौ छल नाचि रहे हौ ।
छाय तऊ उघरेई परौ हित-काचे तऊ पन पाचि रहे हौ ।
फाग सों खेलत डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥५००॥
ठगई धरि कै लगई जु करी न गई अजहूँ करौ घातैं पढ़े ।
पचि कै रचि कै सचि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै बातैं पढ़े ।
बिन लेखे मिलौ न बड़े लिखधार कहौ हित-मूरति कातैं पढ़े ।
घनआनँद छावत भावत हौ दिन पारि इतै उत रातैं पढ़े ॥५०१॥
रंग भर्यौ उन सूखति हौं उन सौंधो रच्यौ भई हौं नकवानी ।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि मो हग आवत है भरि पानी ।
आँच तचे हम सीरी परैं पिय मो हिय खोंप गुली सुखदानी ।
आनँद के घन होरी नई यह माची उतै इत राचनि ठानी ॥५०२॥
आए हौ फाग मनाय कै लाल कियौ जिन नेह नयौ थपनौ जू ।
आछे निचोय भिजै पठए फगुवा मन-मानतो लै अपनौ जू ।
भूलि परैं सुधि मेरियौ लीनी किधौं कछु देखति हौं सपनौ जू ।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपोहन तैं तपनौ जू ॥५०३॥

कवित्त

अपवस होहु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुवस बसौ बिसासी तहाँ बस और के ।
कहा जानौं कितहूँ कसक है कि नाहीं तुम्हैं,
भौंर से भुलाने देखियत ठौर ठौर के ।
साँचिली बिचारी भोरी हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौर के ।

५००—छानत-वानत (संग्रह) । छाय०—ढाँपे तऊ (वही) । ५०१—ऐसियै—ओखियै (संग्रह) । लिखधार—खिजदार (वही) । ५०२—आँच०—ऐंचत चीन्हव सीच परै (संग्रह) । गुली—पुली (वही) ।

[५००] छानत=बाँधते हो । [५०१] दिन०=बुरे दिन डालकर । रातैं=रात्रि; अनुरक्त होना । [५०२] सौंधो=सुगंध । नकवानी=नाक में दम होना ।

क्यौं हौ घनआनंद पपीहनि को गति कहा,
मन भए पंगु ये तिहारी एक दौर के ॥५०४॥

सवैया

कोगति की मति की गति की अति की रति प्रापतिदाइनि देखी।
देवनदी-अहियान-पदी महिमान बदी स्रुति साखि बिसेखी।
और कहौ कहि कौन सकै घनआनँद यौं उर ही अवरेखी।
तरेई तीर तिविक्रम, ताकि दया करि दै बिदिसा अनिमेखी।।५०५॥

कबित्त

नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा,
रूप के बिधान को बखान कहा सूर सौं।
सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ो दिन भरै भखि ऊरसौं।
चाह की चटक तें भयौ न हियँ खोंप जाके,
प्रेम - पीर - कथा कहै कहा भकभूर सौं।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कौं,
दैया कहूँ काहू कौं परै न काम कूर सौं ॥५०६॥

सवैया

नेह सौं भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूपउज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति ॥५०७॥

५०४—भुलाने—लुभाय (संग्रह)। और—रौर (वही)।

[५०५] अति०=अत्यंत प्रेमप्राप्ति की दात्री, अत्यंत प्रिय बना देनेवाली। देवनदी=गंगा। अहियान=शेषशायी विष्णु के पद से उद्भूत। श्रुति=वेद। अवरेखी=विचार किया। तिविक्रम=त्रिविक्रम, वामन का अवतार। बिदिसा=विदिशा, एक नदी। पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है। वामन ने त्रिविक्रम रूप इसी के तट पर धारण किया था। अनिमेखी=निरंतर। [५०६] सूर=अंधा। भरै=काटता है भखि०=खाकर। ऊरसौं=कुरसी, स्वादहीन वस्तु को। खोंप=कोंपल, अंकुर। भकभूर=उजड्ड, मूढ़। [५०७] नेह=प्रेम; घृत। भोय=भिँगाकर। सँजोय=जलाकर। दसा = अवस्था; बत्ती।

कृपाकंद

कवित्त

नेक उर आएँ ही बहुत दुख दूरि जात,
ताप बित्त ताहि आप चंदन कृपा करै।
लगनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि दै,
जागनि जगाय लैकै मंदन कृपा करै।
बानी के बिलास बरसावै घनआनँद है,
मूढ़ हू प्रगट गूढ़ छंदन कृपा करै।
आरति - निकंदन मिलावै नंदनंदन सु,
आनँदनि मेरी मति वंदन कृपा करै ॥१॥

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर कौन गनै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू हैं तौ न छूहैं हम,
छीलर रचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।
महा घनआनँद घमड पाइयति जहाँ,
सोच सूखा परौ करमठ दुख दाहे कौं।
ऐसी रसरासि लहि उलह्यौ रहत सदा,
कृपादिखवैया काहू दिसि देखै काहे कौं ॥२॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं सु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
दरसै नित नैननि बैननि ह्वै मुसकानि सौं रंग महा लहियै।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि है बहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३॥

[१] मंदन=मंद बुद्धिवालों पर। मूढ़०=मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति०=क्लेशनाशक [२] डरे०=फेंके रहें। छीलर=तलैया। [३] जीवनी=संजीवनी।

स्याम-सुजान-हियैँ बसियै रहै नैननि त्यौँ लसियै भरि भाइनि ।
बैननि बीच बिलास करै मुसकानि सखी सौँ रची चित चाइनि ।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि ।
चेरी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ।।४।।
बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दृस्टि कृपाऽरु समाधि कृपाई ।
ज्ञान कृपा गुन-गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई ।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-संपति साधि कृपाई ।
यौँ सब ठाँ दरसै बरसै घनआनँद भीजि अराधि कृपाई ।।५।।
बलकै झलकै मुख रंग रचै उघरै गुन-गौरव सील ढकै ।
मन बाढ़ि चढ़ै अति ऊरध कौँ टक-टेक सौँ स्याम सुजान तकै ।
जक एक, न दूसरी बात कहूँ घनआनँद भीजि कै प्रेम पकै ।
दृग देखि छकै उछकै कबहूँ न छबीली-कृपा-मधुपान छकै ।।६।।

कवित्त

मंजु गुंज करै राग-रचे सुर भरै,
प्रेमपुंज छबि धरै हरै दरप मनोज को ।
चाव-मतवारो भाव - भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के चोज को ।
और फूल भूलि रीझ भीजि घनआनँद यौँ,
बंदी भयौ एक वाही गुन-गन-ओज को ।
बानी रससानी ता मधुब्रत की, लह्यौ जिन
कृपा - मकरंद स्याम - हृदय - सरोज को ।। ७ ।।

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहै न लहै गति मोहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।

६–छबीली–छबीले (वृंदावन) । ७–रससानी–रसरानी–(वृंदा०) ।

[४] रची=अनुरक्त । [५] आधि=मानसिक क्लेश । ठाँ=स्थान । [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है । सील०=शिष्टता न रह जाए; शील से आवृत हो जाए । उछकै न=नशा उतरेगा ही नहीं । मधु=शहद; शराब । [७] चोज=उमंग ।

रीझनि लै भिज्यौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को ।
मोल लियो बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ॥८॥
नेम लियो सब बातनि तैं अब बैठिहै साधि कै त्याग महातप ।
प्रेम थप्यो घनआनँद-रूप सौं देखि तप्यो जम-बाद को आतप ।
कैसैं कहै कछु भोई मवाद मिलै बड़ी बेर सौं याहि मिल्यो टप ।
मौन हू जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै जीभ कृपा-जप ॥९॥
क्यों हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसे तैं ।
हाथ चढ़ै जिहिं स्याम सुजान कहूँ तिहिं पायन रे परसे तैं ।
नीरस मानस ह्वै रसरासि बिराजत नैसिक जा सरसे तैं ।
ऊसर हू सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसे तैं ॥१०॥
ज्यौ परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है अंगनि धोइबो ।
त्यौं मन कौं तिनकै दरसे बिन बादि बिचारनि बीच घँघोइबो ।
वे घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भ्रम भार अपारहि ढोइबो ।
जागत भाग कृपा-रस पागत दीखत यौं सहजै सुख सोइबो ॥११॥
आयु जो वायु तौ धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं ।
ताहि महागति तोहि कहा गति बैठे बनैगा बिचारत क्यौं नहीं ।
नेमनि संग फिरै भटक्यो पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं ।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं ॥१२॥

कवित्त

चाहियै न कछू ताको चाह जातैं फल पायो,
यातैं बाहा बन के सरूप नैन कीनो घरु ।

९-त्याग-ज्ञान (राम) । जम-जग । जीभ-एक (वही) । ११-भ्रम-भरि (राम) । पागत-माँगत (लंदन) । १२-आयु०-आय जो छाय (राम) ।

मधुव्रत=भ्रमर । [८] गति=मोक्ष । [९] आतप=धूप । टप=शीघ्र । [१०] परसे तैं=क्या तूने स्पर्श किया ? मानस=मन; मानसरोवर । नैसिक=थोड़ा । [११] ज्यौ=जी, चित्त । घँघोइबो=गंदे जल में डुबोना । [१२] महागति=परम

जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की छवनि छायौ,
लसत सदाई कूल-कालिंदी सुदेस थरु।
महा घनआनँद फुहार सुखसार सींचे,
हित-उतसवनि लगाय रंग-भरयौ भरु।
प्रेम - रस - मूल-फूल - मूरति बिराजौ मेरे,
मन - आलबाल कृस्न - कृपा को कलपतरु ॥१३॥

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखैं पै हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ।
तातैं सबै तजि स्याम सुजान सौं साहस औरै हियैं अवरेख्यौ।
जे निरखे उरभै तिन मैं किनहूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ।
प्रान-पपीहन कौं घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ॥१४॥
काहे कौं सोचि मरै जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है।
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं सुख जीहै।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सठ! साधन-छीलर छीहै।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे! बचाय ही लीहै ॥१५॥

कवित्त

साँवरे - सुजान - रंग - संगमतरंग - भीजी,
दरस - परस - पैज - पूरन बसीठि है।
एक गुनहीननिहीं सूझत सरूप जाको,
कृपा-मद-अंध तिन्हैं सपनैं न नीठि है।

१३-ताकी-जाकी (राम)। जातैं-तासौं (वही)। १४-हौं-मैं (वृंदा०, लंदन)। सोच०-सूचक छीन (लंदन)। कृपा०-कृपाकर (वृंदा०)। १६-संगम-संग मति रंग (राम)।

गति। गति=अर्थात् शक्ति। पारत०=पालता क्यों नहीं। [१३] वन=वृंदा-वन। सुदेस=सुंदर। [१४] अनलेखे=अगणित। बिन०=सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] छीलर=तलैया। छीहै=छूएगा। [१६] पैज=

सदा घनआनँद बरसि प्रान - चातकनि,
पोखति पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है।
साधन असाधन त्यौं सनमुख होदि कैसैं,
सबै दिसि पीठि कृपा-मन तन दीठि है ॥१६॥

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चोंचि की खोंच सु क्यौं करि धारौं।
त्यौं रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौं।
पै गुन ताके अनेक लखौं निहचै उर आनि कै एक बिचारौं।
कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि सम्हारौं ॥१७॥

कवित्त

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मंडन है,
बन घन राजै रसनायक निसंक है।
आनँद - अमृत - कंद बंदनीय प्रानन को,
सुषमा संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा - चंद्रिका - मै नंदनंदन मयंक है ॥१८॥
हरि हू के जेतिक सुभाव हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिन ढरै दातुरी।
दीनता न आवै तौ लौं बंधु करि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूर भाजैं देखि चातुरी।

१७–सम्हारौं–सहारौं (कवित्त)।

प्रतिज्ञा। बसीठि=दूती। नीठि=कठिन। ईठि=इष्ट। [१७] खोंच=कोंछ, झोली। रतनाकर=रत्नों का समूह। जीरन=जीर्ण, पुराना। [१८] चितारिबो=ध्यान में लाना। तारा=पुतली; आकाश का तारा। मित्र=सखा; सूर्य। आनँद०=

गुननि बँधे हैँ निरगुन हू अनंदघन,
मति वीर यहै गति चाहैँ धीर जातु री।
आतुर न ह्वै री अति चातुर बिचार थकि,
और सब ढीले कृपा ही कैँ एक आतुरी ॥१९॥

सवैया

हौ गुनरासि ढरौ गुन ही गुनहीनन तैँ सब दोष प्रमानैँ।
हा हा बुरौ जिन मानियै जू बिन जाँचैँ कहौ किन दानि बखानैँ।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैँ हैँ हम हूँ कहूँ रीझि बिकानैँ।
बूझौ कहैँ कहा एक कृपाकर रावरे जौ मन के मन मानैँ ॥२०॥

कवित्त

रही न कसरि कछू साधन के साधिबे की,
स्रम तैँ बचाय राखैँ सुखन सौँ सानि हैँ।
लोक परलोक भ्रम भूलि गए सुधि आएँ,
चरित अनेक एक एक रसखानि हैँ।
तापु बापुरेनि की सिरानी आय नेकु ही मैँ,
छाए घनआनँद सुबात-बस आनि हैँ।
अब पहचानि हमैँ चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा-लौनैँ पहचानिहैँ ॥२१॥

सवैया

जल मैँ थल मैँ भरि पूरि रही सम कै दिखरावति है बिसमैँ।
सम रूप सदा गुनहीनन सौँ निज तेज तैँ त्रासति ताप-तमैँ।

१९-कौ०-को जोतिक (राम)। ढरै-बढ़ै (कवित्त)। २०-ढरौ-बढ़े (लंदन)। रावरे-रावरो (वही)। २२-सरसैँ-दरसैँ (लंदन)। अरसैँ-सरसैँ (वही)। तिन-नित (लंदन)।

आनंदरूपी अमृत का बादल। मैं=युक्त [१९] दातुरी=(दातृत्व) दान की वृत्ति। वीर=हे सखी। [२०] कृपाकर=कृपा की खान। [२१] बात=वायु; वचन। [२२] सम०=विषम को भी सम कर देती है। अरसैँ=चलने मैं

घनआनँद जीवनरासि महा वरसै सरसै अरसै न गमैं ।
तिन प्राननि संगम रंग अभंग कृपा दरसी सब ठौर हमैं ॥२२॥

पद

भजि मन कृपासहित सुखरासि ।
सो राधिका दृगनि अभेद गुन दृस्टि रूप नित रही प्रकासि ।
वदन-कमल मधि स्याम भँवर हित मंद हँसनि रसढरी विकासि ।
रसिकहि पान कराय छिनक मैं डारति विषम वियोगहि त्रासि ।
हियहीं वसति लसति जिहिं ढरकति कोरि कोरि माखन उपहासि ।
जगजीवन मय है आनँदघन तिस उपजावति प्यासहि नासि ॥२३॥

कृपाकलपतरु श्रीगोपाल ।
अति रसमय अचिंत्य फलदायक प्रफुलित सदा धरैं वनमाल ।
गोपीजन - मन - आलवाल मधि सोभित सोभामूल रसाल ।
चढ़ि वढ़ि भाव-वेलि चहुँ दिसि तैं ललित केलि सुख वलित विसाल ।
गुन अनंत साखा सुदेस लसि राजत रुचिर चरित्र-प्रवाल ।
मधुर रूप मकरंद वृस्टि दृग-मधुप पपीहा पन-प्रतिपाल ।
अवनीमनि वनराज भाग पर जगमगात जगि जोतिनि जाल ।
सेवित छवि छाया आनँदघन अखिल तापमोचन सब काल ॥२४॥

कोऊ कृपा-वल दूवरो है करि क्यौं नहिं साधन के सत साधौ ।
लीन कै लोयन प्रान मनौ किन कोऊ समाधिहि ऐंचि अराधौ ।
मेरैं कृपा घनआनँद है रस भीजैं सदा जिहिं राधिका-माधौ ।
ता विन ते स्रम-सूल सहैं भ्रम-भूल लहैं सु न एक न आधौ ॥२५॥

२३–तिस–संग (वृंदा०) । २५–सत–सव, सव (संग्रह) ।

आलस्य नहीं करती । [२३] माखन=मक्खन । तिस=(तृष्णा) लालसा, प्रेम । [२४] आलवाल=थाला । रसाल=रसिक रसमय । सुदेस=सुंदर । प्रवाल=नए पत्ते, कोंपल वनराज=वृंदावन । भाग=आधार, अंचल । [२५] सत=

कवित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौ,
साधन को महा मतसार गहि ताहि तू।
प्रेम सो रतन जातैं पाइहै सहज ही मैं,
वह नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद त्यौं चकोर कै सु,
बाढ़त अमंद यौं तरंगनि उमाहि तू।
बोहित बिलास हू चढ़ाय लैहै सोई हा हा,
कृस्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥२६॥

पद

जौ पै तो मुख नेकु निहारौं।
बहुतै बहुत प्रान-सर्बसु लै वारि सकौं तौ वारौं।
तोही तैं जीहा मझार की सब अभिलाष उघारौं।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरनि-संग सम्हारौं।
क्यौं कहि सकौं उचित अनुचित की कृपा-भरोसो धारौं।
आनँदघन प्रीतम सुजान हो मौनहि गहैं पुकारौं ॥ २७॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध को अध-आवन-आस-बिसास तहीं।
गति औसर की अति दीसि परी बरुनी खुलि फेरि मिलें कि नहीं।
इहि बीच बिचारियै जीवन सौं मरियै तिहि साधन-सोच महीं।
घनआनँद-बात-कृपा-बस है अब यौं सब ही. करतूति रहीं ॥२८॥

२६–वह–वहै (राम)। २७–तोही०–त्यौं ही तौ हिय के (राम)। की–कौं (वही)। २८–तहीं–नहीं (राम)। मिलें०–फिरै कि नहीं। बात–गात। है–ह्व (वही)। सत्त्व, बल; सौं। एक=एक क्या आधे की भी प्राप्ति नहीं होती। [२६] नेग०=भेंट हो जाय। बोहित=जहाज। [२७] उघारौं= प्रकट करूँ। [२८] गति० = जीवन की गति अवसर मात्र है।

कवित्त

बिना माँगे देत माँगि लेत सु तौ मूढ़ तातैं
गूढ़ गति जानिबे कौं प्रभु हौ उदार हौ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन रिझवार हौ।
गुननि सरूप छाय रहे घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ।
बिपति तिनैंई परौ जिनके न पति तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥२९॥

सवैया

औगुन हूँ करि लेत गुनैं निगुनीनि ढरै गुन की अधिकाई।
झूमि रही घनआनँद यौं बरसै सरसै सुख-सीतलताई।
मोहिं महारस-रासि मिली जिन पागि दई मति-मोद-मिठाई।
रीझि कृपा लखि रीझि रही अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥३०॥
जे करतूति पचैं दुहुँलोक लै तेही लहौ जु कछू उन पायौ।
कोप-कृपानिधि के हिय तैं हम रंकनि बाँट कृपा-धन आयौ।
जाहि न भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥३१॥
सदा द्रव मूरति प्रेम पगे भली भाँति जगे भए आप हि आप।
महा निहचै सौं रचे रचना पै हियैं सियराने प्रबोध प्रताप।
खिले हित रंग मिले नित संग झिले सब अंग हिले चित चाप।
कृपा घनआनँद छाँह बढ़े तिन्हैं ब्यापत क्यौं दुख-आलप-ताप ॥३२॥

२९–देत–(राम) में नहीं। प्रभु०–प्रभु अति ही (राम)। सदन–सदा न (लंदन)। तिनैंई–तिनहि (राम)। ३२–द्रव–द्रव (राम)। लगे–जगे। रचना०–रचियै हिय के। झिले–झले (वही)। चाप–जाप (लंदन)।

[२९] बूझ=बुद्धि। [३०] अकि=या कि, अथवा। [३१] करतूति०=जो कर्म-साधन मैं परेशान रहते हैं। [३२] द्रव०=कोमलता की मूर्ति। हिले०=चित्त के

कवित्त

मन की जनाऊँ ताके मोहन ही हौ हो कान्ह,
जानराय गुनहिं लगाऊँ कैसेँ दोष जू ।
बिनाई कहूँ करौ तौ कहिबे की कहा रही,
कहूँ क्यौं न करौ दान-प्रान-परितोष जू ।
तुम्हैँ रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू ।
आनँद के घन झूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत लता-पोष जू ॥३३॥

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कौं ।
जातेँ सुधि भूलै सो कृपा तेँ पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसेँ सुधि हौन कौं ।
मेरी सुधि भूलहि बिचारियै सुरतिनाथ,
चातक उमाहै घनआनँद अचौन कौं ।
ऐसी भूल हू सौं सुधि रावरी न भूलै क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौं तौ सम्हारौं फिरि कौन कौं ॥३४॥

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौं जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू ।
मिटिहै तब ही तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू ।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरा ह्वै रही झूलिहै जू ।
सुधि कौन करै इन चातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥३५॥

३३—मोहन०—मोह नाहिँ है (राम) । दान—दीन । हेत—हित (वही) ।
३४—कूकौं कहूँकौं (वृंदा०) । ३५—अब यौं—अटयौं (वृंदा०) ।

सतरंगी धनुष से युक्त । [३३] मोह=भ्रम । [३४] सुधि०=प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो आती है । अचौन=आचमन, पीना । [३५] झूलिहै=झूल जायगी, समाप्त हो जायगी ।

कवित्त

रसिक रँगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैँ।
कृपा धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही बिना बूझैँ रिझवार हैँ।
चाह-आलवाल औ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैँ।
नित हित-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्राननि अधार नंदनंदन उदार हैँ ॥३६॥

सवैया

हारे उपाय, कहा करौँ हाय, भरौँ किहि भाय मसोस यौँ मारै।
रोवनि आँसू न नैननि देखैँऽरु मौन मैँ व्याकुल प्रान पुकारै।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सहारै।
है तिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहै पिय-पायनि पारै ॥३७॥
जिहि पाय की धूरि लौँ जाय न पौन करै इहि भाय कौँ गौन-समै।
तिहि दूरि किती कहि औधि बिचारि, बिचारत क्यौँ न कहा बिरमै।
गति बूझ परी, किन सूझत रे, कहिबो न छियै किहि धौँ सुगमै।
घनआनँद आहि कृपा नियरो भजि लै रसमै तजि दै बिषमै ॥३८॥

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैँ अनमिले कछू करि न सकौँ तरक।

३६–अचाह–अचाही (वृंदा०)। ३८–बूझि–सूझि (वृंदा०, लंदन)। किन०–सु न बूझत क्यौँ (वही)। छियै–छिवै (राम)। ३९–वैरी०–ऐसी। जियै (राम)।

[३६] अचाह०=अचाह व्यक्ति के लिए कल्पवृक्ष। [३७] मसोस=पछतावा। पारै=डाले। [३८] किहि०=किस प्रकार। आहि=है। रसमै=आनंदमय, प्रेम रूप। बिषमै=विषमय; विषम। [३९] मरक=खिचाव। ढरक=ढलना।

जियौं तुम ह्वाँ तैं बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बसि बैरी ऐसी राखियै मरक ।
देखि देखि ढूँढ़ौं दुख-दसा देखि मिलौ, हा हा
मात औ बिसारौ यह कसकै नई करक ।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसँ सोई है कृपा-ढरक ॥३९॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भरयौ अति उत्तम नीच मैं ।
नीरसता सरस्यो नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैं ।
ऐसो अचेत जु साँच कियौ भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं ।
ज्वाल-जरयौ अब होत हरयौ हरि नेकु कृपा-घनआनंद-सीच मैं ॥४०॥

दोहा

सुख-सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारै सीस ॥ ४१ ॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिँ लगाव न लेस ।
इहि उमंग फूल्यो रहौं, बसौं कृपा के देस ॥ ४२ ॥
मो से अनपहचान कौं पहचानै हरि कौन ।
कृपा-कान मधि नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥ ४३ ॥

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ ।
आनँद-पयोद है सरस सींचे रोम-रोम,
भाव - निरभर लै सुभाव - सर भरे हौ ।

४०—न—सु (रान) । ४२—मोहिँ—मोह (वृंदा०) ।

[४०] नीच=नीच मन । भ्रम = मिथ्या संसार । मीच=मृत्यु । [४१] अवनीस= हम राजा हो गए । [४२] इहि०=क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं । [४३] कृपा०=जिस प्रकार आपके नेत्रों में कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रंग ररे हौ ।
ऐसैं क्यौं सुखैये सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४४॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा - नैन, बरसौ पै दरसौ नहीँ ॥४५॥

दोहा

तुम नियरे अति दूरि हौँ, मिलन उपाय न कोय ।
एक ढरौंहीँ कृपा तैं अनहोनी हू होय ॥४६॥

सवैया

संग लगे फिरौ हौँ अलगौ रहौ मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीँ ।
नीरस राचनि हौ सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीँ ।
ढालो परयौ तुम तैं घनआनँद हौ गुनरासि खगावत क्यौं नहीँ ।
जागत सोवत से हौ कहा वहौ सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीँ ॥४७॥

कवित्त

लखैं नहीँ जनम अलेखैं तौ सकल वातैं,
ऐसो जग-पैठ मैं गवैंचाई लहौंगो कहा ।

४४–जनाय–जनाई (राम) । सरभरे–गहभरे । रंग–रस (वही) । संग–भंग (वृंदा०) । ऐसैं–ऐसी (वही)। ४५–वरसौ०–दरसौ पै वरसौ (राम)। ४६–ढरौंहीं–करौ हरि (राम)। ४७–अलगौ-अलगे (राम)। वहौ–वहु (वृंदा०), वहाँ (लंदन) ।

भी मौन मैं है। [४८] ढरनि=ढलना। ढरहरे=ढलनेवाले, कृपालु। आनँद०= आनंद के बादल, घनआनंद। निरभर=निर्भर, पूर्ण। गहभरे=भली भाँति भरे हुए। रस०=रसयुक्त। नीठि=कठिनाई से भी। [४५] रस=जल; प्रेम। ऐन= अयन, घर। [४६] एक०=अद्वितीय; केवल। [४७] खगावत०=बाँधते या

आयौ सरन विकार भरयौ ।
तुम सरवज्ञ अज्ञ हौं वहु विधि जु कछु न करिवे सु कछु करयौ ।
सदा दयाल दीन - दुख - मोचन यही सुमिरि सवहीं विसरयौ ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा द्वार परयौ ॥५१॥

भूल - भरे की सुरति करौ ।
अपनी गुननिधानता उर धरि मो अनेक औगुन विसरौ ।
या असोच कौं सोच कीजियै हा हा हो हरि सुढर ढरौ ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा-तपति हरौ ॥५२॥

करौ सु ज्यौं चित चरन जटै ।
हित - मकरंद पान करि कवहूँ कहूँ न काहू भाँति वटै ।
ताप-कला प विलाहिँ कृपानिधि सव विधि मोहादिकनि हटै ।
पन-पराग रचि परचि अरचि रुचि सुचि सुरूप गुनगननि रटै ।
वार वार विनती है हो हरि हो पूरन सुनि कहा घटै ।
दुखित दीन चातक आनँदघन एक तिहारी ओर डटै ॥५३॥

सवैया

सुरझै किन रे उरझै मन तू ममता गुरझैं उरझावत क्यौं ।
जित को तित ही लगि ह्वै अलगौ इत के हित-फंदनि आवत क्यौं ।
घनआनँद करुन-कृपा-रस कौं करि पान जियैं न जिवावत क्यौं ।
निहचै जचि रे परिचै रचि रे थिरता सचि रे भ्रमि धावत क्यौं ॥५४॥

५४—रे—दै (राम) । हैं—है । जियैं—हियैं । परिचै—पचि रे (वही) ।

निर्जन, जनरहित । अजिर = आँगन । लागौगे=प्रवृत्त होओगे । रागौगे = प्रिय लगोगे । [५१] कृपाकंद=कृपा के वादल । आनंदकंद=आनंद के मूल । [५२] सोच=चिंता, फिक्र । [५३] जटै = जुड़ जाय । वटै= हटे, वहके । कलाप=समूह । [५४] गुरझैं=गाठैं । सचि=संचित कर ।

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन - कृपा - पियूष पालत रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैस के पनन कौं।
गोविंद गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद - गेह
गिरा अगराई गुन - गरिमा - गनन कौं।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक ह्वै,
चाहत है सांनिधि सवादनि सनन कौं ॥५५॥

विष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भलो सबै दिस तैं रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ विषै विस तैं रे।
परयौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तैं रे।
नित हितमय उदार आनंदघन रस बरसत चातक-तिस तैं रे ॥५६॥

पद

तुम्हैं रुचै सो रचौ कृपानिधि।
हम कछु जानत नाहिं बापुरे दीन हीन सब भाँति विधि अविधि
सुनि सुचि साख सदा तें स्वामी रहे रसीले गुननि गनत गिधि ॥
चातक-जन-पुकार आनँदघन अब दरसैं बरसैं ही पन सिधि ॥५७॥

५५–पालत–पालन (राम)। गहे–रहे। अगराई–अरगाई (वही)। सांनिधि–सनिधि (वृंदा०) ५६–हितमय–हित में (राम)। चातक०–आनँद मिस (वही)। ५७–गिधि०–प्रीति जानि (राम)।

[५५] जन=दास। अपनैन०=अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अगराई=अग्रता, श्रेष्ठता। [५६] सटकनि=हटना। गटकनि=पीना। तिस=तृष्णा। [५७] विधि=विहित कर्म। अविधि=निषेध; निषिद्ध कर्म। साख=प्रसिद्धि। गिधि=परचकर;

जिहि लजाउ सु न कीजै स्वामी ।
मो मन दसा असाधि कृपानिधि कहौं कहा हौं अंतरजामी ।
असुचि असोच पोच पै गुन सुनि उरझत मुरझत पतित सकामी ।
सरसि दरसि बरसौ, परसौ जू आनँदघन चातक-हित नामी ॥५८॥

कवित्त

दान के विधान यौं बखानत सुजान संत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैँ ।
सूछम पुनीत पै निपट ताकी रीति नीति,
जानत जे एक दानी एही रसवंत हैँ ।
फल आगैँ लागै पाछैँ अंकुर मनोरथ को,
पानिप - निधान मान - महिमा - महंत हैँ ।
तातैँ मन चातक तू पन लै सजीवन सौँ,
कृपा - घनआनँद अधार जगजंत हैँ ॥५९॥

पन ऊँची दीठि नीठि नीचियो न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के ।
सुधा कौँ सुरालै लखै नीच कीच कैसैँ चखै,
तोपे रस-पोपे घनआनँद अमंद के ।
जिन पर रीझ-भीजे छाए सुख-संपै लियैँ,
लसत रसत प्यारे जसुमति नंद के ।
तिन्हैँ तेई तकैँ तेऊ तहीँ पान छकैँ और,
कैसैँ देखि सकैँ जे अजाची जगवंद क ॥६०॥

५८—एही०—राय साजवंत । जगजंत—जराजत (वही) । ६०—संपै०—संपदा लै (राम) ; सबै लियै (वृंदा०) । तहीँ—तिहि (राम) । सकैँ—जकैँ (राम) ।

लुभाकर । [५८] पोच=नीच । [५९] जगजंत=जगद्यंत्र । [६०] कंद=बादल । सुरालै=सुरालय, मदिरा का स्थान या देवलोक । संपै=(शंपा)

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन - कृपा - पियूष पालत रहे हौ सदा,
प्रानन तें प्यारे अपनैन के पनन कौं।
गोविंद गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद - गेह
गिरा अगराई गुन - गरिमा - गनन कौं।
मन घनआनँद तिहारी चोप चातक है,
चाहत है सांनिधि सवादनि सनन कौं ॥५५॥

विष्णुपद

अटकनि इतै निपट भटकनि है सटकनि भलो सबै दिस तैं रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ विषै विस तैं रे।
पर्यौ अचेत प्रेत जीवत ही अजहूँ सम्हरि मोह-निस तैं रे।
नित हितमय उदार आनदघन रस बरसत चातक-तिस तैं रे ॥५६॥

पद

तुम्हैं रुचै सो रचौ कृपानिधि।
हम कछु जानत नाहिं बापुरे दीन हीन सब भाँति विधि अविधि
सुनि सुचि साख सदा तें स्वामी रहे रसीले गुननि गनत गिधि ॥
चातक-जन-पुकार आनँदघन अब दरसें बरसें हौ पन सिधि ॥५७॥

५५—पालत—पालन (राम)। गहे—गाय। अगराई—अगराई (वही)। सांनिधि—सर्वनिधि (ह० दा०)। ५६—हितमय—हित में (राम)। चातक०—आनँद मिस (वही)। ५७—गनि०—[illegible] (राम)।

[५५] जन=दास। अपनैन०=अपनों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अगराई=अग्रता, श्रेष्ठता। [५६] सटकनि=हटना। गटकनि=पीना। तिस=तृष्णा। [५७] विधि=विहित कर्म। अविधि=निषेधः निषिद्ध कर्म। साख=प्रसिद्धि। गिधि=परचाव,

जिहिं लजाउ सु न कीजै स्वामी ।
मो मन दसा असाधि कृपानिधि कहौं कहा हौं अंतरजामी ।
असुचि असोच पोच पै गुन सुनि उरझत सुरझत पतित सकामी ।
सरसि दरसि बरसौ, परसौ जू आनँदघन चातक-हित नामी ॥५८॥

कवित्त

दान के विधान यौं बखानत सुजान मंत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं ।
सूछम पुनीत पै निपट ताकी रीति नीति,
जानत जे एक दानी एहो रसवंत हैं ।
फल आगैं लागैं पाछैं अंकुर मनोरथ को,
पानिप - निधान मान - महिमा - महंत हैं ।
तातें मन चातक तू पन लै जजीवन सौं,
कृपा - घनआनंद अधार जगजंत हैं ॥५९॥
पन ऊँची दीठि नीठि नीचियौ न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के ।
सुधा कौं सुरालै लखै नीच कीच कैसैं चखै,
तोपे रस-पोपे घनआनँद अमंद के ।
जिन पर रीझ-भीजे छाए सुख-संपै लियैं,
लसत रसत प्यारे जसुमति नंद के ।
तिन्हैं तेई तकैं तेऊ तहीं पान छकैं और,
कैसैं देखि सकैं जे अजाची जगबंद के ॥६०॥

५८—एही०—राय माजवंत । जगजंत—जराजंत (वही) । ६०—संपै०—संपदा लै (राम) ; सवै लियै (वृंदा०) । तहीं—तिहि (राम) । सकैं—जकैं (राम) ।

लुभाकर । [५८] पोच=नीच । [५९] जगजंत=जगदुयंत्र । [६०] कंद=बादल । सुरालै=सुरालय, मदिरा का स्थान या देवलोक । संपै=(शंपा)

सवैया

द्वारे न जाइहौं जू जन के जगदीस तिहारियै पौरि परथो हौं ।
आस की पासहि काटि कृपा-बल पूरन पैज भरोसैं भरथौ हौं ।
है अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अरथौ हौं ।
हौ पनधारी सुने घनआनँद सींचन की अभिलाष हरथौ हौं ॥६१॥

कवित्त

दौरि दौरि थाक्यो पै थके न जड़ दौरनि तें,
गति भूले मन की न दुरी कछू तोतें रे ।
तातें ठौर दीजै याहि, सुधि लीजै मोदघन,
बूझियै न बिड़रथो अनाथ तोहि होतें रे ।
हाय हाय हे अमोही हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब हैहै वही रची जो तैं रे ।
आस-बिसवास दै असाधन हूँ साधि लै न,
साधन कृपा है और कहा सधै मोतें रे ॥६२॥

६१–द्वारे०–द्वार न जाइहै या (राम)। हौं–हैं। की–के। भरोसैं–भरोसो। सुने–सुनो (राम)। हरथौ–अरथौ (वृंदा०, लंदन)। ६२–थके०–थक्यो न तऊ (राम)। दुरी०–न दूरि। दै०–ऐन साधन हूँ साधन दैन (वही)।

बिजली; (संपत) धन-संपदा। जगवंद=जगद्वंद्य। [६१] जन=साधारण जन। पौरि=द्वार। पास=पाश, फंदा। खरो०=अत्यंत क्षुब्ध होकर। हरथौ= हराभरा; प्रसन्न। [६२] मोदघन=आनंद के बादल, घनआनंद। बिड़रथो=छिन्न भिन्न। होतें=होते हुए।

वियोग-बेलि

(बंगाली बिलावल)

सलोने स्याम प्यारे क्यौं न आवौ।
दरस-प्यासी मरैं तिनकौं जिवावौ ॥ १ ॥
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ।
लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हौ ॥ २ ॥
रहौ किन प्रान - प्यारे नैन - आगैं।
तिहारे कारनै दिन - रैन जागैं ॥ ३ ॥
सजन ! हित मानि कै ऐसी न कीजै।
भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ॥ ४ ॥
कहौं तब प्यार सौं सुखदैन बातैं।
करौ अब दूरि तें दुखदैन घातैं ॥ ५ ॥
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ !
अकेली कै हमैं ऐसैं दुरे हौ ॥ ६ ॥
सुहाई है तुम्हैं यह बात कैसैं।
सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसैं ॥ ७ ॥
दिखाई दीजियै हा हा अमोही।
सनेही है रुखाई क्यौंऽब सोही ॥ ८ ॥
तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनै।
हिये मैं लै, दिये बिरहा अभूनै ॥ ९ ॥
उजारौ जौ हमैं काकौं बसैहौ।
हमैं यौं ख्वाय कै औरैं हँसैहौ ॥ १० ॥
कहौं अब कौन सौं बिरहा - कहानी।
न जानौ ही न जानौ ही न जानौ ॥ ११ ॥

२–हैं–जू (लंदन)। ३–रैन–रैनि (काँक०)। ९–ये–यह (लंदन)। ११–कहौं–कहैं (सभा)।

[९] अभूनै=(अचीण) पुष्ट आग, हृदय मैं प्रचंड आग लगी है।

लिखौं कैसैं पियारे प्रेम - पाती ।
लगै अँसुवन झरी है टूक छाती ॥ १२ ॥
पर्‌यौ है आनि कै ऐसो अँदेसो ।
जरावै जीभ अरु कानन सँदेसो ॥ १३ ॥
दसा है अटपटी पिय आय देखौ ।
न देखौ तौ परेखौ है परेखौ ॥ १४ ॥
अजू ऐसैं कहौ कैसैं वितैये ।
अवधि बिन हूँ सदा पैंडो चितैये ॥ १५ ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ।
पुकारौं मौन मैं कहिबो न आवै ॥ १६ ॥
अचंभे की अगनि अंतर जरौं हौं ।
परौं सियरी मरौं नाहीं भरौं हौं ॥ १७ ॥
कहा जानै तुम्हारे जी कहा है ।
असोची मोहिं तौ संसौ महा है ॥ १८ ॥
निहारे मिलन की आसा न छूटै ।
लग्यौ मन बावरो तोरैं न टूटै ॥ १९ ॥
अजौं धुनि बाँसुरी की कान बोलै ।
छबीली छैल-टोलनि - संग डोलै ॥ २० ॥
सलोनी स्याम - मूरति फिरै आगैं ।
कटाछैं बान से उर आनि लागैं ॥ २१ ॥
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै ।
चितवनी बंक जियरा-बीच सालै ॥ २२ ॥

१२–लिखौं–लिखौं । १३–जीभ-जीव (वही) अरु–औ (सोज) । १६–कहिबो–कहिबे (सभा) । १७–अगनि–अगिन (वही) । सियरी–सीरी (वृंदा०, सभा) । १८–जानै–जानो (सभा) । तुम्हारे–तिहारे । तौ०–तोसों सो (वही) । २१–से–सौं (सभा) । २२–चितवनी०–चितौनी बंक जिय मैं आय ।

हसन मैं दसन-दुति की होइँ कौधैं ।
वियोगी नैन चेटक चाहि चौंधैं ॥ २३ ॥
अधर कौं देखि प्यासे प्रान दौरैं ।
अमी के पान विन ह्वै विवस बौरैं ॥ २४ ॥
अचानक आय भेंटनि जब सतावै ।
कहौ तब की दसा कहि को बतावै ॥ २५ ॥
लगै लालन! विरह को तब चटपटी ।
कहौ कैसैं सहौं यह गति अटपटी ॥ २६ ॥
बहै तब नैन तैं अँसुवानि - धारा ।
चलावै सीस पै यौं विरह आरा ॥ २७ ॥
इतै पै जौ न पावौं पीर प्यारे ।
रहैं क्यौं प्रान ये विरही विचारे ॥ २८ ॥
सुहाई है तुम्हैं कैसैं अनैसी ।
कहैं कासौं करौ तुम ही जु ऐसी ॥ २९ ॥
जरावै नीर तौ फिरि को सिरावै ।
अमी मारै कहौ जू को जिवावै ॥ ३० ॥
जु चंदा तैं झरैं दैया अँगारे ।
चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे ॥ ३१ ॥
अजू व्रजनाथ गोपीनाथ कैसे ।
करै विरहा हमारे हाल ऐसे ॥ ३२ ॥
अचंभो है अचंभो है महा जू ।
सनेही ह्वै कहौ कीनौ कहा जू ॥ ३३ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियो है ।
वली अवलान मारन पन लियो है ॥ ३४ ॥

२३—होइँ—होत । चाहि—चाय । २४—प्रान—नैन (वही) । २५—भेंटनि—भेजनि (वृंदा०), मदन (सभा) । २६—कहौ०—कहौ कैसे इह गत । २७—यौं०—विरहा जु आरा (वही), विरह अपार (कॉंक०) । २८—पावौं—पाऊँ (सभा) ३१—प्यारे—पारे (खोज) ३३—महा—यहाँ (सभा) । ह्वै—हौ । ३४—अवलान०—अवलीन मारें सु न ।

करौ अब सो तुम्हैं आछी लगै हो ।
जसोदानंद जैसैं जस जगै हो ॥ ३५ ॥
तिहारे नाम के गुन बाँधि डारी ।
विचारी जू विचारी है विचारी ॥ ३६ ॥
दया दिखराय विनती कीजियै जू ।
परैं पायनि हियैं धरि लीजियै जू ॥ ३७ ॥
भरोसो है भरोसो है भरोसो ।
रही व्रत धरि अजू अब तौ परोसो ॥ ३८ ॥
रँगीले हौ छबीले हौ रसीले ।
न जू अपनीन सौं हूजै गर्साले ॥ ३९ ॥
तुम्हैं बिन क्यौं जियैं तुम ही विचारौ ।
बचैं कैसैं कहौ तुम ही जु मारौ ॥ ४० ॥
लगौ नीके सबै विधि प्रान - संगी ।
तिहारी मीन है प्यारे तरंगी ॥ ४१ ॥
रहौ नीके अजू घनस्याम प्यारे ।
हमारे हौ हमारे हौ हमारे ॥ ४२ ॥
तिहारी हैं तिहारी हैं तिहारी ।
विचारी हैं विचारी हैं विचारी ॥ ४३ ॥
तुम्हारे नाम पै हम प्रान वारें ।
जहाँ हौ जू तहाँ रहियै सुखारे ॥ ४४ ॥
तुम्हैं निसिद्यौस मनभावन असीसैं ।
सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं ॥ ४५ ॥
लगौ जिन लाड़िले जू पौन नाता ।
सुहाई है हमैं तुम कौं सुहाता ॥ ४६ ॥

३७–दया–दसा (गोत) । ४१–मीन–सीन (सभा) । ४६–लगौ–लगी (भरत) । नाना–नानी (सभा) ।

[४५] कसीसैं=खिंचना, क्रू. होना अर्थात् कृपा करना ।

गहौ तुम ही जु प्यारे दीन दोखै।
दया की दृष्टि सौं फिरि कौन पोखै ॥ ४७ ॥
सुरति कीजै बिसारैं क्यौं बनैगी।
बिरहिनी यौं अवधि कौं लौं गनैगी ॥ ४८ ॥
हियो ऐसो कठिन कब तैं कियौ है।
मिलौ औरन हमैं बिरहा दियौ है ॥ ४९ ॥
नहीं पाई परैं प्यारी लपेटैं।
कहौ हा हा कहाँ धौं आहि पेटैं ॥ ५० ॥
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी।
न करिहैं मान फिरि सौं हैं तिहारी ॥ ५१ ॥
चढ़ाई मूड़ अब पायनि परैंगी।
कहौ जोई अजू सोई करैंगी ॥ ५२ ॥
दई कौं मनि कै, अब आनि ज्यावौ।
पियासी हैं पियारे सुरस प्यावौ ॥ ५३ ॥
तिहारी है कछू क्यौं हूँ जियैंगी।
बिरह-घायल हियो ज्यौं त्यौं सियैंगी ॥ ५४ ॥
यही आवै अजू प्यारे अँदेसौ।
रह्यौ पहचान को ही मैं न लेसौ ॥ ५५ ॥
बिसासिनि बाँसुरी फिरि हूँ सुनैंगी।
कि यौं ही सीस औसेरनि धुनैंगी ॥ ५६ ॥
न तोरौ जू कहौ क्यौं ही ऽब जोरी।
निगोड़ी प्रीति की दुखदैन डोरी ॥ ५७ ॥
करी तुम तौ अजू गुनखान हाँसी।
परी गाढ़ी गरैं बिसवास फाँसी ॥ ५८ ॥

४७—दृस्टि वृस्टि। ४८—कौं०—कब तक। ४९—तैं—तक। ५०—आहि—आह (वही)। ५४—कछू—बिछुर (खोज)। ५६—औसेरनि—ऐसैं सिर-(वही)। ५७—ही-हूँ (सभा)। गाढ़ी—गाढै।

न छूटै जू न छूटै जू न छूटै ।
ठगौरी रावरी बिरहाऽब लूटै ॥ ५९ ॥
हमारैं एक तुम सौं टेक प्यारे ।
मिले मैं कै कपट ह्वै गए न्यारे ॥ ६० ॥
चकोरी बापुरी ये दीन गोपी ।
अहो व्रजचंद क्यौं पहचान लोपी ॥ ६१ ॥
छबीले छैल तुम कौं पीर काकी ।
बिथा की कथा तैं छतियाँ जु पाकी ॥ ६२ ॥
सजीवन साँवरे कब धौं ढरौगे ।
मरैं साधा. विरहबाधा हरौगे ॥ ६३ ॥
टरे नाहीं हिये तैं हेत - थाती ।
सम्हारौ आय कै प्यारे सँघाती ॥ ६४ ॥
बढ़ै आसा हियैं भादौं - नदी सी ।
न दीसे को मसोसो भाँवरी सी ॥ ६५ ॥
तिहारो ह्वै दुखारी बूझियै क्यौं ।
सुनो सुखदैन प्यारे दीन हैं यौं ॥ ६६ ॥
दईमारानि की अब दया आनौ ।
परैं पा दूरि तैं व्रजनाथ मानौ ॥ ६७ ॥
सनेही हौ तुम्हैं सब गाँव जानै ।
सबै मिलि रावरे गुन कौं बखानै ॥ ६८ ॥
अजू अब सक लागै प्रानप्यारे ।
सुने जिन कान मोहन गुन तिहारे ॥ ६९ ॥

५९–विरहा०–विरहीन (खोज)। ६०–हमारैं–हमारी (सभा)। मिले–मिलन। ६४–सम्हारौ–सह्यारौ (वृंदा०)। ६५–नसोसो–मसोसैं (सभा)। ६६–यौं–ज्यों (सभा)। ६८–हौ०–है तुम्है सँग राख (खोज)। ६९–संक– संग (सभा)। मोहन–मोतैं (खोज)। तिहारे–निहारे (वृंदा०)।

[६४] सँघाती=संगी ।

तिन्हँ घटि बात कैसैं सही परिहैं ।
बिना ही काज जियरा जूझि मरिहैं ॥ ७० ॥
हमैं तुम तौ लगौ सब भाँति नीके ।
करौ किरपा हरौ ये साल ही के ॥ ७१ ॥
कहा वारैं निछावरि ह्वै रहीं हैं ।
कही कौं लौं कही हैं जू कही हैं ॥ ७२ ॥
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लीजै ।
तनक मन नाम के गुन बाच दीजै ॥ ७३ ॥
धरैयै नावँ कौं अब नावँ ऐसैं ।
दुहाई है सुहाई परै कैसैं ॥ ७४ ॥
सदा तौं रावरी बिनमोल चेरी ।
घरनि तैं काढ़ि बन बंसीनि घेरी ॥ ७५ ॥
किये की लाज है ब्रजराज प्यारे ।
बिराजौ सीस पै जग मैं उज्यारे ॥ ७६ ॥
सदा सुख है हमैं तुम साथ आछैं ।
लगी डोलैं छबीले-छाँह-पाछैं ॥ ७७ ॥
तुम्हैं भेटैं तुम्हैं देखैं भले ही ।
जगे सोए 'रु बैठे हू चले ही ॥ ७८ ॥
न न्यारी हैं न न्यारौ है न न्यारौ ।
भई हैं प्रानप्यारे-प्रान-प्यारौ ॥ ७९ ॥
हमारी औ तिहारी एक बातैं ।
रँगीले रंगरातैं घौस-रातैं ॥ ८० ॥
सदा आनंद के घन स्याम संगी ।
जिवौ ज्यावौ सुधा प्यावौ अभंगी ॥ ८१ ॥

७०—घटि—घर (खोज) । ७१—किरपा०—फिर पातरो ये (सभा) । ७३—बीच—माहिँ (काँक०) । ७५—बंसीनि—बासीनि (सभा) । ७६—उज्यारे—उजारे (बृंदा) । ८१—जिवौ—जियौ (सभा) ।

[७१] साल=शल्य) पीड़ा। [७७] आछैं=रहते हुए। [८१] अभँगी=अखंड, निरंतर।

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपबधू - चित - चोर ।
आनँदघन बंदन करै, जै जै नंदकिसोर ॥ १ ॥
लगा इस्क ब्रजचंद सूँ, अंदर अधिक अनूप ।
तब ही इस्कलता रची, आनँदघन सुखरूप ॥ २ ॥
स्याम सुजान बिना लखैँ, लगे बिरह के सूल ।
तामैँ इस्कलता भई, घनआनँद को मूल ॥ ३ ॥
संजोगी हूँ इस्क सैँ, इस्क - वियोगी खूब ।
आनँदघन चस्माँ सदा, लग्या रहे महबूब ॥ ४ ॥
बिरह-सूल सोँ वारि करि, घनआनँद सोँ सींच ।
इस्कलता झालरि रही, हिये चिमन के वीच ॥ ५ ॥

अरल्ल

सजन सलोना यार नंद दा सोहना ।
रसिकबिहारी छैल सु मनमथ - मोहना ।
दिखलावो मुखचंद सु झाँकी प्यारिया ।
आनँद-जीवन ज्यान असाडी ज्यारिया ॥ ६ ॥
पल पल प्रीति बढ़ाय हुवा बेदरद है ।
आसिक-उर पर जान चलाई करद है ।
वनी हुई महबूब सु मरम न छोलियै ।
आनँद-जीवन ज्यान दया कर बोलियै ॥ ७ ॥

२–सूँ–सोँ (वेल०) । अंदर–सुंदर (खोज), अंधर (बेल०) । ४–हूँ–से ँ (वेल०) । लग्या–लगा (वही) । ६–ज्यान–जान (वेल०) ।

[२] इस्क=प्रेम । [४] चस्म=आँख । महबूब=प्रिय । [५] सूल=पीड़ा ; काँटा । बारि=काँटे की रोक । [६] दा=का (पुत्र) । सोहना= (शोभन) सुंदर । मनमथ=कामदेव । असाडी=हमारी । ज्यारिया= जिलानेवाली । [७] करद=छुरा । वनी० = बहुत चोट कर चुके ।

क्यों चितचोर किसोर हुवा वेपीर है।
भौंह कमाने तान चलाया तीर है।
अंत कहा हौ लेत नंद के लाडिले।
आनँद-जीवन ज्यान सुचित के चाडिले ॥ ८ ॥

इस्क नहीं यह होय करंदे जोर हौ।
लीना चित्त चुराय अनोखे चोर हौ।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है।
आनँद-जीवन ज्यान अटपटी रीति है ॥ ९ ॥

प्यारे प्रीत वढ़ाय लिया चित चोर कूँ।
हूठ्यो दै इठलाय चल्या मुख मोर कूँ।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौं जहर है।
आनँद-जीवन ज्यान किया तैं कहर है ॥ १० ॥

हो हलधर दे वीर चले कित जात हौ।
निठुर कान्ह महवूव न सुनदे वात हौ।
इत्थूँ आवत नाहि सु की तकसीर है।
आनँद-जीवन ज्यान वढी उर पीर है ॥ ११ ॥

भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है।
वाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है।
गावति हैं व्रजनारि फाग रँगवोरियाँ।
आनँद-जीवन ज्यान सु हो हो होरियाँ ॥ १२ ॥

८–जीवन–धन के। चाडिले–लाडिले (वही)। १०–चल्या–चलौ (वेल०), लल्या (वृंदा०)। ११–दे–के (वेल०)। न०–सुनिंदे। इत्थूँ–इत्थे। वढी०–कहा वेपीर (वही)।

[८] अंत०=मारते क्यों हो। [९] करंदे०=जवर्दस्ती करते हो। [१०] हूठ्यो०=हाथ मटकाकर। [११] हलधर०=वलदाऊजी के भाई। इत्थूँ=(अत्र) यहाँ। की=क्या। तकसीर=अपराध, चूक। [१२] चंग=डफ के ढंग का एक वाजा।

माँझ

की की खूबी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है।
वूका बंदन अगर कुमकुमा भरै गुलालन झोरी है।
आनँद-रंग घने से भिजवै हाथ लिये पिचकारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी, जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १३ ॥

अहो अहो नँद-नंद साँवरे छिन छिन बानक न्यारी है।
ओढे जरद दुसाला याराँ केसर की सी क्यारी है।
आनँदघन हित-प्यारे ज्यानी मूरत लगदी प्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १४ ॥

सजन सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है।
दरदबंद दरसन दी खातर बंदा हुकम हजूरी है।
ब्रजमोहन घनआनँद तैंडी रीति अटपटी न्यारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दो जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १५ ॥

याराँ गोकुलचंद सलोने दिया चस्म दा धक्का है।
ढारि दिया घनआनँद जानी हुसन सराबा पक्का है।
सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं याराँ झुक झारी है।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडा ज्यारी है ॥ १६ ॥

दरदबंद डाला वेदरदी खूब इस्क दा फंदा है।
हँस हँस कर मन मूसि लिया वे बडा गरीब गिरंदा है।

१३—कीकी०—····खूबी (वेल०)। से—सो। १४—ओढे—ओढौ। १५—रीति—निपट (वही)।

उपंग=जलतरंग। ताल=सँजीरा। [१३] तुसाडी=आपकी। वूका=बुक्का, अभ्रक का चूर्ण। बंदन=सिंदूर। महर=कृपा। दी=की। जिंद=जिंदगी, जीवन। असाडी=हमारी। ज्यारी=जिलानेवाली। [१४] बानक=सजधज। जरद=पीला। लगदी=लगती। [१५] सजन=स्वजन, प्रिय। नंद दे=नंद के पुत्र। मगरूरी=घमंड। दरसन०=दर्शन के लिए। तैंडी=तेरी। [१६] चस्म०=आँख की चोट। ढोरि०=पीछे लगा लिया। सैन=इशारा। झुकि०=क्रुद्ध होकर चलाई है।

टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १७ ॥

जिगर जान महबूब अमाने की बेदरदी दैंदा है ।
पाक दिलां दे अंदर धँसकर बेनिसाफ दिल लैंदा है ।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १८ ॥

दिलपसंद दिलदार यार तू मुजनूँ की तरसाँदा है ।
रत्ति-दिहाडे तलब तुमाडा अक्कल इलम उडाँदा है ।
मैंनूँ ध्यान आन नाहि जानी तू घन-कुंज-बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १९ ॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है ।
बिसरै नहीं रैनदिन जां से प्यारा प्रीतम प्रानी है ।
दीजै इन्हां असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २० ॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमाने तित जावौ जू ।
कदी कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू ।
आस लगी अँखियाँ नूं यारा दीजै झाँकी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २१ ॥

१७–हँस०–हस हंस (बेल०)। १८–बे०–बिना साफ। १९–उडाँदा–लडाँदा। आन०–न आवत। प्रानी–प्यानी (वृंदा०)। २०–इन्ही–यही (बेल०)। कदी०–कहीं कदी (वही)।

[१७] हंस=हँसकर। मूसि०=चुरा लिया। बे=रे। गिरदा=फंदा लगानेवाला। [१८] अमाने=जो किसी की माननेवाला न हो। दैंदा०=देता है। बे०=अन्यायपूर्वक। लैंदा०=लेता है। [१९] की=क्या। तरसाँदा=तरसाता है। दिहाडे=दिन। अक्कल=अक्ल, बुद्धि। इलम=इल्म, यत्न। [२०] महर=गोपों के सरदार। मैंडा=मेरा। असानूँ=हम को। [२१] कदी=कभी।

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोने गात ।
आवत धीर-समीर तैं, चल्या पुलिन को जात ॥ २२ ॥

निसानी

यननूँ क्यौं कर गहि सकौं घनआनँद पीया ।
मैं तैंडी लटकन्न फँद्या क्या तुजनूँ कीया ।
क्यौं महबूब सुजान तैं गौरै क्या कीया ।
मैंडा दिल तैंने अबे क्यौं मुसि कै लीया ॥ २३ ॥

चोर लिया चित चाहते घनआनँद जानी ।
मैंडा दिल तैं मोहि कै उर औरहि ठानी ।
इस्क-सहर के बीच है यह अकह कहानी ।
अलकौं से बाँधे रहैं महबूब गुमानी ॥ २४ ॥

क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीं ।
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीं ।
घनआनँद नित दीजियै नहिं कीजै नाहीं ।
अँखियाँ तैंडी चुभि रहीं मैंडे दिल माहीं ॥ २५ ॥

दोहा

आनँद के घन जान कै, कीन्हौं तुम सौं हेत ।
रूप-सुधा दरसाय कै, कहर-जहर क्यौं देत ॥ २६ ॥
बंसी के बिच मोहनी, मोहन याको नाम ।
आनँदघन निरमोहिया, मोह्यौ सगरो गाम ॥ २७ ॥

२२–सलोने–सलोनो (बेल०) । २३–पीया–दीया ।

[२२] धीर समीर=कुंज विशेष । पुलिन=तट । [२३] यननूँ=इनको । तैंडी=तेरी । फँद्या=फँसा हुआ । तुजनूँ=तुझको । मैंडा=मेरा । अबे=ओ, ऐ । मुसि कै=चुराकर । [२५] मैंडे=मेरे ।

अरल्ल

कालिंदी के तीर बजी हरि-मुरलिया ।
समझ परै नहिं तान अनोखा सुर लिया ।
पूरि रही धुनि कान न छाँड़त गैल है ।
आनँद-जीवन जान छबीलो छैल है ॥ २८ ॥

बाढ़ी गाढ़ी पीर करेजैं आय के ।
मोहन मन हर लिया सु बैन बजाय के ।
लग्गा मैंनूँ तीर इस्क दा खूब है ।
आनँद-जीवन जान कान महबूब है ॥ २९ ॥

खैंचत है तुब डोरि किधौं मन मैंडडा ।
रहै असानूँ चाव नंद दे तैंडडा ।
खड़ा उडावत चंग सुरंग अजूब है ।
आनँद - जीवन जान कान महबूब है ॥ ३० ॥

बीज-छटा पटपीत घटा तन स्याम है ।
इंद्रधनुष बनमाल लाल अभिराम है ।
बंसी-धुनि घन-घोर रूप जल छलमलै ।
आनँद जीवन जान मेघ लौं झलमलै ॥ ३१ ॥

दीजै इननूँ सीख सलोने साँवरे ।
खून करैं ये नैन हुए लडबावरे ।
खूनी कीयैं जाय करेजैं घाव है ।
आनँद-जीवन जान न आन बचाव है ॥ ३२ ॥

२८-तान-प्रान (वही)। २९-लग्गा-लागा (वेल०)। कान-कान्ह। ३१-घटा-घनों। इननूँ-मुजनूँ। कीयैं-कीजै।

[२८] सुर=स्वर, ध्वनि। [२९] बैन=वेणु, बाँसुरी। मैंनूँ=मुझको। दा=का। [३०] मैंडडा=मेरा। कान=कान्ह कृष्ण। चंग=पतग। [३१] बीज=विद्युत्, बिजली। बनमाल=घुटनों या पैरों तक लंबी माला। घोर=ध्वनि, गर्जन। रूप=सौंदर्य। छलमलै=छलकता है। [३२] लडबावरे=सिरचढ़े दुलरुए।

दोहा

बरसैं आनँदघन अनत, इत नित नित ही छाय ।
प्रान-पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय ॥ ३३ ॥
आनँद के घन तुम बिना, तलफत नेही दीन ।
पल हू कल नहिं परत है, जैसे जल बिन मीन ॥ ३४ ॥

निसानी

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहिं भावै ।
नयन असाडे लागनै तुजही नूँ धावै ।
हुण क्या कीजै लाडिले वेखन नहिं पावैं ।
जुलम करैं ये बावरे मुजनूँ तरसावैं ॥ ३५ ॥
तैंडे मुख पर तिल अवे अति खून करँदा ।
अलकैं तैंडी यौं छुटी द्वै नागिन लसँदा ।
तिलक बीच छापे अवे दिल का है फंदा ।
चंदागोबिंद सु नँद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३६ ॥

दोहा

आनँदघन हित पोखि कै, पाले प्रान अमीन ।
ते ही अब बिललात यौं, जैसैं जल बिन मीन ॥ ३७ ॥

निसानी

दे गिरंद गिरँदा हूवा वे जिंद असाडी छीनी है ।
छिप छिप कर मुखडा दिखलावै रीति अनोखी लीनी है ।
मगजदार महबूब करंदा खूब मजे दी यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ३८ ॥

३४—तलफत—हीतल । ३५—लागनै०—लागतैं तुम (वही) । ये—जे (वेल०) । मुजनूँ—तुजनूँ ।

[३३] अनत=अन्यत्र । [३४] मुजनूँ=मुझको । असाडे=हमारे । [३५] हुण=अधुना, अब । वेखन०=देखने नहीं पाते । [३६] करँदा=करता है । लसँदा=सुशोभित हैं । नँद दे=नंद के पुत्र (गोविंदचंद्र) । [३७] अमीन=अमृतों से । [३८] गिरंद=फंदा ।

अहो अहो घनआनँद जानी जित्थूँ तित्थूँ जाँदा है ।
वेपरवाही जाहर कर कर चस्मा नूँ चमकाँदा है ।
नोक नजर टुक करदा नाहीँ की तकसीर हमारी है ।
महर-लहर व्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ३९ ॥

व्रजमोहन घनआनँद जानी जद चस्मोँ विच आया है ।
इस्क सराबी कीया मुजनूँ गहरा नसा पिलाया है ।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है ।
महर-लहर व्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ४० ॥

हीन भए जल मीन छीन बुधि मैंडी पीर न पावै है ।
लाय कलंक यार अपने कूँ तैं ही छिन मरि जावै है ।
आनँदघन इस दिल दी वेदन लहै सुजान बिहारी है ।
महर-लहर व्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ४१ ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की छवि निरखै धरि ध्यान ।
इस्कलता के अर्थ कौँ समझै चतुर सुजान ॥ ४२ ॥

आनँद के घन छैल सौँ करि ले चित को चाव ।
इस्कलता जो चाहिये तौ वृंदावन आव ॥ ४३ ॥

इस्कलता व्रजचंद की जो वाँचै दै चित्त ।
वृंदावन सुखधाम सो लहै नित्त ही नित्त ॥ ४४ ॥

———

३९–अहा०–अहो अहो (वही) ।

गिरँदा=बंधन लगानेवाला । जिंद=जिंदगी प्राण । असाडी=हमारी । मगज-दार=वुद्धिमान् । [३९] जित्थूँ०=जहाँ तहाँ जाता है । चस्माँ नूँ०=आँखों को चमकाता है । नोक=अनी, कोना । करदा०=करता नहीं । की०=हमारा अपराध क्या है । [४०] जद=जव । चस्मोँ०=नेत्रों के वीच । इश्क० = प्रेममदोन्मत्त । मुजनूँ=मुझको । [४१] हीन०=मिलाइए 'सुजानहित', छंद ४ ।

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ चाहौं। अति अगाध कैसैं अवगाहौं ॥१॥
जमुना कहँ रसवती बानी। होति मधुर रसनिधि की रानी ॥२॥
जाके तीर रसिक रसरंगी। बसत लसत गोपाल त्रिभंगी ॥३॥
जमुना को रस कहत न आवै। नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥४॥
जो रस अगम अगोचर महा। सो याके तट प्रगटित अहा ।५॥
या जमुना की भाग-निकाई। मति अति रीझि बिचार बिकाई ॥६॥
महा रसवती राधापति को। पूरन-प्रेम-तरंगनि तति की ॥७॥
श्रीजुत अंगराग की धारा। जमुना-रूप अनूप-अपारा ॥८॥
सबिता पिता उजागर यातैं। कृस्नचंद सुख पावत न्हातैं ॥९॥
बिबिध केलि सुख-बेलि बढ़ावै। बनमाली कौं निपटै भावै ॥१०॥
जमुना बृंदाबन की सोभा। नित नित प्रगटि करति हित-गोभा ॥११॥
कुंजनि पुंज तरंगनि तोषै। कुंज-रमन कौं बहु बिधि पोषै ॥१२॥
जमुना हृदय हेत को खानि। कौन सकै या मरमहिं जानि ॥१३॥
गुपत प्रगट रस जमुना जानै। जमुना को हित को पहचानै ॥१४॥
घूमति फिरति भरति भाँवरी। नित संगम-रंगनि साँवरी ॥१५॥
गौर चरन राधा को गोय। स्याम-रंग मैं धरयौ समोय ॥१६॥
राधा को रस जमुना जानै। भानु-नंदिना नातो मानै ॥१७॥
जमुना-हृदै रहति नित राधा। जमुना लखैं टरति भ्रम-बाधा ॥१८॥
सुख-सेवा साधिबो करति है। राधा-धव केर सहि ढरति है ॥१९॥
यह जमुना का मरमु कह्यौ है। जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥२०॥
या जमुना कौं हौं ही गाऊँ। या जमुना को सुदरस पाऊँ ॥२१॥
या जमुना मैं नित ही न्हाऊँ। या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥२२॥

१३–हृदय–पाय (प्रयाग)। या०–पामर नहिं (वही)।

[११] गोभा=अंकुर। [१३] हेत=हित, प्रेम। [१७] भानुनंदिनी=भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)। [१९] राधा-धव=राधा के

यह जमुना मेरी सुखदायनि । याकी लहरि भरथौ चित चायनि ॥२३॥
उफनत स्याम - रसामृत - सिंधु । विविध भाव वर पूषन-बंधु ॥२४॥
या जमुना को मोहिं प्रसाद । रसनैं जमुना-सुजस - संवाद ॥२५॥
ऐसी जमुना मोकौं चहियै । जमुना-कृपा कहाँ लौं कहियै ॥२६॥
जमुना के तट फूल्यौ फिरौं । हेरि तरंगनि रंगनि हिरौं ॥२७॥
जमुना लीला - रंग दिखावै । परम प्रीति की रीति सिखावै ॥२८॥
यह जमुना जीवति है मेरी । जमुना सी जमुना ही हेरी ॥२९॥
ऐसैं ही जमुना यह देखौं । नित नित नैननि भाग विसेखौं ॥३०॥
जमुना - महिमा वेद वखानै । सप्तसिंधु-भेदिनि जग जानै ॥३१॥
जमुना जल - करुना - रसरैनीं । दरस - परस पूरन-पद-दैनी ॥३२॥
जमुना देखि न देखै जम कौं । भानकुँवरि मेटति दुख-तम कौं ॥३३॥
जमुना - जलहि सहज हू पियैं । भव-दव-ताप न व्यापति हियैं ॥३४॥
जमुना देखत ही हरि दरसैं । स्याम रूप आनँदघन वरसैं ॥३५॥
वहुत भाँति महिमा जमुना की । कहि को सक न सकति रसना की ॥३६॥
गोकुल-घाट पियौ जिन पानी । जमुना-रस-महिमा तिन जानी ॥३७॥
जमुना - तीर वसत वलवीर । गोचारन-सुख विलसत तीर ॥३८॥
स्याम - सरीर गुननि गंभीर । जमुन-तीर विहरत वलवीर ॥३९॥
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात । मसरत सुभग साँवरे गात ॥४०॥
कहा कहौं जमुना को भाग । अंगराग पूरन रस-पाग ॥४१॥
पैरत जमुना अपने रंग । कान्ह कौतुका ग्वारनि संग ॥४२॥
विविध कलाल केलि विस्तारत । जमुना सौं पूरन पन पारत ॥४३॥
यह जमुना रस-रास खिलावै । पुलिन सुमंडल रुचिर रचावै ॥४४॥

२५–सवाद–सँवाद (प्रयाग)। ३०–ऐसैं०–ऐसइ या जमुना हौं। ३२–जल-जा। ३४–भव–तव। ३५–आनँद०–आनंदनि। ३६–को०–न सकति (वही)।

पति, श्रीकृष्ण। [२४] पूषन०=सूर्य का बंधु, चद्रमा। [२५] रसनैं=रसना को जीभ को। [२७] रंगनि=आनद मैं। हिरौं=खो जाता हूँ। [३४] दव=दावाग्नि। [३६] सकति=शक्ति। [४०] मसरत=मसलते हैं,

स्रमित जानि ब्रजमोहन धीर। जमुना सीतल सजति समीर ॥४५॥
बहुत भाँति जमुना सुख देति। उमँग-भरी हित-लहरैँ लेति ॥४६॥
महल टहल की चहल पहल है। जमुना लहरनि भरी लहलहै ॥४७॥
जमुना विहरति बैठि सदेसनि। सगन स्यामसुंदर सजि बेसनि ॥४८॥
जमुना विविधि कलोलनि ठानति। टहल-रीति जमुनाई जानति ॥४९॥
यह जमुना मेरो जिजमानि। दंपति-सुख-संपति की दानि ॥५०॥
मधुर - केलि - चिंतामनि जमुना। रटि जमुना जटि राखी रसना ॥५१॥
जमुना दई रसवती बानी। तब जमुना-रस-रीति वखानी ॥५२॥
जमुना जमुना जमुना कहौं। धीर-समीर-तीर बसि रहौं ॥५३॥
जमुना मोकौं सब कछु दियौ। दरसि परसि सरसान्यौ हियौ ॥५४॥
जमुना नावँ जगत - उजियारो। रसिक जननि कौं अति ही प्यारो ॥५५॥
जो जन जमुना को रस चाखै। सो नित जमुना जमुना भाखै ॥५६॥
जमुना चाहि चैन चित होत। उमगि चलत लाला-रस-सोत ॥५७॥
जमुना कहत जीभ जगि परै। कृस्नचरित - लाला-रस ढरै ॥५८॥
जमुना कहत कृस्न ढरि आवै। रस ही रस निज दरस दिखावै ॥५९॥
जमुना ढरैं ढरत ब्रजनाथ। बहत जानि कै गहत सु हाथ ॥६०॥
ऐसो जमुना को प्रताप - बल। और कहा यातैं उत्तम फल ॥६१॥
जमुना को फल जमुना न्हैयै। नित ही जमुना जमुना गैयै ॥६२॥
जमुना जाचैं जमुना पैयै। मन बच करि जमुनाई ध्यैयै ॥६३॥
जमुना सब-स्वारथ - भंडारिनि। जमुना परमारथ-बिस्तारिनि ॥६४॥
जमुना है मंगल को माला। जमुना देखी दीन-दयाला ॥६५॥
जमुना जो कछु मो पर ढरी। पावन पैज प्रगट है करी ॥६६॥
जमुना सुकृत कहाँ लौं बरनौं। पालै पाखै राखै सरनौं ॥६७॥
जमुना सुख-समाज दरसावै। नीरस मनहिं परसि सरसावै ॥६८॥

६३—ध्यैयै—धैये (प्रयाग)।

रगड़ते हैं। [४८] टहल = काम-धंधा । सगन = मंडली-सहित । [४९] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, संपन्न । जिजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, दानशीला। [५१] जटि० = जड़ रखा है। [५२] धीर० =

कृस्न - तरंगिनि यातैं कहियै। जमुना देखि कृस्न उर गहियै ॥६९॥
जमुना तैं निरवधि रस लहियै। जमुना चहियै जमुना चहियै ॥७०॥
जाके मन जमुना को पन है। रती अतुल को पूरो मन है ॥७१॥
जमुना जमुना जमुना एक। जमुनाईं सौं निबहौ टेक ॥७२॥
वृंदावन जिहिं जमुना - कूल। यह नित ही मोकौं अनुकूल ॥७३॥
जमुना - तट वनराज निकेत। सदा स्याम को निज संकेत ॥७४॥
यह जमुना यह वन मेरो धन। या जमुना वन सौं मेरो पन ॥७५॥
यह जमुना यह वन यह पन है। यह जमुना-वन मान्यो मन है ॥७६॥
जमुना वन पन मन मैं वसौ। रसना जमुना के रस रसौ ॥७७॥
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ। मनि जमुना-कीरति-गुन गुनौ ॥७८॥
जमुना - वचन मौन मैं रचौ। मन जमुना-चिंतन मैं खचौ ॥७९॥
जमुना सुंदर लोचन देखैं। सजौं सिंगार सुअंजन रेखैं ॥८०॥
राधा मोहन - सहचरि दरसौ। जमुना दरसि केलि-सुख सरसौ ॥८१॥
जमुना को आनंद अमोघ। गोपीजन - वल्लभ रस - ओघ ॥८२॥
मो पर ढरो भरो रस-रंगनि। निरखत जमुना रुचिर तरंगनि ॥८३॥
निरवधि रस की रासि रसीली। हित-कादंबिनि नित बरसीली ॥८४॥
प्रगट पुहमि अचरज यह देखि। जमुना-कीरति-कला विसेखि ॥८५॥
जमुना को मंगल जस गायौ। रसना निज सवाद-फल पायौ ॥८६॥
जमुना - जस जैसैं मन भायौ। जमुना - ही अपढार कहायौ ॥८७॥
जमुना - रस - जस ऐसैं कह्यौ। बानी निज परमारथ लह्यौ ॥८८॥
जमना-जस कौं जियरा तरस्यौ। जमुना-कृपा-सुरस उर सरस्यौ ॥८९॥
तब कछु जमुना-मरमहि परस्यौ। बानी ह्वै आनँदघन बरस्यौ ॥९०॥

दोहा

जमुना - जस बरन्यौ विसद, निरवधि रस को मूल।
जुगल - केलि - अनुकूल है, बसिबो जमुना - कूल ॥ ९१ ॥

७५-वन०-सौं ही (वही)।

कुंज विशेष। [६६] पैज=प्रतिज्ञा। [६७] सरनौं=शरण में भी। [८२] ओघ=प्रवाह, बाढ़। [८४] कादंबिनि = मेघमाला। [९०] अपढार=आप से आप ढलनेवाला।

प्रीति-पावस

चौपाई

बन बिहरत मोहन घनस्याम । गिरि-गोधन - समीप सुखधाम ॥१॥
रितु बरषा हरषी ब्रज बसिकै । जित तित बसत स्यामघन लसिकै ॥२॥
उमहि असाढ़ बाढ़ि यौं रहै । चोप - चटक आगम ही चहै ॥३॥
भयौ करति कौंधनि सी हियैं । देखैं जियैं चटपटी लियैं ॥४॥
सावन - रूप महारस - प्यावन । ब्रजलोचन हरियारो सावन ॥५॥
मनभावन हित भूमि रिझावन । ब्रजमोहन है ब्रजसुख-सावन ॥६॥
नित ही हित-झलानि झुकि बरसै । नित ब्रजमोहन-सावन सरसै ॥७॥
सो बिलसत बरषा-सुख बन मैं । उनए नए नेह के पन मैं ॥८॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी । बन भीजत डोलत बनवारी ॥९॥
सुमिल सखा-समाज-सँग सोहै । मन लोचन अभिलाषनि दोहै ॥१०॥
बरन बरन सिर ललित लपेटा । कोरि कोरि मनमथ-मद मेटा । ११॥
रचे रुचिर पातन के छतना । मुख-छबि सम सारद-ससि सत ना ॥१२॥
मधुर अधर अभिगुंजी धरै । कान्ह मुरलिया सुर-सँग रै ॥१३॥
मित्र अनेक एक मन मतै । सदा स्यामसुंदर - रुचि रतै ॥१४॥
वहुत भाँत बन लीला करै । परम-चरित्र कहे क्यौं परै ॥१५॥
गिरि कदरनि कहा छबि कहियै । सब रितु रुचिसमूह सुख लहियै ॥१६॥
तहाँ वैठि बन ब्रज छबि हेरत । फैलि फैलि सुखरासि सकेलत ॥१७॥
विहरत कवहुँ कलिंदा - तीर । कहो परति क्यौं सोभा-भार ॥१८॥
मेघ - माधुरी जमुना - तीर । तैसो सुंदर स्याम सरीर ॥१९॥
वृंदाबन घनस्याम - सरूप । ताल तमाल कदंब अनूप ॥२०॥

२–तित–नित (भदा०)। ११–कोरि०–कोटि कोटि मनमथ। १३–अधर०–उर अली गुजा। १५–परम–प्रेम। रुचि–सुख। १८–कवहूँ–कहूँ। २०–सरूप–सुरूप (वही)।

[७] झला=वृष्टि। [१९] छतना=छाता। [१२] कोरि=करोड़। [१३] अभिगुंजी=अभिगुंजन करनेवाली। [१४] मतै=मत करते हैं।

कुंज-पुंज वानिक वहु भाँतिन। लसत लतागन अपनी पाँतिन ॥२१॥
मोहन ठावँ माहनै मोहन। को है वरनि सकत छवि-जोहन ॥२२॥
ताल विसालनि झूला मेलत। फूलनि झूलि झूलि रस झेलत ।२३॥
सुख-सहेत व्रज गोरिनि घातीं। दिनहीं कियौ रहत अधराती ॥२४॥
पावस-दिन मावस-निसि मनौं। निसि-विलास कैसैं धौं गिनौं ॥२५॥
भीजे रहत प्रेम - पावस मैं। संगम पर्व लहत मावस मैं ॥२६॥
जमुना - पूर परम सुखदायक। दरस परस सरसत व्रजनायक ॥२७॥
उमड़थौ रहत सदा आनँदघन। यह जमुना यह वरषा यह वन ॥२८॥
हित - पावस नित ही इत रहै। चातक - चोप सदा निरवहै ॥२९॥
फिर पावस रितु जव इत आवै। रीझ भीजि रस-पारस पावै ॥३०॥
रितु अनरितु इत की रितु औरै। सेवति रसिक स्याम सिरमौरै ।३१॥
मुरली मैं मलार धुनि पूरति। या विधि जड़-जगम-चित चूरति ।।३२॥
वन - व्रज नेह - मेह वरसावै। यह पावस-सुख कहत न आवै ॥३३॥
सजल नैन देखैं अनदेखैं। उघरति नहीं न लगत निमेखैं ॥३४॥
चटक - चोप चपला हिय लवै। सवही दिस रस-प्यासनि तवै ॥३५॥
वरन वरन अभिलाषनि धुरवा। मुदित मनोज-मनोरथ मुरवा ॥३६॥
भीजति भिजवति वाहर घर मैं। कछु सुधि नाहिं परति हित-झर मैं ।।३७॥
सव व्रज रस - धाराधर धूमि। सदा एकरस आरति झूमि ॥३८॥
वढ़त प्यास ज्यों ज्यौं झर सरसै। आनँदघन व्रज अचरज वरसै ॥३९॥
दामिनि-प्यास भरथौ घन डोलै। सदा मिलन मैं मानत ओलै ।४०॥
नित ही इतहिं कोकिला कूजै। केलि-कलाधर आसनि पूजै ॥४१॥

२२–मोहनै०–मोहन को (वृंदा०)। २४–सहेत–सहेट (सदा०)। २६–पर्व०–प्रवल होत। २८–उमड्यौ–घमड्यौ। ३०–पारस–या रस। ३१–की रितु–की रति।

[२४] सहेत = संकेतस्थल। घाती = घात (दाँव) वाला। [२६] मावस = अमावास्या। [२७] पूर = प्रवाह। [३५] लवै=चमकती है। [३६] धुरवा= वादल के स्तंभ। मुरवा=मोर [३८] धाराधर=वादल। [४०] ओलैं=विरह ही।

रस की फैल सदा ब्रज दरसै । सदा अपूरब अंबुद बरसै ॥४२॥
सब बिधि भरत मनोरथ क्यार । ब्रज पावस नित दरसत प्यार ॥४३॥
यह पावस या ब्रज नित बसै । सदा स्यामघन इत रसमसै ॥४४॥
अद्भुत घन दामिनि सुख सरसै । रस पीवतहू प्यासनि बरसै ॥४५॥
चढ़े रहत नित हियनि हिँडोरनि । बिह्वल प्रेम-फूल झकझोरनि ॥४६॥
मधुर प्रेम - पावस के गीत । रसनिधि राधा मोहन - मीत ॥४७॥
सूहे बरन बसन अनुराग । धारे रहत सदा बड़भाग ॥४८॥
भीजे सहज भिजावत सदा । नव घन दामिनि रस-संपदा ॥४९॥
ब्रजबन भीजि रह्यौ है रस मैँ । ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैँ ॥५०॥
यह पावस नित ही इत रहै । बरसनि सुख-सरसनि को कहै ॥५१॥
अचरज-झर लाग्यौई दरसै । घन तरसै चातक-रुचि बरसै ॥५२॥
दामिनि घनहिँ भिजै रस पीवै । घन दामिनिहिँ देखि ही जीवै ॥५३॥
अद्भुत घन दामिनि को धर्म । लह्यौ न परत अनोखो मर्म ॥५४॥
प्यासनि बरसत अति रस भरै । अचरज घन दामिनि संचरै ॥५५॥
बरन - बरन लीला - रस - रंगनि । नित नवीन पूरन सब अंगनि ॥५६॥
ब्रजबन रस सींचत घुरि ढुरिकै उघरि घमड़ि अरु घमड़नि ढुरिकै ॥५७॥
बिसद केलि-रस - रेलि बढ़ी है । प्रबल प्रेम - भर नदी चढ़ी है ॥५८॥
उमग असाढ़ चटक झर सावन । भरि भैँटनि भादौँ मनभावन ॥५९॥
बारह मास छ रितु यह पावस । पून्यो को सुख देत अमावस ॥६०॥
या ब्रज सब रितु अचरज-रूप । अचरज गोपी कान्ह अनूप ॥६१॥
सुरस प्रीति - पावस ज्यौँ बरसै । त्यौँ ही सब रितु को सुख सरसै ॥६२॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै । लहत लहत मति सुरति भुलावै ॥६३॥
या ब्रज सहज प्रीति - पावस है । सब रितु सुख इकरस ब्रजरस है ॥६४॥

४२–सदा अपू०–जहाँ अपू० । ४३–क्यार–प्यार (वही) । ५०–है–हित (भदा०) । ५२–बरसै–परसै । ६४–सुख०–आड करत ।

[४३] क्यार=(केदार) क्यारी । रसमसै=रस बरसाता है । [४८] सूहे=लाल । [५८] बिसद=स्वच्छ । रेलि=प्रवाह ।

जिनके दृग चातक मन मोर। तेई तकत सु पावस-ओर ॥६५॥
रसकदंब - कादंबिनि दरसै। भीजि भीजि आनँदघन बरसै ॥६६॥
सब रितु मच्यो रहत चौमासो। बरसि बहायो सब ही साँसो ॥६७॥
तोप पोप जैसो जब चहियै। हित-पावस मैं नित ही लहियै ॥६८॥
यहाँ आय पावस हू भीजै। नित त्यौहार मनावत जीजै ॥६९॥
सो पावस ब्रज बसि यौं सोहै। सोहै मोहै पटतर को है ॥७०॥
फूले सरस कदंबनि पुंज। महा मनोहर मधुकर-गुंज ॥७१॥
अमित लतागन फूलनि छाए। सोभित बन के सदन सुहाए ॥७२॥
बनवारी को सुख दरसावत। पैठत बैठत बूँद बरावत ॥७३॥
गायनि को सुख देखत ठाढ़े। लिये लकुट आनंदनि बाढ़े ॥७४॥
साँवल-बरन सहज ब्रजमोहन। मन दृगनि के मनोरथ-दोहन ॥७५॥
सुहृद-संग बिहरत बन फिरै। अँखियाँ निरखि न क्यौं हूँ घिरै ॥७६॥
मुरली माँझ मलार जमावत। पावस को सौभाग्य बढ़ावत ॥७७॥
सुरहि परसि पखान जल होय। ब्रज पावस-गुन धर्‍यौ समोय ॥७८॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर। पावस बिहरत ब्रज-सिरमौर ॥७९॥
गावत गोपी रितु के गीत। भीजत रीझत मोहन-मीत ॥८०॥
झुरमट झूला बगर बगर है। पावस को सुख डगर डगर है ॥८१॥
सरवर तीर समाजहि सजैं। झूलैं, गावैं, निरखैं, लजैं ॥८२॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति। पीवत नैननि मानत साँति ॥८३॥
पावस को सुख बहुत प्रकार। ब्रज बन बिहरत रसिक उदार ॥८४॥
गोप-कुमर सबके मन मोहत। सब रितु हित सब ही विधि सोहत ॥८५॥

६६–मन–या (वही)। ६९–जीजै–तीजे (वृंदा०)। ७५–साँवल–सावन (भदा०)। ७६–घिरैं–फिरैं। ८५–रितु–ही।

[६६] कदंब=समूह। कादंबिनि=मेघमाला। [६७] साँसो=संशय। [७०] पटतर=समानता। [७३] बरावत=बचाते हुए। [७८] सुर=स्वर, मुरली की ध्वनि। पखान=पाषाण। समोय=भिँगोकर। [८१] झुरमट=समूह, भीड़। बगर=घर। डगर=गली। [८३] साँति=शांति।

सोभित खोही लकुट सुदेस । पावस ग्वार मनोहर वेस ॥८६॥
ब्रज-बन गैल-गरधारनि गाहत । लहत फिरत ज्यौं ज्यौं सुख चाहत ॥८७॥
बहु बिधि पावस के सुख बिलसै । नित गोपी गुपाल मिलि हुलसै ॥८८॥
चोप-हरयारी हिलमिल बाढ़ी । पावस निज संपति है काढ़ी ॥८९॥
राधा - मोहन रचन - बिहार । उर धरि पावस कियौ बिचार ॥९०॥
श्री ब्रजभूमि बास करि पावस । कृस्न - ब्रजबधू रस का पारस ॥९१॥
पाय तुस्ट ह्वै अति छबि छाय । हित हरियारी रची बिछाय ॥९२॥
तापर ते पद धरि धरि सरसैं । अति कोमल तृन-अंकुर परसैं ॥९३॥
बन बेलिन बहु भाँति फूल फल । सरनि समाज भरे निरमल जल ॥९४॥
बिलसत सब सुख मोहन स्याम । उर पर पीत जुही की दाम ॥९५॥
कौतुक - रूप सदा बनवारी । आनँद - मूरति रसिकबिहारी ॥९६॥
सहज सिंगार कहा कछु कहौं । रूप-गहर की थाह न लहौं ॥९७॥
बरन मनोहर जगत उज्यारो । कारो ब्रजलोचन को तारो ॥९८॥
पावस बन बन घूमत डोलै । जोबन-छक्यौ छैल-गति बोलै ॥९९॥
ब्रजरस भिजै रिझै इन राख्यौ । ब्रजरस-सार सोधि इन चाख्यौ ॥१००॥
आतँक अ ल प्रीति-पावस को । जल-रसियै चसको ब्रजरस को ॥१०१॥
भीजे रहत प्रीति - पावस - रस । पावस-सुख बिलसत भीजनि बस ॥१०२॥
यौं ही भीजत भिजवत रहौ । ब्रजरस सुख-संपति नित लहौ ॥१०३॥
गोप - दुलारे जसुदा-जीवन । अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥१०४॥
पावस - प्रीति पपीहा दरसै । तोपै पोषै पीवैं तरसै ॥१०५॥
घन चातक को मरम न परसै । ब्रज प्यासनि आनँदघन बरसै ॥१०६॥

९०–रचन–चरन (वही)। ९१–पावस–छावस (भदा०)। पारस–पावस। ९२–ह्वै–है । छाय–छावे । ९५–पीत–पीन । १०१–आतँक–चातक । संपति–सवाद (वही)।

[८६] खोही=पत्तों का छोटा छाता या कंबल की घोघी। सुदेस=सुंदर। [८७] गरयार=गलियारा, छोटी गली। गाहत=घूमते हैं। [८९] हरयारी=हरियाली। [९४] दाम=माला। [९७] गहर=गहराई।

प्रेम-पत्रिका

प्लवंग

कान्ह तिहारी पाती तुमहिँ सुनाइहौं।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जो पाइहौं ॥ १ ॥
कटुक प्रीति को स्वाद मिठास-भरथौ महा।
छ्वै रसना करि किलक कहौ चरनै कहा ॥ २ ॥
जानै बिरही प्रान और कैसैं बनै।
तीखो तरल सुबात कहत रसना छनै ॥ ३ ॥
स्रवन सहैं ते और लहैं पर-पीर कौं।
धनि धनि हो ब्रजनाथ तिहारे धीर कौं ॥ ४ ॥
सुखी हौ सुखदैन हमारी हम भरैं।
वाँको बार न होउ असोस सदा करैं ॥ ५ ॥
अकथ कथा की पाती छाती है भई।
नेकु लागि पिय बाँचौ दूरि भए दई ॥ ६ ॥
बिसरि गए बिसबासी सरक सनेह की।
मुरली-बेधनि बेधी गति मन देह की ॥ ७ ॥
धरी दूरि पहचान निकट की को कहै।
सुधि भूले सब भाँति परेखनि ज्यौ दहै ॥ ८ ॥
बृंदावन घन कुंजैं देखति हैं जबै।
पात फूल फल डार बिराजत हौ सबै ॥ ९ ॥
ढिग ह्वै यौं दुख देत दूर तैं दूरि से।
हाथ न लागत हाय रहे हौ पूरि से ॥ १० ॥

१—तिहारी—तेरी (याज्ञिक)। हाय कहूँ—कहूँ जो तुम्हैं। २—छ्वै—द्वै (बृंदा०)। ४—स्रवन—अब न (याज्ञिक)। हो—है। ७—गए—गई (वही)। मन०—मद नेह (बृंदा०)। ८—ज्यौ—जो (लदन) ९—हौ—है (बृंदा०)।

[२] किलक=पुकार। [३] छनै=छिद जाती है [७] सरक=मद्यपान।

सीतल सुंदर मोहन मंदिर कंदर केलि-कलानि बिसेषूँ ।
गोबिंद गोधन ग्वारन कौं घनआनँद छावत भावत देखैं ।
फूलन कै फल कै दल कै ललकै जल कै भरि भाव असेषैं ।
लै मन हाथ रहै हरि को-हरि हाथ रहौ गिरिनाथ सु लेखैं ॥ २९ ॥

कवित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम-नैन पहचानहीं ।
राधिका दरस कौं सुदेस आदरस याहि,
चाह्यौई करत जब जब जैसैं जानहीं ।
ऐसे रंग मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं ।
जमुना कैं तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैं ई बखानहीं ॥ ३० ॥

स्याम यामैं बसे यह बसै स्याम-हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै ।
यही वृंदावन देखौ प्रकट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै ।
नैन बैन मनसा समोय राख्यौ बड़भागी,
तिनहीं की कृपा को सु अंजन विचारियै ।
महा अचरज-धाम मोहिं ऐसैं दीसि पर्यो,
दीसत न काहू बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥ ३१ ॥

२९–कंदिर–कंदन । बिसेषैं–बिसेखौं (वही) । ३०–जैसैं–जैसो (लंदन) । दुरयौ–उरयौ (वृंदा०) । ३१–दुरयौ–उरयौ (वृंदा०) । बैन०–मन साँवरे को मोहि (वृंदा०), बैन मनसा रमाय (याज्ञिक) ।

[३०] गोभा=अंकुर । सुदेस=सुंदर । आदरस=आदर्श, दर्पण । मरीचैं=किरणें । बितान=चँदोवा । [३१] समोय०=लीन कर रखा है । लाल०=श्रीकृष्ण और श्रीराधा ।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो बृंदावन कहौ कैसैं करि दीसई ।
दीसत दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरयौ मति हरै हरि हरि बिसे बीसई ।
परैं तैं परैं है भयो हाय यह बृंदावन,
राचैं, रज जाचैं ईस हू से बकसीसई ।
ताहि दौरे जात पाय लियौ है सबनि सूधो,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ॥ ३२ ॥

बृंदावन-माधुरी अचंभे सौं भगो है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखियै ।
अंग - रंग - संग एकमेक ह्वै रह्यौ, सदाई,
तातैं भोगवता राधा रानी अवरेखियै ।
सुबन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदीकूल,
आनँद को घन रसमूरति बिसेखियै ।
देखत दुरयौ सो अवनी पै अति ऊँचो आहि,
सरस कृपा हा तैं परस-गुन पेखियै ॥ ३३ ॥

बृंदावन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहू गए तैं रस - पारस क्यौं पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकैं,
सुभर भरयौ है तौ लौं उर न बसाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा - चरन - रज आँखिनि अँजाइयै ।

३२–परैं तैं–बरैं तैं । ३३–देखौ–देखैं (याज्ञिक) । एकमेक०–एक एक ह्वै (वही), एकमेक धोहयौ है सदा (बृंदा०) । सो–है (याज्ञिक) । तैं–पै (बृंदा०) । ३४–पारस–या रस (याज्ञिक) । है–लै जौ (वही) ।

[३२] हरयौ=हराभरा । बिसे०=पूर्णतया । राचैं=अनुरक्त होते हैं । बकसीस=प्रसाद, भेंट । परीसई=स्पर्श करते । [३४] भानुजा=वृषभानुजा, राधा ।

ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर बाढ़ति है,
काढ़ति घरनि तैं उपायनि उचाटि लै।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै बन व्यापक ह्वै,
देखौ गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥ ४१ ॥

कौनैं हरि देव सो बतावौ हरिदेव हा हा,
नाँवैं हरिदेव पै हियो हू हरि लेत हौ।
गिरिवर-कंदरानि मंदिर मैं बसौ लसौ,
साँवरे सलोने साधु से दिखाई देत हौ।
आनँद के घन झूमे रहत सदाई इतै,
घेरौ अबलानि दान माँगौ धरि हेत हौ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद - भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥ ४२ ॥

नाम कौं न नेम बाँध्यौ प्रेम सौं सुलेखो कहा,
धायौ नहीं धाम लीला-माधुरी बिभूति कौं।
जनम जनम तैं अपावन असाधु महा,
अपरस पूति सौं न छाँड़ै अजौं छूति कौं।
भूलि मोद-मेहैं राच्यौ भ्रम-धूम-धूँधरि सौं,
केवल कलंकी-रूपी जननी-प्रसूति कौं।
करुनानिधान कान्ह आपने गुनैं सम्हारौ,
मेरी गति कौन जो बिचारौ करतूति कौं ॥ ४३ ॥

जप-रस-धारा मन मज्जन करै न जौ लौं,
तिय-रसहीन-ज्वाला प्रानहि पजारैं कहा।
अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसैं,
बासना न धोवैं तौ लौं तन के पखारैं कहा।

चख लेती है। पाज=बाँध। खाइँ=खाईं को भरकर। बजाय=डंके की चोट। गति०=राग से भरकर यमुना की गति अवरुद्ध कर दी है। [४२] हरि०=हरण करके दे देते हैं। नाँवैं०=नाम से तो हरकर 'देने' वाले पर काम से हृदय भी हर 'लेने' वाले हो। दान=कर। भाय=भाव। दाय=दावँ, घात। [४३] अपरस=नीरस।

वृंदावन-माधुरी अगाध है अगम अति,
बातैं सुनि सीखै सठ हठ-पन पारैं कहा।
आनँद को घन झूमै केवल कृपा-समीर,
सहज बनक देखौ ढकैं औ उघारैं कहा ॥४४॥

कछू न करत यामैं सब कछू करत हौ,
मोसे अनकछू सौं कछू न हौ करत क्यौं।
अंतर की जानौ जानि बूझि राखौ अंतर कौं,
गाँसनि गसीले महा ढीले न ढरत क्यौं।
जगत के जीवन छबीले घनआनँद जू,
छाए सब ठौर हा हा छियै न परत क्यौं।
साँचे कपटी हौ सूधी बातनि हूँ टेढ़े परौ,
परे तैं परे हौ पै न टारे हू टरत क्यौं ॥४५॥

मतिमान हौ कै मति मानिबो कहाँ तैं सीखे,
रति मानि आए अति मान मोहि दियौ है।
घूमरे दृगनि कछू पियें से फिरत कहा,
पटहि पलटि आए महा पोढ़ौ हियौ है।
इते मान सौं हैं खाय खाय न अघाए कहूँ,
सुघर कहाए सठता को हठ लियौ है।
भोरहीं भले हौ जू भले को मुख देखि चले,
कितहूँ तैं मोहू कौं दरस आय दियौ है ॥४६॥

पूति=दुर्गंध। छूति=अस्पृश्यता। मोद०=आनंदघन को। [४४] अपरस=अस्पृश्य, अप्राप्य। सपरस=सस्पृश्य; छूत से युक्त। बनक=सजधज। [४५] अंतर=अंतःकरण। अंतर=भेद। गाँस=गाँठ; भेद की बात। गसीले= युक्त। ढीले=शिथिल। न ढरत=द्रवीभूत क्यों नहीं होते। छियै०=छुए नहीं जाते, पहुँच में नहीं आते। परे०=परात्पर होकर भी सदा निकट रहते हो, हटते नहीं। [४६] खंडिता का कथन है। मतिमान=बुद्धिमान्। मति०=न मानना। रति०=प्रेम करके। पट०=वस्त्र को पलटकर, दूसरे के वस्त्र पहनकर। सुघर=चतुर।

भूपन कौं भूपन हौ कहा लै सिँगारै कोऊ,
अति ही अनूप रूप कैसैं धौं कह्यौ परै।
आनँद के अंबुद रसीले व्रजमोहन जू,
पपीहा विचारे पै न चाय हू रह्यौ परै।
दीसौ अनदीसौ नैन लागेई रहत सदा,
लहाछेह रावरो छबीले न लह्यौ परै।
खुलि मिलिबे मैं दूरि दुरि दुख देत दैया,
सीतलता तुम्हैं मेरो हियौ क्यौं दह्यौ परै ॥ ४७॥

स्याम-रंग-रँगी दीठि लोयन भगौहैं सदा,
अंगनि अनंग-ज्वाला दुरी पजरति है।
नखसिख भसम-चढ़े से गात देखियत,
आँसुनि की धारा हू न धोइयौ परति है।
विकल अचेत तारी तुम ही त्यौं लागी रहै,
रातिद्यौस ताकौं सोई जानैं ज्यौं भरति है।
चातकी भई है घनआनँद तिहारैं व्रत,
जोगिनि तैं अधिक वियोगिनि वरति है ॥ ४८॥

सवैया

दिन फाग के भागनि आनि मिले लगि लेत हैं दावँहि दायनि सौं।
मची राधिका मोहन त्यौं हित होरी रची रुचि चाँचरि चायनि सौं।
लखि दीठि रँगी नव जोट जगी गुन जोबन रूप सुभायनि सौं।
.... ॥४९॥

रसना बलभद्र सुनाम लियैं सब ठौर सबै विधि होति भली।
व्रजमोहन मोह की मूरति राम जतैं धनि रोहिनि पुन्य फली।

[४७] भूपन०=गहनों को भी शोभित करनेवाले। लहाछेह=शीघ्रता, फुरती। [४८] भगौहैं=गैरिक, गेरू के रंग का। भसम=भस्म, राख; प्रचंड अग्नि। तारी=ध्यान। राति०=वे ही रातदिन उस प्रकार उसका समय व्यतीत करना जानते हैं। मिलाइए—जानैं वेई दिनराति बखानैं तैं जाय परै दिन राति को अंतर। [४९] दावँ=अवसर। दाय=बात। [५०] जतैं=जिससे या जहाँ। धनि=

घनआनद छाय सदा ब्रज पै बरसौ सरसौ करि रंग रली ।
मन रे सुख-संपति चाहत जौ नित ही भजि लै मुसली कुसली ॥५०॥

कवित्त

गुरनि बतायौ राधा-मोहन हू गायौ सदा,
सुखद सुहायौ बृंदावन गाढ़ैं गहि रे ।
अद्भुत अभूत महा-मंडल परे तें परे,
जीवन को लाहो हाहा क्यौं न ताहि लहि रे ।
आनद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौं पपीहापन बहि रे ।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥५१॥

सवैया

अब सो करियै ब्रजमोहन जू जु करौं बिनती कर जोरि यही ।
सब ठौर तें दौर थकै मन को कि तिहारियै पौरि पै देहुँ ढही ।
घनआनँद दीन पपीहन कैं तुम ही घन जीवन-मूल सही ।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे को रही ॥५२॥

बंसी मैं मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लईं बपुरी अबला सब ।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौं को बरनै 'रु सुन्यौ किनहूँ कब ।
ब्यापि रही चर थावर लौं घनआनँद घोर घमंडन की फब ।
कानन मूँदेऊ तैसियै बाजति क्यौं भरियै करियै सु कहा अब ॥५३॥

छप्पय

ब्रजबासिन की सहज होय जैं प्रापति मन कौं ।
यहै आस बिसवास राखि पालैं हित-पन कौं ।

५३—फब—भव (संग्रह) ; तैसियै—तैसियौ (लंदन) ।

धन्या, स्त्री । रोहिनि=बलरामजी की पत्नी रोहिणी । मुसली=मुसल धारण करनेवाले बलराम । [५१] गाढ़ैं०=भली भाँति ग्रहण कर । बहि=वहन कर । पुलिन=तट । [५२] पौरि=द्वार । देहुँ०=पड़ा रहूँ । [५३] थावर=स्थावर ।

नितलीला - रगमगे - नैन - थाकनि - सँग डोलै ।
जमुन-तीर तरु - बेलि केलि-रस झेलि कलोलै ।
अहोभाग कहियै कहा आनँदघन अभिलाष - झर ।
क्यौं न लगै आसा - लतै, फूल - सहित ऐसो सुफर ।।५४।।

कवित्त

आनँद को अंबुद पपीहापन पैज धरै,
झूम्यौ देखियत ब्रज बंसी-धुनि-घोरना ।
चोप चपलानि की चमक चारु चहूँ कोद,
लाख लाख अभिलाष ऊमस को ओर ना ।
रस-झर लाग्यौ हित-हरियारी नित नई,
नीकी प्रीति-पावस को समै चित-चोरना ।
हिलनि मिलनि झूल आस-लाँबी झूलनि सौं,
झूलत गुपाल - गोपी हिलग - हिंडोरना ।। ५५ ।।

सवैया

मित्र के पत्रहि पावत ही उर काम चरित्र की भीर मची है ।
सीस चढ़ावति आँखिनि लावति चुंबन की अति चोप रची है ।
हाय कही न परै हित की गति कौन सवाद अचौनि अची है ।
छाती सौं छवावत ही घनआनँद भीजि गई दुति-पाँति नची है ।। ५६ ।।

कवित्त

ज्यौं बिधि-ईंगिन भई है भाग-कोरनि,
लहा रनि जसोदा-सुत पायनि परस की ।
सुलभ लता हैं सोम अरथौं चाहैं धूरि जाकी,
कहियै कहा निराई महिमा सरस की ।
झूल्योई रहत सदा आनंद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी-बरस की ।

५४—नै—नैं (मध्य) । उर—उर । क्यौं न०—क्यौं न लगै फल । सुफर—सुघर ।
दय=दया । [५४] सै=सैसे । [५५] पैज=प्रतिज्ञा । कोद=ओर । ओर=सीमा,
[illegible] । [५६] अचौनि=आचमन, पीना । [५७] ईंगिन=[illegible] । भागनि=

आँखिनि लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥५७॥

गोपिनि के आँसुनि सों सींची अति लोनी लगै,
देखि पाई भाग जागे जीवन की मूरि मैं ।
मोहन रसीले को सुरूप दरसावै मन-
रंजन सुअंजन कै राखौ चख पूरि मैं ।
याही मिलि रहौ कहा कहौ जैसी जिय आवै,
हेत-खेत गहौ है निपट चूरि चूरि मैं ।
सीसहि चढ़ाऊँ घनआनँद कृपा तैं पाऊँ
प्रेमसार धर्यो है समोय ब्रज-धूरि मैं ॥५८॥

सवैया

आवै कहूँ मनमोहन सो गली पूरब भागन कौं ब्रज ऊजै ।
आय कछू न बसाय तबै दुरि देखिबो दूभर छाँह क्यौं छूजै ।
माँगति हौं बिधिना पै बड़े खन जो कबहूँ जिय आसहि पूजै ।
चौथ को चंद लखै ब्रजचंद सौं लागै कलंक तौ ऊजरे हूजै ॥५९॥

रीति यौं चेटक ही सौं भरी धुनि मैं करै धीरज-दोहन बाँसुरी ।
घेरि लै आनि बसावै बनै ब्रजनारिनि के परी गोहन बाँसुरी ।
रीझ भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि दहै हिय छोहन बाँसुरी ।
हाथ लिये रहैं रैनदिनौं मनमोहन की मन - मोहन बाँसुरी ॥६०॥

कवित्त

ऐसी कृपा कीजिय कृपानिधि निवारि भ्रम,
भरिबो करौं सदाई ब्रज - बन - भाँवरी ।
ठौर ठौर सोभा छकि जमुना के तीर थकि,
चकि जकि चाहि रहौं वहै छवि साँवरी ।

६०-यौं-या (संग्रह) ।

लालसा । [५८] लोनी=सलावण्य । समोय=मिलाकर । [५९] ऊजै=आंदोलित होता है । खन=क्षण । ऊजरे=उज्ज्वल; हर्षित । [६०] चेटक=जादू ।

सवैया

चाहिक चौस रचे चिकनाय कै दीसत नेह-निबाहन-रूखे।
झूमि झमारहि दै घनआनँद राखत हाय बिसासनि सूखे।
छैल छबीले भरे छल-छंद डरौ ढब हौ अनदोखहू दूखे।
रावरे पेट की बूझि परै नहीं रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥ ६७॥

सोरठा

जानौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥ ६८॥

कवित्त

अंग सुखमूल, रंग रुचिर गुलाब फूल,
कोमल दुकूल तूल-पूरित अजायबी।
छूटौं छबि-रसमैं चटक चोखे बसमैं,
बिलोकैं मन बस मैं न रोकैं रहै दायबी।
केसरी लपेटा छैल बिधि सौं लपेटे,
मुख बीरा कंठ हीरा-जोति उपमा लजायबी।
मीत कैं सिंगार घनआनँद उदार देखैं,
रीझनि पसीजैं तन कछु न सहायबी ॥ ६९॥
चलि रे सुबल आजु वाही कै नगर काल्हि,
जो हौं मैं लवाई घनआनँद सु ओबरे।
छरहरे गात मँडरात भौंर भाँवरी दै,
छूटे बार मानिन कौ ह्वै-नरी बनी गरे।

वर्ण-विन्यास [६६] बिसद=निर्मल। [६७] झमार=वृष्टि के जल से भर देना। अन०=रूप में निर्दोष होकर भी मन से सदोष हो। रीझि०=मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो। मेरी रीझ की तो चिंता नहीं करते पर दूसरों से मिलने-जुलने की ताक में लगे रहते हो। [६८] अनबन=बिगाड़; मनमुटाव। बनक=मैत्री। परेखनि०=पछतावों से गुथकर। गुन=गुण, डोर। [६९] तूल=रूई। अजायबी=अद्भुत। रसमैं=रसमयी। चटक=चटकना। चोखे०=तीक्ष्णता की उत्पत्ति से युक्त। दायबी=दाँव, पकड़ की घात में रहनेवाला। केसरी=पीला। लपेटा=पगड़ी।

आँचर उलटि सीस डारें कैं न जानें क्यों,
निहारतही हियें त्यों जु बात मन मैं धरें ।
औंचकाँ ह्वां कित इत डीठि कैं परत, पीठि
दैन देखि नैन ईठि नीठि न कह्यौ करें ॥ ७० ॥

रही मिलि भीति पै सभीति लोक-लाज-भीजी,
रीझी कहूँ स्यामैं देखि दसा ताकी को कहै ।
फंद को मृगी लौं छंद छूटिबे को नेको नाहिं,
चारयौ ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है ।
मोहन को बेनु सुनै धुनै सीस, मन ही मैं
बुनै, भीरी सोच गुनै गहि बूड़ै सोक है ।
उघरें न त्रास गुरुजन आसपास घनआनँद,
कठिन कहा अहा नेह - भोक है ॥ ७१ ॥

पीरे पीरे फूलन की माला रचि हियें धारि,
वारि वारि ताही कौं सफल करैं काय कौं ।
ऐसे धीर-काचे, पूरे प्रेम-रंग-राचे वीर,
पीरे फल चाखैं अभिलाषैं नीके दाय कौं ।
डोलैं बन बन बावरे ह्वै साँवरे सुजान,
धाय धाय भेटैं भावती ही दिसि वाय कौं ।

७०–ओवरे–ओसरे (खोज) । छरहरैं–फरहरे । भौंर–मोर । कैंन–कौन । निहारत०–निहारैं ते ही होवैं त्यौं जु । औंचकौं–औंचक (वही) ।

उदार=उत्तम । सहायची=सहायक [७०] सुबल=श्रीकृष्ण के एक सखा । वगर=घरे । ओवरें=कोठरी में । छरहरें०=इकहरे शरीरवाली । कैं० = कोई जानता नहीं किस लिए । औंचकौं० = अचानक कहीं से किसी की दृष्टि पड़ती है तो वह पीठ फेर लेती है और उसके पीठ फेरने की शोभन छटा से नेत्र हटने की बात बहुत कहने पर भी नहीं मानते । [७१] भीति=दीवाल । रही०=भीत पर चित्रलिखी सी लगती है । छंद=उपाय । धुनै=खीजती है । भीरी०=सोच के ढेर में दबी । गुनै०=गुण (गुण, डोर) को पकड़कर भी शोक में डूब रही है ।

सवैया

चारिक चौस रचे चिकनाय कै दीसत नेह-निवाहन-रूखे ।
झूमि झमारहि दै घनआनँद रावत हाय बिसासनि सूखे ।
छैल छबीले भरे छल-छंद ढरौ ढव हा अनदोखहू दूखे ।
रावरे पेट की बूझि परै नहीं रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥ ६७ ॥

सोरठा

जानौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं ।
हियो परेखनि पोहि, कहा भुलावत गुन-भरे ॥ ६८ ॥

कवित्त

अंग सुखमूल, रंग रुचिर गुलाब फूल,
कोमल दुकूल तूल - पूरित अजायबी ।
छूटी छबि - रसमैं चटक चोखे चसमैं,
बिलोकैं मन बस मैं न रोकैं रहै दायबी ।
केसरी लपेटा छैल बिधि सौं लपेटे,
मुख बीरा कंठ हीरा-जोति उपमा लजायबी ।
मीत कै सिंगार घनआनँद उदार देखैं,
रीझनि पसीजैं नैन कछु न सहायबी ॥ ६९ ॥

चलि रे सुबल आजु बाही कैं नगर कालि,
जो ही मैं लखाई घनआनँद सु ओवरे ।
भरहरैं गात मँडरात भौंर भाँवरी दै,
छूटे बार मोतिन कौ द्वै-लरी बनी गरे ।

पाठ-विन्यास [६६] विसद=निर्मल । [६७] झमार=वृष्टि के जल से भर देना । [illegible]=रूप में निर्दोष होकर भी मन से सदोष हो । रीझि०=मेरी रीझ को पचाकर भूखे घूमते हो । मेरी रीझ की तो चिंता नहीं करते पर दूसरों से मिलने-जुलने की ताक में लगे रहते हो । [६८] अनबन=बिगाड़; मनमुटाव । बनक=मैत्री । परेखनि०=परखनाओं से गुहकर । गुन=गुण, डोर । [६९] तूल=रुई । अजायबी=अद्भुत । [illegible]=[illegible] । चटक=[illegible] । चोखे०=[illegible] की उत्पत्ति से युक्त । दायबी=[illegible], [illegible] की गोद में रहनेवाला । केसरी=पीला । लपेटा=पगड़ी ।

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफैं ।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि सु गावति गारि बजाय डफैं ।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफैं ।
लपटे घनआनंद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वैं गुजरी-गुलफैं ॥ ७६ ॥
पातरे गात किये नवसात, निकाई सों नाक चढ़ाएँई बोलैं ।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गरधारैं ई डोलैं ।
स्यामहि चाहि चलैं तिरछी, मन खोलौं खिलारि न घूँघट खोलैं ।
आली सों आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलैं ॥ ७७ ॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सों काज करै ।
मिस ठानि चलैं रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि अरै ।
घनआनँद रूप - अनूप - भरी धरनी पर सूधे न पाय परै ।
पिय को हिय ताहि लखैं अभिलाषनि लाखनि लाखनि भाँति भरै ॥ ७८ ॥
चाल-निकाई लखें बिलखें पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति ।
पाय परैं न परैं मति पाय सची तरसैं थरसै, न कछू रति ।
घूँघट-बीच मरीचन की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति ।
लाजनि सों लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥ ७९ ॥

कवित्त

चुँहटि जगाई अधराति ओटपाई आनि,
भहराई जानि सम्हराई मुँह चाँपि कै ।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
डरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै ।

७६—सु०-गवावति (कवित्त)। ७७—खोलौं—खेलैं (कवित्त)। ७८—अनूप—गरूर (कवित्त)। ७९—माल—भाल (लंदन)। मद—मृदु (वही)।

[७६] रफैं=सुंदर ढंग। लंक०=कमर लचकती है। दृग०=नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी=गोपी। गुलफ=टखना। [७७] नवसात=सोलहो शृंगार। मन० = मन खोलने पर भी। घामरि = बेहोशी। [७८] रहठानि=वासस्थान। [७९] थरसै=त्रस्त होती है।

उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं,
गौरी गाय डौरी सौं बुलावैं गौरी गाय कौं ॥ ७२ ॥

सवैया

प्रेम - अमी - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूनन की रुचि-राजी ।
देखन आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप बिराजी ।
राग-रची अनुराग - जची सुनि है घनआनँद बाँसुरी बाजी ।
नैन - महीप बसंत - समीप मतो करि कानन सैन है साजी ॥ ७३ ॥

कवित्त

नीकी नई केसरि को गारौहू गरब गारै,
झोका गारि गारि सो निहारैं रूप गोरी को ।
चारु चुहचुही मंजी पहिन ललाई लखैं,
दरसि चलत ज्यौं बरन बूको रोरी को ।
हँसि बोलैं कोरिक कपूर सोंधे वारि डारि,
डारि डारि दीजै हो कलंक उन्हैं चोरी को ।
प्यारे घनआनँद के रंग भाग जाग देखौ,
रंग-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥ ७४ ॥

सवैया

बैन नई अनुरागमई सु भई फिरैं फागुन की मतवारी ।
कौंधैं हाँस रची निहुरी उझकै नीकै बजाय हरैं हियहारी ।
सौंधैं अंग के भाव भरी घनआनँद सौनि मैं दीसति न्यारी ।
भान हैं पांखनि प्रानपियै सुख-अम्बुज ज्यौं मकरंद मा मारी ॥ ७५ ॥

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफै ।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि सु गावति गारि बजाय डफै ।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफै ।
लपटै घनआनँद घायल ह्वै दृग-पायल छ्वै गुजरी-गुलफै ॥ ७६ ॥
पातरे गात किये नवसात, निकाई सों नाक चढ़ाएँई बोलै ।
राचे महावर पायनि त्यों तकि चायनि आय गरपारैं ई डोलै ।
स्यामहि चाहि चलै तिरछी, मन खोलौं खिलारि न घूँघट खोलै ।
आली सों आनँद बातनि लागि मचावति घातनि घामरि घोलै ॥ ७७ ॥
हरि-नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह मैं लाज सों काज करै ।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यों आनि भटू अँखियानि अरै ।
घनआनँद रूप - अनूप - भरी धरनी पर सूधे न पाय परै ।
पिय को हिय ताहि लखैं अभिलाषनि लाखनि लाखनि भाँति भरै ॥ ७८ ॥
चाल-निकाई लखें बिलखें पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति ।
पाय परै न परै मति पाय सची तरसै थरसै, न कछू रति ।
घूँघट-बीच मरीचन की रुचि कोटिक चंदन को मद चूरति ।
लाजनि सों लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥ ७९ ॥

कवित्त

चुँहटि जगाई अधराति ओटपाई आनि,
भहराई जानि सम्हराई मुँह चाँपि कै ।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
डरे नाह, नाहर-डरनि उठी काँपि कै ।

७६–सु०–गवावति (कवित्त)। ७७–खोलौं–खेलै (कवित्त)। ७८–अनूप–गरूर (कवित्त)। ७९–माल–भाल (लंदन)। मद–मृदु (वही)।

[७६] रफै=सुंदर ढंग। लंक०=कमर लचकती है। दृग०=नेत्ररूपी नूपुर। गुजरी=गोपी। गुलफ=टखना। [७७] नवसात=सोलहो शृंगार। मन० = मन खोलने पर भी। घामरि = बेहोशी। [७८] रहठानि=वासस्थान। [७९] थरसै=त्रस्त होती है।

दिन होरी-खेल की हराहर भरयौ हो सु तौ,
भाग जागें सोयौं निधरक नैन ढाँपि कैं।
सपने की संपति लौं दुखदैन जान्यौ घन-
आनंद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कैं ॥८०॥

तरुनाई - चाँदनी - छकनि - मतवारे भारे,
झुकि घुकि घाय रीझि उरझि गिरत हैं।
सरसि उठत घनआनँद मनोज - ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।
सुघराई सान सौं सुधारि ससि असि करि,
कर ही मैं लियें निसिचासर फिरत हैं।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागैं चोर,
गिरिधर - धीरता के किरचा करत हैं ॥८१॥

निठुराई-निसि निवराई बाल-ख्यालनि मैं,
जोबन बिभाकर - उदोत - आभा है भली।
नवागम-चन्द भयौ रस को समागम है,
आगे तें अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच - बिकच-दसा देखें मन आई गनौं,
चाहनि कमल होन कौन रूप की कली।
बड़भागी रागी लालि रहि घनआनँद सो,
भौंरनि मिलैं सबु लैहै भावतो अली ॥८२॥

सवैया

जात नए नए नेह के भार बिंधे उर ओर घनी बरुनी के ।
आनँदमै मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं बोलत सोत अमी के ।
भोर की आवनि प्रान अँकोर किये तित ही चलि आए जहीं के ।
डारियै जू तिन तोरि कै लालन और दिनान तैं लागत नीके ॥ ८३ ॥
होते हरे हरे रूखे जो दूखे, किते गई सो चिकनानि तिहारी ।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कढ़ी छतियाँ छिदि बंक बिहारी ।
चूक पै मूक भए ही बनै, घनआनँद हूकनि होत दुखारी ।
एहो कहा भयौ कान्ह कठोर है एक ही बारि चिन्हारि बिसारी ॥ ८४ ॥
भोर तैं साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तैं भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सौंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ ८५ ॥
नैन की सैन मैं कोटिक मैन लजैंऽरु भजैं तजि कै सर पाँचनि ।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं पघिल्यौई परै चित चाह की आँचनि ।
ता पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि ।
नूपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रवीन अधीन किये सुर साँचनि ॥ ८६ ॥
पूरन चंद के चूरन कौं तट धूरि हँसै सु कपूर किती पति ।
जौ मघवा-मनि को सतु सोधियै तौऽब कहा परसै पय की गति ।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसै रस-रंग तरंगनि की गति ।
आनँद-मंजन आँखिन अंजन होत लखैं सविता-दुहिता अति ॥ ८७ ॥

८३—बोलत०—रोल तमोल (कवित्त)। ८६—कौं—के (कवित्त)।

[८३] अमी=अमृत। अँकोर=भेंट [८४] होते०=रूखे दूखे भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे। [८५] न हारति=नहीं थकती। तारनि=आकाश के तारों को। तारनि सौं=पुतलियों से। इकतार=लगातार। भावतो=प्रिय। आँसुनि०=उस अवसर पर आँसू गिराती है [अथवा आँसुओं द्वारा अवसर को निचोड़ देती है, खो देती है]। सौंहन=संमुख। जोहन०=देखने की। आरति=लालसा। [८६] सर०=अपने पाँचो बाणों को। प्रवीन=(वीणा बजाने में) निपुण।

घूँघट - ओट तकै तिरछी घनआनँद चोट सु घात बनावै।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर बीर छरा धरि ढूकति आवै।
कौंधि अचानक चौंधि भरै चख, चौकस चौंकवि छाँह न छ्वावै।
बाल अनूठियै ऊठि गुलाल की मूठि मैं लालहि मूठि चलावै ॥ ८८॥

कबित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद - सुधाधर उदोत - आभा रद की।
अंग अति लोनी लसै ललित तिलोनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बैंदी मृगमद की।
बोलै हो हो होरी घनआनँद उमंग - बोरी,
छैल-मति छकै छबि हेरैं रदछद की।
रोरी भरि मुठी गोरी भुज उठी सोहै मनौ,
पराग सौं रली भली कली कोकनद की ॥ ८९॥

सवैया

दावँ तकै, रस-रूप छकै, बिथकै मति पै अति चोपनि धावै।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलै, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावै।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद चोट बितै अँगुठाहि दिखावै।
भावती गौं-बस ह्वै रसिया हिय-हाँसनि सौं सनि आँखि अँजावै ॥ ९०॥
पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली।

८९—सौं—मैं (लंदन) ९०—ठठि—लखि (लंदन)।

[८७] पति=प्रतिष्ठा। मघवा०=इंद्रनील, नीलम। पय=पानी। मति=समता। सविता०=यमुना [८८] उसारि=वस्त्र मेंसे निकाल कर। बरा=बाँह का एक गहना, टाँड। छरा=नारा, नीवी। ऊठि=उमंग। मूठि चलावै=जादू करती है। [८९] तिलोनी=फुलेल से सुगंधित। रदछद=होंठ। रली=भरी। कोक०=लाल कमल। [९०] ठठि=शान से डटकर। छराय=छलावा, मायादृश्य। चोट०=आघात बचाकर।

घनआनँद खेल-अलेल दसै बिलसै, सु लसै लट झूमि झुली ।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥ ९१ ॥

आछी तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन ।
साँवरी पोति-छरा छलकै छबि गोरी अँगेट लखैं सम कोइ न ।
एड़ी झवैंलिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै हग दोइन ।
भावती गौं पगि लावनि सौं लगि डोलैं लला के लगी हैं ई लोइन ॥९२॥

कवित्त

सींचे रस-रंग अंग फूलि फैलि फबि दबि,
देखि देखि मालती - लतानि रकसति है ।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओटि कीजै,
अलक छबीली मन छूटियौ कसति है ।
कहा कहौं राधे घनआनँद पिया के हिय,
बसि रसि जैसी मेरी आँखिनि ससति है ।
कौन धौं अनूठो रस प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हसनि बसंत कौं हसति है ॥ ९३ ॥

गलिन मैं छली, रली तिनहीं सौं चली भली,
धोखैं बावरे है हियैं रावरे प्रतीति है ।
आजु लौं लला हो काहू बाम सौं न काम परयौ,
देती जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है ।
गाल क्यों बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावँ ग्वैंडे जानि परै हार जीति है ।

९३—फबि—छबि (याज्ञिक) । आँखिनि०—आनित समाति है (लंदन) ।

[९१] अछेह=अखंड । हेत=जोश । तुली=ठीक, अंदाजभर । अलेल=किलोल । खुली=फबी है । [९२] तिलौनी=सुगंधित । लोइन=सुंदर । पोति०=काँच की गुरियों की लड़ी । अंगेट=अंगदीप्ति । झवैंलिनि=झाँवे से रगड़ी हुई । लावनि=पैर रखना, चलना । लोइन=लोचन । [९३] ओटि०=छिपाने पड़ते हैं । ससति=

आन हमैं बाबा वृषभानु की अरैं न टरैं,
गई करैं धरैं सो अबै ही सबै बीतिहै ॥ ९४ ॥

गोरे भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है ।
वदलि परी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचंभे की समीति लेखियत है ।
देखैं भूलियत कछू कहत न आवै सखी,
इनकी हिलग नई नई देखियत है ।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद बरस यह,
व्रज बृंदाबन ही मैं यौं बिसेखियत है ॥ ९५ ॥

———

९४–हियें०–हियरा रे परतीति (याज्ञिक) । सो–तौ (वही) । ९५–गोरे–गोर (खोज) ।

समा जाती है । [९४] ग्वैंडे=परिसर, निकट । आन=शपथ । गई करैं=अप्रतिष्ठा करैं । सबै०=सब कुछ निवट जायगा । [९५] समीति=समूह । हिलग=लगन ।

प्रेमसरोवर

दोहा

प्रेमसरोवर अमल वर, ढिग कदंब - तरु - पाँति ।
भानकुँवरि-विहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥ १ ॥
सोभा-झर लाग्यौ रहै, झूमि सघन तरु - बेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥ २ ॥
सब रितु-हित सोभित सरस, करियै कहा बखान ।
कीरतिलली अलीनि मिलि, खेलन की रहठान ॥ ३ ॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखेँ बनैं बनाव ॥ ४ ॥
बरन बरन नव पाट के, झूला झुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥ ५ ॥
जूथ - जूथ - सँग झूलई, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचिरज - रूप निहारि ॥ ६ ॥
बिच झुरमुट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप - झलानि की, बदन भरे अति फूल ॥ ७ ॥
भूषन बसन सुरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
मोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥ ८ ॥

---

[१] भानकुँवरि=श्रीराधा। [२] झर=झड़ी। [३] कीरतिलली=श्रीराधा। रहठान=स्थान। [४] पाट=रेशम। झुले=लटके हुए। [७] झुरमट=वृक्षों का समूह, निकुंज। झूल=पेंग। फूल=प्रसन्नता। [८] रंग=आनंद।

ब्रजविलास

दोहा

मोहन ब्रजबन की थली, भली रँगरली ठौर ।
मन आएँ आवै सु क्यौं, कहौ फिरि कछू और ॥ १ ॥

ललित लाल लीला रली, ब्रजबन-रुचि रहठानि ।
आँखिनि देखैं ही भटू, आँखिनि पैठत आनि ॥ २ ॥

सदा सुहायो रसमसो, सुंदर ब्रज को बास ।
मोहन-मुख-सुखमा सन्यौ, सोहत सहज प्रकास ॥ ३ ॥

ब्रजवन जमुना गिरितटी, मची रहति रसकेलि ।
सब ठाँ भीजे देखियै, आनँदघन - रस - झेलि ॥ ४ ॥

कहा कहौं ब्रज की बनक, कान्ह कुँवर कैं हेत ।
घर बाहिर बीथी बगर, मन दृग मोहे लेत ॥ ५ ॥

मोहनहीं सौंहीं तकैं, जिते गरधारे आहि ।
ब्रज-गलीनि की लालसा, दीसति स्यामहि चाहि ॥ ६ ॥

कृपा करैं ब्रजनाथ जौ, ब्रजदरसन के नैन ।
या ब्रजबन की माधुरी, तौ परसै उर - ऐन ॥ ७ ॥

जमुना - कूल सुहावनो, ललित वलित तरु-वेलि ।
सूचत राधारमन की, महा मधुर रसकेलि ॥ ८ ॥

प्रेमरंग - रस - रगमगो, सुंदर ब्रजवन - भूमि ।
ब्रजजीवन आनंदघन, हित बरसत नित झूमि ॥ ९ ॥

ठौर ठौर सोभा महा, नई नई हित - जोति ।
मुदित उदित ब्रजचंद लखि, जगमग जगमग होति ॥ १० ॥

मोहन मदनगुपाल को, मोहन यह ब्रज देस ।
अति उदार भागनि भर्यौ, राजत नंद नरेस ॥ ११ ॥

खरिक खोरि महमह महा, गोधन गोपकुमार ।
गोदोहन ब्रजसंपदा, मोहन प्रान - अधार ॥ १२ ॥
अमृत-वृस्टि हित-द्रस्टि सों, सींच्यो ब्रज निज देस ।
ब्रजजीवन आनंदघन, उनयो भरि आवेस ॥ १३ ॥
ब्रजमंगल गुन स्याम के, अद्भुत प्रेमनिधान ।
घर घर मैं सुनियत सदा, विस्व - विमोहन गान ॥ १४ ॥
ब्रजमोहन ब्रज मैं बसै, नित ब्रजमंगल रूप ।
घर बाहिर व्यापक सदा, मंगलचरित अनूप ॥ १५ ॥
ब्रजविलास रसरीति को, करियै कहा बखान ।
कृस्नचंद क्रीड़त जहाँ, पूरन - कला - निधान ॥ १६ ॥
नैन मिलैं मन मिलि गयौ, बढ़ी अनमिली चौंप ।
अचिरज-फल लाग्यौ सखी, उलहि तहाँ हित-कोंप ॥ १७ ॥
भई कलंक कुलीनता, चाहत ही ब्रजचंद ।
चख-चकोर चौंपनि तचैं, प्रगटी कला अमंद ॥ १८ ॥
देखो अनदेखी भई, अब सब ही कुलकानि ।
दीसि परी आँखिनि सखी, उघरि परनि की बानि ॥ १९ ॥
जगत - उजारो साँवरो, दुरयौ हिये मैं आय ।
गोरी नावँ प्रगट भयौ, सपनैं संगम पाय ॥ २० ॥
हिलग नई ब्रज - छैल की उघरी कियैं दुराव ।
सपनैं ही परतख कियौ, लाज - लपेट्यौ चाव ॥ २१ ॥
भयौ सँजोग वियोग हूँ, भई गात - गति और ।
दावत दावत मचि गई, घर बाहिर हित - रौर ॥ २२ ॥
राधा मेरो नाम है, वे ब्रजमोहन स्याम ।
गीत ग्वारिनी गाइयै, सु लगलाग के काम ॥ २३ ॥
कोरि उपाव करौं सखी, दुरै नहीं हित-बानि ।
रोम रोम मैं रमि रही, ब्रजमोहन - पहचानि ॥ २४ ॥

मुरली - धुनि काननि रमी, राति द्यौस मझराति ।
त्यौं मूरति आँखिनि बसी, सनमुख ही दरसाति ॥ २५ ॥

घर ही मोहन के रही, बाहिर राधा नाँव ।
उलटी गति है प्रेम की, जानत गोकुल गाँव ॥ २६ ॥

छकी छकी सब अंग हौं, छकी मोह कैं छाक ।
उघरि परी घूँघट कियैं, निपट अटपटी ताक ॥ २७ ॥

हित - टौंना आँखिनि परयौ, हरयौ हिये को धीर ।
जागति हौं बतराति हौं, सँग सोवन की पीर ॥ २८ ॥

दुसह विरह जदुनाथ को, मिल्यौ कहूँ तैं आइ ।
बिछुरि विसासी यौं मिले, कछु गति गही न जाइ ॥ २९ ॥

संग लगैं डोलै सदा, बोलै नाहिन बात ।
एक बात बूझै सु क्यौं, अनमिल की कुसरात ॥ ३० ॥

तिन्हैं चैन क्यौं बिन हमैं, हमैं चैन जौ नाहिं ।
कहा मिलैं वे अनमिलू, हम बिछुरैं मिलि जाहिं ॥ ३१ ॥

सुनै कौन बरनै सु को, व्रज को दुसह बियोग ।
बन्यौ आनि ऐसैं सखी, अनमिल सौं संजोग ॥ ३२ ॥

वाय - बावरो गाँव सब, भूलन माँझ सम्हार ।
मुँह मूँदैं डोलैं थके, कान्हैं कान्ह पुकार ॥ ३३ ॥

बन जमुना गिरि ब्रजगली, लखियत मोहन स्याम ।
देखत भूली है भई, मोहि आठ हूँ जाम ॥ ३४ ॥

एक कान्ह देखैं जियैं, ये सब ही व्रज लोग ।
चेटक रूपी कान्ह को, अचिरज विरह-सँजोग ॥ ३५ ॥

मोहन - मूरति साँवरी, डोलति डीठिहि लागि ।
अँसुवनि दरसत स्याम घन, जल मैं लागी आगि ॥ ३६ ॥

बाढ़यौ रहत गुपाल ही, व्रज को दुसह वियोग ।
यातैं सब ठाँ होत है, व्रजमोहन - संजोग ॥ ३७ ॥

व्रजमोहन - मैं ह्वै रह्यौ, देखत विरही लोग ।
यातैं कछु कहत न बनैं, अचिरज विरह - सँजोग ॥ ३८ ॥
व्रज छायौ आनंदघन, विरह - सँजोग अनूप ।
दरसै सुंदर स्याम को, मोहन अचिरज - रूप ॥ ३९ ॥
अचिरज गति मन दृगनि की, लगि मोहन के संग ।
करत रहत हम सौं सदा, नवरंगी पै रंग ॥ ४० ॥
विछुरैं जियैं मिले न ते, मिले न तिन्हैं विछोह ।
सब पै समझि परै नहीं, व्रजमोहन को मोह ॥ ४१ ॥
प्राननाथ व्रजनाथ सौं, विछुरैं जियै सु कौन ।
अकथ कथा व्रजप्रेम की, कछु बरनत है मौन ॥ ४२ ॥
मोहन - रस बरनैं सुनैं, औरैं रसना कान ।
विमन भएँ मन समझियै, मोहन ही की आन ॥ ४३ ॥
मोहन मन मोहन लगे, मानहुँ मोहन संग ।
जकि थकि रहियै लखत ही, व्रजमोहन के रंग ॥ ४४ ॥
कबैं मिले विछुरे कबैं, विषम विसासी स्याम ।
मिलैं अमिल अमिलैं मिले, ये कपटनि के काम ॥ ४५ ॥
अहा कहा गति प्रेम की, क्यौं हूँ समझि परै न ।
मिलैं अनमिलैं एक से, कछु कहिबे की है न ॥ ४६ ॥
निपट नवेलो देखियै, या व्रज हित - ब्यौहार ।
गहे गहि रहे एक से, मोहन - गुन आधार ॥ ४७ ॥
अचिरज मोहन साँवरे, अचिरज नेही नैन ।
व्रज अचिरज सौं रचि रह्यौ, बरनैं अचिरज बैन ॥ ४८ ॥
महा मरम व्रज प्रेम को, कहा बरनियै ताहि ।
मोहन - गुन गहि बूड़ियै, कौन सकै अवगाहि ॥ ४९ ॥
मिलैं चटपटी विरह की, विछुरैं मिलन-विनोद ।
लपट - लपेट्यौं बरसई, व्रज मैं प्रेम - पयोद ॥ ५० ॥

सरस वसंत

दोहा

वृंदाबन आनंदघन, राजत जमुना[१] कूल ।
सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि-अनुकूल ॥ १ ॥
वनसंपति दंपतिमई, नई नई नित जोति ।
कृस्न - राधिका - रूप तैं, जगमग जगमग होति ॥ २ ॥
या वन की सोभा सरस, कमलनैन कौं चैन ।
वर वानिक बरनौं कहा, सब रितु अचिरज - ऐन ॥ ३ ॥
रितु औरै मौरै नवल, वृंदावन तरुबेलि ।
सहज सुहायो देखियै, आनँदघन रसकेलि ॥ ४ ॥
या वन सरस बसंत रितु, बिलसत मधुर किसोर ।
फागु खेलि चौंपनि खिले, चाहत वन की ओर ॥ ५ ॥
चाहनि चाह भरयौ सुबन, प्रफुलित सरस बसंत ।
गुंजभरे अलि-पुंज मिलि, सोहत अति रसवंत ॥ ६ ॥

चौपाई

घमड़ि पराग लता - तरु भोए । मधुरितु-सौरभ - सौंज समोए ॥७॥
वन वसंत वरनत मन फूल्यौ । लता लता झूलनि सँग झूल्यौ ॥८॥
खगनि-चुहक पिक-कुहक सुहाई । वन मनमथ की फिरी दुहाई ॥९॥
मलय-पवन - आगम सुखसार । रोचक महा सुदेस सुढार ॥१०॥
बरसत पुहुप पुहुमि पर सोहत । वन-छवि लखि ब्रजमोहन मोहत ॥११॥
झौंरनि चौंर चाय सौं ढोरत । परम प्रीति रसमसे झकोरत ॥१२॥
कुसुम सु आसव स्यामहि प्यावत । वन-तरु जड़ पै यौं जिय ज्यावत ॥१३॥
मधुरितु मधुप-हित-भरी टपकत । मधुप-किसोर चौंप सौं लपकत ॥१४॥

१–राजत–राजित (लंदन)। सुखद–जु सुख (वृंदा०) । ३–वानिक–वानन (लंदन) । ४–केलि–झेलि (लंदन) । १४–मधुप-हित०–मधुफल हित भरि (लंदन) ।

सरस वसंत साँज बहुरंग। लियेँ फिरत बनमाली - संग ॥१५॥
कुंजन के प्रकार बहु भाँति। जमुना-तीर बिराजति पाँति ॥१६॥
नवपल्लव दरपन - दुति दवै। या वन की छबि या वन फबै ॥१७॥
पुहप-तलप जित तितहि रचावै। यातैँ सरस वसंत कहावै ॥१८॥
बनबिहार के स्रमहि निवारै। मदनगुपाल - प्रीति - पन पारै ॥१९॥
सरस वसंत प्रीति की गोभा। प्रगटित होति बिराजति सोभा ॥२०॥
वृंदावन वसंत रसवंत। राधा - माधव कामिनि - कंत ॥२१॥
तन मन फूले बिहरत वन मैँ। फूली ललित सखी जन-गन मैँ ॥२२॥
रूपमंजरी रुचिर सु अंगनि। नई तरुनई बरसनि रंगनि ॥२३॥
या वन वर वसंत की संपति। बिलसत लसत रँगीले दंपति ॥२४॥
सरस राग हिंदोल जम्यौ है। नाद-स्वाद दिसि-दिसिनि रम्यौ है ॥२५॥
मुरली - टेर ब्यापि वन रही। थिर-चर-गति कछु परति न कही ॥२६॥
तैसिय होति भवँर - झंकार। सरसत वन बरसत सुखसार ॥२७॥
सरस वसंत समय सुख बढ़्यौ। होरी - खेल-चाव चित चढ़्यौ ॥२८॥
सहज रंगमगे राधा - मोहन। रंगनि भरत हरत मन जोहन ॥२९॥
होरी सो खेलिबो करत हैँ। फिरि फागुन के रसहि ढरत हैँ ॥३०॥
खेल चुहल रुचि रचनि मची है। ढुरी चौँप अब उघरि नची है ॥३१॥
ब्रज कँ वास खेल रचि राख्यौ। वन वसंत औसर अभिलाख्यौ ॥३२॥
सरस वसंत फागु को खेल। बिटपी बिटनि कामिनी मेल ॥३३॥
तरु बेलिनि झुरमटहि निहारि। फागु खेलि गौँ रहे बिचारि ॥३४॥
बनसंपति दंपतिरुचि सरसै। जित तित फागु-खेल ही दरसै ॥३५॥
वन तन मन होरियै भरी है। औसर पै अति उघरि परी है ॥३६॥
सरस वसंत भावती होरी। मदनगुपाल माधवी गोरी ॥३७॥
सरस वसंत सहज तन सोभा। तैसिय वन प्रगटित गुन-गोभा ॥३८॥

२०–सो०–सी खेल को (वृंदा०)।

[१४] मधुप-किसोर = भ्रमरबाल। [३३] बिटनि = शखाओं पर ; सखाओं से।

सरस वसंत

दोहा

वृंदावन आनंदघन, राजत जमुना-कूल ।
सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि-अनुकूल ॥ १ ॥
वनसंपति दंपतिमई, नई नई नित जोति ।
कृस्न - राधिका - रूप तैं, जगमग जगमग होति ॥ २ ॥
या वन की सोभा सरस, कमलनैन कौं चैन ।
वर वानिक बरनौं कहा, सब रितु अचिरज - ऐन ॥ ३ ॥
रितु औरै मौरै नवल, वृंदावन तरुवेलि ।
सहज सुहायो देखियै, आनँदघन रसकेलि ॥ ४ ॥
या वन सरस बसंत रितु, विलसत मधुर किसोर ।
फागु खेलि चौंपनि खिले, चाहत बन की ओर ॥ ५ ॥
चाहनि चाह भरयौ सुबन, प्रफुलित सरस बसंत ।
गुंजभरे अलि-पुंज मिलि, सोहत अति रसवंत ॥ ६ ॥

चौपाई

घमड़ि पराग लता - तरु भोए । मधुरितु-सौरभ - सौंज समोए ॥७॥
वन वसंत वरनत मन फूल्यौ । लता लता झूलनि सँग झूल्यौ ॥८॥
खगनि-चुहक पिक-कुहक सुहाई । वन मनमथ की फिरी दुहाई ॥९॥
मलय-पवन - आगम सुखसार । रोचक महा सुदेस सुढार ॥१०॥
वरसत पुहुप पुहुमि पर सोहत । वन-छबि लखि व्रजमोहन सोहत ॥११॥
झौंरनि चौंर चाय सौं ढोरत । परम प्रीति रसमसे झकोरत ॥१२॥
कुसुम सु आसव स्यामहि प्यावत । वन-तरु जड़ पै यौं जिय ज्यावत ॥१३॥
मधुरितु मधुप-हित-भरी टपकत । मधुप-किसोर चौंप सौं लपकत ॥१४॥

१–राजत–राजित (लंदन)। सुखद–सु सुख (वृंदा०) । ३–वानिक–वानन (लंदन) । ४–केलि–झेलि (लंदन) । १४–मधुप-हित०–मधुफल हित भरि (लंदन) ।

सरस वसंत साँज बहुरंग। लियें फिरत बनमाली - संग ॥१५॥
कुंजन के प्रकार बहु भाँति। जमुना-तीर बिराजति पाँति ॥१६॥
नवपल्लव दरपन - दुति दवै। या बन की छबि या बन फवै ॥१७॥
पुहप-तलप जित तितहि रचावै। यातैं सरस बसंत कहावै ॥१८॥
वनविहार के स्रमहि निवारै। मदनगुपाल - प्रीति - पन पारै ॥१९॥
सरस वसंत प्रीति की गोभा। प्रगटित होति बिराजति सोभा ॥२०॥
वृंदावन वसंत रसवंत। राधा - माधव कामिनि - कंत ॥२१॥
तन मन फूले बिहरत बन मैं। फूली ललित सखी जन-गन मैं ॥२२॥
रूपमंजरी रुचिर सु अंगनि। नई तरुनई बरसनि रंगनि ॥२३॥
या बन बर वसंत की संपति। बिलसत लसत रँगीले दंपति ॥२४॥
सरस राग हिंदोल जम्यौ है। नाद-स्वाद दिसि-दिसिनि रम्यौ है ॥२५॥
मुरली - टेर व्यापि बन रही। थिर-चर-गति कछु परति न कही ॥२६॥
तैसिय होति भवँर - झंकार। सरसत बन बरसत सुखसार ॥२७॥
सरस वसंत समय सुख बढ़यौ। होरी - खेल-चाव चित चढ़यौ ॥२८॥
सहज रगमगे राधा - मोहन। रंगनि भरत हरत मन जोहन ॥२९॥
होरी सो खेलिबो करत हैं। फिरि फागुन के रसहि ढरत हैं ॥३०॥
खेल चुहल रुचि रचनि मची है। दुरी चोंप अब उघरि नची है ॥३१॥
ब्रज कै बास खेल रचि राख्यौ। बन वसंत औसर अभिलाख्यौ ॥३२॥
सरस वसंत फागु को खेल। बिटपी बिटनि कामिनी मेल ॥३३॥
तरु बेलिनि झुरमटहि निहारि। फागु खेलि गौ रहे बिचारि ॥३४॥
बनसंपति दंपतिरुचि सरसै। जित तित फागु-खेल ही दरसै ॥३५॥
बन तन मन होरियै भरी है। औसर पै अति उघरि परी है ॥३६॥
सरस वसंत भावती होरी। मदनगुपाल माधवी गोरी ॥३७॥
सरस वसंत सहज तन सोभा। तैसिय बन प्रगटित गुन-गोभा ॥३८॥

३०–सो०–सी खेल कौ (बृ दा०)।

[१४] मधुप-किसोर = भ्रमरबाल। [३३] बिटनि = शखाओं पर ; सखाओं से।

लहलहानि तन वनहि लसो है। पुहप-बिकास हुलास हँसी है ॥३९॥
अंग अंग बहु रंग प्रकासै। तन बन एकमेक ह्वै भासै ॥४०॥
सरस वसंत रूप वनराज। राधा - मोहन - प्रेम - समाज ॥४१॥
सरस वसंत विचारत बनै। बरसत मोद नैन अरु मनै ॥४२॥
हित-होरी खुलि खेल मच्यौ है। अमित अतन-रति-ओज लच्यौ है ॥४३॥
सरस वसंत फागु के रंग। मिलि रस बढ़्यौ अमोघ अनंग ॥४४॥
व्रज वन सरस वसंत - बिकास। होरी - खेल अनंग - बिलास ॥४५॥
यह वसंत यह होरी चोंप। छिन छिन नई नई रुचि कोंप ॥४६॥
सौरभ घमड़ रमड़ रस रेल। सरस वसंत फागु को खेल ॥४७॥
मधुरितु मधुर फागु या वन है। चोंपनि बिबस खिलारिन मन है ॥४८॥
मन की फूल फैलि तन छाई। वन बसंत - संपति सरसाई ॥४९॥
यातैं सरस बसंत बन्यौ है। फागु खेलि अनुराग सन्यौ है ॥५०॥
सरस वसंत फागु - रस भोए। अचिरज अंग अनंग-समोए ॥५१॥
सरस वसंत अनंत मौर है। और रतिपति रंग - रौर है ॥५२॥
ललित लहलहनि मधुर महमहनि। अंग डहडहनि रंग गहगहनि ॥५३॥
व्रज वृंदावन सरस बसंत। विहरत रसिकराय रसवंत ॥५४॥
चटक चाव चढ़वारि महा है। अंत रस रँग कहि परत कहा है ॥५५॥
सरस वसत खेल रँगभरे। मुकलित वैस - विलासनि ढरे ॥५६॥
वहु रँग सपति सरस वसंत। व्रजवन बिलसत राधाकंत ॥५७॥
भाग फाग अनुराग राग भरि। प्रमुदित सरस वसंत केलि करि ॥५८॥
नित ही सरस वसंत विराजै। मधुरितु समय परम सुख साजै ॥५९॥
जा हिय सरस बसंत बिकासै। वृंदावन मधुरितु सुख भासै ॥६०॥
केलिमंजरी प्रगटित होय। दंपति - संपति दरसै सोय ॥६१॥

४२–मनै–सनै (वृंदा०)। ४५–अनंत–अनंग (वृंदा०) ५१–फागु–भागु (लंदन)। अंग–रग (वही)।

[४३] अतन=कामदेव। [५२] रंग०=आनंद का कोलाहल। [५३] लह०= लहलहाना, हरा भरा होना। महमहनि=सुगंध। डह०=प्रसन्न होना। गह०=रंग का चढ़ना।

व्रजवन विसद विहार-विनोद। सरस वसंत वढ़ावै मोद ॥६२॥
परमानंद - भाव उर जागै। सरस वसंत रीतिरस पागै ॥६३॥
महा मधुर मधुरितु-सुख लहै। सरस वसंत - माधुरी कहै ॥६४॥
बानी सर्वे प्रम - मकरंद। सरस वसंत - विकास अमंद ॥६५॥

दोहा

ललित फागु रचना रची, विलसत सरस वसंत।
जै जै राधा माधवी, जै वनमाली कंत ॥ ६६ ॥

गोपीवल्लभ - पद - कमल, सुंदर प्रीति - पराग।
मन-मधुकर मकरंद-वस, मंडित पूरन भाग ॥ ६७ ॥

मूरति सरस वसंत की, वनमाली अभिराम।
प्रफुलित रूप अनूप तन, मोहन अगनित काम ॥ ६८ ॥

राधा - वदन - विकास - रस, मोहन मधुप सुजान।
चौंपनि चसकैं दृगनि भरि, करत निरंतर पान ॥ ६९ ॥

मुकलित वंस वसंत को, अद्भुत अमित विकास।
राधा - माधव - माधुरो, पीवत सरसें प्यास ॥ ७० ॥

हित - फूले भूले रहत, गौर स्याम तरु - वेलि।
जमुना कैं तट वैन वट, मधुरितु - रँग रसकेलि ॥ ७१ ॥

यह वसंत या वन वनै, धनि वृंदावन - खेत।
रसिकराय आनंदघन, नैन हियैं भरि देत ॥ ७२ ॥

राधा - मोहन छैल जुग, रस - रगमगे खिलार।
फागुन सरस वसंत के, सव रितु मैं रिझवार ॥ ७३ ॥

गुपत प्रगट चौंपनि भरो, मचो रहत रस - फाग।
सब रितु एकै रितु रहै, होरी सौं अनुराग ॥ ७४ ॥

६८—वन–मन (लंदन)। ६९—विकास–प्रकास (वृंदा०)। ७१—रँग०—रंगसकेलि (वृंदा०)।

फागुन-रस भीजे सहज, आँखिनि बिलसत आय ।
यह सुख सरस वसंत को, हिय भरि रह्यौ घुमाय ॥ ७५ ॥

हित - होरी मचियै- रहै, नित ही सरस बसंत ।
फिरि फागुन की को कहै, रंग - तरंग अनंत ॥ ७६ ॥

हित की गति कहत न बनै, हिय ही होति लखाय ।
फाग भाग अनुराग को, फूलि रह्यौ बनराय ॥ ७७ ॥

ब्रजवासी राधारमन, वृंदाबन सुख लेत ।
फाग - भरे फूले रहैं, पूरन प्रेम - निकेत ॥ ७८ ॥

---

[७५] घुमाय=चारों ओर, सर्वत्र ।

अनुभवचंद्रिका

चौपाई

ब्रजवन स्याम-रंग रचि रह्यौ। ब्रजवन को सुरूप यह लह्यौ ॥१॥
ब्रजवन देखन के दृग औरै। ब्रजवन सुखद स्याम सिरमौरै ॥२॥
ब्रजवन परम तत्व को सार। ब्रजवन लीला नित्य विहार ॥३॥
तन तैं निकसि मन पगै पन सौं। तब पहचान होय ब्रजवन सौं ॥४॥
ब्रजवन को सुरूप आनंद। कृस्नचंद नित उदित सुछंद ॥५॥
अद्भुत प्रेमसुधा झर सरसै। कृस्नचंद आनँदघन बरसै ॥६॥
या रसमय ब्रज वन को रूप। अमल अखंड अगम्य अनूप ॥७॥
लीला-रस-विलास को सागर। ब्रजवन गोकुलचंद उजागर ॥८॥

दोहा

गोकुलचंद मयूख लखि, जे दृग भए चकोर।
ते ब्रजवन देखत सदा, विसरि साँझ अरु भोर ॥९॥

चौपाई

ब्रजवन सोभा मन ही जानै। मनमोहन - मन बैठि बखानै ॥१०॥
ब्रजवन निरवधि रस लै सान्यौ। ब्रजवन-रस रसिया ही जान्यौ ॥११॥
या ब्रजवन मैं जो कछु होय। प्रगट निगमहू राख्यौ गोय ॥१२॥
परम परैं सो कैसैं भनै। महा मरम न विचारत बनै ॥१३॥
या ब्रजवन-रस-बस को होय। सबनि अगोचर लहै न कोय ॥१४॥
ब्रजवन-महिमा अधिक अगाध। नित्यानंद विनोद अबाध ॥१५॥
गोपभेष गौ पालत सदा। ब्रजवन बिलसत निज संपदा ॥१६॥
परमधाम को परम धाम है। ब्रज वृंदावन सरस नाम है ॥१७॥
ब्रजवन - सुख ब्रजमोहन लेत। सो सबही ब्रजवन लै देत ॥१८॥
ब्रजवन ब्रजमोहन कौ हेत। कछु कहि परत न अति रस-खेत ॥१९॥
ब्रजवन-रस सबही तैं न्यारो। मुरलीधर प्रानेसुर प्यारो ॥२०॥
या ब्रजवन बाँसुरी बजति है। लीला ललित समाज सजति है ॥२१॥

ब्रजवन बंसी - धुनि मँडराति । ऐसी कछु बंसी - धुनि जाति ॥२२॥
धुर के सुरनि बजी सो बजी । स्रवननिहूँ सुनि बहुरि न तजी । २३॥
कहा कहौं ब्रजवन की बात । सुमिरत सब विचार बिसरात ॥२४॥
ब्रजवन दरसि दरसि फिरि उरै । हरि लौं हियरा डारति झुरै ॥२५॥
लीला ललित लोभ नहि जगै । ब्रजवन सौं कैसैं पन पगै ॥२६॥
इतने पैं कछुवै न सुहाय । ब्रजवन नैन हियैं मँडराय ॥२७॥
ब्रजवन - बासी स्याम सुजान । गोपीवल्लभ रूपनिधान ॥२८॥
सुंदर डीठि कबहुँ जौ करै । मन-तन-सँग ब्रजबन लै धरै ॥२९॥
तन मन ब्रजवन रहै समोय । कृपा करैं तौ सब कछु होय ॥३०॥
इन आँखिन जौ ब्रजवन दरसै । हमकौं सोई सब सुख बरसै ॥३१॥
आस-बास ब्रजवन मैं रहौ । मन तन ब्रजबन - मारग गहौ ॥३२॥
ब्रजवन - सोभा नैन बिलोकौ । सब तन तें ब्रजवन मन रोकौ ॥३३॥
फुरौ सहज आनंद - बिलास । सफल होहु यौं ब्रजबन - वास ॥३४॥
ठौर ठौर सौं बिनती यहै । नित ही मन तन इतहीं रहै ॥३५॥
ब्रजवन ही जीवन - धन जानौं । मन तन ब्रजबन-रस लै सानौं ॥३६॥
ब्रजवन-सरि-सरिता-जल पियैं । उपजै सांति जरि गए हियैं ॥३७॥
लीला - अंकुर उपजै मन मैं । यातैं मचलि परयौ ब्रजबन मैं ॥३८॥
ब्रजमंडल वनराज - बिहारी । गोपीनायक लायक भारी ॥३९॥
सुढरि गुननि ढरकत ढिग आय । हरिहैं आधि मधुर मुसिकाय ॥४०॥
यह ब्रजबन-प्रसाद की आस । ब्रजवन कृस्न-कृपा - बिसवास ॥४१॥
ब्रजवन बसि ब्रजनाथहि गाऊँ । श्रीगोपीपद - रज सिर नाऊँ ॥४२॥
जमुन - तीर ब्रजजीवन - केलि । मन रसना हित धरूँ सकेलि ॥४३॥
स्रवन सुनौं ब्रजवन-गुन-गीत । मंगलमूरति परम पुनीत ॥४४॥
आनँद - लहर उठैं मन दबै । ब्रजवन के सुख साधौं सबै ॥४५॥
ब्रजवन सदा विनोदहि परसौं । दरसौं सोभा हियरा सरसौं ॥४६॥
ब्रजबन-रसिक-संग अभिलाखौं । तिनतैं सुनि बूझैं कछु भाखौं ॥४७॥

३९–लायक–नायक (लंदन) ।

[२५] उरै=पृथक् होती है, दूर होती है ।

ब्रजवन-रस की गाँसनि खोलौं। जौ राखै तौ गौंहन डोलौं ॥४८॥
ब्रजवन बसिबे को यह फल है। जिनि मिलि दरसत रूप अमल है ॥४९॥
ब्रजवन बसियै रसिकौ मिलैं। ब्रजवन-भाव इन्हैं मिलि खिलैं। ५०॥
रसिक-सजीवन ब्रजवन-वासी। राधा-मोहन सदा विलासी ॥५१॥
ब्रजवन परमानंद-रसायनि। गोपी-पद-रज यह रसदायनि ॥५२॥
ब्रजवन बसि पद-रज-रति मिलै। मति-गति अति आनँद-रस झिलै ॥५३॥

दोहा

प्रकटी अनुभवचंद्रिका, भ्रम-तम गयौ बिलाय।
ब्रजमंडन की कृपा तँ, रह्यौ मोद-घन छाय ॥५४॥
ब्रजवन-लीला-माधुरी, निरवधि रस को सार।
रसिक-मुकटमनि कृपा तँ पायौ प्रान-अधार ॥५५॥

———

[५३] झिलै=धँसती है। [५४] मोद-घन=आनंद का बादल; आनंदघन।

रंगबधाई

चौपाई

घोप-नृपति - घर ढोटा जायौ। ब्रज पर आनँदघन बरसायौ ॥१॥
मधुर स्याम ब्रज-लोचन-तारो। गोकुल जीवन जगत - उज्यारो ॥२॥

दोहा

लीला ललित गुपाल की, अति अद्भुत रसकंद।
आनँदघन बरस्यौ उदै पूरन गोकुलचंद ॥३॥

चौपाई

जसुदा-कूख-ककुभ ह्वै निकस्यौ। पूरव भाग अपूरव बिकस्यौ ॥४॥
सदा सनमुखो सबहीं भाँतिनि। व्यापक रुचि चरित्र-कुल-काँतिनि ॥५॥
अचरज-प्रभा कछु न कहि आवै। सबकौं सबहीं दिसि दरसावै ॥६॥
मित्र - मंडली - मंडन लसै। निसिदिन मन नैनन मैं बसै ॥७॥
ब्रज की कमलमुखी लखि फूलैं। गोकुलचंद पालनैं झूलैं ॥८॥
रंगबधाई को सुख जैसो। मन लोचन नहिं जानत तैसो ॥९॥
महा घोप बाजन को भयौ। वंदी बिरुद दसौं दिसि छयौ ॥१०॥
ब्रज निरवधि सुखसिंधु बढ़्यौ अति। बरनत थकै कोरि सारद-मति ॥११॥

दोहा

कृस्नचंद मैं मन दियैं, फुरै सु मंगल - मोद।
सबै कोद बरसै लसै, ब्रज मैं प्रेम - पयोद ॥ १२ ॥

चौपाई

नंद महोछे के सुख देखैं। जीवन-जनम मानियत लेखैं ॥१३॥
दधिकादौं सुख - भादौं भई। ब्रज मैं सोभा प्रगटी नई ॥१४॥
आनँद उफनि उठ्यौ थिर चर मैं। मंगल व्याप्यौ धर अंबर मैं ॥१५॥

१-घर-गै (लंदन)। १५-उठ्यौ-बढ़्यौ (वृंदा०)।

[१३] महोछे=महोत्सव। जीवन०=जन्म लेखे मैं मानते हैं, सफल समझते हैं।

सजन - बंधु ब्रज मैं इकठौरे। मगन गरथारनि डोलत दौरे ॥१६॥
आवत धावत मिलत सु लपटत। प्रेममगन नाचत अरु रपटत ॥१७॥
नंद - सदन रस - रंगबधाई। कोटि फागु खेलैं अधिकाई ॥१८॥
इक दिसि मागद सूत रटत हैं। बंदी बिरुदनि पढ़ि न हटत हैं ॥१९॥
निकरध झगरत नेग चुकावत। झगरि झगरि हित-चौंप बढ़ावत ॥२०॥
बरनौं कहा नंद को देबो। भरि थकि परैं लेतहूँ लेबो ॥२१॥
कान्ह-दरस - हित आसा पूजी। रहै काहि अभिलाषा दूजी ॥२२॥
धौंसा धुधक ढोल ढमकारनि। इत नटनचनि पुलकि किलकारनि ॥२३॥
गायक बिबिधि सोहिले गावत। अपनो मनबंछित भरि पावत ॥२४॥
जित जित चहत चकित ह्वै रहियै। या औसर की छबि कह कहियै ॥२५॥
सुर किंनर अपसर लखि झूमैं। थके छके आनँद-बस घूमैं ॥२६॥
अतुलित रस को सिंधु बढ़यो है। मुहँमाँग्यो फल हाथ चढ़यो है ॥२७॥
रावर की छबि बरनौं कैसैं। सोवर को घर सोहत जैसैं ॥२८॥
भागनि भरी जसोदा दिपै। दिसि दिसि जसदीपति सौं लिपै ॥२९॥
गोपबधू बर आनँद - भरी। गावति हँसति मल्हावति खरी ॥३०॥
अखिल भुवन-सुख सदन नंद कैं। जनम - समै आनंदकंद कैं ॥३१॥
सबकों सबै मनोरथ मिलै। अपने रंग - उमंगनि खिलै ॥३२॥
गोकुल गाँव कलिंदी - तीर। बढ़ी महा मंगल की भीर ॥३३॥
सबही के हिय परम हुलास। सफल भयो गोकुल को बास ॥३४॥
ब्रजपति संपति परति न बरनी। जसो सपूती सी जिहि घरनी ॥३५॥
यह धन धाम सदाई रहौ। नित नित सुतहित के सुख लहौ ॥३६॥
जागौ जियौ कन्हैया बारो। नंद-जसोमति प्राननि प्यारो ॥३७॥
लाड़िल अतिलड़ लला सलोनो। ब्रजमोहन सोहन दिनहोनो ॥३८॥
बड़ो होउ बड़भाग हमारैं। दिन दिन लोचन फलहि निहारैं ॥३९॥
सबकों सब ही बिधि सुख पोखौ। हितुवंनि देहु चैन-चित चोखौ ॥४०॥

२२–अभिलाषा–अभिलाषनि (लंदन)। २३–ढम०–ठनकारनि (वृंदा०)।

[१७] रपटत=गिर पड़ते हैं। [१९] मागद=मागध। [२८] सौवर=सुवर्ण। [३५] जसो=यशोदा।

गैयनि पालौ मैयनि हरषौ । नंदहि परमानंदहि वरषौ ॥४१॥
नित ही ब्रजजन-हित अनुकूलौ । जसुदाजीवन लला जरूलौ ॥४२॥
याकौ कंस खसौ मति न्हातैं । या ब्रज की सुख-सोभा यातैं ॥४३॥
नित नित मोद बिनोदनि करौ । चित के चीते हित बिस्तरौ ॥४४॥
बलिदलि जावँ आज के दिन की । सुभ नछत्र सुभ घरी सुछिन की ॥४५॥
या घर यह दिन दिन ही रहौ । मंगल - मोद सदा निरवहौ ॥४६॥
आनँद को घन रस जस बरसौ । हित-हरियारी नित ही सरसौ ॥४७॥
ब्रजजन चातिक यह रस पियौ । ब्रजजीवन-रस पीवत जियौ ॥४८॥
ब्रज सुदेस सुख सदा बिराजौ । गोपराज नित सजौ समाजौ ॥४९॥
श्रीयुत नंदराय - दरबार । नित ही आनँद मंगलचार ॥५०॥
ब्रजमंगल ब्रज प्रान - अधार । जै जै जै ब्रजराजकुमार ॥५१॥
स्यान राम की जोट छबीली । जसुमति रोहिनि रस-बरसीली ॥५२॥

दोहा

लाड़चाव बिलसौ लसौ, ब्रजजीवन रसकंद ।
हित - पियूष पोषौ सदा, पूरन गोकुलचंद ॥ ५३ ॥

---

[४२] जरूलौं=[जटुल] लहणवाले ।

प्रेमपद्धति

चौपाई

कहा कहौं गोपिन को प्रेम। बिसरे जहाँ सबै विधि नेम ॥१॥
प्रेम-पंथ बाँको अति आहि। सूधै इन अवगाह्यौ याहि ॥२॥
इनके चरन सीस लै धरै। तब यह अगम गैल अनुसरै ॥३॥
अगह बस्तु मन याहि न गहै। रसना अकथ कथा क्यौं कहै ॥४॥
इनको भाव इन्हैं बनि आयौ। कहूँ न पैयै सो इन पायौ ॥५॥
इनको परम प्रेमपद दूरि। महामूरि इन पायनि धूरि ॥६॥
सो अति अलभ हाथ क्यौं लगै। परम प्रेम कैसैं उर जगै ॥७॥
सिव विधि सुक उद्धव से जाचत। महिमा-बस अचरज-रस राचत ॥८॥
सुमरि समझि मूझत अभिलापनि। ब्रज बसि निरवधि रस की चाखनि ॥९॥
ब्रज परिकर सौभाग सराहि। बूड़त विपमय महिमा चाहि ॥१०॥
महा मरम सकत न अवगाहि। को धौं समझि सकै फिरि याहि ॥११॥
परम प्रेमगति कछु उर फुरै। दिव्य ज्ञान उघरैं हूँ दुरै ॥१२॥
व्याकुल ह्वै कलमलत सलोभ। जाचत जनम ब्रजधरनि-गोभ ॥१३॥
रस-सवाद रसिया ही जानै। बिन रस भएँ कौन अनुमानै ॥१४॥
सो रस अमिल मिलै धौं काहि। निगम नेति करि बरनत जाहि ॥१५॥
ते कछु जो अनुमानत ताहि। मगन होत लीला अवगाहि ॥१६॥
अति लघु ह्वै ब्रजरज आराधत। गोपी-मग डग सोधत साधत ॥१७॥
अनुचर-गति बिन रज क्यौं मिलै। भाव-बेलि-पुहुपावलि खिलै ॥१८॥
ब्रजरज-रूप गुरु-कृपा दरसै। तब रस परम हेत हिय सरसै ॥१९॥
रसकदंब चूड़ामनि स्याम। राधारमन परम अभिराम ॥२०॥
रस ही रस अपने रस ढरैं। तब ब्रजरज-अधिकारी करैं ॥२१॥
बढ़ै चौंप उपजै उर भाव। जानि परै ब्रजजन-चित-चाव ॥२२॥
गोपी नट गुपाल की प्रिया। हरि-हित-भरीं खरीं सब क्रिया ॥२३॥
काहू समय कछु न रुचि और। जगि पै रहै काम की रोर ॥२४॥
गोपिन के वस गोपीनाथ। नित विहरत ब्रजबन इक साथ ॥२५॥
मोहनचंदहि कियौ चकोर। मोहमई माचत चहुँ ओर ॥२६॥

अरस - परस - रस भीजे रहैं। ब्रजवन को सहेट - सुख लहैं ॥२७॥
ब्रज-वस कृस्न गोपिका - लाग। महाभाग पूरन अनुराग ॥२८॥
रचे सहज ही अति रस राचनि। कहै कौन पूरन पन-पाचनि ॥२९॥
मुरली - धुनि गोपिन ही सुनी। जु कछु बजाई मोहन गुनी ॥३०॥
सब अनसुनी करी धुनि सुनिकै। टरथौ धरम धीरज सिर धुनिकै ॥३१॥
प्रबल प्रेम को ओज दिखायौ। जगमोहन हूँ पकरि नचायौ ॥३२॥
या रस - बिबस एकरस रहै। अति अमोघ सुखसंपति लहै ॥३३॥
ब्रज - भूतल अभूत रससाज। सजे रहत नित प्रेम-समाज ॥३४॥
वर विहार ब्रजबधू - संग को। निरवधि रससागर - तरंग को ॥३५॥
को धौं कहै लहै धौं कौन। बानी बिरल अपूरब मौन ॥३६॥
बिन इन कृपा परस नहिं मन को। अतिअपरस है पन ब्रजजन को ॥३७॥
सब तें ऊँचो सब तें न्यारो। या रस-बस ब्रजनायक प्यारो ॥३८॥
रिनी भएँ रस को जस राख्यौ। रसिकसिरोमनि यौं अभिलाख्यौ ॥३९॥
सो धौं कहा कौन छ्वै सकै। याको अधिकारी ह्वै सकै ॥४०॥
गोपिनि हितगति चितहि बिचारै। परम प्रेम पूरन पन धारै ॥४१॥
गहै सु गति गोपिन जो गही। या ब्रज-रस को साधन यही ॥४२॥
रूप-अटक की खटक सम्हारै। ब्रजमोहन-मुख-ओर निहारै ॥४३॥
रुकनि बढ़नि अभिलाष तरंगनि। मगन होन उमगनि रसरंगनि ॥४४॥
दिन बितवनि चितवनि समायकै। जियहि जिवावनि चटक चायकै ॥४५॥
सब ठौं एक स्याम की सूझ। बूझि न परति छकनि की बूझ ॥४६॥
इनतें प्रगट प्रेम की पद्धति। अति ही गुपत समझि सुरझै मति ॥४७॥
तातें गोपिन के गुन गाऊँ। इनकी रचनि मनैं परचाऊँ ॥४८॥
इनकी सु लगलगन सौं लागौं। मधुर किसोर-रूप-रस पागौं ॥४९॥
बस ह्वै बिबस कियौ ब्रजमोहन। लाग्यौ लाग्यौ डोलत गोहन ॥५०॥
रसिक - मुकुटमनि इनकों नवै। जु कछु करै सोई संभवै ॥५१॥
महा उग्र ऊरध रस - पदवी। ब्रजनायक बिन काहू न दवी ॥५२॥

[२९] पाचनि=पकना । [३७] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके । [५२] न दवी=आरूढ़ नहीं हुआ ।

यह रस ब्रज वृंदावन धाम। गोपिनि मिलि बरखत घनस्याम ॥५३॥
रासबिहारी गोपिनि किये। बस करि लिये सदा सुख दिये ॥५४॥
नाचि नाचि कै भले नचाए। प्रबल प्रेमबस अबस लचाए ॥५५॥
निपट निसंक निरंकुस मोहन। फँदे रूप-गुन बिहरत गोहन ॥५६॥
भिजए रीझ रसिक रिझवार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥५७॥
अति रसबिबस मगन करि राखे। परसि सरसि अपरस फल चाखे ॥५८॥
यह सवाद गोपिनि ही लह्यो। नेति नेति निगमन हूँ कह्यो ॥५९॥
कहै कहा कछु थाह न पावै। निरवधि रस कौं थकि थकि धावै ॥६०॥
मिलै न गोपी-पद-प्रसाद बिन। सब अधिकारी बिकल किये इन ॥६१॥
ललचि ललचि जाचत अपनो सो। पै नहि टरत मोह सपनो सो ॥६२॥
देखि देखि भूलत सुधि साधत। अगम अगाह वस्तु आराधत ॥६३॥
ब्रजरस निपट अटपटो आहि। को धौं याहि सकै अवगाहि ॥६४॥
प्रबल तरंग रंग अति आगर। ब्रज अचिरज-रस को सुख-सागर ॥६५॥
श्रीगोपी - पदरज - अवलंब। लहियत ब्रजरसकेलि - कदंब ॥६६॥
तातैं नंद गोप ब्रजबास। जौ पाइयें कृपा अनयास ॥६७॥
तन धरि धरि यह बालक बनैं। ब्रजरज खरिक - कीच मैं सनैं ॥६८॥
अलभ लाभ को भाजन होय। ब्रजब्योहार रहै हिय भोय ॥६९॥
ब्रजजन सहज रीति कौं परखैं। ब्रज की प्रीति सहज मन करखैं ॥७०॥
कृस्न - गोपिका - कौतुक ताकै। उछकि परै जब या रस छाकै ॥७१॥
गोपी - प्रबल - भाव उर फुरै। तब सब ओर आप ही दुरै ॥७२॥
घूमत फिरै सुरति - भूल्यौ सो। तन मुरझान्यौ मन फूल्यौ सो ॥७३॥
स्याम - रूप रसभूप उज्यारो। लखै सहज ब्रजलोचन-तारो ॥७४॥
ताकी कहा बहुरि गति कहियें। जौ राखैं तौ निरखत रहियै ॥७५॥
ये ब्रजबधू परम बड़भाग। यह रस इन ही को निज भाग ॥७६॥
इनको गैल छैल - रस लहियै। तातैं सब तजि ब्रज बसि रहियै ॥७७॥
आस - बास ब्रज ही मैं रहौं। गोपीपद - प्रसाद मैं लहौं ॥७८॥
यह ब्रजरस मेरे मन मान्यौ। अनजानौं हूँ यहि पै जान्यौ ॥७९॥
जदपि स्वाद याको अति दूरि। ब्रजरज मिली सजीवन-मूरि ॥८०॥

याही लै निज नयन आँजिहौं। याहि चाहि मन-मुकुर माँजिहौं ॥८१॥
यह ब्रजरज - रस करिहौं पान। गोपीपद - प्रसाद सनमान ॥८२॥
गोपीपद - रज - रस अभिमान। परम गूढ़ मति मूढ़ निदान ॥८३॥
रहि न सकौं बिन किये बखान। अब रसना उचरै नहिं आन ॥८४॥
हियरा ब्रजरस - ढारैं ढरयौ। केलि - बेलि अवलंबन करयौ ॥८५॥
कछुक परयौ ब्रजरस को चसको। दूभर परस प्रेम अपरस को ॥८६॥
सोऊ सुगम मोहि परस्यौ है। गोपीपद - प्रसाद सरस्यौ है ॥८७॥
रस जो रसै कहा रसना बस। तऊ कहाँ रसना कित यह रस ॥८८॥
बकिबो करत मौन की बात। सुनि मेरे स्रवनौ न अघात ॥८९॥
हौं ही बरनौं हौं ही सुनौं। हौं ही समझौं निगुनौं गुनौं ॥९०॥
जिती कहावैं तितियै कहौं। ब्रज - सनेह को छेह न लहौं ॥९१॥
मौन बकै बानियौ न बोलै। ब्रजरस-सिंधु अगाध कलोलै ॥९२॥
यह रस पीवत प्यासे सरसै। अब तौ उघरि उघरि हित बरसै ॥९३॥
यह रस पाएं सब कछु पायौ। या ब्रजरज मैं उघरि दुरायौ ॥९४॥
गोपीरस गोपालै जानत। भावक-जन तिन कृपा बखानत ॥९५॥
त्रिभुवन संत - सिरोमनि गोपी। अतुल प्रेम पूरन पन - ओपी ॥९६॥
गोपी-बिट रस को बट पाय। सदा रहयौ आनँदघन छाय ॥९७॥
जीवन मरन भयौ ब्रजरस तैं। घूमत गोपी-रस - आरस तैं ॥९८॥
हियो बिरस या रस - उद्गार। जै जै राधा नंदकुमार ॥९९॥
दंपति - कृपा - भरोसो मोहि। जातैं ब्रजरज पाई टोहि ॥१००॥
अब न और कछु या बिन चहियै। याही रज मिलि मिलि रस लहियै॥१०१॥
गोपी - चरन - रैंन मेरे धन। गोपिन के पन माँ पारयौ पन ॥१०२॥
परम प्रेमपद्धति कछु कही। गोपीपद - प्रसाद तैं लही ॥१०३॥
सब रस को निगूढ़ मत यही। ब्रजरज गही भयौ अब सही ॥१०४॥
गोपीवल्लभ के गुन गनौं। गनि गनि निज सन्मुख मनौं ॥१०५॥
गौर-स्याममय ब्रजबन देखौं। ठौर ठौर लीला अवरेखौं ॥१०६॥

[९१] छेह=(छेद) विच्छेद। [९६] ओपी=ओपित, देदीप्यमान।
[१०२] रैंन=रेणु, रज।

लह्यौ परम रस को निरजास। श्रीव्रज वृंदाविपिन-विलास ॥१०७॥
भ्रम-तम गयौ भयौ सु प्रकास। गोपी-पदरज पूजी आस ॥१०८॥

दोहा

प्रगट प्रेमपद्धति कही, लही कृपा-अनुसार।
आनँदघन उनयौ सदा, अद्भुत रस-आसार ॥१०९॥

सुरति स्याम सौं मिलि रही, करत धाम के काम।
यह गति व्रज अबलान की, प्रबल प्रेम नव दाम ॥११०॥

बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति।
याही तैं सब तैं अमिल, या व्रज की रसरीति ॥१११॥

प्रेमअवधि आनंदघन, लिये महारस पागि।
सर्वस साध्यौ बिसरि सुधि, मोहदसा उर जागि ॥११२॥

कहि न परति कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि।
व्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाह ताहि ॥११३॥

सदा मगन मुरली धरैं, गावत व्रज को प्रेम।
व्रजनायक नेही निपुन, गहे प्रेम को नेम ॥११४॥

गोरस हू सो रस लियौ, जो नर लहै न कोय।
लैनि दैनि अति रसमसो, गति मति रही समोय ॥११५॥

घर बैठी बन मैं फिरै, गोपिन की यह गैल।
गोहन क्यौं न लग्यौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥११६॥

११०—प्रबल०—परम प्रेम तकि राम (राम)। ११३—अवगाहै—अवगाधै (राम)।

[१०७] निरजास=(सं० निर्यास) निचोड, निष्कर्ष। [१०९] आसार=वृष्टि। [११०] सुरति=स्मृति, ध्यान। दाम=रस्सी। [१११] गुनी=गुणी; रस्सीवाला। [११२] मोह०=अचेतावस्था। [११५] रसमसी=रसमय। समोय रही=लीन हो रही है। [११६] गैल=गली; रीति। गोहन=साथ।

गाँव गाँव बाखरि बगर, ब्रजमोहन मँडराय।
कहौ ताहि कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥११७॥

एकहि लगि दुहुँघाँ खगी, लगी पुरातन प्रीति।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥११८॥

परम प्रेमगति अगम अति, अमल अपूरब रूप।
सब तैं न्यारी सुचि सुमिल, ब्रज - रसरीति अनूप ॥११९॥

मधुर मुरलिका - नाद सौं, मति गति लई बिलोय।
निगम तान बेधे मरम, बिषम बिषामृत मोय ॥१२०॥

प्रेमपरावधि ब्रजवधू, सुनि वंसी - धुनि मंद।
तजत भईं सब कछु तबैं, भजत भईं ब्रजचंद ॥१२१॥

आरजपथ भूलीं भले, बिवस परीं हित - फंद।
ब्रजमोहन ब्रजमोहनी, पूरन प्रेम अमंद ॥१२२॥

थकित चलीं सुनि मुरलिका, सु धुनि अपूरब गैल।
बिबस भईं अपबस कियौ, मदनमनोहर छैल ॥१२३॥

अतुल अनूप सुरूप गुन, गोपी परम पुनीत।
जिनके बस रसनिधि सदा, स्याम सजीवन मीत ॥१२४॥

ब्रज बृंदावन देखिये, पूरन प्रेम - समाज।
गोपराजनंदन नवल, नित बरसत रसराज ॥१२५॥

चौंप चाव तिनही नयौ, नवल रूप नवरंग।
ब्रजबाला ब्रजचंद की, अद्भुत केलि अभंग ॥१२६॥

११७–बाखरि–पोखरि (राम)। ११९–सुचि–सुठि (वृंदा०)। १२०–तान–बान (राम)। १२१–कछु०–सकुच तब। १२२–ब्रजमोहनी–मनमोहनी। १२६–रामनगर की प्रति में यह दोहा यों है–चोप बाल ब्रजचंद की अद्भुत केलि अभंग।

[११७] बाखरि=घर। बगर=बरोठा, प्रकोष्ठ। [११८] घाँ=ओर।
[१२०] मोय=भिँगोकर। [१२२] आरज०=मर्यादा का मार्ग।
[१२५] रसराज=शृंगार।

गिरिवर बन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार।
सदा कुलाहल मचि रह्यो, लीला ललित अपार ॥१२७॥
परम अमल अति ही अमिल, हरि-ब्रजबधू-बिलास।
जाँचत हैं बिधि संभु से, श्रीब्रजमंडल - बास ॥१२८॥
श्रीपद - अंकित ब्रजमही, छबि न कही कछू जाय।
क्यौं न रमाहूँ को हियो, या सुख कौं ललचाय ॥१२९॥
रची निरंतर केलि यह, अद्भुत अमित रसाल।
बिहरत भरें अनंद सों, गोपी मदनगुपाल ॥१३०॥
मिलि बिछुरत बिछुरें मिलत, अचरज मिलन-बिछोह।
जग मोहन जग तें बिरल, ब्रजबन लीला मोह ॥१३१॥
देखत भूली सी लगैं, लखि ब्रज को ब्यौपार।
चकचौंधी सबके चखनि, अचरज प्रेम - बिहार ॥१३२॥
यह बिनोद या ब्रजबनैं, अद्भुत अमल अखंड।
गान करत ब्रजकेलि को, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥१३३॥
रसिक - सिरोमनि साँवरो, रमनीमनि ब्रजबाम।
बिलसत हुलसत एकरस, ब्रज बृंदाबन धाम ॥१३४॥
महाभाग ब्रज की बधू, निज बस किये गुपाल।
रिनी रहे हित मानि कै, सुकृती परम रसाल ॥१३५॥
गोपिनि की पदवी अगम, निगम निहारत जाहि।
पद-रज बिधि से जाचहीं, कौन लहै फिर ताहि ॥१३६॥
एक कृपाबल पाइयै, मतिगति रति भरिपूरि।
निकट होति पाछैं परैं, श्रीपदपकंज - धूरि ॥१३७॥

छाके हूँ अछके रहत, अछके छाक-उमंग ॥ १२८-अमल-अमिल (राम)। अमिल-सुमिल (वही)। १२८-मंडल-मंडन। (बृंदा०)। १२९-भरें-भरि (राम)। १३१-बिरल-बिलग। १३६-जाचहीं-जोवहीं।

[१२८] अमिल=अप्राप्य।

गोपिन को रस गुपत अति, प्रगट करै तिहि कौन ।
सुक सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥१३८॥

गोपी-मदनगुपाल मिलि, मोहन ब्रजवन - केलि ।
अति प्यारी न्यारी नवल, निरवधि आनँद-वेलि ॥१३९॥

परम प्रेमगति को लहै, मन बुधि थकित विचारि ।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपो हारि ॥१४०॥

गोपी - रसलंपट कियौ, हियौ आपनो स्याम ।
ब्रजवन वसि हुलसत सदा, प्रकट इकौसैं धाम ॥१४१॥

अतुल रूप-गुन - माधुरी, परम अपूरब साज ।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥१४२॥

परम प्रेम - गुन - रूप रस, ब्रज - संपदा अपार ।
जै जै जै श्रीगोपिका, जै जै नंदकुमार ॥१४३॥

वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन

दोहा

वरीसानु गिरि गाइयै, परम पुनीत सुथान ।
उज्वल वपु हिय स्यामरस, जहाँ उदित वृषभान ॥१॥

चौपाई

गिरि के नावँ गावँ ढिग वसै । वरसानो सरसानो लसै ॥२॥
भागनि भरी भूमि रँगभीनी । काहू वर विरंचि रचि कीनी ॥३॥
कीरतिकुवँरि राधिका जितई । खेल्यौ करति निरत-रति तितई ॥४॥
सोहति संग सवै सहिँदोली । कछुक लियेँ अप - अपनी ओली ॥५॥
हिलनि मिलनि खेलनि चित चायनि । गावति गीतनि लै लै नायनि ॥६॥
खरक खोरि गहवर घाँ डोलति । सींचति स्रवन सुधा जव वोलति ॥७॥
राधा की हौं चौकस चेरी । सदा रहति घर वाहिर नेरी ॥८॥
ताको नावँ वहुगुनी मेरो । वरसाने ही सुंदर खेरो ॥९॥
याही घर की जाई वाढ़ी । सदा रहति राधा - ढिग ठाढ़ी ॥१०॥
राधा - दृस्टि लियेँ ही रहौं । जो कछु वूझैँ सोई कहौं ॥११॥
मन की पाय टहल अनुसरौँ । अपनी को मनभायो करौं ॥१२॥
राधा हौं सव भाँति पढ़ाई । पायँ भवाय गुमान वढ़ाई ॥१३॥
रससिंगार साँज सजि जानौं । कवरी सोधौं व्रहु विधि वानौं ॥१४॥
राधा नावँ वहुगुनी राख्यौ । सोई अरथ हियेँ अभिलाख्यौ ॥१५॥
आछी ताननि गाय सुनाऊँ । रीझि रीझि राधाहि रिझाऊँ ॥१६॥

[१] वरीसानु=वरसाना । वरी=सूर्य की पत्नी । सानु=चोटी, शिखर । वृषभान=वृषभानु, राधिका के पिता ; वृषराशि का सूर्य । [४] निरत०=रतिलीन, प्रेमविह्वल । [५] सहिँदोली=सखी । ओली=कोंछ, झोली । [७] खरक=पशुओं के चरने का स्थान । खोरि=गली । गहवर=निकुंज, गुप्त स्थान । घाँ=ओर । [८] चौकस=सावधान । नेरी=निकट । [१२] अपनी को=अपनी स्वामिनी का । [१४] वानौं=शैली, प्रकार या वाँधती हूँ ।

राधा - रीझ अटपटी अति है। सोई मो मति की गति रति है ॥१७॥
उकति जुकति रसभरी उठाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ ॥१८॥
छंद कवित्तनि रटौं चटक सौं। कहौं प्रेम-रसरंग अटक सौं ॥१९॥
नंदकुवँर को मुरलीनाद। सुनति कान दै लै सुरस्वाद ॥२०॥
रीझनि बिवस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला उर आनौं ॥२१॥
ताही सुरहिं साथ कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गाँसनि खोलौं ॥२२॥
टुरी बातहू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब ॥२३॥
रीझि बूझि के बनक बनाऊँ। चौंप चाव की रीझनि पाऊँ ॥२४॥
चित-हित-कीसमझति अति औंड़ी। राधा करी लाड़िली लौंड़ी ॥२५॥
ललिता सखी मोहिं अति मानै। राधा को हित लै पहचानै ॥२६॥
प्रीति बिसेष बिसाखा करै। बिहँसि बोलि माथे कर धरै ॥२७॥
राधा - लौं हौं इन्हैं मनाऊँ। इन प्रसाद राधा मन भाऊँ ॥२८॥
सहचरि मेरो करतब चाहै। राधा के ढिग बैठि सराहै ॥२९॥
इन सबको प्यारी सब बातनि। तकैं रहति सेवा की घातनि ॥३०॥
गिरि बन बाग तड़ागनि खेलति। राधा सखि-समाज-सुख झेलति ॥३१॥
बहुत भाँति के कौतुक करहीं। एक प्रान मन इक रस ढरहीं ॥३२॥
बीनति पुहुप बनावत भूषन। बनहिं प्रकासति बदन मयूखन ॥३३॥
नंदराय को ललन छबीलो। ब्रजमोहन गुन-रूप - रसीलो ॥३४॥
तित ही निकसत आनि अचानक। बरनौं कहा मनोहर बानक ॥३५॥
तब सबके मन दृग सकेलि कै। करत हाथ कछु खेल खेलि कै ॥३६॥
मुरली - तान सुनाय अचगरो। बस करि लेत सब गुननि अगरो ॥३७॥
मिलन-चौंप-बस मन अभिलाखै। रसिक छैल चितवनि मैं चाखै ॥३८॥
रूपमाधुरी पीवत प्यावत। ब्रजजीवन यौं जीव जिवावत ॥३९॥
तित यह सुहृत रहति बन गहबर। लख्यौ रहत आनँदघन को भर ॥४०॥
इन उन की हितरीति अटपटी। हौं ही समझति चौंप-चटपटी ॥४१॥

---

[१८] उकति०=उक्ति की युक्ति से। [२८] राधा०=राधा की ही भाँति।

गोकुलगीत

चौपाई

नंदराय को गोकुल गाऊँ। आप बरनि आप ही सुनाऊँ ॥१॥
यह सुख मुख है को उच्चरै। सुख ही निज सुख बरनन करै ॥२॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार। गहमह रहति महर के द्वार ॥३॥
कान्ह कुवँर जीवन सब ही के। हुलसत बिलसत लागत नीके ॥४॥
मैया महरि जसोमति रानी। भागनि भरी बिधाता बानी ॥५॥
निज कृत फल निज नैननि देखै। ओपित करत भाग की रेखै ॥६॥
ऐसी यहै सपूती जग मैं। जगमगाति महिमा जगमग मैं ॥७॥
सुत सनेह सौं सब व्रज सान्यौ। याके सुख सबको सुख जान्यौ ॥८॥
बरस्यौ करति दूध की धारनि। जै जै कृस्न-पपीहा-पारनि ॥९॥
व्रज की मंगलरासि रहौ नित। ऐसैं ही तोपौ पोपौ हित ॥१०॥
बड़भागी नँदराय साधु मन। जिनके ऐसी धन यातैं धन ॥११॥
मोहन पूत होय सो लेखैं। कहत न बनै बनै सुख देखैं ॥१२॥
खेलनि हसनि चलनि अरु गावनि। स्यामसुँदर की रसबरसावनि ॥१३॥
भीजे रहत सबै व्रजवासी। आनँदघन गोपाल-उपासी ॥१४॥
जमुना-तीर गाँव की राजनि। कहा कहौं गोकुल-छबि-छाजनि ॥१५॥
गोकुल-छबि आँखिनिहीं भावै। रहि न सकै रसना कछु गावै ॥१६॥
चहूँ ओर अति चुहल चैन की। पोपै चितवनि कमलनैन की ॥१७॥
आनँदघन बिनोद-झर बरसै। कान्ह कान्ह ही सबकौं दरसै ॥१८॥
सोएँ जगे कान्ह ही जिनकैं। तिनकी सुख-संपति है तिनकैं ॥१९॥

१९—तिन—तिन्ह (लंदन)।

[११] धन=(धन्या) पत्नी। धन=धन्य; भाग्यवान्। जिनकैं=जिनके ध्यान मैं। तिनकैं=उनके ही पास।

साँझ भोर लीला - भर भीजे । डोलत नव नव पुलक पसीजे ॥२०॥
यह गोकुल नित नैननि दरसौ । प्रानिनि पै आनँदघन बरसौ ॥२१॥

दोहा

स्याम-जोति जगमग भर्यौ, गोकुल दिपत सुदेस ।
जै जै ब्रजरानी सदा, जै जै नंद नरेस ॥२२॥
सुख सोभा संपति महा, राम स्याम को चाव ।
लाड़ लड़ायौई करैं, सब ही सहज सुभाव ॥२३॥

---

[२०] भाग(पार्री-टाँद्-का) भगात ।

नाममाधुरी

चौपाई

वृंदावन - रानी श्रीराधा। मोहन - मनमानी श्रीराधा ॥१॥
जय नित्यविहारिनि श्रीराधा। व्रजसुख - विस्तारिनि श्रीराधा ॥२॥
कीरति की कन्या श्रीराधा। सब ही विधि धन्या श्रीराधा ॥३॥
जय रासविलासिनि श्रीराधा। नित कुंज - निवासिनि श्रीराधा ॥४॥
हरि - उर - वनमाला श्रीराधा। गुन - रूप - रसाला श्रीराधा ॥५॥
श्रीदामा - अनुजा श्रीराधा। वृपदिनमनि - तनुजा श्रीराधा ॥६॥
रसिकिनि की स्वामिनि श्रीराधा। करुनानिधि - नामिनि श्रीराधा ॥७॥
वंसीवट - वासिनि श्रीराधा। संगीत - प्रकासिनि श्रीराधा ॥८॥
श्रीकृस्न - सिरोमनि श्रीराधा। जय स्याम - सजीवनि श्रीराधा ॥९॥
आनंद - रसायनि श्रीराधा। प्रीतम - सुखदायनि श्रीराधा ॥१०॥
अनुराग - सुवेली श्रीराधा। सौभाग्य - नवेली श्रीराधा ॥११॥
सरसीरुह लोचनि श्रीराधा। हरि-विरह-विमोचनि श्रीराधा ॥१२॥
गोपाल - उपासिनि श्रीराधा। वृंदावन - वासिनि श्रीराधा ॥१३॥
श्रीगान - सुधानिधि श्रीराधा। प्रेमावधि सब विधि श्रीराधा ॥१४॥
जय नख - चंद्रावलि श्रीराधा। प्रीतम - प्रेमावलि श्रीराधा ॥१५॥
ललितादिक - प्यारी श्रीराधा। अति रूप - उज्यारी श्रीराधा ॥१६॥
मंगल की मूरति श्रीराधा। व्रजवन - सुख पूरति श्रीराधा ॥१७॥
व्रजचंद - कमोदिनि श्रीराधा। भांडीर - विनोदिनि श्रीराधा ॥१८॥
लीला - रसरंगिनि श्रीराधा। अनुराग - अनंगिनि श्रीराधा ॥१९॥
त्रिभुवन - ठकुरायनि श्रीराधा। गोविंद - गुसाँयनि श्रीराधा ॥२०॥
गोपीजन - मंडिनि श्रीराधा। रसरासि - अखंडिनि श्रीराधा ॥२१॥
नटनागर - भामा श्रीराधा। परिपूरन - कामा श्रीराधा ॥२२॥
तरुनीमनि - दच्छनि श्रीराधा। सब भाँति सुलच्छनि श्रीराधा ॥२३॥

१३—गोपाल—श्रीकृस्न (लंदन)। १७—पूरति—पूरित (वही)। १९—अनंगिनि—अभंगिनि— (वृंदा०)।

कल केलितरंगिनि श्रीराधा । लावन्य - विभंगिनि श्रीराधा ॥२४॥
कात्यायनि - वंदिनि श्रीराधा । अभिलाष-अमंदिनि श्रीराधा ॥२५॥
गोपी - चूड़ामनि श्रीराधा । सुषमा-महिमामनि श्रीराधा ॥२६॥
रामा अभिरामा श्रीराधा । स्यामा सुखधामा श्रीराधा ॥२७॥
रसरासि - रचावनि श्रीराधा । नटराज - नचावनि श्रीराधा ॥२८॥
ब्रजजीवन - जीवनि श्रीराधा । निरवधि-रसपीवनि श्रीराधा ॥२९॥
जमुनाजल - विहरिनि श्रीराधा । लीलामृत - लहरिनि श्रीराधा ॥३०॥
निगमादि - अगम्या श्रीराधा । प्रेमावधि - रम्या श्रीराधा ॥३१॥
जगवंदन - वंदित श्रीराधा । नँदनंदन - नंदित श्रीराधा ॥३२॥
निस - जागर-राजित श्रीराधा । सुखसेज - विराजित श्रीराधा ॥३३॥
ब्रजचंद - चकोरी श्रीराधा । वृषभान - किसोरी श्रीराधा ॥३४॥
ब्रजमोहन - मोहिनि श्रीराधा । अभिलाषनि-दोहिनि श्रीराधा ॥३५॥
वृंदावन - सोभा श्रीराधा । क्रीड़ा - तरु - गोभा श्रीराधा ॥३६॥
अनिमिष-रति-रूपिनि श्रीराधा । माधुर्य - अनूपिनि श्रीराधा ॥३७॥
कमनीय कुमारी श्रीराधा । हरिवल्लभ - प्यारी श्रीराधा ॥३८॥
श्रीकृस्नाकर्षिनि श्रीराधा । आनँदघन - वर्षिनि श्रीराधा ॥३९॥
किन्नांसुक - वेसी श्रीराधा । अति मंजुलकेसी श्रीराधा ॥४०॥
अभिसार - प्रपन्ना श्रीराधा । अत्यंत प्रसन्ना श्रीराधा ॥४१॥
कल - केलि-परावधि श्रीराधा । रसरीति - रहःसिधि श्रीराधा ॥४२॥

२४—नंदन की प्रति में पृष्ठ पर ये पंक्तियाँ और हैं—निज गत भंगिनि श्रीराधा ; [illegible] श्रीराधा । २६—सुषमा—सुषमा की । मनि—मनि (नंदन) । नंदन की प्रति में एक पंक्ति और है—[illegible] श्रीराधा । २७—रामा—राधा (नंदन) । ४२—रहःसिधि—[illegible] (नंदन) ।

गिरिपूजन

चौपाई

गिरि गोधन-पूजन दिन आयौ । व्रजबासिन को अति मनभायौ ॥१॥
घर घरनी सुत वित कुसरात । गोधन पूजि लहत सुख सात ॥२॥
याको चाव बरस दिन रहै । गोधन पै माँगत सुख यहै ॥३॥
गिरि गोधन पूजियै उछाह । हाँसनि घर घर चढ़े कराह ॥४॥
होन लगे बहु विधि पकवान । तिनको कब लौं करौं बखान ॥५॥
भरि भरि डला सकट अरु काँवरि । हिय जिय गोधन-पूजनि भाँवरि ॥६॥
या विधि सजि व्रजपति के साथ । सकल घोष धावत गिरिनाथ ॥७॥
ता छिन की छवि कहियै कहा । देत दौंहनो भरि मुद महा ॥८॥
गावत गीत टोल व्रजतिय के । को बरनै उछाह हिय जिय के ॥९॥
स्याम राम की जोट सुहाई । सबके मन - नैननि सुखदाई ॥१०॥
रंगनि करत ग्वालगन संग । व्रजमोहन सबको सब अंग ॥११॥
दीपदान औसर की दीपति । सब दिसि कौं दीपति सौं लीपति ॥१२॥
मावस पै पूनो ह्वै रही । यह दुति कैसैं आवति कही ॥१३॥
व्रज को चंद उजागर स्याम । अँखियनि तारो प्यारो नाम ॥१४॥
गिरि गिरिधर दीपति के धाम । मनिभूषन - भूषित अभिराम ॥१५॥
सुकटि करे मेखला सुदेस । मन जानै या सुख को देस ॥१६॥
गोपी - गोप - भीर अति भारी । परिकरमा की हौं बलिहारी ॥१७॥
इक अपनी साथिनि कौं टेरति । और कोऊ बिछुरे कौं हेरति ॥१८॥
महा कुलाहल की धुनि होति । भाजत जग स्रवननि की छोति ॥१९॥
रोहिनि जसुमति को समाज जहँ । दौरि जात है कान्ह कुवँर तहँ ॥२०॥

[२] कुसरात=कुशल । सुख०=सातों स्वर्गों का सुख । [६] डला=डाला, दौरा । सकट=शकट, गाड़ी । काँवरि=बहँगी । [१०] जोट=जोड़ा । [१६] सुदेस=सुंदर । [१९] छोति=स्पर्श । भाजत०=ध्वनि जब कानों को स्पर्श करती है तो जग भागता है । जग की आसक्ति हट जाती है ।

गोद भराय फिरत कछु बाँटत । मधुमंगल लै लै फिरि नाँटत ॥२
या विधि हठि परिकरमा देत । कबहुँ नंद कनियाँ करि लेत ॥२
गिरिधर पायन पायन पायन । उतरि चलत भरि गोधन भायन ॥२
पायनि गायनि सुरनि विराजनि । नखजगमगनि दुरत ससि लाजनि॥
यह छबि मन जानै कै नैन । अरु कैसेँ हूँ कहत बनै न ॥२
जसु मैया सिहाति सुख देखति । सब बिधि भाग-सफलता लेखति ॥२
सबके जीवन सबके प्रान । गिरिधर सबही कौं सुखदान ॥२
गैयनि रखवारो बलवान । खेलत हर्यौ अमरपति - मान ॥२
गोबिंद लाल रँगीलो नाँव । कहि कहि जीवत सब ही गाँव ॥२
गोधन पूजि नंद घर आए । घर घर घोप बधाए गाए ॥३
बल मोहन चिर जियौ सुहाए । तिनपै सुख - संजोग दिखाए ॥३
नित नित नए नए सुख सरसौ । ब्रजबन गिरि आनँदघन बरसौ ॥३
नीके रहौ लहौ सुख सदा । बिलसौ अपनी ब्रज - संपदा ॥३
कुलमंडन ब्रजराज - दुलारो । ब्रजजीवन ब्रजलोचन - तारो ॥४

---

[२१] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा । [२२] कनियाँ=गो
[२३] पायन=पैरों से । भाय=भाव, प्रेम । [२४] गायनि=गाय
[२८] अमरपति=इंद्र । [३०] घोष=अहीरों का गाँव ।

विचारसार

चौपाई

कृस्न - कृपा हौँ सदा मनाऊँ। कृस्न - कृपा तेँ कृस्नहि गाऊँ ॥१॥
कृस्न-कथा - रुचि अंतर बाढ़ी। मोहन - मूरति आगेँ ठाढ़ी ॥२॥
रसना कृस्न-गुननि गुन-गासी। सब बातनि ढीली करि कसी ॥३॥
कृस्न - गुननि को यहै सुभाव। चित चढ़ि बढ़त चौगुनो चाव ॥४॥
कृस्न - गुनानुवाद ही भावै। अब कछु और न मन मैँ आवै ॥५॥
बानी कृस्न-कथा - रुचि रची। रसना सुजस बखानत नची ॥६॥
कृस्न-ललित-लीला - रस - पगी। सोवतहूँ गुन - गनना जगी ॥७॥
कृस्न - मधुर-रस रसना भाग। पायौ परम - प्रेम - पन - पाग ॥८॥
वचन मौन मैँ कृस्नहि बोलै। रसना कृस्न - चरित्र कलोलै ॥९॥
कृस्न-नाँव-सुख-स्वाद अगाध। समझत कृस्न - सनेही साध ॥१०॥
कृस्न कृस्न ही सर्वस मेरो। कृस्न कहै ताकौँ हौँ चेरो ॥११॥
कृस्नकथा - प्रेमामृत - धार। कृस्न नाम सब स्रुति को सार ॥१२॥
कृस्नकथा अघओघनि हरै। मो से नीचहि उत्तम करै ॥१३॥
कृस्नकथा अगतिन कौँ गति है। धनि धनि ते जिनकै यह रति है ॥१४॥
कृस्नकथा महोषधी आहि। संसै-रोग मिटहि सुनि याहि ॥१५॥
कृस्न नाम रसना जब भाखै। विषै-महाविष फिर क्यौँ चाखै ॥१६॥
कृस्न कहत ही सब दुख जाहिँ। तनको संसै यामैँ नाहिँ ॥१७॥
कृस्नकथा जे बरनि सुनावैँ। तेई सुजन मोहि अति भावैँ ॥१८॥
कृस्ननाम - हित आसा राखौँ। जान्यौँ कृस्न कृस्न ही भाखौँ ॥१९॥
कृस्न नाम अभिलाष पुजावै। तबही कृस्न कृस्न कहि आवै ॥२०॥
कृस्न कहे तेँ परम पुनीत। स्रवननि मंगल हरिगुन-गीत ॥२१॥
एक बार जो कृस्न कहैगो। आनँदघन-रस भीजि रहैगो ॥२२॥
कृस्न परम रस को निरजास। कृस्न - कृपा तेँ यह बिसवास ॥२३॥

[३] गुन=रस्सी। गसी=बँधी। बात=वार्ता, विषय। [१०] साध=उत्कट इच्छा। [२३] निरजास=(निर्यास) निचोड़।

कृस्न नाम गुरु दियौ बताय । रह्यौ महा आनँदघन छाय ॥२४॥
केवल कृस्न कहौं अरु सुनौं । कृस्न - गुनानुवाद ही गुनौं ॥२५॥
कृस्नकथा सौं सरस्यौ भाव । रसन स्रवन यह सहज सुभाव ॥२६॥
कृस्नकथा को परस्यौ स्वाद । समझि तज्यौ सबही बकवाद ॥२७॥
कृस्नकथा को जु कछु मिठास । अनुभव रसना कौं अनयास ॥२८॥
कृस्नकथा परमानंद - सोत । कृस्नकथा अनुराग - उदोत ॥२९॥
कृस्नकथा परमारथ - बेलि । उर झालरी मधुर ब्रजकेलि ॥३०॥
कृस्न कृस्न बानी को भूषन । या बिन वावदूकता दूषन ॥३१॥
कृस्नकथा-सुख सनक बखानै । ईस गिरीस सेष सुख जानैं ॥३२॥
कृस्नकथा - रस नारद पियैं । उनमद फिरत जिवावत जियैं ॥३३॥
कृस्नरसासव निरवधि छाक । ब्रह्मादिकनि रंक जिमि ताक ॥३४॥
कृस्नकथा - मादक जो छकै । गहै अगम गति ऐसो थकै ॥३५॥
कृस्न कहै अरु कृस्न कहावै । कृस्न बिना न और कछु भावै ॥३६॥
निगम-सार है कृस्न - कहानी । नितलीला - बिनोद-रस सानी ॥३७॥
कृस्न नाम उर-अजिर-प्रकासक । ताप अनेक एक दुखनासक ॥३८॥
कृस्नकथा आनद - रसायन । गावत अनिस ब्यास द्वैपायन ॥३९॥
बरनत स्रुति भागवत पुरान । छक्यौ रहत ताही रसपान ॥४०॥
कृस्नकथा बरनै सो रसना । या बिन वृथा बाद मैं रस ना ॥४१॥
कृस्नकथा संतन को धन है । कृस्नकथा ही सौं हित - पन है ॥४२॥
कृस्नकथा - रस निसदिन पियैं । कृस्नहि गाय गाय नित जियैं ॥४३॥
कृस्न मूलमंत्र है हमारो । जपि जपि जियरा होत सुख्यारो ॥४४॥
कृस्न कहत सब दुख दुरि गए । उदय भए निज मंगल नए ॥४५॥
कृस्न सुनत सुख बाढत हियैं । जीवन प्रान कृस्नरस पियैं ॥४६॥
कृस्नकथा - फल कृस्नकथा है । और कछू सगरियो वृथा है ।४७।

[३०] झालरी=झांझरी । [३१] वावदूकता=वाग्मिता, वक्तृता । [३२] सनक=प्रसिद्ध मुनि, निम्बार्क-संप्रदाय के आदि-प्रवर्तक । [३४] छाक=छकि । ताक=ताकना । [३८] अजिर=आँगन । [३९] अनिस=अहर्निश, रातदिन, निरंतर । द्वैपायन=कृष्ण द्वैपायन व्यास, पुराणों के कर्ता ।

कृस्न नाम ही कृस्न - मिलाप। कृस्न कहन को यहै प्रताप ॥४८॥
कृस्न कृस्न रसना - रट लागी। कृस्नकथा-रति अंतर जागी ॥४९॥
कृस्नकथा तैं मन न अघाय। भावत यहै न और सुहाय ॥५०॥
कृस्नकथा - मधुरिमा अपार। कृस्नकथा सब स्रुति को सार ॥५१॥
कृस्नकथा-सुख सदा अखंडित। कृस्न कहै अरु गहै सु पंडित ॥५२॥
कृस्नचरित चिंतामनि - दाम। हेरत फेरत पूरनकाम ॥५३॥
कृस्न नाम-लावन्य भरयौ है। मधुरिम-सार सकेलि धरयौ है ॥५४॥
कृस्ननाम - गुन कहियै कहा। कहत मौन सुख लहियै महा ॥५५॥
कृस्न अपूरब सुख को सिंधु। कृस्न कहैं तेई जन बंधु ॥५६॥
बुधि सोई जो कृस्न-सुधि सोधै। सब दिस तैं मन कौं अवरोधै ॥५७॥
एक कृस्न उर - अंतर फुरैं। अन्य भाव नीके करि दुरैं ॥५८॥
कृस्न कृस्न देखत ही फिरे। निसरत साँस कृस्न - गुन-घिरे ॥५९॥
बैठत उठत कृस्न ही सूझै। सोएँ जगैं कृस्न - गति बूझै ॥६०॥
कृस्न सुमिरि भूलैं सब बातैं। कृस्नकथा - रति कृस्नकथा तैं ॥६१॥
कृस्नकथा बिन कथा न दूजी। कृस्न कहत सब आसा पूजी ॥६२॥
कृस्न स्यामसुंदर बनमाली। मधुर किसोर परमसुखसाली ॥६३॥
कृस्न कलपतरु आनँदमूल। लसत कलिंदनंदिनी - कूल ॥६४॥
श्रीबृंदावन कृस्न - सुधाम। बसत निरंतर अति अभिराम ॥६५॥
लीला-मगन कृस्नरस - सागर। गुननिधि गोपीनाथ उजागर ॥६६॥
कृस्न-सरूप कहत नहिं आवै। मोहन मनमथ - जूथ लजावै ॥६७॥
मुरली धरैं त्रिभंग बिराजै। मोहन सुधुनि अखंडित बाजै ॥६८॥
ब्रजबन ब्यापि रहति धुनि भाई। बिस्वबिमोहन कृस्न कन्हाई। ६९॥
अमित कृस्नमहिमा क्यौं कहियै। देखत देखत देखत रहियै ॥७०॥
यहै कृस्न को सुभग सरूप। अद्भुत अमल अखंड अनूप ॥७१॥
या सरूप को मोहन ध्यान। हिय जिय बसौ बिलासनिधान ॥७२॥
गोपभेप ब्रजराजकुमार। यहै कृस्न मो प्रान - अधार ॥७३॥

[४९] अंतर=हृदय में। [५३] दाम=माला। [५८] फुरैं=स्फुरित हों जगें, प्रकट हों। दुरैं=छिप जाते हैं।

कृस्न कृपाकर पूरन चंद। अमल अपूरब परमानंद ॥७४॥
सदा सनमुखो सब दिन दरसै। मंद हँसनि आनँदघन बरसै ॥७५॥
दृग-चकोर चित - चातक पोषै। अगनित कला बढ़ावत तोषै ॥७६॥
ऐसे कृस्नचंद की हौं बलि। रूपसुधा सों प्रान रहौ पलि ॥७७॥
कृस्नचंद आनंद - उदोत। ब्रज मैं जगमग जगमग होत ॥७८॥
सब जग - तारो कृस्न उज्यारो। ब्रजमोहन ब्रजजीवन प्यारो ॥७९॥
अमल कृस्न - कीरति - चंद्रिनी। खिलि खुलि रही जगत-बंदिनी ॥८०॥
सबको सब ठाँ सुजस प्रकासै। जग-चकोर-चिंता - तम नासै ॥८१॥
पूरन गोकुलचंद सदाई। रुचिर केलि - किरनावलि छाई ॥८२॥
सुख सीतलता अमल अमंद। जै जै जै श्रीगोकुलचंद ॥८३॥
आनँद-अमी स्रवत सब ही कों। मोद-बिनोद बढ़ावत जी कों ॥८४॥
असुर असीम उलूक न देखैं। सखा चकोरनि चौंप - परेखैं ॥८५॥
रसिकवृंद आनंद बढ़ावैं। गुन सुछंद बिरुदावलि गावैं ॥८६॥

दोहा

सब बिचार को सार है, या निबंध को गान।
श्रीगोपी - पद - रेनु - बल, बानी कियौ बखान ॥८७॥
निरवधि बस्तु अगम्य अति, सब बिचार तें दूरि।
रसिकसिरोमनि - कृपा तें, तहाँ सजीवन - मूरि ॥८८॥

---

[८०] चंद्रिनी=चाँदनी। [८४] अमी=अमृत। [८५] चौंप=([illegible] का) उत्साह, (न देखने का) अनुराग।

दानघटा

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत चैन रचावत मैन-तए हौ।
लाज अँचै विन काज खगौ तिनही सौं पगौ जिन रंग रए हौ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ॥१॥

श्रीकृष्ण—

हैं उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड अमैंड अयानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यौं इती इतरानी।
दान दियैं विन जान न पाइहै आइहै जो चलि खोरि बिरानी।
आगैं अछूती गई सो गई घनआनँद आज भई मनमानी ॥२॥

गोपी—

जाय करौ उहि माय पै लाड़ वढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन।
भीति की दौरनि खोरनि है सठता हठ औरनि सौं समझै विन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहे कौं कौनैं दयौ सु लयौ किन।
टौड़िक ह्वै घनआनँद डाटत काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ॥३॥

श्रीकृष्ण—

देहिगी दान जो ऐहै इतै नहीं पैहै अबै सु किये को सबै फल।
बाबा दुहाई सुहाई कहौ जिय जानि कै मानि छुटै न किये छल।

२—अयानी—अमानी (कवित्त)। इती—इते (वृंदा०)। ३—बढ़ाय०—पढ़ाय पढ़ाय (वृंदा०)। कौनैं—कौन (कवित्त)।

[१] अरैल=अड़नेवाले। मैन०=कामतप्त, मदनपीड़ित। अँचै=पीकर। खगौ=लगते हो। रए=अनुरक्त। [२] उघटै०=ताना मारती है। अमैंड=मर्यादा न माननेवाली। दान=कर। खोरि=गली। विरानी=पराई। अछूती=कोरी, विना कर दिए। [३] भीति०=गली में छेंकना भीत से भिड़ना है। टौड़िक=पेटू।

एक ही ओल दै जाहु चली कगरो सगरो मिटि घात परै सल ।
नाच पर्यौ अबला घनआनँद ऐंठति ग्वैंठति भौंह किते बल ॥४॥

गोरी—

जोभ सम्हारि न बोलत हौ मुह चाहत क्यों अब खायौ थपेरैं ।
ज्यौं ज्यौं करौ कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े चढ़े आवत नेरैं ।
ग्वार कहा फल साय जनै जिय देखौ बिचारि पिता-तन हेरैं ।
कंज-कनेरहि फेर बड़ो घनआनद न्यारे रहौ कहाँ टेरैं ॥५॥

श्याम—

कहा भयो गहि मोसन तें दधि की मटुकी अब कानि करौ कित ।
जैसे सों तैसे भए ही बनै घनआनँद धाय धरौ जित को तित ।
एकहि एक बराबरि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फेरिये क्यों दुहूँ हाथ सकेरिये जौ बिधना पर बैठ दयौ बित ॥६॥

गोरी—

गोद भरे बिन धाय के जाय धरी नहि गोद सों माय के आगे ।
पेट परे को लगै फल ज्यों निपजे हौ गपन सु भागनि जागे ।
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की जाति मैं जानै सदा पति पागे ।
नाम लिये तो बड़ौ गुन है घनआनद जौ छिन दोष न लागे ॥७॥

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सों ललिता रिस की सलिता न बढ़ैये ।
नागरि आगरि हो सहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैये ।
चोखन तोप नहीं उपजै घनआनँद क्यों गुन दोष कढ़ैये ।
नेकु ढरैं सुधरैं सब काज अकाज इतो अपलोक चढ़ैये ॥८॥

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर ओढ़ि दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै वहु भाँति विनै करि नै ।
घनआनँद ऐंठ अमैठ कियें कहा पैयत है रिझवारन पै ।
गुन गाय रिझावहु देहिं अबै वृषभानलली की निछावर कै ॥९॥

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग-भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिदा कुलमंडन जौ निरखै भरि नैन बढ़ै सुख-माँचनि ।
दान हँसैं चुकिहै घनआनँद रीझनहीं रुकिहै हित-आँचनि ॥१०॥

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई ।
पठन देहिं न एक सखै अकिले इन्हैं छेकि करैं मनभाई ।
भावती टेक रही बहु भाँति किये न बनै अति ही कठिनाई ।
लेत हौं राधे बलाय कह्यो करि आज मनो इतनी हम पाई ॥११॥

८–सहु–बहु (कवित्त) । ९–करि नै–करिहै । ऐंठ–ऑंठ । कहा०–कहियै कहा पै अब पैयति है । गुन०–रिझवारिनि पै गुन गाय रीझावहु देहिं लली की निछावरि है (वही) । १०–जौ–ज्यों (कवित्त) । हित–कित (वृंदा०) ।

[८] सलिता=सरिता, नदी । सहु=सब । चोख=तीक्ष्णता,तेश । अकाज=व्यर्थ । अपलोक=कलंक । [९] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा । ओढ़ि=फैलाकर । विनै=विनय, प्रार्थना । नै=झुककर । ऐंठ०=टेढ़ामेढ़ा होने से । पै=से । [१०] कीरतिदा=यशोदा । हित०=प्रेम की आग । [११] सुघराई=चतुरता ।

राजदुलार-भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को ।
कुंज परी सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको ।
लोचन-कोरनि छोरनि ह्वै मुसिकानि मैं ह्वै दरसै हित ही को ।
बोलनि चातुरी डारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को ॥१२॥

रंग रच्यौ सु न जान कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ ।
केलि परयौ रस को झगरो अति ही अगरो निबटै न चुकाएँ ।
काहू सम्हार रह्यौ न भटू तनकौ तन मैं घनआनंद छाएँ ।
प्रेमसों रिझवारन को तहँ रीझ कै रीझ ही लेत चलाएँ ॥१३॥

दोहा

दानघटा मिलि छबिछटा, रसधारनि सरसाय ।
जियत पियत औरे न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥१४॥

दानघटा-रसपान कै, चातक रसिक सुजान ।
चरचनि लगन चसके चखत, रचत तृपित ह्वै कान ॥१५॥

दानघटा सींचत सदा, मधुर केलि नव बेलि ।
आलबाल परि रहि सुमन, लेत रसिक रस केलि ॥१६॥

भावनाप्रकाश

चौपाई

राधा - मोहन - जोट अनूप। अमल अमंद अपूरव रूप ॥१॥
इनकी लीला अचरज - खानि। कौन सकै या मरमहिं जानि ॥२॥
निरवधि प्रेम-अवधि अति मोहन। मंगल-मुकट सनातन सोहन ॥३॥
निगम-हृदय सिव को धन यहै। गवरी सौं कवहूँ जो कहै ॥४॥
ताहि गूढ़ को गाढ़ जताय। कृपादृस्टि कछु दियौ वताय ॥५॥
सो व्रज वृंदावन मैं वसै। गुपत प्रगट सुछंदता लसै ॥६॥
दरसै परसै अपने ढारनि। वरसै कृपाकंद रुचि - धारनि ॥७॥
नंदीसुर वरसानो गाँव। जगमनि मोहन - राधा - नाँव ॥८॥
वरन स्याम अरु गौर सुवेप। अतुल माधुरी अमित असेप ॥९॥
परिकर-निकर कहाँ लौं कहियै। इनकैं सुख सवको सुख चहियै ॥१०॥
नित त्यौहार दुहूँ घर रहै। घर घर व्रज व्यापक सुख यहै ॥११॥
नित ही चौंप चाव टेहलै। सवकौं सव विधि लागत भलै ॥१२॥
सवके लोचन सवके प्रान। हरि-राधा-अनुराग - निधान ॥१३॥
नव नव भाँति नवल रुचि लियैं। विहरत सवकौं सव सुख दियैं ॥१४॥
लीला ललित भेद वहु भाव। जव जैसो तव सवै वनाव ॥१५॥
ठौर ठौर की रचना नई। आनँदमूरति अचरजमई ॥१६॥
व्रजवन के प्रदेस अति उत्तम। विसद विहार उदार सदा सम ॥१७॥
अति कमनीय अलौकिक रचना। कहा कहौं कछु वची न वचना ॥१८॥
रमन - भूमि कालिंदी - कूल। वृंदावन विहार - अनुकूल ॥१९॥
सुपमा - सदन सदा सर्वोपर। अति अद्भुत यातैं दरसत धर ॥२०॥

२०—दरसत—दरसै (वृंदा०) ।

[४] गवरी=गौरी, पार्वती। [५] गूढ़=रहस्य। गाढ़=कठिन। [६] सुछं-दता=स्वच्छंदता। [७] ढार=शैली। [८] नदीसुर=नंद-यशोदा का गाँव। [२०] धर=धरा पर।

मनहि अगम्य सहज बन-रूप । जयति जयति बनराज अनूप ॥२१॥
राधा-मोहन-बर-बिनोद - थल । दरसत सरसत बरसत मंगल ॥२२॥
ब्रजनायक निसंक जहँ खेलत । मनबंछित सुखपुंज सकेलत ॥२३॥
रमनीमनि श्रीराधा प्यारी । ऐसी जोरी की बलिहारी ॥२४॥
मधुर बैस नव जोबन जगी । दुहुँनि ठगौरी दुहुँवनि लगी ॥२५॥
रहत डीठि सौं डीठि समोएँ । आरति डारति मनहि बिलोएँ ॥२६॥
निपट सुतंत्र महा परबस ये । भीजे कौन भाँति के रस ये ॥२७॥
इनकी गति सु कौन मति धरै । बिछुरन मिलन कछु न सुधि परै ॥२८॥
अमित ओज क्यौं बरनि बतैयै । खोय खोय अचिरज ही पैये ॥२९॥
परसि न सकियै इनहीं धैयै । इनही तैं इनकी बलि जैयै ॥३०॥
ब्रजबन बसत जुगल अनुरागी । भरे सँजोग महा बैरागी ॥३१॥
सहज लगन अति अलग लगी है । महामोद की नींद जगी है ॥३२॥
कौन लहै इनके मन की गति । इनही कौं इनके पन की पति ॥३३॥
इनको नाम लेत ही बानी । होति महारसनिधि - ठकुरानी ॥३४॥
लेत लेत नामैं गुन फुरैं । तेई तब बानी त्यौं दुरैं ॥३५॥
उघरि कृपा उर - अंतर दुरै । निपट दूरिहूँ आवत उरै ॥३६॥
यौं कछु कही परै तौ परै । रिझवारन की रुचि अनुसरै ॥३७॥
राधा - मोहन अति बड़भागी । गौर स्याम मूरति रस-पागी ॥३८॥
कहियै कहा सरूप - निकाई । इनकी मति इन माँझ बिकाई ॥३९॥
भीजे रहत रीझ - रस नागर । सब-गुन-आगर गुपत उजागर ॥४०॥
महामधुर कमनीय जुगल बर । इनही कौं दीजै इग पटतर ॥४१॥
प्रेमबिबस न गनत निसि भोर । दोउ दुहुँन के चंद - चकोर ॥४२॥
केलि - कला-पंडित रसमंडित । नितनव-नवरुचि-रचे अखंडित ॥४३॥
हित सहेट के सुखनि समेटत । अति अभिलाष-भरे भरि भेटत ॥४४॥

२५-नव-भए । ३५-तव-वत (लंदन) । ३६-हूँ-है (वृंदा०) ।

[२५] ठगौरी=ठगविद्या । [२६] समोएँ=लीन किए हुए । आरति=लालसा । विलोएँ डारति=मथे डालती है । [३३] पति=प्रतिष्ठा का ध्यान । [४१] पटतर=समता ।

तके रहत मिलिबे की घातनि। समुझत नन-सैन की बातनि ॥४५॥
निपट नवेलो नेह निबाहत। मगन मनोरथ-सागर गाहत ॥४६॥
महाधीर अरु अधिक अधीर। परम सुखी परिपूरन-पीर ॥४७॥
इनको प्रेम पूरि ब्रज रह्यौ। सब लीलनि मैं रसिकनि लह्यौ ॥४८॥
सबके हितहि साधि सुख साजत। चतुरसिरोमनि भए बिराजत ॥४९॥
नन-हियैं रंगनि भरि देत। या बिध सौं समीप-सुख लेत ॥५०॥
औरै दिन इनकैं निस औरैं। इनकी गति ब्यौरति मति बौरैं ॥५१॥
ब्रजबन के सुख सदा मनावत। भाँति भाँति मन मैन सिरावत ॥५२॥
निकसत बन बिहरत अधिरतियनि। हितबतियनि कहि मिलवत छतियनि॥
ललक लालसा उमग बढ़नि सौं। उरझति आधी अधर कढ़नि सौं ॥५४॥
अतुल प्रेम-रस ओज-उफानैं। निरवधि उझिल-झेल सुख-सानैं ॥५५॥
मोदमेघ दामिनि मिलि बरसैं। कहा कहौं जैसी रुचि दरसैं ॥५६॥
केलि-रसिक अबानि क्यौं आवैं। मिलैं अनमिलैं केल्यै भावैं ॥५७॥
केलि-कुसलता कहाँ कहा लौं। पहुँचनि पहुँचति नाहिं जहाँ लौं ॥५८॥
अचिरज-दाव उपावन भरे। ब्रज बसि बन-रस-चसकैं परे ॥५९॥
घरनि घात खरिकनि की हेट। नित ब्यौहार है रहै भेट ॥६०॥
जमुना-घाटनि गहबर-बाटनि। पटुता-पाज पैजपन-पाटनि ॥६१॥
इनकी गह इनही पै फबै। सब जानत पै लहत न कबै ॥६२॥
बैठत उठत मिलत बतरात। औरै साँझ और परभात ॥६३॥

४६—मनोरथ—मनोहर (वृंदा०)। ५१—इनकैं—इनको (वृंदा०)। ५२—मैन—नैन (लंदन)। ५५—उफानैं—उफानौं (लंदन)। ५७—केल्यै—केल्यौं (वृंदा०) ६२—गह—गुह (लंदन)।

[५१] ब्यौरति=विचार करती हुई। [५२] मैन०=कामशांति करते हैं। [५६] रुचि=शोभा। [५८] पहुंचनि०=जहाँ पहुँच की भी पहुँच नहीं है। [५९] चसकैं=बान, टेव; चपक। [६०] खरिक=पशुओं के चरने का स्थान। हेट=सहेट, सकेतस्थल। [६१] गहवर=गुप्त स्थान। पटुता=चातुर्य। पाज=बाँध। पैज=प्रतिज्ञा। पाटनि=पूर्ण करना, निबाह करना। [६२] गह=टेक।

इनके रँगनि समै हूँ रचै । बड़भागिन सब कोऊ लचै ।।६४।।
रसिकराय चूड़ामनि सबके । साँवल गौर दुरि मिले ढब के ।।६५।।
प्रेमसरोवर - ढिग संकेत । बट-बढ़वारि दुहुँन के हेत ।।६६।।
बरसाने तैं लाड़ - गहेली । ग्वैंड़ैं निकसति सहित सहेली ।।६७।।
सहज बनक ब्रजमोहन - भाग । उमगत रोम रोम अनुराग ।।६८।।
खेलत खेलत रुचि के खेलनि । निरखि सिहाति तरु-लता-मेलनि ।।६९।।
पुहुप - पुंज बीनत रँगभीनी । माला रचति गास गहि झीनी । ७०।।
सुहृद सखी सिंगारनि सजै । अधिक प्रान तैं राधैं भजै । ७१।।
राधा को हित रहति बिचारै । रीझि अपुनपौ वारि निहारै ।।७२।
नंदीसुर के कान्ह अवगरै । बरहैं रहत ग्वार गुन-अगरै ।।७३।।
बिह्वल सरहि सरकि नियरात । जित मिलि रही मिलन की घात ।।७४।।
निपट गहन गह्वरु तरु-छाँही । पर्नसालिका जहाँ तहाँ ही ।।७५।।
सहज भाव की भेट अचानक । बिधना सदा बनावत बानक ।।७६।।
हिलनि मिलनि बिह्वलता की गति । देखैं बनै अलौकिक अति रति ।।७७।।
ये रसनायक लायक धुर के । पढ़े पढ़ाए पूरन गुर के ।।७८।।
जानत मनै सनेह - निकाई । सबतैं न्यारी प्रेम - सगाई ।।७९।।
सबै बात मनभाई पाई । जु कछु रची रचना बनि-आई ।।८०।।
ब्रजबन ये ही कौतुक देखौ । राधा - मोहन - प्रेम बिसेखौ ।।८१।।
खग मृग द्रुम बेली जित तित ही । या रस बीच पगि रहै नित ही ।।८२।।
सब ब्रज रँग्यौ अपूरब हित ही । सुन्यौ न कित ही देख्यौ इत ही ।।८३।।
दान केलिरस रास - बिलास । सुखद सनातन ब्रजबन-बास ।।८४।।
लीला ललित रसामृत सरसै । गौर स्याम आनँदघन बरसै ।।८५।।
मुरली-गरज व्यापि अति रही । चित हित-कौंप परति नहिं कही ।।८६।।
गाँव गाँव ब्रज प्रेम घमंड । परिपूरन रस अमल अखंड ।।८७।।
गोपी गोप गाय अरु ग्वार । छके रहत लीला - रस-सार ।।८८।।

[६४] लचै=दबता है । [७०] झीनी=पतली । [७३] अवगरै=सूझबूझ-वाले या अचगरै=नटखट । [७५] पर्नसालिका=कुटिया, पत्तों से बना घर । [७६] बानक=संयोग । [७८] धुर के=चोटी के, चरम कोटि के ।

नवरँग नवल नवेली सैल। नव राधा नट गिरधर गैल ॥८९॥
सबके हिय जिय इनको हित है। इनके हित सबको सुख नित है ॥९०॥
यह समाज देखे ही जीजै। अद्भुत चरित अमीरस पीजै ॥९१॥
ब्रजबन उपबन रस-आगार। भीजौ आनँदघन-आसार ॥९२॥
दृगनि देखि मन प्रेम कलोलै। सुख-समाज आगे ही डोलै ॥९३॥
जित जैयै तित प्रेममई है। प्रीति पुरातन रीति नई है ॥९४॥
या रस को सवाद जो आवै। रसना फिर न और कछु गावै ॥९५॥
जुगल कुँवर कौं लड़कि लड़ावै। परम प्रेमरस-पारस पावै ॥९६॥
ब्रजबन सहज माधुरी हेरै। मन फिर गएँ बहुरि को फेरै ॥९७॥
श्रीगुरवर-प्रसाद के लेस। हियैं बढ़ै आवेस असेस ॥९८॥
रमन-भूमि-रज-अंजन परसै। तब लीला-सुरूप कौं दरसै ॥९९॥
दिस दिस तन मैं चकित निहारै। ब्रजसंपति दंपति उर धारै ॥१००॥
ब्रजरस परस प्रसादहि पाय। रहै महा आनँदघन छाय ॥१०१॥
अंतर बाहिर ब्रजरस भरै। मोद-विनोद-सिंधु विस्तरै ॥१०२॥
भावतरंगनि करि बढ़वारि। बेसम्हार ह्वै रहे सम्हारि ॥१०३॥
गौर स्याम छवि प्रगट निहारै। ब्रजजन मति गति रति उर धारै ॥१०४॥
बिसरै सुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आव्रत मन घिरै ॥१०५॥
बिन रजपरस सरसता कित है। रज मिलि रहै पाइ पलि इत है ॥१०६॥
हिय मैं बास करौ ब्रजभूमि। तनहूँ रहौ तहाँ ही भूमि ॥१०७॥
यह ब्रजरज ही मेरो धन है। आँखिन ब्रजरज ही सौं पन है ॥१०८॥
डीठि जोति या रज सौं लहै। चाह्यौ करै सदा सुख यहै ॥१०९॥
यह रज चाहि माहि जो सूझै। मेराई मन सो सुख बूझै ॥११०॥
मोहन-चरन-धरनि दिखरावै। यातैं मोकूँ यह रज भावै ॥१११॥
मोहन-दरस हियो अभिलाखै। रज कौं परस दृग निरज राखै ॥११२॥

८९–नट-नव (वही)। ९०–सबको–सबके (वृंदा०)। ९१–ही–है।
९३–कलोले–किलोलै। १०५–आव्रत–आवृत (वृंदा०)।

[९२] आसार=वृष्टि। [९६] लड़कि=ललककर। [१०५] निधि=समुद्र।
आव्रत=आवर्त, भँवर।

या रज की हौँ बलि बलि जाऊँ। या रज ही रज ह्वै रलि जाऊँ ॥११३॥
लै या रजहि कहा धौँ करौँ। प्रानन के संपुट लै धरौँ ॥११४॥
यह रज जैसी लागति प्यारी। ब्रजजीवनि जानत जिय-ज्यारी ॥११५॥
अब तौ ब्रजरज लै सिर धरिहौँ। रज की सरन चरन अनुसरिहौँ ॥११६॥
जब गुपाल आवत गोचारैँ। गोपी याही रजहि निहारैँ ॥११७॥
या रज मैँ या ब्रज को चंद। उदै होत आनंद अमंद ॥११८॥
या रज रंजित स्याम उज्यारे। नीके लगत दृगन के तारे ॥११९॥
रज-रंगमगे जगमगे मोहन। बिहसत गोपबधुन के गोहन ॥१२०॥
यह रज देखि जियत ब्रजबाला। पहले रज पाछे नँदलाला ॥१२१॥
या रज सौँ अब आन बनी है। मति गति रति या रज हि सनी है ॥१२२॥
यह ब्रजरज ब्रजमोहन-मुख सौँ। जसु पौँछति आँचरु लै सुख सौँ ॥१२३॥
या रज की पदवी अति दूरि। यह रज रसिकनि जीवनिमूरि ॥१२४॥
यह ब्रजरज ब्रह्मादिक जाचत। या रज सौँ बड़भागी राचत ॥१२५॥
या रज मैँ रसपुंज समोयौ। या रज मैँ परमारथ मोयौ ॥१२६॥
यह ब्रजरज तब आछी लागै। जब समझै ब्रज के अनुरागै ॥१२७॥
यह रज परसि जगै अनुराग। यह रज दरसि जगै वड़भाग ॥१२८॥
यह ब्रजरज प्राननि रस पोषै। यह रज लागि छुड़ावत दोषै ॥१२९॥
यह ब्रजरज मंजन को मंजन। यह रज परमांजन को अंजन ॥१३०॥
वस्तु-बूझ बिन सूझ न रज की। यह रज सिरभूषन सिव अज की ॥१३१॥
या ब्रजरज की महिमा बाँकी। रज सींची गोपीजन-पाँ की ॥१३२॥
या रज रँगे चरन-अभिसार। दृगनि लगावत रसिक उदार ॥१३३॥
यह रज पीत बसन सौँ पौँछत। सीस छ्वाय फिर उरसि अँगोछत ॥१३४॥
ब्रजरज कथा कहाँ लौँ कहियै। या रज की उपमा कौँ यहियै ॥१३५॥

११५—ज्यारी—आरी (वृंदा०)। १२०—गोहन—जोहन (वृंदा०)। १२५—वड़भागी—दड़भीगी (लंदन)। १३२—रज—रस (लंदन)।

[११२] निरज=रजोहीन, निर्मल, रजोगुण से रहित। [११३] रलि०=मिल जाऊँ। [११५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१२०] रगमगे=रंजित, युक्त। गोहन=साथ। [१२३] जसु=यशोदा। [१३२] पाँ=पैर। [१३४] उरसि=उर मैं।

आसवास या रज मैं राखौं। या रज तें रज ही अभिलाषौं ॥१३६॥
रज ही सेऊँ रजहि अराधौं। व्रजरज ही नित साधन साधौं ॥१३७॥
सिद्ध भए रज मिलौं मिलें जो। सुख परसौं व्रजरजधानी को ॥१३८॥
व्रजरज कृस्नकृपा करि पूरन। व्रजरज विरहविथा हित-चूरन ॥१३९॥
व्रजरज परसि मिटै भ्रम व्याधि। व्रजरज हरै हिये की आधि ॥१४०॥
को समझै व्रजरज - अधिकारै। सीस वहै जो रज यह धारै ॥१४१॥
व्रजरज निज सुरूप दरसावै। तौ रज की गति कछु कहि आवै ॥१४२॥
रज दरसै तौ सब कछु दरसै। रज परसे बिन प्रेम न परसै ॥१४३॥
व्रजरज को आसरो लीजियै। लोकलाज सिर धूरि दीजियै ॥१४४॥
रजपन बँधि जगफंद छूटियै। रजहि पाय रसरासि लूटियै ॥१४५॥
यह व्रजरज दुर्लभ है महा। या रज कौं पाएँ ही लहा ॥१४६॥
रज है रहै मिलै तब रज सो। निरखै निज समाज सुख सज सो ॥१४७॥
व्रजरज व्रजरज व्रजरज एक। रज ही सौं साँची पन - टेक ॥१४८॥
व्रजरज जीवन व्रजरज प्रान। व्रजरज ही सोभा सनमान ॥१४९॥
व्रजरज बिन जाँचौं नहिं आन। व्रजमोहन ! व्रजरज दै दान ॥१५०॥
व्रजरज व्रजरज व्रजरज दरसै। व्रजरज बिन चित और न परसै ॥१५१॥
व्रजरज परसन कौं मन तरसै। व्रजरज-रस-प्रसाद ज्यौं सरसै ॥१५२॥
व्रजरज व्रजरज व्रजरज भजियै। व्रजरज सैंति सबै कछु तजियै ॥१५३॥
व्रजरज अगम अगोचर अति है। देखत भूली सी रज - रति है ॥१५४॥
व्रजरज राजस मन मैं आएँ। व्रजरस - परस सवादहि पाएँ ॥१५५॥
रंक परमपद होत जहाँ लौं। फीके परत मिठास तहाँ लौं ॥१५६॥
व्रजरज ही मेरी उपासना। व्रजरज बसौ सदा सुवासना ॥१५७॥
व्रजरज बिन कछु और आस ना। रज-सेवन स्रुतिसार सासना ॥१५८॥

१४६–इसके बाद लंदन की प्रति में ये पंक्तियाँ हैं—यह व्रजरज यह व्रजरस अहा। या व्रजरज की कहियै कहा।

[१३६] आस०=आशा का निवास। [१४०] आधि=मानसिक क्लेश। [१४६] लहा=लाभ। [१४७] सज=सजावट। [१५२] ज्यौं=जी। [१५३] सैंति=संचित करके। [१५८] सासना=आदेश

ब्रजरज - महिमा रसना बकौं। जदपि बरनि कछुवै नहिँ सकौं ॥१५९॥
तदपि रेनु-मादक गुन छकै। बकि बकि जकि जकि तनक न थकै ॥१६०॥
ब्रजरज कौँ अभिलाष बढ़्यौ है। रसना ब्रजरज-सुजस पढ़्यौ है ॥१६१॥
ब्रजरज मैँ रसपुंज धर्‍यो है। श्रीहरि हू को हियो हर्‍यौ है ॥१६२॥
यह ब्रजभूमि सदा रँगभोई। महा अपूरब रसनि समोई ॥१६३॥
या ब्रजरज मैँ निधि लै गोई। या अंजन बिन लखै न कोई ॥१६४॥
श्रीललिता तप साधति याकौं। ललचि ललचि आराधति याकौँ ॥१६५॥
नंदसून - पद - लालन - लोभै। रमा रसिकिनी पावति छोभै ॥१६६॥
यह रज यह रस याही सोहै। या रज की उपमा कौँ को है ॥१६७॥
यह रज गंधवती सब ऊपर। क्रीड़त रसिकराय या भूपर ॥१६८॥
या ब्रजलीला बिधि हू मोह्यौ। कछु अद्भुत प्रभाव जब जोह्यौ ॥१६९॥
हरि-सुरूपमय सब ब्रज देख्यौ। रजउतकरष बिचारि बिसेख्यौ ॥१७०॥
श्रीरसना-अंकित लखि भूमि। रह्यौ माधुरी महिमा घूमि ॥१७१॥
जाचत नंदलाल पद छ्वै कै। या रज कौँ इत कौँ कछु ह्वै कै ॥१७२॥
पै रज अज कौँ मिलै अजौँ न। और कहौ धौँ पावै कौन ॥१७३॥
श्रीगोपीपद - कमल - पराग। यह रज रसिकजननि को भाग ॥१७४॥
दुर्लभ या रज को अधिकार। जानत एकै नंदकुमार ॥१७५॥
गोपी-पद - प्रसाद रज लहियै। निगमागम मैँ प्रगट सु कहियै ॥१७६॥
या रज को साधन इह एकै। मिलै न किये उपाय अनेकै ॥१७७॥
अति रति बिना न परसै धूरि। यह ब्रजरज सबकौँ अति दूरि ॥१७८॥
प्रबल प्रेम गति ब्रजजन लही। सो रति पूरि रही ब्रजमही ॥१७९॥
इनकी अनुग भावना गहै। काहू बिधि इनको ह्वै रहै ॥१८०॥
सहज होय या रज-पहिचानि। परै सहज ब्रजजन की बानि ॥१८१॥
या रज बिना न भावै आन। जगै हियैँ ब्रजरज-अभिमान ॥१८२॥

१६५—श्रीललिता—श्रीललना (लंदन)। १६८—रज-ब्रज। १७७—एकै—एक (वही)। १७८—रति—रज (वृंदा०) यह—या (लंदन)। १८०—काहू—काऊ (वृंदा०)।

[१४६] निधि=खजाना। गोई=छिपाई हुई। [१६६] सून=पुत्र। छोभै=उद्वेग। [१७१] श्रीरसना=राधिका की करधनी।

सहज करैं रज अंगीकार । यह रज तब पावैं निरधार ॥१८३॥
या रज सौं नातो जिय जोरैं । और सबन सौं सब विधि तोरैं ॥१८४॥
या रज को प्रसाद जब पावै । तब सब कछु सहज नहिं भावै ॥१८५॥
ब्रजमोहन को यह ब्रज धाम । निपटैं दुरथो परम अभिराम ॥१८६॥
श्रीब्रजराज - वास जौ बसैं । ब्रजजन-भाव-लाभ मन गसैं ॥१८७॥
तौ या सुख-सवाद कौं पावैं । निधरक ललना - लाल लड़ावैं ॥१८८॥
आनँदघन - रस भीज्यौ रहै । ब्रजबन-लीला-निधि अवगहै ॥१८९॥
छिनछिन भावतरंग विसेपैं । देखि देखि छवि थकै निमेपैं ॥१९०॥
महामधुर रसपान छकै मन । विवस दसा अति रोमांचित तन ॥१९१॥
घूमि झूमि वन - वीथिनि डोलैं । मौन धरैं मन ही मन बोलैं ॥१९२॥
औरैं दसा दिपैं रँगभीनो । नेह-गाँस कसकै अति झीनो ॥१९३॥
होय सिथिल गति सबैं ओर तैं । ब्यौरि सकै नहिं साँझ भोर तैं ॥१९४॥
मुरली-धुनि स्रवननि मैं रमैं । चकित थकित मनि की गति गमै ॥१९५॥
विवस दसा-गति कही न परई । दरस-प्यास नैननि जल भरई ॥१९६॥
चटक चौंप चेटक चित चढ़ई । नाम रूप गुन अनुछिनु बढ़ई ॥१९७॥
हा राधा हा कृस्न पुकारैं । बेसम्हार है तिन्हैं सम्हारैं ॥१९८॥
ब्रजबन ठौर ठौर लखि माहैं । तरु-बेलिनि हरि-राधा जोहैं ॥१९९॥
दंपति - रस - संपति हिय भरैं । पूरन पन की टेक न टरैं ॥२००॥
फुरैं सदा ब्रजमोहन केलि । उझिलै हियो महारस झेलि ॥२०१॥
विहरैं विवस सदा ब्रजबन मैं । दरस-परस-रस-आरति मन मैं ॥२०२॥
जीवन एक जुगल - रस जाकैं । मन मैं और ठौर नहिं ताकैं ॥२०३॥
जमुना-तीर बैठि मुख धोवै । हँसि हँसि परै विकल चित रोवै ॥२०४॥
उनमद भयो फिरै मदमातो । कबहुँ न होय लगन तैं हातो ॥२०५॥
बैठैं चलैं एक जक जागै । मति गति सुरति भावरस पागै ॥२०६॥

१८५–जब–तब (वही) । २०५–हातो–आतो (वही) ।

[१८८] ललना=राधा-कृष्ण । [१८९] निधि=समुद्र । अवगहै= थहाए । [१९३] गाँस=किसी हथियार की नोक । झीनी=पतली, महीन, सूक्ष्म । [२०२] आरति =लालसा । [२०५] हातो=दूर । [२०६] जक=धुन ।

कब ह्वैहै ऐसी गति हाहा। जीवन-जनम-सफलता-लाहा ॥२०७॥
या रस बिन छिन रह्यौ न परिहै। नैननि नीर एकरस ढरिहै ॥२०८॥
बूझैं मुख बोलौ न आइहै। रोम रोम अभिलाष छाइहै ॥२०९॥
निसिदिन याही बिधि बिताइहौं। चित नितलीला-रस हिताइहौं ॥२१०॥
गुननि गाय आँखिन जल ढरिहै। तन ब्रजभूमि घूमि गिरि परिहै॥२११॥
ब्रजरज लोटि बिकल ह्वै जैहौं। बड़ी बेर तन की सुधि पैहौं ॥२१२॥
रजहि पाय मिलि रजहि रहौं जब। सो सवाद सुख कहै कौन तब ॥२१३॥
श्रीगुरु-पद - प्रसाद रज पाई। रज-महिमा रज-परसैं गाई ॥२१४॥
रोम रोम रमि रही रजै है। प्राननि पैठि रह्यौ जु ब्रजै है ॥२१५॥
ब्रजरज-टेक टरति क्यौं मन तैं। प्रान पकि रहे पूरन पन तैं ॥२१६॥
निबहै टेक एक रज - बल तैं। दृग आगैं ब्रज बैठैं चलतैं ॥२१७॥
सोवत जागत ब्रज ही देखौं। ब्रजमोहन - लीला अवरेखौं ॥२१८॥
ब्रज ही लागि परयौ मनमोहन। बिसरत नाहिं रसिक ब्रजमोहन ॥२१९॥
राधा के मन मैं मन रहै। ब्रजमोहन यौं गोहन गहै ॥२२०॥

२०७-कप०-कबहुँ इहै (वृंदा०)।

[२०८] ढरिहै=टपकेगा। [२१०] हिताइहौं=रुचि उत्पन्न करूँगा। [२१८] अवरेखौं=विचार करूँ।

कृष्णकौमुदी

दोहा

स्याम - रूप आनंदघन, अभिनव मधुर किसोर ।
परम रसिक गोपी-रमन, राधा - बदन - चकोर ॥ १ ॥

मुरली - नाद - विनोद - रत, सुघरराय रसलीन ।
मोहन महा कहा कहौं, अनुछिनु निपट नवीन ॥ २ ॥

गोपराज - कुल को कलस, पूरन परम रसाल ।
ब्रजलोचन - रोचन रुचिर, गोपवेष गोपाल ॥ ३ ॥

मोरचंद्रिका सिर धरैं, गरैं गुंज की माल ।
धातु - चित्र कटि पीतपट, मोहन - मदन गुपाल ॥ ४ ॥

प्रेम-अवधि लीला - मगन, नटवर नित नवरंग ।
केलिकला - पूरन - कुसल, अद्भुत अतुल अनंग ॥ ५ ॥

दिन दूलह लोनो ललित, सब गुन रूपनिधान ।
सुहृद सुमिल नागर नवल, अनुपम सुखद सुजान ॥ ६ ॥

ब्रजनायक ब्रज - प्रेमनिधि, ब्रजभूषन ब्रजप्रान ।
ब्रजमंडन ब्रजहितकरन, गिरिधर ब्रजबलवान ॥ ७ ॥

ब्रजमंगल ब्रजकौतुक, ब्रजवासी ब्रजचंद ।
ब्रजविनोद ब्रजराजसुत, ब्रजजन - आनँदकंद ॥ ८ ॥

अति कमनीय किसोर वपु, गोपीनाथ उदार ।
कमलनैन क्रीडानिपुन, कान्हर गोपकुमार ॥ ९ ॥

कुंजविहारी कृस्न कवि, कोविद कृपानिकेत ।
मधुर मनोहर मेघद्युति, महामुदित सुखहेत ॥ १० ॥

कामकेलि- क्रीड़ा कुसल, कलानाथ रसवंत ।
गोवरधनवासी सदा, गोप - कामिनी - कंत ॥ ११ ॥

[२] सुघर=चतुर । [३] रोचन=रुचनेवाले । [४] धातु०=मिट्टी से अंगों पर छापा लगाए । [१०] हेत=हेतु, कारण ।

चतुरसिरोमनि अति चपल, परम धीर गंभीर।
सदासुखी सोभासदन, कोमल अमल सरीर ॥ १२ ॥
जगत - उजागर साँवरो, अचरज-लीला-खानि।
दान - केलि - कोलाहली, रसलोभी रूदानि ॥ १३ ॥
महालील मायी महा, महापुरुष मतिमान।
महारसिक महिमा महा, मानी परम प्रधान ॥ १४ ॥
बृंदावनबासी सदा, अभिरुचि - धीरसमीर।
कुंजरमन कंदर्पजित, बिहरत जमुनातीर ॥ १५ ॥
गोचारी गोरज - धरन, ब्रजजन - उत्सव - रूप।
गोपीवल्लभ गोपधन, गोपकिसोर अनूप ॥ १६ ॥
रासबिलासी रसिकबर, चिंतामनि चैतन्य।
चटुल चतुर चुंबक चपल, उद्धत अद्भुत धन्य ॥ १७ ॥
मानसरोवर - बास - बस, केलिकला - कलहंस।
वट - भंडीर - निवास नित, राधारसिक प्रसंस ॥ १८ ॥
राधारंगी रस - अवधि, सरल त्रिभंगी स्याम।
रतिवर्धन रतिपति - जयी, रामानुज अभिराम ॥ १९ ॥
राधाजीवन विपुल धन, राधा - सखा - सुरूप।
राधा - रसलंपट सदा, राधारसिक अनूप ॥ २० ॥
राधा जीवन स्याम कैँ, राधा - जीवन स्याम।
गौर स्याम एकत सदा, बसत विदित ब्रजधाम ॥ २१ ॥
राधा - जागर - जग्य-रत, पूरन परम सनेह।
कुंजकुटीर कदंब - तर, कृतीमान कृतगेह ॥ २२ ॥

२२-कृती०—कृतमानी (लंदन)।

[१४] महालील=महान् लीला करनेवाले। मायी=मायावी। [१५] धीर०= एक कुंज। [१८] भंडीर=भांडीर वन, बरगद का वन। [१९] रति०= कामदेव के जेता। रामानुज=बलराम के छोटे भाई। [२२] जागर=जागरण।

सदा गोपसीमंतनो, सेविन नायकराज ।
खरिक खोरि गिरव्रर गहन, अमित अभंग समाज ॥ २३ ॥

नित नवीन सिंगाररुचि, रसिक छैल व्रजचंद ।
सनमुख ही सोभित सदा लहियत लाभ अमंद ॥ २४ ॥

आनँदघन इनयों रहै. व्रजजन - जीवनमूल ।
दच्छिन सुभ लच्छिन भरयो, सबकों हित-अनुकूल ॥ २५ ॥

कृस्नचंद आनंदघन, अद्भुत अमल अमंद ।
जसुदा - प्राचीदिस - उदै, भाग अपूरब नंद ॥ २६ ॥

अति सुगंध अभिराम तन, पहिरैं नव बनमाल ।
व्रजमोहन गोहन लगे, मन - दृग मधुकर - जाल ॥ २७ ॥

अति चटकीलो लटक सौं, मुकट छबीलो माथ ।
आनँदघन मुख - माधुरी, रस बरसै इक साथ ॥ २८ ॥

भाल-भाग बड़भाग-निधि, रुचिर सु कुंकम खोरि ।
दृगविलास मृदु हास लखि, डग पहार-ढिग पौरि ॥ २९ ॥

भाल भौंह दृग नासिका, मृदुल कपोल सुठौन ।
साँवल छवि मधुमै अधर, देखि रहि सकै कौन ॥ ३० ॥

स्याम सरूप अनूप अति, सकै कौन अवगाहि ।
चाहि व्रजवधू चकि रहैं, राधा - भाग सराहि ॥ ३१ ॥

लहलहानि - जोवन उदै, व्रजमोहन अँगअंग ।
महा रूपसागर उमगि, उठति अमोघ तरंग ॥ ३२ ॥

मनिकुंडल अति भा-खुलनि, झुलनि सुललित कपोल ।
रूप - गहर - लहरानि मैं, मनमथ - मीन कलोल ॥ ३३ ॥

मुरली फबि अधरानि मैं, अति मादक धुनि पूरि ।
तान - बान संधानहीं, धरम मरम भे चूरि ॥ ३४ ॥

३४—मरम—परम (वृंदा०)।

[२३] सीमंतनी=पत्नी । [३१] अवगाहना=थहाना । [३३] भा=चमक ।

छुटत छबीली चंद्रिका, हँसनि लसनि बहु भाँति ।
कौंध चौंध अँखियनि भरै, दसन रँगीली पाँति ॥ ३५ ॥
सहज चीकनी घूँघरी, छलनि छलति गुर ग्यान ।
अजौं करति उरझनि मनौ, लगी कनौंती कान ॥ ३६ ॥
स्रवन-सुभगता हेरि कै, टरत न लोभी नैन ।
कहत लगी सुखदैन सौं, बिन बानी हित-बैन ॥ ३७ ॥
रुचिर चिबुक लोनी ललित, मृदुल मनोहर गोल ।
क्यौं निकसत मन गाड़ परि, उकतिन कसत अडोल ॥ ३८ ॥
स्याम-रूप अंजन सरस, राधा नैन-सिँगार ।
वदन-कमल-मधुपान-अलि, उरमंडन-हिति हार ॥ ३९ ॥
रसिक पपीहापन गहैँ, राधा आनँदकंद ।
चाँपत चौँप चकोर की, बदन देखि ब्रजचंद ॥ ४० ॥
ब्रज-बनिता आनंदघन, मुरली-गरज रसाल ।
रस-ताननि झर लायकै, रीझनि करत निहाल ॥ ४१ ॥
अति सुकंठ कौस्तुभ धरैँ, गरैँ सीपसुत-दाम ।
स्वच्छ वच्छ-सोभा लखैँ, बिवस होत ब्रजबाम ॥ ४२ ॥
सुढर अंस पीवर रुचिर, परम ललित भुज-बेलि ।
अंगद रसरंगद धरैँ, वलित कलित रसकेलि ॥ ४३ ॥
पानि प्रेमपल्लव रुचिर, कर तरु अरुन रसाल ।
सरस परस-सुख लेति हैँ, भागभरी ब्रजबाल ॥ ४४ ॥

३५–हँसनि–दसनि (लंदन)। ३६–मनौ०–मतौ लागि (लंदन)। ३८–उकति–उकसि (लंदन)। ३९–मंडन०–मंडन हितिहार (वृंदा०)। ४२–धरैँ–परैँ। बाम–धाम (लंदन)। ४३–कलित–फलित (वृंदा०)। ४४–बाल–भाल (वृंदा०)।

[३६] कनौंती=बाली। [३८] गाड़=गड्ढा। उकति=उक्ति, वाणी। [४२] सीप०=मोती की माला। [४३] अंस=कंधा। पीवर=पुष्ट। अंगद=बाहु पर का एक गहना, बिजायट।

उदर-मधुरिमा क्यौं कहौं, दृगनि बिलोकनि भूप ।
नाभि रोमराजी रुचिर, पूरित प्रेमपियूप ॥ ४५ ॥
कटिप्रदेस बरनौं कहा, कहिबे कौं कछु नाँहि ।
रतिबिलास बरसै सदा, मन भिजवै रस माँहि ॥ ४६ ॥
रूप-सलोने स्याम को, क्यौं करि सकौं बखान ।
महा मधुर रसस्वाद-सुख, नहिं समात अनुमान ॥ ४७ ॥

चौपाई

जानु जंघ रसढरे सुभायनि । चायनि दृग न्यौछावर पायनि ॥४८॥
चरन - माधुरी अति रससार । राधा के मन को ब्यौहार ॥४९॥
इनके उनके मन की बात । ये जानैं ज्यौं इन्हैं बिहात ॥५०॥
सबनि जिवावत हिलि मिलि जीवत । ब्रजबन बसि लीलारस पीवत ॥५१॥
गाहत गहन गैल अधरात । कछु बसि रहत चलत उठि प्रात ॥५२॥
लोकलाज ब्रजरीति निबाहत । मन मतवारे बन बन गाहत ॥५३॥
परम प्रेम - परिपूरन दंपति । राधा - मोहन रसना - संपति ॥५४॥
ब्रज इकरंग स्याम-रँग रच्यौ । सब नचाय या आगैं नच्यौ ॥५५॥
रसिया रसिकराय रसस्वामी । रसिकसिरोमनि नायक नामी ॥५६॥

दोहा

नटबर स्यामकिसोर तन, चरचित नव पाटीर ।
महा मनोहर मधुरिमा, गुनगरिमा गंभीर ॥ ५७ ॥
सदा ललित लीला-मगन, गिरधर गोपीनाथ ।
वृंदावन आनंदघन, प्रिय समाज लै साथ ॥ ५८ ॥
बेनुनाद - सुखस्वादमय, अद्भुत परमानंद ।
पूरन प्रेम कुतूहली, कृस्नचंद रसकंद ॥ ५९ ॥
सरस गीत कल-पद-भरी, मुरली अधर रसाल ।
गोपवधू - मन - बसकरन, मधुर त्रिभंगी लाल ॥ ६० ॥

६०—पद-मद (वृंदा०) ।

[४५] भूप=भूषित करती है । राजी=पंक्ति । [५७] पाटीर=चंदन ।

मोहन मादक रूप लखि, छके रहत ब्रज लोग ।
अपने अपने भाव सौं, चहत भावतो भोग ॥ ६१ ॥
जमुना-तीर बिसद पुलिन, विहरत नित नव रंग ।
निरखत नख-ससि-कौमुदी, मोहित अमित अनंग ॥ ६२ ॥
रमनीरमन महारसिक, मदमाते दृग लोल ।
रसलंपट लावन्यनिधि, अतुलित अतन कलोल ॥ ६३ ॥
अचरजमूरत्ति अमितदुति, चकचौंधी लखि होति ।
ब्रजवन व्यापि रही सदा, वदन-अपूरब-ज्योति ॥ ६४ ॥
पंगु होति मन - नैन-गति, देखति सहज सिँगार ।
ब्रजजन-प्रान-अधार नित, सुख - सुंदरता - सार ॥ ६५ ॥
नई चौंप नित ही रहै, सरस चाह रसरीति ।
निपट चटपटी सौं भरी, ब्रजमंडल की प्रीति ॥ ६६ ॥
स्याम - रूप आनंदघन, बरसत सुरस अमोघ ।
पीवत जीवत एकरस, ब्रजजन चातक-ओघ ॥ ६७ ॥
सघन कलपतरबर-तरैं, सोभित स्याम त्रिभंग ।
उर उदार वनदाम लखि, उरझत लोचन - भृंग ॥ ६८ ॥
सजल स्याम अभिराम अति, आनँदघन रस-ऐन ।
भिजवत रिझवत हँसि चितै, गोपीजन-मन-नैन ॥ ६९ ॥
निसदिन देखत हूँ बढ़ै, सबके हिय अभिलाष ।
मोहन मधुर किसोर पै, मदन वारियै लाख ॥ ७० ॥
नहिं अघात अचवत अमी, ब्रजजन जीवन-रूप ।
गोपी-नैन - चकोर की, पूरन प्यास अनूप ॥ ७१ ॥
बढ़्यौ रहत ब्रजनाथ सौं, ब्रजबासिनि को भाव ।
मोहन हिय हू चौगुनो, मिलि खेलन को चाव ॥ ७२ ॥

६१-लहत-लहैं (वही) । ७०-बढ़ै-चढ़ै (लंदन) ।

[६३] अतन=काम । [६७] ओघ=समूह । [६८] वनदाम=वनमाला ।

सुख-समाज चुहलैं रहैं, व्रजवन गिरि चहुँ ओर ।
नव किसोर आनंदघन, व्रजजन माते मोर ॥ ७३ ॥
मधुर केलि - कादंवरी - छके साँवरे छैल ।
सर - सरिता-पनघटनि मैं, घूमत घेरत गैल ॥ ७४ ॥
अटक भटक चोखनि करत, अरत ढरत तक लाय ।
नवल सनेही साँवरो, हिय हरि लेत सुभाय ॥ ७५ ॥
आनँदघन घमड़्यौ रहत, व्रजवन गैल मँझार ।
सबको जीवन साँवरो, रसनिधि नंदकुमार ॥ ७६ ॥
दिन - दूलह व्रजचंद के, चरन सुमंगल - मूल ।
जमुनातट वृंदाविपिन, विहरत रुचि - अनुकूल ॥ ७७ ॥
नखचंद्रावलि - चंद्रिका, दृग - चकोर - सुखदैन ।
चरन-कमल अद्भुत अमल, प्रफुलित आनँद-ऐन ॥ ७८ ॥
कुंज - धरनि - मंडन मृदुल, मंजुल चिह्न-समेत ।
रसिकसिरोमनि-पद-कमल, बिरह-ताप हरि लेत ॥ ७९ ॥
चरन चारु व्रजचंद के, वृंदाविपिन - बिहार ।
वंदन करि जासों सदा, गोपीपद - रज - सार ॥ ८० ॥
एक प्रान मन एक ही, एक वैस इक सार ।
रसचूड़ामनि गाइये, राधा - नंदकुमार ॥ ८१ ॥
व्रज - वृंदावन - रस सदा, रसना करौं बखान ।
गोपी अरु गोपाल को, लीला - आसव पान ॥ ८२ ॥
व्रजनटवर गोपाल-गुन, गनत गनत न अघाति ।
अति सुछंद रसना-नटी, सुख विलसति दिनराति ॥ ८३ ॥
कृस्नकौमुदी नाम यह, मोहन मधुर प्रबंध ।
सरस भाव - कुमुदावली, प्रफुलित परम सुगंध ॥ ८४ ॥

---

[७४] कादंवरी=शराब ।

धामचमत्कार

चौपाई

ब्रजवन पूरि रह्यौ सुख सदा। कृस्न - ललित - लीला - संपदा ॥१॥
ब्रजवन को समीप है ऐसैं। बनवारी विहरन हित जैसैं ॥२॥
रमन - भूमि को रूप अनूप। राजत रसिकमुकटमनि भूप ॥३॥
लीला - कलित स्याम गंभीर। मधुर किसोर महारस - धीर ॥४॥
अमित ओज मधुरिम-भर बढ़ै। ब्रजबन विहरत चौंपनि चढ़ै ॥५॥
अति अगाध रससागर ब्रजबन। नित बरसत प्यासनि आनँदघन ॥६॥
अचरजमय ब्रजबन की ठौरैं। वुधि बिचार हेरत ही बौरैं ॥७॥
ब्रजवन देखन के दृग औरै। रचना रुचिर ठौर ही ठौरै ॥८॥
परमानंद - रूप ब्रजबन है। जहाँ प्रवेस करत नहिं मन है ॥९॥
परम तत्व को सार समोय। ब्रजबन - रज लै राख्यौ मोय ॥१०॥
ब्रजबन थिर चर को अभास। निरवधि-रसनिरजास-विलास ॥११॥
सिव विरंचि सनकादिक सेस। जाचत ब्रजवन - रज को लेस ॥१२॥
महिमा अमित विचारत चकैं। समझि सुमिरि मन ही मैं छकैं ॥१३॥
हरि-परिकर ब्रजजन को भाग। समझि सराहत भरि अनुराग ॥१४॥
गोपवेस ब्रजराजकुमार। जिन सँग मिलि नित करत बिहार ॥१५॥
यह समाज ब्रजबन मैं लसै। नित्य किसोर - केलि रसमसै ॥१६॥
वस्तुग्यान विन ध्यान न आवै। ब्रजस्वरूप को धौं लखि पावै ॥१७॥
सब तैं अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस ॥१८॥
ब्रज सुदेस ब्रजराजा नंद। जसुदानंदन गोकुलचंद ॥१९॥
महामोद ब्रज सरस विनोद। परिपूरन विलास चहुँ कोद ॥२०॥
आनँद - उदय एक सो जहाँ। नित्यानंद विराजत तहाँ ॥२१॥
धाम - माधुरी अतुल अभूत। जानत है संकर अवधूत ॥२२॥

२–विहरन०–विहरत नहिं (वृंदा०)। ७–बौरैं–औरैं (वही)। १६–बन–जन (लदन)।

[५] भर=भराव। [११] निरजास=निचोड़। [१४] परिकर=निकट के लोग, पार्षद। [२०] कोद=ओर

गोपेसुर है निरखत सोई । कृपा करै तौ समझै कोई ॥२३॥
अगम पदारथ कैसैं लहियें । व्रजवन को सुरूप क्यौं कहियें ॥२४॥
लीला ललित सु क्यौं मन आवै । अधिकारिनहूँ अधिक घुमावै ॥२५॥
व्रजवन विहरत मदन गुपाल । संग सोहत निज परिकर जाल ॥२६॥
व्रजवन के प्रदेस बहुरंग । नित नित लीला ललित अभंग ॥२७॥
गाँव गाँव के नाँव अनेक । बरनत है बाराह जु एक ॥२८॥
यातैं यह ठिक जान्यौं परै । अपनो विभौ आप विस्तरै ॥२९॥
व्रज की मही मनोहर महा । याकी महिमा कहियै कहा ॥३०॥
सोभा को कछु ओर न पैयें । अति अद्भुत जित ही जित जैयें ॥३१॥
व्रज को बनक न बरनत बनै । दरसि परै तौ जानत मनै ॥३२॥
अचिरज अति गति कहियै कैसैं । निगम नेति कहि बरनत ऐसैं ॥३३॥
तरवर सरवर गिरिवर नदी । सोभानिधि व्रज की चौहदी ॥३४॥
देखत सहज स्याम दरसावै । व्रज की सोभा व्रज ही पावै ॥३५॥
सब रितु सुखद सुहायो लागत । व्रज बसि व्रजमोहन-हित पागत ॥३६॥
व्रज विहरत गिरधर कौतकी । निरखत फिरत लगाएं टकी ॥३७॥
अपने व्रज मैं व्रज को नायक । विलसै सुख सबकौं सुखदायक ॥३८॥
व्रज मैं सुखसमूह नित रहै । व्रजजीवन को जीवन यहै ॥३९॥
यह व्रज क्यौं न विराजै ऐसो । नितनायक व्रजमोहन - जैसो ॥४०॥
व्रजबन निज दरपन है कियौ । निरखत स्याम सिरावत हियौ ॥४१॥
कृस्नचंद को यह व्रज देखौ । मेरे नैन भाग अब लेखौ ॥४२॥
व्रजबासी गोपाल गोपसुत । व्रज सुधाम अद्भुत लीलाजुत ॥४३॥
व्रजसुरूप कछु मन मैं आयो । सो हठ कै व्रजनाथ कहायो ॥४४॥
नातरु कहौ कहै कोउ कहा । या व्रज अचरज - बानक महा ॥४५॥
व्रज को चेटक रूप अपारै । मेरी डीठि निहारि न हारै ॥४६॥
या व्रजबन के गैल - गरथारे । देखत लागत खरे पियारे ॥४७॥

२३–तौ–जो (वृंदा०) । ३६–लागत–लागौ (लंदन) । ४६–न हारै–निहारै (लंदन) ।

[२५] घुमावै=चक्कर मैं डालती है । [२९] ठिक=निश्चय ।
[३७] टकी=टकटकी । [४७] खरे=अत्यंत ।

ब्रजमोहनहि दिखावत देखौ। ऐसे ब्रज सौं मेरो लेखौ ॥४८॥
धन्य धन्य या ब्रज के बासी। मंगलनिधि गोपाल - उपासी ॥४९॥
या ब्रज मैं नित मंगलचार। धन्य धन्य ब्रज को व्यौहार ॥५०॥
कहा कहौं या ब्रज को चैन। देखत फूलत भूलत नैन ॥५१॥
ब्रजबिनोद गहमह नित रहै। देखत बनै कहा कोउ कहै ॥५२॥
ब्रज मैं प्रेमपुंज नित छायौ। यह सरूप ब्रज को दरसायौ ॥५३॥
ब्रजवल्लभ ब्रजमोहन स्याम। ब्रजजीवन अभिराम सुनाम ॥५४॥
ब्रज की संपति परति न बरनी। निरखत कान्हकुवँर-हिय-हरनी ॥५५॥
ब्रजनरेस ब्रजराज बिराजै। जस-निसान निसिबासर बाजै ॥५६॥
मोकौं यह ब्रज लागत प्यारो। दीसत दीसै स्याम उज्यारो ॥५७॥
दिपत स्यामद्युति या ब्रज अहा। ब्रजदरसन ही लोचन - लहा ॥५८॥
या ब्रज की सब सौंज अनूप। पूरन सदा, अपूरब रूप ॥५९॥
को समझै ब्रजरस को भेद। जानै पै न बखानै वेद ॥६०॥
हियै रह्यौ धरि भरि ब्रजहेत। नेति नेति कहि कछु कहि देत ॥६१॥
ब्रज-छबि-छटा कहूँ जौ दरसै। हियै परम आनँदघन बरसै ॥६२॥
ब्रजचरित्र है अति ही चित्र। बरनत बानी परम पवित्र ॥६३॥
रसकदंब - चूड़ामनि स्याम। जिनको मोहन यह ब्रजधाम ॥६४॥
या ब्रज सौं यह ब्रज ही आहि। ब्रज की पटतर दीजै काहि ॥६५॥
ब्रजमंडन के यह ब्रज एक। बसत सदा गहि ब्रज की टेक ॥६६॥
सुभग सींव ब्रज चरन-कमल की। कहा कहौं गति सुजस अमल की ॥६७॥
ब्रज - वृंदावन की बलि जैयै। ब्रज - वृंदावन - लीला गैयै ॥६८॥
ब्रजदेबिन की कृपा मनैयै। याही तैं यह ब्रजरज पैयै ॥६९॥
ब्रज-वृंदावन सौं हित-घन है। नित ही बरसत आनँदघन है ॥७०॥

———

६६–गहि–ही (वृंदा०)।

[५२] गहमह=आनंद की धूम। [५६] निसान=नगाड़ा। [५९] सौंज=सामग्री। [६३] चित्र=बिचित्र। [६४] कदंब=समूह। [६५] पटतर=उपमा।

प्रियाप्रसाद

चौपाई

राधा राधा राधा कहौं। कहि कहि राधा राधा लहौं ॥ १ ॥
राधा जानौं राधा मानौं। मन राधा-रस ही मैं सानौं ॥ २ ॥
राधा जीवन राधा प्रान। राधा ही राधा गुनगान ॥ ३ ॥
राधा वृंदावन की रानी। राधा ही मेरी ठकुरानी ॥ ४ ॥
राधा ब्रजजीवन की ज्यारी। राधा प्राननाथ की प्यारी ॥ ५ ॥
राधा राधा राधा एक। सर्वोपर राधा-हित-टेक ॥ ६ ॥
राधा अतुल रूप-गुन-भरी। ब्रजवनिता-कदंब-मंजरी ॥ ७ ॥
राधा मदन गुपालहि भावै। मुरली मैं राधा-गुन गावै ॥ ८ ॥
राधा-रस-प्रसाद की साधा। रसिकराय कैं राधा राधा ॥ ९ ॥
या राधा कौं हौं आराधौं। राधा ही राधा रट साधौं ॥१०॥
राधा वचन मौन हूँ राधा। राधा राधा राधा राधा ॥११॥
सोएँ राधा जागें राधा। रातिद्यौस राधा ही राधा ॥१२॥
राधा हेरौं राधा सुनौं। राधा समझौं राधा गुनौं ॥१३॥
राधा मेरी स्वामिनि साँची। थिर चित ह्वै राधा-हित नाँची ॥१४॥
राधा जु कछु कहै सो करौं। महल-टहल टकोर अनुसरौं ॥१५॥
राधा राधा गीत सुनाऊँ। राधा-आगे राग जमाऊँ ॥१६॥
राधा कौं बहु भाँति रिझाऊँ। तोखी बातनि चोख हँसाऊँ ॥१७॥
राधा की चटकीली चेरी। चित ही चढ़ी रहति नित नेरी ॥१८॥
राधा रुचिहि लियेई रहौं। विहरत गृहबन गोहन गहौं ॥१९॥
रूप-उज्यारी राधा देखौं। भागन को सुख कहा बिसेखौं ॥२०॥
राधा सब ही भाँति लड़ाऊँ। राधा रीझैं राधा पाऊँ ॥२१॥
राधा सौं कछु कहौं कहानी। परम रसीली अति मनमानी ॥२२॥

१५—टकोर—को रस (वृंदा०)। १६—सुनाऊँ—न गाऊँ (वही)।

[५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१२] टकोर=डंके की चोट अथवा बुलाहट। [१७] चोख=अत्यंत। [१८] नेरी=निकट।

चाँपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुवै सीस राधा के पाऊँ ॥२३॥
चरन हलाय नगाए लगौं। वहुरि औंधि नित पाँयनि लगौं ॥२४॥
राधा धरयौ वहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाएँ जाऊँ ॥२५॥
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं ॥२६॥
राधा को सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दै हौं हूँ सुख पाऊँ ॥२७॥
राधा-ढिग जब स्याम निहारौं। समय-उचित सुख-टहल बिचारौं ॥२८॥
राधा - पिय पै विजना ढोरौं। स्रमजल सुखऊँ मन रस बोरौं ॥२९॥
पियमै ह्वै प्यारी - हित पालौं। ललना - लाल परस्पर लालौं ॥३०॥
राधा - मोहन एकै दोऊ। नैन प्रान मन प्रेम - समोऊ ॥३१॥
राधा-हिलग कहत नहिं आवै। मोहन ह्वै राधा रुचि पावै ॥३२॥
राधा-मोहन मोहन-राधा। हिलनि-मिलनि विहरनि विन वाधा ॥३३॥
राधा प्रेम - रसामृत - सरसी। केलि-कमल-कुल-सुपमा दरसी ॥३४॥
राधा - मन मैं मन दै रहौं। राधा के मन की सब लहौं ॥३५॥
राधा को स्वभाव पहचानौं। राधा की रुचि रचना ठानौं ॥३६॥
राधा मन की मोसौं बोलै। गुपत गाँस अपनी रुचि खोलै ॥३७॥
हौं राधा की राधा मेरी। कारति की घरजाई चेरी ॥३८॥
राधा की मनभावति लौंड़ी। राधा के आनंदनि औंड़ी ॥३९॥
राधा - चीर उतारन पाऊँ। भाग - वड़ाई कहा जनाऊँ ॥४०॥
राधा मो कर पाय झवावै। भागभरी महावरो द्यावै ॥४१॥
राधा कौं हँसनि हौं प्यारी। जात तनकौ करति न न्यारी ॥४२॥
लालविहारी हूँ सौं ऐंडनि। राधा के गुमान की पैंडनि ॥४३॥
उसरि भरौं हित ढरौं अंग सौं। करौं टहल रसमसी रंग सौं ॥४४॥
अड़े दाय को काम परै जब। विन वहुगुनी सँवारै को तव ॥४५॥
मेरो सुख हौं ही भर देखौं। राधा को सुख अंतर लेखौं ॥४६॥
लखौं सुख जब जब सुख देखौं। राधा को सुख कहा विसेखौं ॥४७॥

३२—रुचि—गति (लंदन)। ३४—कुल—कुलि। ४०—जनाऊँ—गनाऊँ (लंदन)।

[२४] औंधि=औंधकर। [२९] विजना=व्यजन, पंखा। ढोरौं=झलूँ। स्रमजल=पसीना। [३८] घरजाई=घर में उत्पन्न, पारंपरिक। [३९] औंड़ी=बढ़ी, उमड़ी।

राधा को सुख मेरैं सुख है। मदन गुपाल निहारै गुन है ॥४८॥
चेरी पै अभिमान - भरी हौं। ठकुरायनि या भाँति करी हौं ॥४६॥
राधा की वलिहार भई हौं। राधा यौं अपनाय लई हौं ॥५०॥
राधा बिन कछु और न सूझौं। सुरझि सुरझि अभिलाप उरूझौं ॥५१॥
राधा आँखिन आगैं रहै। राधा मन को मारग गहै ॥५२॥
रोम रोम राधा की व्यापनि। रसिकजीवनी राधा - जापनि ॥५३॥
राधा रटि सोई है जाऊँ। तब पाऊँ राधा को गाऊँ ॥५४॥
राधा बरसाने को जाई। है सँकेत नंदीसुर आई ॥५५॥
राधा की हौं कहौं कहा लौं। व्रजवन राधामई जहाँ लौं ॥५६॥
राधा के हित बंसी बाजै। राधा रागभरे सुर साजै ॥५७॥
राधा बंसी की ठकुरायनि। सुर-पाँवड़े बिछावति चायनि ॥५८॥
नाँम गाँम सब राधा मेरैं। राधा ही के बसौं बसेरैं ॥५९॥
सो राधा न स्याम बिन रहै। मेरे मन मैं राधा यहै ॥६०॥
या राधा की महा अगम गति। प्रेमपुंज मतिवंती परम रति ॥६१॥
या राधा को प्रेम कहै का। या राधा को नेम गहै को ॥६२॥
राधा रमन रमन हू राधा। एकमेक है रहे अबाधा ॥६३॥
मिलन बिछोह कछु न सुधि परैं। अचिरज - रीति राधिका धरैं ॥६४॥
या राधा को रस अपरस है। रसमूरति को परम परस है ॥६५॥

दोहा

कहिबो सुनिबो समझिबो, राधा ही को होय।
राधा के हित की कथा, भूलि सुमरिहै सोय ॥ ६६ ॥

राधा अकथ कथा कहौं, यह कहिबे की नाहिँ।
राधा के जिय की दसा, प्रीतम के हिय माहिँ ॥ ६७ ॥

५५—नंदीसुर—नदी वन (वृंदा०)। ५७—सुर—सुख (लंदन)। ६४—परैं—परे (वृंदा०)। ६५—परम—मरम (लंदन)।

[६३] अबाधा=निरवधि, बेरोकटोक। [६५] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।

व्रजमोहन आनंदघन, वृंदावन रसधाम।
अभिलापनि वरसत रहै, राधा-हित अभिराम॥ ६८॥

मधुर केलिरस - मेलि सौं रसना स्वाद - सुरूप।
सुफल सुवानी वेलि को, राधा नाम अनूप॥ ६९॥

मेरे मन दृग रीझि की, राधा ही कौं वूझि।
राधा के मन रीझि की, मोहि वूझि अरु सूझि॥ ७०॥

राधा मेरे प्रान है, राधा - प्रान गुपाल।
साँस - कंठ धारे रहौं, राधा - मोहन - माल॥ ७१॥

आनँदघन वरसत सदा, राधा - जीवन स्याम।
उज्वल रसमै गोरता, प्रेम - अवधि अभिराम॥ ७२॥

दोऊ मिलि एकै भए, ललित रँगीली जोट।
जमुना-तट निरखौं सदा, तरु वेलिनि की ओट॥ ७३॥

निपट लटपटे अटपटे, भरैं चटपटी चौंप।
राधा मोद - पयोद - रस, प्रगट केलि-कुल - कौंप॥ ७४॥

व्रजमोहन - उर-अवनि मैं, राधा - सुपद - विहार।
रोम रोम आनंदघन, भीजे रसिक उदार॥ ७५॥

राधाहित आनंदघन, मुरली गरज रसाल।
राधा ही के रसभरे, मोहन मदन गुपाल॥ ७६॥

राधा के आनंद को, मनमोहन - मन साखि।
राधा को अभिलाप जो, राधा - पिय अभिलापि॥ ७७॥

राधा रसिक - सँजीवनी, राधाजीवन लाल।
राधामोहनमै सवै, व्रजवन वेलि तमाल॥ ७८॥

राधा मेरी संपदा, जिय की जीवन - मूल।
राधा राधा रट सदा, रोम - रोम - अनुकूल॥ ७९॥

राधा - मोहन - मुख लगी, मुरली है दिनराति।
राधा ही राधा वजै, अति मोहन धुनि जाति॥ ८०॥

७२—मैं—मिलि (लंदन)। ७८—वेलि—केलि (वृदा०)।
[७१] साँस०=स्वास के कंठ मैं। [७४] कौंप=कौंपल।

राधा रास - सिरोमनी, राधा केलि - कुलीन।
राधा सकल कला - भरी, रसमूरति हितलीन ॥ ८१ ॥
जो कछु है सो राधिका, मो कछु और न चाह।
राधा - पद - पन - पैंज को, राधा - हाथ निबाह ॥ ८२ ॥
राधा सब ठाँ सब समैं, रहति बहुगुनी संग।
तान रसन - गुनगान की, लैं बरसावति रंग ॥ ८३ ॥
राधा अचल सुहाग के, ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी, रिझवति राधा - मीत ॥ ८४ ॥
राधा चाहनि चाह मों, राधा चाहनि चाह।
राधा ही रससिंधु मैं, राधा राधा थाहि ॥ ८५ ॥
राधा मो द्दग पूतरी, भई स्याम लखि स्याम।
राधा राधारमन को, अनुपम रूप ललाम ॥ ८६ ॥
राधा पिय-स्यामनि भरी, आनँदघन रसरासि।
स्याम - रँगमगी सगमगी, राधा रही प्रकासि ॥ ८७ ॥
राधा राधा नाम को, रसनैं महा सवाद।
या प्रबंध को नाम हूँ, पायौ प्रियाप्रसाद ॥ ८८ ॥
प्रियाप्रसाद प्रबंध कौं, पाय सवादहि लेत।
नित हित सहित सनेह स्यौं, रसना इह सुख देत ॥ ८९ ॥
राधा मंगल - मालती, सरस मधुव्रत स्याम।
जमुना - तट राजत सदा, रसिक-सँजीवनि-धाम ॥ ९० ॥

८८—हूँ—हौं (वृंदा०)। ८९—स्यौं—हैं (लंदन)।

[८३] बहुगुनी=कवि का सखी नाम। [८५] चाहनि०=देखने की इच्छा।
[८७] रँगमगी=अनुरक्त। सगमगी=मिली।

वृंदावनमुद्रा

चौपाई

राधा को वृंदावन गाऊँ। गाय गाय वृंदावन पाऊँ ॥ १ ॥
वृंदावन - छवि कहत न आवै। सो कैसैं कहि कोऊ गावै ॥ २ ॥
कैसी राधा कैसो वन है। जामैं व्रजमोहन को मन है ॥ ३ ॥
हरि-राधा वन मिलि रस सने। तन मन वन एकै रस वने ॥ ४ ॥
वनविहार - महिमा क्यौं फुरै। विना फुरैं वन देखत दुरै ॥ ५ ॥
देखत भूली को यह रूप। क्यौं वन देखत वनै अनूप ॥ ६ ॥
जिन मोहन सब ही जग मोह्यौ। ताको मन राधा - गुन पोह्यौ ॥ ७ ॥
दुहुँनि एक वृंदावन ऐन। राखत पुतरिनि लौं धरि नैन ॥ ८ ॥
नित ही दंपति - हित लहलह्यौ। रोम रोम तिनके रमि रह्यौ ॥ ९ ॥
अब सोई जो दरस्यो चाहै। तौ रसना फिरि क्यौं न उमाहै ॥१०॥
गुन अनंत लै वानी दरसै। वृंदावन आनँदघन वरसै ॥११॥
रसना पन - चातकी भई है। वृंदावन - गुन - गोभ छई है ॥१२॥
जमुना तरल तरंगनि सरसै। हित-वतरानि प्रीति-रस परसै ॥१३॥
जमुना हीं मिलि कथा सुनाऊँ। याही के प्रसाद गुन गाऊँ ॥१४॥
मिली तरंगनि वातैं करै। यातैं रसना गुन विस्तरै ॥१५॥
तीरभूमि वनि रह्यौ सदा वन। जै जमुना जै जै वृंदावन ॥१६॥
वृंदावन - छवि जमुना जानै। रसना जमुना परसि बखानै ॥१७॥
कृपा - तरंगनि सौं रससानी। या विधि सरस भई है वानी ॥१८॥
श्रीवृंदावन जमुना - कूल। मो अनुकूल कृपाधन - मूल ॥१९॥
राधा - हरि वृंदावन भाँति। हिलि मिलि भई एक ही काँति ॥२०॥
अद्भुत छवि सौं ओपित लसै। गौर - स्याम - संगम रसमसै ॥२१॥

दोहा

गौर स्याम वन ह्वै रह्यौ, गौर स्याम कै रूप।
गौर स्याम वानी भई, वरनत वनक अनूप ॥ २२ ॥

[७] गुन=गुण; सूत। [१२] गोभ=अंकुर। [२१] रसमसै=सरस होती है। [२२] वनक=सजधज।

चौपाई

लता ललित रसवलित सुतरवर। महा मधुर पूरन सुख सरवर ॥२३॥
रोमांचित श्रीवपु लौं रहै। पवन - गवन परिमल महमहै ॥२४॥
केलि - सदन वन - केलि-सरूप। सुख-सिंघासन सब सुख - भूप ॥२५॥
जुगल - अंग जे रंग बिराजैं। ते वन दल फल फूलनि आँजैं ॥२६॥
वर विनोद पगि जगमग दिपै। उघरि उघरि आभा मैं छिपै ॥२७॥
रसमय सुखमय धामी धाम। निपट अलौकिक जग अभिराम ॥२८॥
रचना रुचिर सुठौर ठौर की। राधा पिय गुन रूप मौर की ॥२९॥
प्रेम-रँगमगी अवनि चहाँ चख। महा अलख अभिलाष लहाँ लख ॥३०॥
वृंदावन वृंदावन रहौं। रसना हित - चिंतामनि जटौं ॥३१॥
केलि - संपदा रसहि बखानौं। मौन धरैं अनूप गुन गानौं ॥३२॥
यह वृंदावन यह जमुना - तट। सदा रहत सोभा को संघट ॥३३॥
ये द्रुम ये वेली अलवेली। हरि - राधा - रसरंगनि भेली ॥३४॥
यह कुसुमावलि यह फल-झूमनि। ये विहंग यह अलिगन घूमनि ॥३५॥
यह पराग-घमड़नि सुख सरसै। नव मकरंद सु आनँद वरसै ॥३६॥
महकि मोद चहुँ कोद रह्यौ है। महा मधुरिमा-निधि उमह्यौ है ॥३७॥
यह दिन यह रजनी कछु औरै। लीला ललित ठौर ही ठौरै ॥३८॥
छिन ही छिन वन-महिमा मौरै। समझि समझि मति की मति बौरै ॥३९॥
आनँद अमित सघन वन छायौ। पूरन प्रेम - बितान तनायौ ॥४०॥
नित नवीन रसकेलि-सदन है। वन गुन वरनत जुगल वदन है ॥४१॥
रास-विलास विविध रसमंडित। सोभित श्री वनराज अखंडित ॥४२॥
जब जैसो चहियै तब तैसो। बन्यौ रहत वृंदावन ऐसो ॥४३॥
नित राधा-पिय को हित पोषै। सुचि रुचि सहज सकल विधि तोषै ४४
गुपत प्रगट गति कही न परई। अति अगाध महिमा वन धरई ॥४५॥
परिकर पुंज कुंज परिपूरन। पुलिन मंजु चिंतामनि चूरन ॥४६॥

३२–रसहि–दरसि (लंदन)।

[२६] आँजैं=(नेत्रों में) अंजन की भाँति लगाते हैं। वे रंग वन के दल आदि में छाए रहते हैं। [३१] जटौं=जटित करूँ।

अकथ अगम्य अलौकिक सोहै। को है जो वन दूखनि जोहै ॥४७॥
दृग रसना वन-रस-जस-लायक। दैहै वन उदार सुखदायक ॥४८॥
सोई लखि या रसहि भाखिहै। चाखि चाखि अभिलाषि राखिहै ॥४९॥
मोकौं सदा सरन यह वन है। राधाजीवन - जीवन - धन है ॥५०॥
बसौ निरंतर आँखिन आगै। पल पल जोति अपूरब जागै ॥५१॥
बन मेरो हौं वृंदावन को। वन - रखवारो है मन-पन को ॥५२॥
आनँदघन वृंदावन बसै। महामधुर रसधारा रसै ॥५३॥

कवित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनै न स्याम - नैन पहचानहीं।
राधिका - दरस को सुदेस आदरस यही,
चाहौई करत जब जब जैसो जानहीं।
ऐसे रंगमूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं।
जमुना कैं तीर देखौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैई बखानहीं ॥ ५४ ॥

स्याम यामैं बसे यह बसै स्याम-हियैं सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौंऽब सो निहारियै।
यही वृंदावन देखौ प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन की डीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै।
नैन बैन मन सौं समोय राख्यौ बड़भागी,
तिन ही की कृपा को सु अंजन बिचारियै।
महा अचरजधाम मोहि ऐसैं दीसि परयौ,
दीसत न काहूँ बिन दीसैं लाल-प्यारियै ॥ ५५ ॥

५३—बसै—बसौ (वही)। ५४—यही—याहि (वृंदा०)। है—हौ (लंदन)।
५५—बैन०—मन सांवरे को मोहि।

[५४] गोभा=अंकुर। दरस=दर्शन। सुदेस=सुंदर। आदरस=दर्पण
[५५] ईठि=इष्ट, प्रिय।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो वृंदावन कहौ कैसैं करि दीसई ।
दीसत हुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
हरयौ मति हरै हरि हरि विसे बीसई ।
परैं तैं परैं है भयौ हाय यहै वृंदावन,
राचैं रज जाँचैं ईसहू से बकसीसई ।
ताहि दौरैं जात पाय लियौ है सबनि सूधौ,
मधुर त्रिभंगी जौ लौं कृपा न परीसई ॥ ५६ ॥
वृंदावन-माधुरी अचंभे सौं भरी है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही याहि देखिये ।
अंग रंग - संग - एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भोगवती राधा रानी अवरेखियै ।
सुबन बन्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदी-कूल,
आनँद को घन रसमूरति विसेखियै ।
देखत हुरयौ सो अवनी पै अति ऊंचो आहि,
सरस कृपा ही पै परस - गुन पेखियै ॥ ५७ ॥
वृंदावन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहूँ गए तैं रस - पारस क्यौं पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं सकेलि नीकैं,
सुभर भरथौ लै तौ लौं उर न बसाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा - चरन - रज आँखिनि अँजाइयै ।
निगम बिसूरि थाकैं पदई परम दूरि,
आनँद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥ ५८ ॥

५७—है—है (वृंदा०) । ५८—लै—है (वही) ।

[५६] हरयौ=हराभरा । विसे०=बीसो विस्वा, पूर्णतया । बकसीस=प्रसाद । परीसई=स्पर्श करे । [५८] भानुजा=राधिका ।

व्रजस्वरूप

चौपाई

व्रज को सुख-सुरूप कछु कहौं। कहि कहि परमानंदहि लहौं ॥१॥
बसत स्याम अभिराम जहाँ हैं। सब सुख सेवक सदा तहाँ हैं ॥२॥
परम प्रेमपूरन व्रजदेस। व्रजरज वंदत सेस महेस ॥३॥
व्रज के लोग महा बड़भागी। सुंदर स्याम सहज लौ लागी ॥४॥
जीवन को फल व्रजजन देखैं। देखैं कान्हैं मानत लेखैं ॥५॥
कँवलनैन व्रजलोचन-तारो। नंद-जसोदा-बारो प्यारो ॥६॥
थिर चर रह्यो कृस्न उजियारो। गिरिधर या व्रज को रखवारो ॥७॥
धनि यह व्रज धनि ये व्रजवासी। कृस्नचंद्र-चंद्रिका-प्रकासी ॥८॥
या व्रज नित हित-उत्सव रहै। याकी उपमा कौं कछु न है ॥९॥
कहौं कहा धौं व्रज को मोद। बरसत नित आनंद-पयोद ॥१०॥
मुरली-नाद मोहि सब राखै। पुरवत सुख-सवाद अभिलाषै ॥११॥
गोपी गोप गाय रस-पगे। मन अरु प्रान कान्ह सौं लगे ॥१२॥
व्रज-मोहन देखेई जियैं। नैननि रूप-सुधा भरि पियैं ॥१३॥
यह सुरूप सुख समझत येई। इनहि स्याम सुंदर सुख देई ॥१४॥
स्याम-संग के रंग निहारैं। रीझि रीझि सर्बसु लै वारैं ॥१५॥
व्रजसमाज देखैं बनि आवै। कहि कोउ किहि भाँति बतावै ॥१६॥
जो सुख सबनि अगोचर आहि। कैसैं बरनि बतैये ताहि ॥१७॥
व्रजछबि देखन के दृग औरैं। परमानंद ठौर ही ठौरैं ॥१८॥
जिनको व्रज जो ये दिखरावैं। तौ ये नैन दृस्टि-बल पावैं ॥१९॥
निरवधि आनदमय व्रजधाम। निवसत सदा स्याम अभिराम ॥२०॥
परिकर प्रेमपुंज सँग सदा। बिलसत लीला-सुख-संपदा ॥२१॥
व्रज विनोद-सागर रससार। अति अगाध अति अगमअपार ॥२२॥
कहियँ कहा महारुचि रवनी। कवनी निपट नंद-व्रज-अवनी ॥२३॥

३–वंदत-वंदित (वृंदा०)। ११–पुरवत-पुरवन (वही)। १८–के–कौ (वही)। २२–रससार–सुसार (लंदन)।

[२३] कवनी=(कमनीय) सुंदर।

दृगनि देखि अद्भुत दुति दीसै। व्रज - वसुमती रती व्रजईसै ॥२४॥
नँद नंदीसुर नीकैं बसैं। गाँव गाँव गोपनि गन लसैं ।२५॥
सब ही सौं सब ही हित नातैं। मन मिलि बंधुन तन के हातैं ।२६॥
प्रेम-तंत करि जंत्रित अंतर। अंतर - रहित सुतंत्र निरंतर ॥२७॥
गोधन ठाट कहाँ लौं कहियै। धन अरु धान अलेखैं लहियै ॥२८॥
वास-निकट ही खरिक सुहाए। बिसद बिलास परम छबि छाए ॥२९॥
बगर गरधारैं गली पुनीत। घर घर मंगल - मंडित गीत ॥३०॥
देखत बनैं बनैं बरनैं न। व्रज दरसैं तेई वर नैंन ॥३१॥
व्रजमोहन जीवन सब जी के। पूरन करत मनोरथ ही के ॥३२॥
ग्वालबाल-कोलाहल जित तित। नित उतसव मोहन-जोहन-हित ॥३३॥
सबै ओर सोभा सुखसाज। जय व्रजमंडन जय व्रजराज ॥३४॥
जित जैयै तित नित सुख पैयै। देखत देखत मन न अघैयै। ३५॥
अति उतंग ओपित चौपारैं। लच्छित चौहटे बनत निहारैं ।३६॥
व्रजमोहन विहरत रहठान। खँडे निकसि चुहल चौगान ॥३७॥
चहूँ ओर सुभ सुंदर तरवर। ढिग ही लसत साँवरे सरवर ॥३८॥
अमल अपूरब दरपन कहा। व्रजमोहन - छबि जोहन महा ॥३९॥
घाट पनघटनि खेलनि खोरनि। पैरनि दृगनि रूपरस-बोरनि ॥४०॥
रितुरितु सुखनि सहज ही बिलसत। सदा एकरस लसत सु हुलसत ॥४१॥
जसुदानंदन - जस व्रज छायौ। तातैं लागत परम सुहायौ ॥४२॥
जब लखियै तब तब मन भायौ। व्रज भीजन चौमासौ आयौ ॥४३॥
आनँदनिधि व्रजमोहन - धाम। बन्यौ रहत ज्यौं चाहत स्याम ॥४४॥
बारस मास जहाँ चौमासौ। हित-किसान कैं कहूँ न साँसौ ॥४५॥

२६–कै–कौ (लंदन)। २८–धान–धाम (वृंदा०)। ३२–करत०–करन मनोहर (वृंदा०)। ३७–विहरत–बिहरन (लंदन)। ४०–रस–सर (लंदन)। ४४–आनँद०–आनँद व्रजमय (लंदन)।

[२४] रती=अनुरक्त। [२५] नंदीसुर=नंदगाँव। [२६] हातै= दूर। [२७] तंत=तंत्र। [३६] चौपार=चौपाल, गाँवों मैं घर के बाहर की बैठक। [४५] बारस=(द्वादश) बारह।

उघरि उघरि बरसै आनँदघन । या रस भीजे राजत ब्रजजन ॥४६॥
घमड़ि स्याम घन झरहि लगावै । ब्रज की छबि देखैं बनि आवै ॥४७॥
हरियारो नित ही हरि-प्यारो । ब्रज-उजियारो ब्रज उजियारो ॥४८॥
बरहे हरे भरे सर जित तित । हित-फुहार की झमक रहति नित ॥४९॥
जुहीँ सुहीँ सुख गुहीँ खिली हैँ । लता ललित तरु उमगि मिली हैँ ॥५०॥
झूमि अँध्यारी दै घन घोरनि । ब्रज बोलै बन बारी मोरनि ॥५१॥
ब्यापि रहति झाईँ झिंकार । जित तित माचति प्रेम-पुकार ॥५२॥
दिन अधराति परत नहिं पायो । ब्रज आनँदघन भीज भिजायो ॥५३॥
निपट काँवरी काँवरि खोही । ब्रज - उजियारे पै अति सोही ॥५४॥
सिथिल कसूँभी पाग छबीली । अलबेले की बनक रँगीली ॥५५॥
सखा संग अलबेल अनेक । हरि-हित धरि धरि अपनी टेक ॥५६॥
टरत न कहूँ कान्ह तजि पलकौ । कही न परति हिये की ललकौ ॥५७॥
बन मैँ मन मैँ बिहरत डोलैं । हित के चायनि गायनि बोलैं ॥५८॥
सघन कदम-तर बूँद बरावत । छतना छबि पावत कछु गावत ॥५९॥
बन ब्यापक मुरली की टेर । आवति ब्रजबासिनि औसेर ॥६०॥
कान रमैँ ब्रज सोभित सदा । ब्रज बरसत सब सुख संपदा ॥६१॥
गिरि गोधन हरियारो रहै । चौमासो नित बासो गहै ॥६२॥
झूमे रहत गिरि - सिखर बादर । बोलत मोर पाँति भरि आदर ॥६३॥
नव घनस्याम चद्रिका धरैँ । अपनो भाग निहारयो करैँ ॥६४॥
गुंजमाल तन धातु बिचित्र । तैसेइ बने ठने सब मित्र ॥६५॥
निकसि जात जिनकौं चित चाहत । ब्रजमोहन ब्रजबन अवगाहत ॥६६॥

४६–जन–घन (वृंदा०) । ५०–सुख–हित (लंदन) । ५४–काँवरी–कामरि (वही) । ६०–आवति–थाँभति (लंदन) ६२–हरियारो–हरि धारो । नित–जित (लदन) ।

[४९] बरहे=नाले । [५४] काँवरी=कमली । खोही=घोघी । [५५] कसूँभी=पीली । पाग=पगड़ी । [५८] बोलैं=बुलाते हैं । [५९] छतना=पत्तों का बना छाता । [६०] औसेर=व्यग्रता । [६२] नित०=नित्यवास सदा चौमासा ही रहता है । [६५] धातु=मिट्टी ।

ठौर ठौर की सोभा नई। ब्रज की बानिक अचरजमई ।६७।।
बकुल सकुल कदंब मिलि फूले। सौरभ-बिवस पलट अलि भूले ॥६८॥
स्याम - सुअंग सुगंध समोई। ब्रजबन-बासित नित हित-भोई ॥६९॥
महकत ब्रजबन मोह जु महा। ब्रजबन को सुख कहियत कहा ॥७०॥
नित हीं चौंपभरे बनवारी। ब्रजजीवन बनराजबिहारी ॥७१॥
जमुना - कूल कदंबनि मूल। निर्जन ठौर केलि - अनुकूल ॥७२॥
सुथरी ठौर फूल - दल फैल। जहँ रुचि सौं बैठत ब्रज छैल ॥७३॥
सुकृत-पुंज-फल बैठ निहारत। राधारमन नाम - गुन धारत ॥७४॥
कहौ परति क्यों इनकी आरति . वृंदावन बन मौन पुकारति ॥७५॥
चनक मूँद खग मृग सब चकैं। मदन गुपाल केलि-रस छकैं ॥७६॥
ब्रजस्वरूप देखत ब्रजलोचन। ब्रजबन रुचिरोचन दुखमोचन ॥७७॥
नित ब्रज बसत लसत ब्रजनागर। यह ब्रज अद्भुत रस को सागर ॥७८॥
कृस्नचंद - हित बाढ़यौ रहै। ब्रजमोहन जू को ब्रज यहै ॥७९॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज मोहि। सूझि परयौ ब्रज की रज टोहि ॥८०॥
ब्रजबन स्यामस्वरूपहि सूझै। बिन रज लहैं न कोऊ बूझै ॥८१॥
ब्रजस्वरूप अति निगम-अगम है। रजहि मिलें तैं मिलत सुगम है ॥८२॥
अंजन यहै सूझ हू यहै। ब्रजरज - सरन गहै रज रहै ॥८३॥
ब्रजरज - सरन गहैं रज रहौं। ब्रजमोहन-लीला - निधि लहौं ॥८४॥
मगन रहौं लीला - सुख चहौं। ब्रजरस ब्रजमोहन सौं कहौं ॥८५॥
नित नित चौंप नई चित मेरैं। या ब्रज की सुख - संपति हेरैं ॥८६॥
लीला ललित नित नयो चाव। अब कछु ऐसो सहज सुभाव ॥८७॥
नित ब्रजमोहन-केलि निहारौं। पाय पाय प्रानन हौं वारौं ॥८८॥
नित गोचरन नित गोदोहन। नित नव रंग रसिक ब्रजमोहन ॥८९॥

६८—सकुल—सकल (वही)। बिवस०—लपट बिवस अति (वही)। ६९—समोई—समोय। ७०—कहियत—कहिये (वही)। ७२—निर्जन—निमनक (वही)। ७७—रोचन—रोचत। ८१—स्वरूप-रूप ही (वही)।

·[७६] चनक०=खुलना और बंद होना। [८३] रज=राजत्व, महत्त्व।

दान-केलि नित आदित-पूजन। नित कोलाहल नित ब्रज ऊजन ॥९०॥
नित त्यौहार वार ब्रजजन कैं। नित रस भीजैं सुंदर घन कैं ॥९१॥
खरिक खोरि ब्रज बाग गरधारे। कहा कहौं लागत अति प्यारे ॥९२॥
निकसत लसत साँवरो छैल। रोकत मन-नैननि की गैल ॥९३॥
अटक-भटक की भैंट अटपटी। हितकनौड़ चित चाह-चटपटी ॥९४॥
ब्रज घर घर गोपिन के गीत। मधुर खरे रसढरे पुनीत ॥९५॥
कान्ह-कथा सोवत अरु जागत। सोवनि जागनि अचिरज पागत ॥९६॥
ब्रज गोपालमई ह्वै रह्यौ। ब्रजसरूप कछु परत न कह्यौ ॥९७॥
सो जानै जो यह ब्रज निरखै। करै पान आनँदघन तिरखै ॥९८॥
कछु ब्रज कछु रस कछु ब्रजरूप। जु कछु सु सब कछु परम अनूप ॥९९॥
ब्रजरस पियत पियत ही जियौं। जियत जियत ब्रजरस ही पियौं ॥१००॥
मोकौं यह ब्रज सदा सहाय। मन दृग बंछित लियौ दुहाय ॥१०१॥
ब्रजरस पियत पियत न अघाऊँ। बहकि एक ब्रजरस बरराऊँ ॥१०२॥
रात द्यौस एकै ब्रज दीसै। ब्रजरस परसि नवाऊँ सीसै ॥१०३॥
ब्रजगोपिन की हिलग हिय बसी। मतिगति अति ब्रजरति गुनगसी ॥१०४॥
ब्रजस्वरूप बरनै ब्रजबानी। और कौन की बुद्धि अयानी ॥१०५॥
ब्रजभाषा रसनै अपनावै। तौ ब्रजकथा तथा कहि आवै ॥१०६॥
ब्रजरस उफनि बढ़ै हिय-सोत। रसना ह्वै ह्वै प्रगटित होत ॥१०७॥
चढ़ै रंग ब्रजरस की बातहि। तब पावै ब्रजरस की घातहि ॥१०८॥
चित चढ़ि रही चुहल ब्रजजन की। है जु रही ऐसी गति मन की ॥१०९॥
या ब्रज ही मों बान बन्यौ है। ब्रजजीवन रसरीति-सन्यौ है ॥११०॥
ब्रजमोहन ब्रजबधू-बिलास। नितपूजवत ब्रजबसि मो आस ॥१११॥

९०—ऊजन—ऊनन (वृंदा०)। ९१—वार—हम (नंदन)। ९५—ढरे—ढरें (वही)। ९७—मई०—मई है (नंदन)। ९८—निरखै—परखै (वृंदा०)। १०१—सुहाय—सुहाई (वृंदा०)। १०५—ब्रजबानी—बरबानी (वृंदा०)। १०८—ब्रजरस—नागरस (नंदन)। १०९—चढ़ि—चाह (वही)।

[९०] ऊजन=धूम। [१०२] बरराऊँ=बर्हूँ (सोते समय स्वप्न देखकर बकना बर्राना है)। [११०] बान=व्रजधन।

व्रज वसि व्रजवासिन की आस। सुफल भयौ मेरो व्रजवास ॥११२॥
ह्याँ या व्रज अरु यह व्रज मेरो। सुवस लह्यौ व्रजवास वसेरो ॥११३॥
आनँदघन व्रजरस-पन पक्यौ। व्रजमोहन मादक-गुन छक्यौ ॥११४॥
नित ही व्रजरस की रट लागी। रसना आनँदघन-पन पागी ॥११५॥
व्रजरस अमल ग्वरे तें खरो। मो विन और गरें जिन परो ॥११६॥
व्रजरस अब तौ गरें पर्यौ है। रस ही लै रसरूप ठर्यौ है ॥११७॥
व्रजरस ही हिय-बीच भर्यौ है। रसना ह्वै अपढार ढर्यौ है ॥११८॥
व्रजमोहन व्रज की ये वातैं। को समझै अरु कहियै कातैं ॥११९॥
कहै कहावै आपै सुनैं। अपने गुन मो रसना गुनैं ॥१२०॥
व्रजमोहन व्रजरस की वात। कहत सुनत रसिया न अघात ॥१२१॥
व्रजरस व्रजरस ही सब रस है। व्रजरस आनँदघन-सरवस है ॥१२२॥

———

११२–सुफल–सफल (वही)। ११४–मादक–रस ही मैं (वही)।

[११८] अपढार=आपसे आप ढलना।

गोकुलचरित्र

चौपाई

गोकुल में रस रमड़्यौ रहै। आनँदघन जहँ घमड़्यौ रहै ॥ १ ॥
गोकुल की छबि कबि क्यों कहै। गो जब लौं गोकुल नहि गहै ॥ २ ॥
महा मधुर रस रसना पगै। गोकुल के गुन गुन मैं खगै ॥ ३ ॥
जगै जोति गोकुल को मन मैं। डीठ थिरि फबै रूपरमन मैं ॥ ४ ॥
गोकुल को सुरूप तब दरसै। रोम रोम बानी रस बरसै ॥ ५ ॥
सो गोकुल गोकुल को मूल। नंद-जसोमति-हित-अनुकूल ॥ ६ ॥
जगमगात गोपिन के ऐन। गोकुल को सुख बरनि बनै न ॥ ७ ॥
घर घर कृस्न बिराजत सदा। लियैं ललित अपनी संपदा ॥ ८ ॥
हित-बितान घर घर पर तने। गोपी गोप लसैं सुख-सने ॥ ९ ॥
कान्हरूप-रस निसिदिन पियैं। प्यासे रहैं महा रुचि हियैं ॥१०॥
या गोकुल के [illegible] गरुयारे। बिहरैं गोकुलचंद पियारे ॥११॥
चहल पहल चौंपनि सौं डोलनि। चोखभरी बोलनि सुकलोलनि ॥१२॥
रस की रमड़ कछु न कहि आवै। गोकुल-सुख देख्यौई भावै ॥१३॥
नवल बधू गोकुल की मुनी। परखैं लाल खिलारी गुनी ॥१४॥
पनघट रसिक ताकरस छाकैं। अद्भुत-फल सवाद फल पाकैं ॥१५॥
दीठि प्रान राखे जु समोय। बरनैं को जु मिलैं सुख होय ॥१६॥
बन सहेट गोचारन-समैं। बालक रचि सु कहूँ तित रमैं ॥१७॥
बनबिलास द्रुम-बेली बनी। ललित बलित रसमय सुखसनी ॥१८॥
या बिधि की अनेक बिध हेटैं। छली छैल की पैठैं पेटैं ॥१९॥
सबसौं नवकी साध पुजावै। पूरन गोकुलचंद कहावै ॥२०॥
बन तें गाइनि पाछैं आवनि। एक डीठिऊ तनरस प्यावनि ॥२१॥
दोहन-समै कामना दुहै। जैसी जाकौं चित की जु है ॥२२॥

[२] गो=बाणी। [३] खगै=लीन होती है। [१४] मुनी=राय-मुनी, लाल पक्षी की मादा। [१७] कहूँ=कदाचित्। तित=वहाँ। [१९] हेटैं=सहेट-स्थान।

रूपरासि रसपोखे अंग। फूलमाल उर बरसै रंग ॥२३॥
सुठि सूछम केसरी लपेटा। रौंन भरथौ चित-चौंप चपेटा ॥२४॥
चिकने केस घूँघरे घनैं। बिमल कपोलनि आलैं बनैं ॥२५॥
छबि की छटा छलनि कैं छूटै। बिन ही छलनि नैन-मन लूटै ॥२६॥
भौंह भेद की भरी अमेठी। सूधे लखैं जाति हिय पैठी। २७॥
नैन मैन की सैन सँजोए। मिलैं डीठि उर होत न जोए ॥२८॥
घिरी घेरई रहनि बात लै। करैं अनसुनी सकल बात लै ॥२९॥
गिरिबन कुंज खरिक अरु बाखरि। हित-मतंग पै परि पन-पाखरि ॥३०॥
जब ज्यौं जहाँ जीविका लहै। जिय मिलाय न्यारे मिलि रहै ॥३१॥
क्यौं कोऊ यह सुख अनुमानैं। गोकुल बसैं रसैं अति गानैं ॥३२॥
सबको जीवन नंदकिसोर। सब रस रूप दियें निसि भोर ॥३३॥
सब अभिलाष-कलपतरु मोहन। अद्भुत लता लहलहै गोहन ॥३४॥
फल दै फल चाखै अभिलाषै। अद्भुत तरु-बेली-रस-राखै ॥३५॥
सब अचरज है अचरज भानैं। अद्भुत रस के बस हम जानैं। ३६॥
यह गोकुल-हित नित ब्यौहार। मंगल मोद सदा त्यौहार ॥३७॥
गोकुल दरसै सदा रसीलो। आनँदघन उमंग-बरसीलो ॥३८॥
मचियै रहै चुहल चायनि की। गुपत प्रगट अपअप भायनि की ॥३९॥
भूमि-भाग महिमा को बरनैं। मन दै देखि कहत है चरनैं ॥४०॥

---

[२४] सुठि=सुंदर। सूछम=पतला महीन। लपेटा=पगड़ी। रौंन=ठकुराई। [२५] आलैं=गाले या स्थान मैं। [२६] छलनि=छल्लों से। [३०] पाखरी=झूल। [४०] चरनै=पद को, कविता को।

प्रेमपहेली

चौपाई

मोहन इत हैं निकसे आय। हौं ठाढ़ी अपने जु सुभाय ॥ १ ॥
डीठि डीठि मिलि भयो मिलाप। ढुरि घुरि मिली आप ही आप ॥ २ ॥
फूलि भूलि वेऊ अरु हौं हूँ। रहे लोभ लगि डर अरु गौं हूँ ॥ ३ ॥
उनकी वे जानैं क्यों कहियै। पै अपनो मन कहूँ न लहियै ॥ ४ ॥
बहुत पर्यो अपनो सो ऐंचि। हँसि चितवनि लै गई सु खैंचि ॥ ५ ॥
दुरी रहति क्यों हित की गोभा। देखैं स्याम - सुधानिधि सोभा ॥ ६ ॥
उघरि परैगी गैल गरवारै। बात नेह की माँझ सवारै ॥ ७ ॥
दैया चंद लिये तैं कैसैं। जियरा जानत बाँध्यो जैसैं ॥ ८ ॥
उत उनहूं कछु गहो गहनि है। कहि कैसैं रहि सकै रहनि है ॥ ९ ॥
भोर साँझ इत ही है आवै। गायनि लै चायनि सरसावै ॥१०॥
टेरत सबैं सुनावत मोहीं। कहा करौं तब बूझति तोहीं ॥११॥

———

रसनायश

चौपाई

रसना तेरी बलि बलि जाऊँ। सुमिरै स्याम-सुधानिधि-नाऊँ ॥ १ ॥
रसना रस की अवधि सुजान। निसंदिन करै कृस्न-गुनगान ॥ २ ॥
रसना तेरो भलो सुभाव। जानै हरिचरितन को चाव ॥ ३ ॥
रसना है तू ही बड़भागी। मधुसूदन-गुन सौं अनुरागी ॥ ४ ॥
रसना तु ही सकल रसरानी। हरि भजि सफल करी तैं बानी ॥ ५ ॥
रसना तु ही सवादहि जानै। व्रजमोहन के चरित बखानै ॥ ६ ॥
रसना तो सी तु ही न दूजी। नित व्रजजीवन-रस पी तू जी ॥ ७ ॥
रसना को तेरो जस भाखै। नित व्रजवधू-रसासव चाखै ॥ ८ ॥
रसना तैं ही सौभग पायो। नाकैं जसुमति-लाल लड़ायो ॥ ९ ॥
रसना तो सी तु ही सभागी। नित राधा राधा रट लागी ॥१०॥
रसना तू मोकौं अति भावै। दंपति-विसद-विहारहि गावै ॥११॥
रसना तू ही रसवति पूरी। व्रजवन-कथा सजीवन-मूरी ॥१२॥
रसना तु ही मनोरथ-वेली। हरि-राधा-रसरंगनि झेली ॥१३॥
रसना तू रस-रतन-मंजूषा। खुली लसै विलसै निसि ऊषा ॥१४॥
रसना तु ही रसामृत-सरसी। हरिगुन-अमल-कमल-रुचि दरसी ॥१५॥
रसना हित-चिंतामनि-माला। हरिगुन-गूँथित परम रसाला ॥१६॥
रसना तू सब सुख की स्वामिनि। रची रहति हरि सौं दिनजामिनि ॥१७॥
रसना तू सुखदायनि मेरी। नित हित-हरि-नामावलि फेरी ॥१८॥
रसना सोवत जागत जागी। कृस्न कृस्न रटना रुचि पागी ॥१९॥
रसना प्रेमनेम-हित-जन्या। राधाधवहिं सुमिरि भई धन्या ॥२०॥
रसना वदन-सदन की सोभा। कृस्न-मयंक-चंद्रिकनि लोभा ॥२१॥
रसना रसिकराय सौं बीधी। भली भाँति गुनगन गसि गीधी ॥२२॥

[१४] ऊषा = प्रभात, दिन। [२२] गसि = बँधकर। गीधी = परच गई है।

प्रेमपहेली

चौपाई

मोहन इत ह्वै निकसे आय। हौं ठाढ़ी अपने जु सुभाय ॥ १ ॥
डीठि डीठि मिलि भयौ मिलाप। ढुरि ढुरि मिली आप ही आप ॥ २ ॥
फूलि भूलि वेऊ अरु हौं हूँ। रहे लोभ लगि डर अरु गौं हूँ ॥ ३ ॥
इनकी वे जानैं क्यौं कहियै। पै अपनो मन कहूँ न लहियै ॥ ४ ॥
बहुत पची अपनो सो ऐंचि। हँसि चितवनि लै गई सु खैंचि ॥ ५ ॥
दुरी रहति क्यौं हित की गोभा। देखै स्याम - सुधानिधि सोभा ॥ ६ ॥
उघरि परैगी गैल गरथारैं। बात नेह की साँभि सवारैं ॥ ७ ॥
दैया चंद लिये तैं कैसैं। जियरा जानत बँध्यौ जैसैं ॥ ८ ॥
उत इतहूँ कछु गहो गहनि है। कहि कैसैं रहि सकै रहनि है ॥ ९ ॥
भोर साँझ इत ही ह्वै आवैं। गायनि लै चायनि सरसावैं ॥१०॥
टेरत सखै सुनावत मोहीं। कहा करौं तव बूझति तोहीं ॥११॥

———

[३] गौं = घात। [५] पची = परेशान हुई। [६] गोभा = अंकुर, प्राकट्य, अभिव्यक्ति।

रसनायश

चौपाई

रसना तेरी बलि बलि जाऊँ। सुमिरै स्याम-सुधानिधि-नाऊँ ॥ १ ॥
रसना रस को अवधि सुजान। निसदिन करै कृस्न-गुनगान ॥ २ ॥
रसना तेरो भलो सुभाव। जानै हरिचरितन को चाव ॥ ३ ॥
रसना है तू ही बड़भागी। मधुसूदन-गुन सौं अनुरागी ॥ ४ ॥
रसना तु ही सकल रसरानी। हरि भजि सफल करी तैं बानी ॥ ५ ॥
रसना तु ही सवादहि जानै। ब्रजमोहन के चरित बखानै ॥ ६ ॥
रसना तो सी तु ही न दूजी। नित ब्रजजीवन-रस पी तू जी ॥ ७ ॥
रसना को तेरो जस भाखै। नित ब्रजवधू-रसासव चाखै ॥ ८ ॥
रसना तैं ही सौभग पायो। नाकैं जसुमति-लाल लड़ायो ॥ ९ ॥
रसना तो सी तु ही सभागी। नित राधा राधा रट लागी ॥१०॥
रसना तू मोकों अति भावै। दंपति-बिसद-बिहारहि गावै ॥११॥
रसना तू ही रसवति पूरी। ब्रजवन-कथा सजीवन-मूरी ॥१२॥
रसना तु ही मनोरथ-बेली। हरि-राधा-रसरंगनि केली ॥१३॥
रसना तू रस-रतन-मंजूषा। खुली लसै बिलसै निसि ऊषा ॥१४॥
रसना तु ही रसामृत-सरसी। हरिगुन-अमल-कमल-रुचि दरसी ॥१५॥
रसना हित-चिंतामनि-माला। हरिगुन-गूँथित परम रसाला ॥१६॥
रसना तू सब सुख की स्वामिनि। रची रहति हरि सौं दिनजामिनि ॥१७॥
रसना तू सुखदायनि मेरी। नित हित-हरि-नामावलि फेरी ॥१८॥
रसना सोवत जागत जागी। कृस्न कृस्न रटना रुचि पागी ॥१९॥
रसना प्रेमनेम-हित-जन्या। राधाधवहिं सुमिरि भई धन्या ॥२०॥
रसना बदन-सदन की सोभा। कृस्न-मयंक-चंद्रिकनि लोभा ॥२१॥
रसना रसिकराय सौं बीधी। भली भाँति गुनगन गसि गीधी ॥२२॥

[१४] ऊषा = प्रभात, दिन । [२२] गसि = बँधकर । गीधी = परच गई है ।

रसना मेरो जनम सुधार्‍यौ । ब्रजपतितनय-नाम-पन धार्‍यौ ॥२३॥
रसना हरि-बिनोद - हित-मैना । पन - पिंजर बोलति रस-बैना ॥२४॥
रसना तू अनुरागनि पाछी । गोबिंद-गुनगन गरिमा साछी ॥२५॥
रसना सदा रसमसी राजै । रसनिधान सौं अति रति साजै ॥२६॥
रसना तू नित ही हित सरसै । मधुर किसोर-नाम सुख परसै ॥२७॥
रसना यह रस पियत न अरसै । चातक-रुचि आनँदघन बरसै ॥२८॥

---

[२५] पाछी = पीछे या पक्षी । [२८] अरसै = आलस्य करे ।

गोकुलविनोद

नंद - गोकुल बरनि बानो बिसद जोति - निवास ।
जहाँ नित्यानंदघन अद्भुत अखंड बिलास ॥ १ ॥
स्याम रुचि सुचि सरस सीतल तरनितनया-कूल ।
डहडहे तरु सघन सुंदर लसत सुषमा - मूल ॥ २ ॥
ललित कुसुमित फलित बलित बिसाल बेलि तमाल ।
परसि नीर समीर बिलुलित भ्रमित मधुकरजाल ॥ ३ ॥
अति सुदेस सुगंधमय दीपित सुपेसल भूमि ।
पुहप-पुंजनि हरषि बरखत रहत तरु घन झूमि ॥ ४ ॥
मुदित केकी कुल कुलाहल करत रहत अनूप ।
सकल रितु सुख सब समय जहँ अमित उत्सव-रूप ॥ ५ ॥
जगमगत मंगलनिकर - ओपित अमल आवास ।
चैन चरितनि चुहल चहुँदिस परम प्रेम - हुलास ॥ ६ ॥
मलय-द्रुम-छबि फबि रही सुभ सुखद द्वारहि द्वार ।
अगरबासित बगर नित ही मोद-सौरभ - सार ॥ ७ ॥
नंद - मंदिर कांत कौतुक बनि रह्यौ भरि भाव ।
मनहु मधिनायक बिराजत अति अभूत जराव ॥ ८ ॥
रुचिर वंदनमाल राजति मनि जलजदल नूत ।
सदा मंगलचार नूतन वर विनोद अभूत ॥ ९ ॥
लसत बिलसत रहत नित गोपाल लाल अनूप ।
नंद-जसुमति - प्रान ब्रजजन - नैन - उत्सव-रूप ॥१०॥
गोप - गोपी - बृंद गोधन सदा गहमह मोद ।
परम रसमय गान धुनि नित कृस्नचरित-विनोद ॥११॥

६—हुलास—उलास (बृंदा०) ।

[४] पेसल = मनोहर । [७] मलय = चदन । बगर = घर । मोद = गंध; हर्ष । [८] नायक = माला में बीचोंबीच का बड़ा गहना, पदिक । [९] वंदन० = वंदनवार । नूत = नवीन ।

खरिक बिसद बिसाल अगनित रुचिर-रचना-ऐन ।
कलपतरु बिचबिच बिराजत धैन - हित सुखदैन ॥१२॥
सरस गोदोहन तहाँ गोबिंदलीला - धाम ।
प्रात संध्या केलि-कोलाहल परम अभिराम ॥१३॥
नित्य गोचारन मनोहर सुभग जमुना - तीर ।
वेनुबादन - माधुरी आभीरनंदन - भीर ॥१४॥
अखिल-सुख-सुषमा - सदन बिहरत सदा बलबीर ।
परम कौतुकरूप स्यामसरीर गुनगंभीर ॥१५॥
पुलिन बन गिरिकुंज क्रीड़ा अतुल आनँदरासि ।
मदनमोहन परम सोहन अंगरंगनि भासि ॥१६॥
सुहृद सखिनि समाज को सुख देखि बिथकित नैन ।
बनबिहार अनेक बिधि के अमित अचरज-ऐन ॥१७॥
बिधि-सिवादिक भूलि सुमिरत सम्हरि मतिगति साधि ।
पचत नित चित रचत हित तित अमित रस आराधि ॥१८॥
सो सहज ब्रजजननि की जीवनि निरखि निसिभोर ।
भूमि-भागनि बरनि बंदत निरखि नंदकिसोर ॥१९॥
नित नई लीला ललित बिधि करत नंदकुमार ।
नर अमर खग मृग बिमोहन अति रसामृतसार ॥२०॥
रसिक नटवर भेस परम सुदेस रूप अपार ।
ब्रजवधू आनंदघन - लीला-सरस - आसार ॥२१॥
मंजु मुरली - गुंज अति सुखपुंज गरज रसाल ।
चातकी गोपी - स्रवन - पुट पूरि होति निहाल ॥२२॥
परम रम्य अनूप वृंदारन्य सुखद प्रदेस ।
रास-रससागर तरंगित लखि सरद राकेस ॥२३॥

१३—केलि०—कल कुलाहल परम अति (वृंदा०) । १४-वादन—मादन (लंदन) । १८-भूलि-भूमि (वृदा०) । १९—भूमि-भूरि (लंदन) ।

[१२] धैन=धेनु । [२१] आसार=वृष्टि । [२३] राकेस= पूर्णिमा का चंद्रमा ।

ललित अति रसवलित तरुन तमाल कंचन-बेलि।
राधिका-हरि-भाव भरि सूचत सदा नव केलि ॥२४॥
फूल फल दल मूल रस-अनुकूल सम सब काल।
कृस्नमय आदरस वन घन दिपत जोतिनि जाल ॥२५॥
तहँ निरंतर नंदनंदन करत विविध विनोद।
व्रजतरुनि-रसतृपित-हित नित बरसि प्रेम-पयोद ॥२६॥
गान अद्भुत तान बर बंधान निर्त सुदेस।
सरस अभिनय-निपुनतामय भरि अतुल आवेस ।२७॥
इहि विहार विनोद प्रमुदित सदा गोपीनाथ।
रसिक राधारवन लीनैं जुवतिजूथनि साथ ।२८॥
परम गह्वर रुचिर सुचि रुचि-पुंज मंजुल कुंज।
नव - प्रसून - पराग - मंडित सरस मधुकर-गुंज ।२९।
माधवीदल - रचित पेसल विसद अद्भुत सैन।
तहँ निवेसित स्याम स्यामा परसपर सुखदैन ॥३०॥
अमित आनँद उमग की गति कहि सकै मति कौन।
तिन कृपा तैं होत अनुभव गहति बानी मौन ।३१॥
स्रमित अंगनि ओप अनुपम महारूप - प्रकास।
करौ नित हित-सहित ह्वै मो नैन-मन मैं बास ॥३२॥
सहचिरिन के वृंद सँग लै लसत जमुना - तीर।
अति सुखद जलकेलि-हित तिहि उचित सजि सजि चीर ॥३३॥
चीकने मेचक रुचिर मुंचित सुकुंचित केस।
निसि रसाल सु छबि रही फबि पीक अंजन-लेस ॥३४॥
घूमरे लोचननि की गति अति सिथिल मद छाकि।
जलकनी बरुनी-अनी पर लखि रहत चित चाकि ॥३५॥

[२६] निर्त = नृत्य। सुदेस = सुंदर। [२९] गह्वर = गुप्त स्थान। [३०] निवेसित = स्थित। [३४] मेचक = काले। मुंचित = मुक्त, खुले। कुंचित = टेढ़े। [३५] घूमरे = मतवाले।

अधर निसि बीरी-रचनि की खुलि रही रुचि-रेख।
दसन-छत अनुरागसूचक उरसि नख-उल्लेख ॥३६॥
गंड रद-मुद्रावली कर मुकरमुद्रा देखि।
लाज लालस भरनि दृग हिय सुख-समय अवरेखि ॥३७॥
सरस परिमल लपट झपटनि भृंग तजत न पास।
सुहृद अति ढिग ह्वै निवारति मानि मन मैं त्रास ॥३८॥
लाल को लंपट-दसा देखत लसति भ्रुव भंग।
मंद मुसकनि-संग उपजति चाह अमृत-तरंग ॥३९॥
प्रानसम सहचरि बिसाखा नरम बचननि बोलि।
भावना नवबधू-मुख तैं देति घूँघट खोलि ॥४०॥
मंजु मंजुल कुंज ढिग ही तरनितनया-घाट।
पुरट मनि मरकतनि की तति तहाँ मंजन-ठाट ॥४१॥
बहुत विधि जलकेलि के सुख लेत देत सुजान।
रूप-जोबन-मद-छके मिलि करत मादक-पान ॥४२॥
मानसर सुभ थान तिहिँ ढिग नव तमालनि पाँति।
चढि सतेसनि बढि महा रुचि करत सुख बहु भाँति ॥४३॥
कमल-कुन्द-मंडलनि मधि सधि साधि राखत नाव।
माधुरी के धाम दंपति रचत रुचिर बनाव ॥४४॥
सलिल सीँचनि दृगविमोचनि मुख मरोचनि फैलि।
झीन पट तन लपट अनुपम निरखि छाकत छैल ॥४५॥
कबहुँ पैरत चुभक लै लै दूरि लौँ दुरि जात।
अति तृपित रस प्यास रसनिधि नैंकहू न अघात ॥४६॥

३७–मुकर–सुकर (लंदन)। ४०–देति–देखि (वृंदा०)। ४१–ठाट–वाट (वृंदा०)। ४६–रसनिधि–सरनिधि (वृंदा०)।

[३६] दसन० = दंतक्षत। उरसि = छाती पर। [३७] गंड० = कनपटी। रद० = दाँतों की गोल छाप। मुकर = दर्पण। [४०] सहचरि = सखी। नरम = (नर्म) परिहास। [४१] पुरट = सोना। तति = पंक्ति। मंजन = मार्जन, स्नान। [४३] सतेस = फुरती, शीघ्रता। [४६] चुभक = डुबकी।

तीर मनि-चौकान पै छविभीर लीने साथ।
आनि ठाढ़े होत सब मिलि बसन टपकत पाथ ॥४७॥
नख-चरन-मदअंतिका-रुचिरचनि जानत नैन।
रचति मति नति ठनति मनसा लेति चुंबन चैन ॥४८॥
पलटि पट संजमत केसनि मृदुल अंग अगोंछ।
वारियै मानमुकर-आभा-ओघ पट पद पोछि ॥४९॥
चद्रमल्ली-पुंज की नव कुंज बिहरत आय।
जहाँ वृंदा अति भली विधि रची बनक बनाय ॥५०॥
पदकमय मंडल मनोहर मृदुल आसन आजि।
रूपरासि किसोर दोऊ दिपत बैठ बिराजि ॥५१॥
बरन बरन दुकूल अति सुखमूल सजत सँवारि।
जलज-भूषन भावते जगमगे अंगनि धारि ॥५२॥
सरस सोंधे बहुत बिधि के रचत बेलिन चौंप।
पहिरि पहिरावत परस्पर उपजि मनसिज कौंप ॥५३॥
विविध मेवा मधुर लीने धरे उर अभिलाषि।
कुंदबेली हितनवेली प्रति सराहत चाखि ॥५४॥
बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल।
बदन बिच बिच बचन रसमै लसत जोतिनि जाल ॥५५॥
ललित रागिनि तान की धुनि रांच रहे रिझवार।
स्रवनपुट सहचरिनि के पूरत महा रसधार ॥५६॥
बीनवादन-स्वाद परम प्रवीन ललिता संग।
उपज मन की लेति मनु है सरस बरसति रंग ॥५७॥

४७–चौकान–चौकौन (लंदन)। ४९–ओघ–ओप (वही)। ५३–परस्पर–परापर (लंदन)। ५५–बीरा–बीरी (वही)। ५७–है–दै (वही)।

[४७] चौका=वर्गाकार चौकोर पत्थर। पाथ=जल। [४८] मदअंतिका=मदयंतिका, मल्लिका, बेला। नति=विनय। [४९] संजमत=एकत्र करते, बटोरते हुए। ओघ=समूह, बाढ़। [५०] मल्ली=बेला। वृंदा=राधा। [५१] पदक=पैर के चिह्न। आजि=बिछाकर। [५५] अदन=खाना।

मुरलिका मधि स्यामसुंदर रचत सुर - विस्तार।
नादरस - सागर तरंगित होत बारंबार ।।५८।।
रीझहू रीझति बिबस ह्वै लखि रसिक रिझवार।
द्रुमलता अरु बर बिहंगम लहत पुलक अपार ।।५९।।
पवन गवन थकै सरित जल महा मोहन नाद।
सरसुती भूली अपुनपौ कहै कौन सवाद ।।६०।।
समय विथकित चकित चेतन रही नाहि सम्हार।
धन्य बृंदारन्य रम्य अगम्य विसद बिहार ।।६१।।
एकरस दंपति मुदित नवकेलि कैं आधार।
घमड़ि सुर-रस रमड़ि नित आनंदघन - आसार ।।६२।।
काहि सुधि निसि भोर की इहिं केलि- आसव-पान।
आपनैं गुनरूप को नित करत हैं मिलि गान ।।६३।।
ये कलाधर प्रेम के तजि नैन अतुल अखंड।
बनविनोद - प्रसाद सौं पावन अखिल ब्रह्मंड ।।६४।।

———

५८—तरंगित—तरंगनि (वृंदा०)। ६४—बन—घन (वृंदा०)।
[६२] रमड़ि = बरसकर। आसार = वृष्टि।

ब्रजप्रसाद

चौपाई

नंदगाँव बरसानैं बसौं । सोभा निरखौं हरषौं लसौं ॥ १ ॥
दुहूँ घरनि की चारयौं ओर । गावत फिरौं साँझ अरु भोर ॥ २ ॥
मोहन - राधा - मंगल - गीत । अति मनभावन परम पुनीत ॥ ३ ॥
सुख सोहिले मनाऊँ सदा । या ब्रज यह आनंद संपदा ॥ ४ ॥
जसुमति नंद कीर्ति वृषभान । ब्रज पालत लालत निज प्रान ॥ ५ ॥
इनके घरनि सदा त्योहार । नित नित ब्रज मैं हित-ब्योहार ॥ ६ ॥
यह सुख देखि जियौं हँसि खेलि । बरनौं ब्रजमंडन की केलि ॥ ७ ॥
धन्य धन्य मेरो बड़भाग । या ब्रज सौं सरस्यौ अनुराग ॥ ८ ॥
या ब्रज को सुख हौं हीं जानौं । या ब्रज बसि जस-रसहि बखानौं ॥ ९ ॥
हौं ब्रज को ब्रज मेरो नित ही । पाल्यौ पोख्यौ इनके हित ही ॥१०॥
ब्रज के खरिक खोरि नित देखौं । भागनिकाई लेखैं लेखौं ॥११॥
ब्रजबासिन को निज परिवार । मन-आँखिन सुख देत अपार ॥१२॥
ब्रज की साँज महा सुखदाई । सहज माधुरी कहो न जाई ॥१३॥
गोधन खरिक खेत अरु क्यार । गोरस दहल नाज अरु न्यार ॥१४॥
सुखी सदा ब्रजपति कैं राज । सिद्ध करत मनचीते काज ॥१५॥
रसभीज्यौ ब्रज रंग स्याम कैं । मंगल गहमह धाम धाम कैं ॥१६॥
ब्रजसंपति मो नैननि दासै । या ब्रज कौं नित देत असीसै । १७॥
यह ब्रज सुबस बसौं ऐसैं ही । या ब्रज बसौं रसौं जैसैं ही ॥१८॥
वन बरहे ब्रज के नित हरे । ग्वारनि गायनि के हित भरे ॥१९॥
विहरत मोहन मदन गुपाल । कदम पसैहू ताल रसाल ॥२०॥

१५–चीते–चिंत (वृंदा०) ।

[४] सोहिले = मंगल । [१४] खरिक = गोचरभूमि । क्यार = केदार, क्यारी । दहल = कुंड । नाज = अनाज, धान्य । न्यार = (नियार) भुस आदि । [१९] बरहे = नाले । [२०] पसैहू = कोई पेड़ । रसाल = आम ।

छाँह छाँहि चायनि भरि बैठति। बन के सघन सदन मैं पैठति ॥२१॥
बहुत भाँति के सुखनि सकेलति। किलकति मुलकति बिहरति खेलति ॥२२॥
नैनन के तारे ब्रजमोहन। सदा बिराजौ सोहन जोहन ॥२३॥
सरस सरोवर जमुना - नीर। बिहरत सदा कान्ह बलबीर ॥२४॥
जित तित ही नित सुखनि समाज। धन्य धन्य ब्रजपति को राज ॥२५॥
मोद बिनोद गाँव गाँवनि है। नित नित ब्रजमोहन आवनि है ॥२६॥
गोधन - सिखर खरेई रहैं। फूलि फैलि गोधन कों चहैं ॥२७॥
ऐसे ब्रज कौं देखत रहौं। ब्रज की सोभा कैसैं कहौं ॥२८॥
यह ब्रज दरसैं जगत - उज्यारो। अति प्यारो ब्रजलोचन-तारो ॥२९॥
रोम रोम भींचे ब्रजरस मैं। ब्रज बसि बिवस फिरौं ब्रज बसि मैं ॥३०॥
ब्रजबीथिन ब्रजबागनि फिरौं। छकौं थकौं ब्रज हेरौं हिरौं ॥३१॥
यह ब्रज मोकौं अति ही भावै। जित तित मोहन मोहि दिखावै ॥३२॥
ब्रज की भेट महेट सुहाई। रहौ सदा आनँदघन छाई ॥३३॥
भजिभजि रहत कान्ह ब्रजबासी। मो मन आँखिन के सुखरासी ॥३४॥
सबै ठौर ब्रज स्याममई है। मन नैननि यह सहज भई है ॥३५॥
ब्रज मैं मोहन मोद नयौ है। ब्रज मो कौं सुखदैन भयौ है ॥३६॥
यह ब्रज भरै भाव सौं मोहि। ब्रजमोहन की मूरति जोहि ॥३७॥
ब्रज-जीवन - ब्रज जीवन मेरो। रस-प्यावन रस - पोवन मेरो ॥३८॥
बसिबे को सुख ब्रज मैं बसै। यह ब्रज मेरी आँखिनि लसै ॥३९॥
जो कछु चैन होत ब्रज हेरैं। लहत सु मोहन बसि मन मेरैं ॥४०॥
ब्रजके चरित कहत नहिं आवैं। सो मन लोचन चाहि सिरावैं ॥४१॥
भूरि भाग मेरे ब्रज बसि कै। सरस्यौ हित ब्रजरूप दरास क ॥४२॥
ब्रजनायक ब्रजराज - दुलारो। रूपरासि ब्रज को उजियारो ॥४३॥
लीलामगन मोहिं ब्रज दरसै। नेह - मेह मोहा पै बरसै ॥४४॥

३२–मोहि–मोह (छंदन)।

[२१] छाँह० = छाया भी छाया में चाव से बैठती है। मुलकति=प्रसन्न होती है। [२७] गोधन=गोवर्धन पर्वत। गोधन=गायों का झुंड। [३१] हिरौं=खो जाऊँ।

ब्रजरस मैँ भीज्यौ ब्रजनायक। ब्रज मैँ मोहि महा सुखदायक ॥४५॥
जित जैयै तित मोहन पैयै। ब्रज वसि ब्रज को उदौ मनैयै ॥४६॥
ब्रज को भाग भावतो मोहन। सफल करत नित नित मो जोहन ॥४७॥
स्यामरूप आनंदनि भरथौ। मोहि दीसि या ब्रज मैँ परथौ ॥४८॥
यह ब्रज मोहन यह ब्रजमोहन। दुहूँ एक से लागत सोहन ॥४९॥
ब्रज को विभौ देखि मन फूलै। यह ब्रज मोकौँ हित-अनुकूलै ॥५०॥
मो मन भीज्यौ ब्रजविनोद है। चहूँ कोद आनँदपयोद है ॥५१॥
यह ब्रज नित सुखसिंधु कलोलै। ब्रज को चंद सदा ब्रज डोलै ॥५२॥
आँखिन को सुख ब्रज-दरसन है। आनँदघन बरसन सरसन है ॥५३॥
अहोभाग या ब्रज कौँ लखौँ। ब्रज की सीँव न कबहूँ नखौँ ॥५४॥
ब्रज को वास दस्यौ मन-नैननि। याको रस बरसत है वैननि ॥५५॥
कहा कहौँ या ब्रज की बात। ब्रजमोहन लखि वैन सिरात ॥५६॥
ठौर ठौर ब्रजमोहन लखियै। महा रूपमाधुरी परखियै ॥५७॥
या ब्रज सौँ हित-चित को नातो। ब्रज वसि ब्रजमोहन-रस-माँतो ॥५८॥
सजल स्यामघन ब्रज ब्रजमोहन। मन अरु नैन भावतो दोहन ॥५९॥
ब्रज को वास कछु लागत प्यारो। लखि ब्रजमोहन होत न न्यारो ॥६०॥
ब्रज दरसै दरसै ब्रजमोहन। लग्यौ रहत मन-लोचन गोहन ॥६१॥
विहरौँ ब्रज की गलियनि गलियनि। मानत मनमोहन की रलियनि ॥६२॥
ब्रज वसि भोर साँझ यौँ वितऊँ। ब्रजमोहन के कौतुक चितऊँ ॥६३॥
ब्रज को सुख-सवाद मन पोषै। ब्रज मोकौँ सब ही विधि तोषै ॥६४॥
यह ब्रज मेरो मंगल - ऐन। ब्रज मंगल - स्वरूप मन-नैन ॥६५॥
ब्रज मैँ दिपै स्याम की जोति। मो दृग जगमग जगमग होति ॥६६॥
ब्रज के सुखै कहि सकै कौन। देखत रहौँ कहौँ गहि मौन ॥६७॥
ब्रज अपनो रस उफनि वहावै। नातरु कहूँ कहत क्यौँ आवै ॥६८॥
कहा कहा ब्रजसुख की कहियै। देखत देखत देखत रहियै ॥६९॥
ब्रज को नाम लेत हिय हेत। ब्रजहि चाहि चित चेत अचेत ॥७०॥
कछु कहि परै कहा ब्रजरीति। ब्रज पूरन ब्रजमोहन - प्रीति ॥७१॥

[५४] सीँवँ=सीमा। नखौँ=लाँघूँ। [६२] रलियनि=क्रीड़ा।

व्रजमोहन - सनेह व्रज भोयौ । व्रजमोहन व्रज-मोह - समोयौ ॥७२॥
निपट लटपटे व्रज अरु मोहन । निरखत व्रजहि अटपटे जोहन ॥७३॥
जैसो यह व्रज लागत नीको । तैसो ही सरूप व्रज ही को ॥७४॥
अहो अहो व्रज अरु व्रजनायक । ललित किसोर परम सुखदायक ॥७५॥
व्रज मैं मोहन - मुरली बजै । व्रजगोरिनि - समाज सुख सजै ॥७६॥
गैल घाट व्रज के रसमसे । व्रजमोहन की लीला लसे ॥७७॥
व्रजसनेह सौं सानि करयौ है । यह व्रज लै व्रज माहिँ धरयौ है ॥७८॥
या व्रज सो यह व्रज ही आहि । यह व्रज चाहि और सुधि काहि ॥७९॥
व्रजकिसोर व्रजमोहन स्याम । व्रजजीवन व्रजनायक नाम ॥८०॥
व्रज मैं करत खेल मनभाए । ठौर ठौर आनँदघन छाए ॥८१॥
यह व्रज आँखिन आगैँ रहै । सूझै बूझै यह व्रज यहै ॥८२॥
यह व्रज एक गहि रह्यौ मन कौँ । व्रज ही पालै पूरन पन कौँ ॥८३॥
अति उदार व्रजराजकुमार । नित या व्रज सरसत सुखसार ॥८४॥
चलत भोर गायनि लै बन कौँ । पालत व्रजबन के हित-पन कौँ ॥८५॥
व्रजवन बरसि आपने रसै । व्रजमोहन आनँदघन लसै ॥८६॥
या व्रज की हौँ बलि बलि जावँ । धनि व्रज धनि व्रज मोहन नावँ ॥८७॥
यह व्रज देखि नैन - मन मोहै । या व्रज की पटतर व्रज सोहै ॥८८॥
व्रज अनूप व्रजमोहन - रूप । आँखिन बस्यौ सरूप अनूप ॥८९॥
देखि जियौँ व्रज - सुंदरताई । स्यामरूप - सुषमा व्रज छाई ॥९०॥
यह व्रज मोहिँ मोहनै दरसै । दरसि दरसि हौँसनि हिय सरसै ॥९१॥
यह व्रज अचिरज-रस सौँ भरयौ । चखि भरि मैँ प्यासनि ही धरयौ ॥९२॥
मोहन व्रज को मोहन रूप । देखत बनै सरूप अनूप ॥९३॥
सींचे दृगनि सुरस के सोतन । उमलि परयौ व्रज को रस मो तन ॥९४॥
व्रजसरूप नैननि मैँ छायौ । व्रजमोहन मोहन व्रज पायौ ॥९५॥
व्रज को व्रज मो नैननि जोहै । मोहन व्रज मोही को मोहै ॥९६॥

७३—जोहन—लोहन (वृंदा०) । ७७—घाट—घटा (वही) । ७८—करयौ—कह्यौ (वृंदा०) । ८०—जीवन—मोहन (लंदन) । ८६—व्रज—वन (वृंदा०) ।

[७३] लटपटे = एक में लिपटे । [९४] सोत = स्रोत । तन = ओर ।

ब्रज को सुख ब्रजमोहन सजै । ब्रज मैं सुजस - दुंदुभी बजै ॥९७॥
ब्रज-जुवराज सदा सुख भोगै । को समझै ब्रजविरह - सँजोगै ॥९८॥
बिछुरि मिलन मिलि बिछुरन ब्रजरस । या ब्रज मैं पूरन अचिरज-रस॥९९॥
ब्रजानंद ब्रज पूरन महा । या ब्रज को सुख कहियै कहा ॥१००॥
यह ब्रज देखि देखि ही रहियै । मौन कहावै तौ कछु कहियै ॥१०१॥
अकथ कथा है या ब्रजरस की । बिवस करत ब्रजरस पावस की ॥१०२॥
ब्रज के बसैं बसैं ब्रज हियैं । बढ़त प्यास ब्रजरस ही पियैं ॥१०३॥
यह ब्रज परम प्रेम - फुलवारि । ब्रज बसि नवरँग स्याम निहारि ॥१०४॥
भए नैन ब्रजचंद - चकोर । निरखत रहत साँझ अरु भोर ॥१०५॥
यह ब्रज महामोद को मूल । या ब्रज भरी भावती फूल ॥१०६॥
लग्यौ रहत ब्रजरस को चसका । ऐसो है चसको ब्रजरस को ॥१०७॥
रससरूप ब्रजमोहन स्याम । आँखिनि बसे रहत ब्रजधाम ॥१०८॥
सोवत जागत ही ब्रज दरसै । ब्रजमोहन आनँदघन बरसै ॥१०९॥
ब्रज ब्रजमोहन अति रससने । दोऊ आहिं एक ही बने ॥११०॥
मोहिं सदा देखत ही भावै । ब्रजमोहन ब्रज सुनि दरसावै ॥१११॥
अहो अहो ब्रजरस की रीति । अहो अहो ब्रजवास-प्रतीति ॥११२॥
अहो अहो ब्रज को अनुराग । अहो अहो ब्रज को सौभाग ॥११३॥
अहो अहो ब्रज को सब लोग । नित नित मोहन-रस का भोग ॥११४॥
अहो अहो ब्रज को ब्यौहार । नित ही ब्रज मोहन त्यौहार ॥११५॥
अहो अहो ब्रज अहो अहो है । ब्रजमोहनहि मोहि अति सोहै ॥११६॥
यह ब्रज देखि सिराने लोचन । यह ब्रज निरखि थिराने लोचन ॥११७॥
ब्रजसरूप सौं डीठि खर्ची है । महामोद की रचनि मची है ॥११८॥
जैसो यह ब्रज लागत प्यारो । जानत ब्रजलोचन को तारो ॥११९॥
ब्रजमोहन ब्रज है मेरे धन । ब्रजमोहन ब्रज सौं मेरो पन ॥१२०॥
ब्रज-सुख-सोभा मन-दृग बसै । ब्रजमोहन-सुरूप-विधि लसै ॥१२१॥
ब्रज को वास निरंतर रहै । ब्रजमोहन - लीलारस बहै ॥१२२॥

११४–मोहन-सोहन (लंदन) । १२०–ब्रज सौं–मन को (वृंदा०) । १२२–बहै–यहै (लंदन) ।

[१०६] फूल = प्रसन्नता । [१२२] बहै = प्रवाहित हो ।

मुरलिका-मोद

चौपाई

मोहन की मुरली बन बाजी। मादक अधरनि आय बिराजी ॥१॥
धुनि सुनि छाकनि छाय रही है। प्राननि मिलि मँडराय रही है ॥२॥
सुर की भरनि धीर कौं रितवै। बिपम पीर हियरा पै बितवै ॥३॥
सुंदर मुसकौंहैं मुख सोहै। तान-कटाछन मरमहि पोहै ॥४॥
पूरनि मैं मुख-सुपमा पूरै। चेटक चटक चौंप चित चूरै ॥५॥
रुचिर अग्ररुचि दसन अधर दवि। सो जानै जिन जोही यह छवि ॥६॥
भौंह भाल नासिका निकाई। अँगुरिनि नचन संग अधिकाई ॥७॥
नाद रूप के रूप रयौ है। एकमेक ह्वै प्रगट भयौ है ॥८॥
सुघरसिरोमनि राग रच्यौ है। मुरली सौं अनुराग मच्यौ है ॥९॥
बन-बेलिनि धुनि पूरि रही है। जमुना-गति क्यौं परति कही है ॥१०॥
दुहुँ तट सुरनि पाटि यौं राख्यौ। थकी छकी सु कौन रस चाख्यौ ॥११॥
पुहप-पुंज कुंजनि झर लाग्यौ। धुनि-बस द्रवीभूत गुन जाग्यौ ॥१२॥
टग लगाय खग-रूप निहारैं। स्रवन-नैन-फल संग बिचारैं ॥१३॥
थिर चर कैं अंतर धुनि व्यापी। विपम रागिनी कान्ह अलापी ॥१४॥
सब सुख भाग निकट ह्वै पावैं। हम घर घिरी उदेगनि छावैं ॥१५॥
अब ऐसी गति आनि बनी है। कानन सालति सुरनि अनी है ॥१६॥
बिन बाजेहूँ बजति रातदिन। कौन भाँति की गहनि गही इन ॥१७॥
घायल प्रान घूमि घुरि मूझै। सुर सामुही घरनि घिरि जूझै ॥१८॥
विप की लहरि सुरनि सँग सरसै। तीखी ताननि सरसै बरसै ॥१९॥
मुरली कित को बैर बिसाह्यौ। कियो विधाता याको चाह्यौ ॥२०॥
जगै आप अरु हमैं जगावै। ताती धुनि उर आग लगावै ॥२१॥
क्यौं ब्रज बसैं कौन विधि जीवैं। विप सो नाद अमृत लौं पीवैं ॥२२॥
बिसवासी कान्हौ बस याकैं। कछु न बिचारत या रस छाकैं ॥२३॥
याही सौं अनुराग बढ़्यौ है। को जानै इन कहा पढ़्यौ है ॥२४॥
जगमोहनहूँ मोहि लियौ है। रुकै बहुरि कौन को हियौ है ॥२५॥

११-यौं-पै (लंदन)।

[१३] टग=टकटकी। [१८] मूझै=मूर्छित होता है।

अधरनि तैं न होति छिन न्यारी। व्रजजीवनहीं जिय की ज्यारी ॥२६॥
पूरन प्रेम प्रगट पन पाले। घरघाली औरनि घर घाले ॥२७॥
जु कछु करै सु याहि सब छाजै। निधरक भई रैनदिन गाजै ॥२८॥
धनि सुबंस जिहिं प्रगट भई है। सब सुखरासि सकेलि लई है ॥२९॥
याके पाय पूजिबे लायक। रच्यौ रहत जान्यौं व्रजनायक ॥३०॥
कौन काज गुनरूप हमारो। जौ परसै नहिं प्राननि प्यारो ॥३१॥
परस रह्यौ दरसहू न पैयै। कौन भाँति यह जीव जिवैयै ॥३२॥
निकसि न सकत रहत घर घेरी। जरि किनि जाहु लाज की वेरी ॥३३॥
अब सब त्यागि लागिहैं गोहन। अंक भरैं निसंक व्रजमोहन ॥३४॥
कोऊ कहा हमारो करिहै। उर मैं अरथौ भावतो हरि है ॥३५॥
जिन बजाय बुधि सुधि सब हरी। प्रेम परनि ताही सौं परी ॥३६॥
सब कछु जाहु रहौ पन पिय को। मुरलीधर जीवन या जिय को ॥३७॥
अब तौ सुरसवाद - सोहिली। जोन्हरूप व्रजचंदहि मिली ॥३८॥
कौन सकै करि न्यारी हमैं। अपने रमन रंग मिलि रमैं ॥३९॥
एक संग सुख लहि लहि जियैं। आँखिन भरि सुरूप-रस पियैं ॥४०॥
बसी सखी मिलाप रचावै। नाचै मिलि जो नाच नचावै ॥४१॥
सरस रास बृंदावन माँही। जमुना - तीर कलपतरु - छाँही ॥४२॥
आछी भाँति लेहि रस अपनो। धुनि सुनि जगी टर्यौ डर सपनो ॥४३॥
मुरलीधर चिर जियो प्रानधन। नित सरसैं बरसैं आनँदघन ॥४४॥
मुरली - सुर धुरवा-रस भरे। काननि छ्वै प्राननि पर ढरे ॥४५॥
हित-भर लग्यो निरंतर ऐसैं। अंतर सह्यौ परत अब कैसैं ॥४६॥
पिय सुजान बंसी सुर - जान। चढ़ि बढ़ि मिलो करैं रसपान ॥४७॥
ढिंग तैं टरैं न पूरन पन की। भई चातकी आनँदघन की ॥४८॥
श्रीबृंदावन श्रीजमुना - तट। जुगल घाट सब विधि सुख-संघट ॥४९॥
गोप मास श्रीकृस्न पच्छ सुचि। संवत्सर अठानवै अति रुचि ॥५०॥
मुरली-सुर-सुख कहत न आवै। सो जानै जो सुनि गुनि गावै ॥५१॥

३६–परनि०–परमता तिहि सों (वृंदा०)। ४५–छ्वै–है (लंदन)।

[३३] वेरी=वेढ़ी, बंधन। [३८] सोहिली=शोभित।

मनोरथमंजरी

राग विहागरो] [इकताल मूलताल

राधामदन गुपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध - फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ॥ १ ॥
वासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सो तिन पर बगराऊँ ॥ २ ॥
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झवा मुकतान को झालरैं झुलाऊँ ॥ ३ ॥
सूची - गुन गस गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ॥ ४ ॥
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधौ साधि कै सुख-बिवस बसाऊँ ॥ ५ ॥
मनि - चौकी ढिग राखि कै हित-सौंज सजाऊँ ।
रुचित उचित मधुपान के भाजननि भराऊँ ॥ ६ ॥
मनि-चपकनि रचि राखि कै रुचि - रंग बढ़ाऊँ ।
महल-टहल बहु भाँति की हित-सहित सधाऊँ ॥ ७ ॥
लाल विहारिनि कौं तहाँ रसरीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाष पुजाऊँ ॥ ८ ॥
उमग लाज-छवि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या विधि निज करतूति को नीकैं फल पाऊँ ॥ ९ ॥
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसैं कहौं उठि बाहिर आऊँ ॥१०॥

२–भाय–भाव (लंदन)। ७–'लंदन' में नहीं है।

[३] पाट=रेशम। झवा=झब्बा, गुच्छा। [४] सूची=सूई। [६] सौंज=सामग्री। रुचित=रुचिकर [८] तलप=सेज।

द्वार-झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ।
टेरि लेहिं तब लाड़िलो-हित हुलसि सिहाऊँ ॥११॥
कछू कहैं लगि कान सो सुनि जीव जिवाऊँ।
ता सुख की संपत्ति सखी मनमाँझ दुराऊँ ॥१२॥
नैन-सैन जोबन-छकी लखि भाग मनाऊँ।
पान-पात्र मादक-रसैं रुचतो भरि प्याऊँ ॥१३॥
आपुस की रसमसनि कौं क्यौं बरनि बताऊँ।
भेदभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ॥१४॥
जुगल वदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ।
उझिल झेल अनुराग की मतिछकनि छकाऊँ ॥१५॥
बीरी सरस सुगंधमै रुचि जानि खवाऊँ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौं सकुचनि पहिराऊँ ॥१६॥
औसर उसरि चल्यौ चहौं कछु उकति उठाऊँ।
आँचरु ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुटाऊँ ॥१७॥
मोहिं भुज भरैं छकनि सौं जिय समझि लजाऊँ।
ठेलनि अति रसवाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ॥१८॥
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ।
महामोद मानैं भटू ज्यौं ज्यौं अनखाऊँ ॥१९॥
अकथ कथा हित-रीति की हौं कहा चलाऊँ।
हौं जानौं कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ॥२०॥

१२-कछू-कछु जु (वृंदा०)। १५-मद-मन (वृंदा०)। १६-खवाऊँ-पचाऊँ (लंदन)। १७-उसरि-ऊसर (लंदन)। छुटाऊँ-छुदाऊँ (वही)।

[११] जवनिका=परदा। छुटकाऊँ=डाल दूँ, खोल दूँ, खींच दूँ। [१३] रुचतो=रुचनेवाला। [१४] रसमसनि=प्रेमपूर्वक मिलना। [१७] उसरि०=उठकर चलना चाहूँ। उकति=उक्ति, बात।

भाजि इकौसी ह्वै रहौँ कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सौँचनि प्रान की नाहीँ अरु हाँऊँ ॥२१॥
मानि बधाई चाव सौँ मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपनी ठौर हौँ मृदु बीन बजाऊँ ॥२२॥
केलि - रसमसे मिथुन कौँ सुख - नींद अनाऊँ ।
या बिधि मनभायो करौँ जगि रैनि बिताऊँ ॥२३॥
बड़े भोर अनुराग सौँ भैरवी जमाऊँ ।
अति रति - मतवारेनि कौँ नव प्रात जताऊँ ॥२४॥
फिरि फिरि पट तानैँ तऊ बहुरथौँ अहुराऊँ ।
निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ ॥२५॥
आरस - भरी जभानि पै चुटकीनि चिताऊँ ।
अलक - तिलक - सेवा - समै आरसी दिखाऊँ ॥२६॥
बनैँ ठनैँ लाड़िलेनि कौँ आँगन पधराऊँ ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरी चटकाऊँ ॥२७॥
निरखि डगमगी डगनि कौँ भुज गहि सम्हराऊँ ।
नित नूतन रसरीति की चित चौँप बढ़ाऊँ ॥२८॥
तिन्हैँ रुचै सोई करौँ रसियानि रसाऊँ ।
मिलि बिछुरैँ बिछुरैँ मिलैँ हौँ कहा मिलाऊँ ॥२९॥
सहज रँगीलो जोट कौँ जिय - बीच बसाऊँ ।
चित - चातक आनँदघनै रस - परस रमाऊँ ॥३०॥

२१–इकौसी–भुकौसी (वृंदा०) । २४–प्रात–बात (वही) । ३०–सहज–सरस (वृंदा०) ।

[२१] इकौसी=ओट और एकांत में । कनसुवौ० =टोह लूँ, छिपकर बातें सुनूँ । हाँऊँ =हाँ भी । [२३] अनाऊँ =बुलाऊँ, लाऊँ । [२५] अहुराऊँ = हटा दूँ, खींच दूँ । [२६] चिताऊँ=चैतन्य करूँ । अलक०=केश सँवारने और तिलक लगाने के समय । आरसी=दर्पण । [२७] बनैँ० =सँवारकर, सजाकर । अँगुरी०=उँगली चटकाऊँ । [२९] रसाऊँ=आनंदित करूँ ।

व्रजव्यवहार

चौपाई

नंदराय को व्रज अति सोहै। नित नित व्रजमोहन-मन मोहै ॥ १ ॥
प्रेमपग्यो जगमग्यो विराजै। सुख-समाज साजत व्रजराजै ॥ २ ॥
मोद-विनोदनि भरयो महा है। यामें यही समान कहा है ॥ ३ ॥
घरघर चुहल चैन की रहई। जित तित गोधन की गहमहई ॥ ४ ॥
नगर गरथारिन की छवि देखैं। जीवन जनम मानियत लेखैं ॥ ५ ॥
खेल्यो करत कान्ह जिन गलियनि। जसुमति-ललन आपनी रलियनि ॥६॥
सबको जीवन सब दृग - तारो। जसुमति - बारो जगत-उजारो ॥ ७ ॥
मैया को सुख कहत न आवै। कमलनयन लखि नैन सिरावै ॥ ८ ॥
बहुत खेल खेलत रुचि-रंगनि। निरखि सिहाति समाति न अंगनि ॥९॥
सरस सपूती भागभरी है। सबसुखनिधि सुलिलार धरी है ॥१०॥
गोपकुवाँर स्याम के संगी। घुमड़े रहत नेह - नवरंगी ॥११॥
ललित लला लौं सबैं लड़ावति। जसुमति-हित-गति कहति न आवति ॥
सबकी बाखरि सब मिलि खेलत। ठौर ठौर सुखरासि सकेलत ॥१३॥
नंदराय के घर सुख जैसो। व्रज की बाखरि बाखरि तैसो ॥१४॥
पूरन परमनेह सों भोयो। व्रजजीवनि व्रज सुखनि समोयो ॥१५॥
गैयन लै बन चलत भोर जब। महाप्रेम की चुहल मचत तब ॥१६॥
जित की ओर चलत व्रजमोहन। मन-दृग तित उठि लागत गोहन ॥१७॥
प्रेम सरक सबके उर सलै। व्रजमोहन बन कौं जब चलै ॥१८॥
ग्वैंड़ै घेरि करत इकठौरी। बहुरँग धेन धूमरी धौरी ॥१९॥
जित तित ग्वार छबीले निकसत। मोहन त्यौं निहारि हँसि विकसत ॥२०॥
हिलनि मिलनि मोहन सखान की। लखत बनै नाहिन बखान की ॥२१॥
या विधि सकिलि होत इकठौरैं। गोचारन बन बिहरनि बौरैं ॥२२॥
मिलवति गाय आय नव बाला। निरखति मनहिँ मिलै नँदलाला ॥२३॥

[४] गहमहई = धूमधड़क्का। [६] रलियनि=क्रीड़ा। [९] सिहाति = प्रशंसा करती है। [१३] बाखरि = घर। [१८] सरक=वेदना।

रज-रँगमगे छबीले मोहन। आवत गावत गोधन गोहन ॥६३॥
उमँगि प्रेमनिधि-गोधन-ठाट। सोहत पूरन है ब्रज-बाट ॥६४॥
मंद मंद गति सौं ब्रजचंद। दृगनि सिरावत आनँदकंद ॥६५॥
दृग मिलि भेँट भावती होति। रज तेँ बढ़ति दीठि हित-जोति ॥६६॥
खुलि खुलि मिलि घूँघट-पट टारि। चौँपनि भरति पलक अँकवारि ॥६७॥
हिय भरि नेहदसा-घन-पगी। आरति जोति चहूँ दिसि जगी ॥६८॥
पैठत पौंरि दौरि जसु माय; रोम रोम की लेति बलाय ॥६९॥
मोदभरी आरती उतारति। पानी वारि पियति जिय पारति ॥७०॥
बदन चूमि आँचर रज पोँछति। तपत नार पग धोय अँगोछति ॥७१॥
हँसि बैठति लै ललहिं गोद मैँ। फूली अँग न समाति मोद मैँ ॥७२॥
मधुर कौर कछु सुकर खवावति। ब्रजजीवनहिं ज्याय ज्यौ ज्यावति॥७३॥
गोदोहन-सुख कहत न बनै। मन की खरक खरिक-रस सनै ॥७४॥
दुहनि दुहावनि जो रस दुहै। इन ब्रज-खरिकनि हो मैँ सु है ॥७५॥
मधुर किसोर कमलदल-लोचन। सब ही विधि सबकी रुचि रोचन ॥७६॥

दोहा

अतुल रूप-गुन-माधुरी, क्यौं मन नैन अघात।
लगे रहत दिनरात यौं, ब्रज बसि याही घात ॥७७॥
प्रेम-बनिज-ब्यौहार की, लगी रहत ब्रज पैँठ।
निपट सुधाई मैँ ढुरी, ब्रजबासिन की ऐँठ ॥७८॥
आनँदघन ब्रज की कथा, कहियै कहा बखानि।
मगन होत मन बचन हू, परम प्रेम पहचानि ॥७९॥

चौपाई

निस के सुख-समाज की बातैँ। कहिबे मैँ नहिं आवति घातैँ ॥८०॥
नवरंगी गिरिधर सुखदाई। ब्रज बसि ब्यापी प्रेम-सगाई ॥८१॥

[७३] सुकर=स्वकर, अपने हाथ से। [७४] खरक=खटक, चिंता। खरिक=पशुओं के बाँधने का स्थान। [७८] बनिज=वाणिज्य। पैँठ=हाट। सुधाई=सीधापन; अमृत ही। ऐँठ=वक्रता, बाँकपन।

सो ब्रज प्रेम चहूँ विधि देखौ। ब्रजवासिन ही सौं यह लेखौ ॥८२॥
ब्रज को ईस नंद बड़भागी। जाको सुजस-जोति जग जागी ॥८३॥
जसुदा-कूँख भागनिधि-खानि। प्रगट्यौ कृस्न-रतन सुखदानि ॥८४॥
ब्रज-जराव मधि नायक सोहै। लीला ललित भाँति मन मोहै ॥८५॥
कबहुँक रसनिधान गिरधारी। गिरि-घटिया की सैल बिचारी ॥८६॥
ब्रज गोरिनि को आवनि गैल। ताकौ रसिक साँवरे छैल ॥८७॥
मतु करि सखनि साँझ समझायौ। बड़े भोर को ठिकु ठहरायौ ॥८८॥
मुरली - धुनि संकेत सुनाय। जित तित तैं सब लए बुलाय ॥८९॥
निकरो लै गाधन गिरि - घाँई। बने सबै मनमोहन दाँई ॥९०॥
खेलत चले भले यौं त्यागे। ब्रजजन-छबि निहारि अनुरागे ॥९१॥
महा कौतुकी कान्ह किसोर। हेरत हँसत जात सब ओर ॥९२॥
भागनि भरी हरी ब्रजभूमि। देखत फिरत स्याम घन झूमि ॥९३॥
बिहरत बिहरत गिरितट आए। दान लैन अभिलाषनि छाए ॥९४॥
गैयाँ बगरि चरन बन लागीं। मोहन-मुरली - धुनि अनुरागीं ॥९५॥
सुरति स्यामसुंदर मैं जिनकी। तिनहिं चरत हूँ यह गति इनकी ॥९६॥
कौन कौन की हिलगनि कहियै। ब्रज की लगनि देखि चकि रहियै॥९७॥
गिरि चढ़ि कान्ह निहारत गायनि। भरे दानलीला-रस-चायनि ॥९८॥
सुबल सुबाहु तोप मधुमंगल। सुंदर सुखद चतुर हित-उज्जल ॥९९॥
इनहिं आदि सहचर बहुतेरे। रहत नंदनंदन नित नेरे ॥१००॥
ब्रजमोहन तन मन सँग डोलत। प्रीति-कथानि परसपर बोलत ॥१०१॥
ब्रजदेवी देवी - पूजन - हित। गिरि-घटियाँ ह्वै निकसति हैं नित ॥१०२॥
दानीराय कान्ह की सैननि। समझि समझि हिय पावति चैननि १०३
पँछर पाय आय गिरि छँड़ी। धरि रहे ललित लकुटियनि बँड़ी ॥१०४॥
घटिया घेरि जगाति लगाई। नंदलाल की अज्ञा पाई ॥१०५॥
बचन-चोख रसवाद बढ़ावत। गाल बजावत गावत भावत ॥१०६॥
कान्ह किसोर एक ढिग ठाढ़े। महारूप गुन जोबन बाढ़े ॥१०७॥

[८४] भाग०=भाग्य के खजाने की खान। [८५] नायक=पदिक। [९०] घाँई=ओर। दाँई=दाहिनी ओर। [१०४] पँछर०=पीछे पीछे। बँड़ी=छेड़छाड़ की। [१०५] जगाति०=कर लेने का ठाट ठट लिया।

चपल चखन ब्रज-तरुनी ताकत। दान-केलि-कौतुक-रस छाकत ॥१०८॥
झटकत झगरत गोरस मिस कौ। बोलत प्रखर वचन हँसि रिस कौ॥१०९॥
छली छैल की घात अनेक। ब्रजनायक सब लायक एक ॥११०॥
कुंज-पुंज गहवर गिरि-कंदर। विहरत सुंदर रसिक-पुरंदर ॥१११॥
दान केलि कोलाहल माचत। लूटत दह्यौ ग्वाल मिलि नाचत ॥११२॥
फैलि परत गोरस-रस-झगरो। निवरत नाहिँ नेह नित अगरो। ११३॥
अनमिल वचन-रचन मन मिले। खिले वदन आनँद-रस-झिले ॥११४॥
बहुत भाँति विलसत ब्रजमोहन। सफल करत ब्रजजन-मन जोहन ॥११५॥
ब्रजरस-भेद न कोई पावै। वेदौ नेति नेति करि गावै ॥११६॥
प्रबल प्रेम निज ब्रज विस्तरयौ। दीसत दृगनि दूरि लै धरयौ ॥११७॥
सरस केलि को सकै निहारि। बड़भागिनि गोकुल की नारि ॥११८॥
सब तजि भजति एक नँदनंदन। रसिकसिरोमनि सब जगबंदन ॥११९॥
सिव-अज लीला देखत मोहन। रस-उतकरस चरन-रज दोहन ॥१२०॥
सबको अगम सुगम सो इत है। जातैं प्रबल प्रेम ब्रज नित है ॥१२१॥
तातैं ब्रजजन-कृपा मनैयै। चरन-रैन बल इनके पैयै ॥१२२॥

दोहा

ब्रज को प्रेम प्रचंड अति, अमल अखंड अपार।
सुरनर मुनि बरनत सदा, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२३॥
ब्रजबासिन की अमल गति, समझि सकै नहिँ कोइ।
नंदराय कैँ बास बसि, जो ब्रजबासी होइ ॥१२४॥
यह लीला निरखै तबै, अचरज प्रेम विकार।
जा-रस बस विहूल सदा, रनिया नंदकुमार ॥१२५॥
सर्वोपर ब्रज की कथा, महा मधुर स्रुतिसार।
कृस्नचंद के हित भरयौ, या ब्रज को ब्यौहार ॥१२६॥
अजित जीत अपबस किये, प्रबल प्रेम कैँ फंद।
ब्रज व्यापक लखियत सदा, पूरन परमानंद ॥१२७॥
ब्रजजन जीवन स्याम कैँ, ब्रजमोहन ब्रजप्रान।
निसिदिन ब्रजलीला-मगन, पूरन प्रेमनिधान ॥१२८॥

जहाँ तहाँ मचियै रहै, सुख-समाज की भीर ।
मुरलीनाद - सवाद - बस, रसिक छैल बलबीर ॥१२९॥
धनि धनि रसना रसवती, बरनति ब्रज-रसरीति ।
मोहन ही के गुनहिं तैं, किये आपबस जीति ॥१३०॥

चौपाई

अपने गुननि बँधे रिझवार । पूरन प्रेमी नंदकुमार ॥१३१॥
लीला-रस लै रसना सानत । मो मुख ह्वै निज गुननि बखानत ॥१३२॥
सुनि सुनि रीझत रसिक उदार । ब्रजव्योहार रसामृत - सार ॥१३३॥
ऐसो कौन कहि सकै यह रस । ब्रजमोहन की एक कृपा-बस ॥१३४॥
मन अरु बचन कृपावस होय । मतिगति ब्रज-रति रहै समोय ॥१३५॥
तब कछु उमगि उबरि यौं परै । रसहीँ कैं बस रस विस्तरै ॥१३६॥
महा मनोहर ब्रजव्यौहार । ब्रजजीवन की कृपा-अधार ॥१३७॥
मोहन ब्रजव्योहार बखान्यौ । हियैं पैठि रसना पै आन्यौ ॥१३८॥
अपनो रससवाद - सुख लेत । या विधि मोहिं महासुख देत ॥१३९॥
नातरु अकथ कथा को कहै । मन अरु भेद-बचन क्यौं लहै ॥१४०॥
ब्रजरस कहत सुनत अधिकार । दियौ कृपा करि नंदकुमार ॥१४१॥
तातैं कछु बरन्यौ ब्रजप्रेम । रसना गह्यौ रसकथा - नेम ॥१४२॥
ब्रजमोहन वह ब्रजव्यौहार । कहा कहौं रसरासि अपार ॥१४३॥
ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस गाऊँ । ब्रजमोहनहिं सुनाय रिझाऊँ ॥१४४॥
ब्रजव्यौहार - मगन ह्वै रहौं । ब्रजजन ही की गति मति लहौं ॥१४५॥

दोहा

जीवन ब्रजव्यौहार है, ब्रजजीवन ही प्रान ।
कहौं सुनौं समझौं सदा, ब्रजव्योहार प्रधान ॥१४६॥
जो सुख ब्रजव्योहार को, सो कछु कहत बनै न ।
अरु रसना की यह कथा, बिना कहैं नहिं चैन ॥१४७॥

चौपाई

कहि कहि थकित होति फिरि कहै । या रस रसना को जस यहै ॥१४८॥
ब्रजव्यौहार भाग है मेरो । ब्रजै आस ब्रजबास बसेरो ॥१४९॥

ब्रज मैं सोऊँ ब्रज मैं जागौं। निसि दिन ब्रज ही के रस पागौं ॥१५०॥
ब्रजब्यौहार देखि ही जियौं। ब्रजजीवन-लीला - रस पियौं ॥१५१॥
ब्रजरस थकि ब्रजबीथिन डोलौं। मौन धरैं मनहीं मन बोलौं ॥१५२॥
ब्रजबन-सोभा चकित निहारौं। ब्रजरस-पान प्रान - पन पारौं ॥१५३॥
ब्रजब्यौहार परम धन लह्यौ। ब्रजरस पूरि नैन ह्वै रह्यौ ॥१५४॥
परम प्रेमनिधि ब्रजब्यौहार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥१५५॥
ब्रजमंडल आनँदघन बरसै। लीला ललित प्रेम-रस सरसै ॥१५६॥
लहलहात ब्रज तरु बनबेलि। महामधुर लीला - रसकेलि ॥१५७॥
मुरली - गरज रंग - रस-भरी। ब्रजबन ब्यापि लगावति झरी ॥१५८॥
ब्रजतिय - हिय - सरवर रसभरे। लाज-पाज तजि उमगनि ढरे ॥१५९॥
प्रबल प्रेमद्रव उझिलि बह्यौ है। ब्रजबन यह रस पूरि रह्यौ है ॥१६०॥
चातक-ब्रतहिं धरैं सँग डोलैं। महाभाव रुचि आनि कलोलैं ॥१६१॥
त्रिभुवनमई मुकुटमनि गोपी। लोकलाज - मरजादा लोपी ॥१६२॥
पदवी परम प्रेमनिधि पाई। इनकी महिमा वेदनि गाई ॥१६३॥
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई। आनँदघन पूरन पन छाई ॥१६४॥
गोपिनि की गति कहति न आवै। गोपीनाथ - सनाथ कहावै ॥१६५॥
जाकी माया जगत नचावै। सो नटनायक इन्हैं रिझावै ॥१६६॥
तनमय भई रहति निसिबासर। प्रेम-प्रिया को धौं इनकी सर ॥१६७॥
सर्वोपरि गोपिन को प्रेम। जिनसौं नंदसूनु को नेम ॥१६८॥
निरिनि रहत ब्रजमंडन जिनके। हरि-हित-सहित मनोरथ इनके ॥१६९॥
परमानंद - कंद की प्यारी। कबहूँ कहूँ होति नहिं न्यारी ॥१७०॥
निरवधि प्रेम - परस नहिं सकैं। उद्धवादि चरननि रज तकैं ॥१७१॥
इनके गुन मुरलीधर गावत। परम प्रेम रसपुंज बढ़ावत ॥१७२॥
रसिकराय चूड़ामनि स्वामी। गोपीवल्लभ नायक नामी ॥१७३॥
ब्रजबन सरस बिनोद मगन मन। निपट किसोर स्यामसुंदर घन ॥१७४॥
सुखनिधान के सुखहिं सम्हारति। जीतति अजित अपनपौ हारति ॥१७५॥
इनकी प्रेम-सगाई जैसी। देखी सुनी न कितहीं ऐसी ॥१७६॥

[१५९] पाज=बाँध। [१६०] द्रव=रस। [१६९] निरिनि=निकट।

तन मन वचन कृस्नहीं सों रति । कृस्न परमपति ही जिनकी गति ॥१७७॥
जो रसराज प्रगट इन कियो । सो जानत हरि हीं को हियो ॥१७८॥
ब्रज को सहज प्रेम रससागर । नित नित मगन रहत ब्रजनागर ॥१७९॥
ब्रजबन-केलि सदा अवगाहत । परम प्रेम-पन-पैज निवाहत ॥१८०॥
नित नवरंग रसिक नँदलाल । .... ॥१८१॥
नित विलास नित रास रचावैं । परम प्रेम की चुहल मचावैं ॥१८२॥
हरिमुख - चंद - चकोरी गोपी । अतुल प्रेम की सीवाँ रोपी ॥१८३॥
या ब्रज की लीला अचिरजनिधि । विधिहूँ लही नहीं याकी विधि ॥१८४॥
मोहन महा परम रसमूली । सब काहू कों देखत भूली ॥१८५॥
ब्रज नित प्रेम-महोदधि गाजै । पूरन गोकुलचंद विराजै ॥१८६॥
अदभुत अमित अखंड कलाधर । गोपी - मनरंजन सुंदर वर ॥१८७॥
दुख-तमहरन अपूरव नीको । निसिदिन उदित भावतो जी को ॥१८८॥
दृग - तारन कों जोति बढ़ावै । प्रेम-गगन सुइंदु विरुदावै ॥१८९॥
सुजस-चंद्रिका फैलि रही है । सुख-सोभा क्यों परति कही है ॥१९०॥
लीला-अमी-किरिनि हित पोखै । मेटत विरहताप - दुख-दोखै ॥१९१॥
मित्र-मंडली - मध्य उजागर । सब दिसि उदै करत गुन-आगर ॥१९२॥
निहकलंक आनंद - स्वरूप । जै जै जै ब्रजचंद अनूप ॥१९३॥
याहि देखि ब्रजजन सब जियैं । महामधुर मूरति मधु पियैं ॥१९४॥
महाभाग या ब्रज के लोग । करत कृस्नलीला - रस - भोग ॥१९५॥
यह ब्रज सदा प्रेमरस - मंडित । बिहरत नित्यानंद अखंडित ॥१९६॥
रसना सो जो यह रस चाखै । छिनछिन नवसवाद अभिलाखै ॥१९७॥
या ब्रज को अमोघ अनुराग । जे वरनैं तेई बड़भाग ॥१९८॥
ब्रजरस परम परैं तैं परैं । अनुरागी याको व्रत धरैं ॥१९९॥
तेई दृग जे ब्रजरज आँजैं । ब्रजरस परसि परसि मन माँजैं ॥२००॥
ब्रजव्योहार सहज रँग राँचै । यह सुख पाय पाय फिरि जाँचै ॥२०१॥
ब्रजव्योहार विचारैं वनै । कहत न आवत जानत मनै ॥२०२॥
यह नित नित ब्रज को व्योहार । ब्रजमोहन-हित नित त्योहार ॥२०३॥
भई चोप नित ही चित बढ़ै । छिन छिन रंग चौगुनो चढ़ै ॥२०४॥

नित बिहार नित नवल सिँगार। नित सँकेत नित नित अभिसार ॥२०५॥
नित सँदेस नित मिलन-उपाव। नित नित चाव नित नयो दाव ॥२०६॥
नित सँजोग नित मिलन-चटपटी। परम प्रीति की रीति अटपटी ॥२०७॥
नित प्यासे नित ही रस पीवत। नित ब्रजजीवन देखेँ जीवत ॥२०८॥
ब्रजब्यौहार ब्रज बसैं दरसै। नित नित नयो नयो सुख सरसै ॥२०९॥
नित नित चित हित की गति परसै। नित ब्रजजीवन इनहीं बरसै ॥२१०॥
ब्रजरस पियेँ लगै सब सीठो। या ब्रज महामधुर रस मीठो ॥२११॥
ब्रजब्यौहार मोहिं अति भायो। रुचि रचि रसना ब्रजरस गायो ॥२१२॥
ब्रजरस को सवाद अति आहि। ज्यौं हो रीझत कहियै काहि ॥२१३॥
को है या रस को अधिकारी। अपरस प्रीति-रीति गति न्यारी ॥२१४॥
औरै दृग जे ब्रजहिं निहारैं। औरै मन ब्रज को ब्रत धारैं ॥२१५॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज एक। मौं हिय ब्रजरस ही की टेक ॥२१६॥
कहौं सुनौं ब्रज ही की बात। ब्रज बसि लखौं साँझ परभात ॥२१७॥
ब्रज ही सौं प्राननि को नातो। ब्रज बिहरौं मोहनरस-मातो ॥२१८॥
ब्रज के टूक माँगि ज्यों ज्याऊँ। ब्रज-सरवर-जल प्राननि प्याऊँ ॥२१९॥
ब्रज के द्रुम बेली लखि रहौं। जड़ता गहि तिनसौं गति कहौं ॥२२०॥
ब्रजमोहन - लीलारस जहाँ। गोपकुँवर के कौतुक चहौं ॥२२१॥

दोहा

ब्रजनायक नेही नवल, बिलसत ब्रज निज धाम।
प्रेम-अवधि नव ब्रजवधू, मधुर केलि अभिराम ॥२२२॥
यह ब्रजरस - संपति सदा, मेरैं सरवस मूल।
बृंदावन आनंदघन, राजत जमुना - कूल ॥२२३॥
ठौर ठौर ब्रज बिपिन की, नैननि रही समाय।
नित दरसत बरसत लसत, आनँद-अंबुद छाय ॥२२४॥
प्रेमसरोवर अमल वर, ढिग कदंब - तरु - पाँति।
भानुकुँवरि - बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥२२५॥
सोभा-झर लाग्यौ रहै, झूमि सघन तरु बेलि।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥२२६॥

सब रितु-हित सोभित, सरस करियै कहा बखान ।
कीरनिलली अलीनि मिलि, खेलनि की रहठान ॥२२७॥
मनभावन सावन-समै, मिलि भूलन-हित चाव ।
सोभा-भर उफनात सर, देखैं बनै बनाव ॥२२८॥
बरन बरन नव पाट के, भूला भुले बिसाल ।
समय रूप रचना सरस, मंडित ताल-तमाल ॥२२९॥
जूथ-जूथ-सँग भूलई, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचरज-रूप निहारि ॥२३०॥
मचि भुरमट भूला चलत, जल छ्वै लाँबो भून ।
बरसनि रूप-भलानि की, बदन भरे अति फून ॥२३१॥
भूषन बसन सरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
सोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥२३२॥

चौपाई

भीतर बाहिर तुमहीं तुमहीं । अँखियाँ देखन कौं अति उमहीं ॥२३३॥
खुलैं मुँदैं ब्रजलोचन-तारे । मोहन मधुर स्याम उजियारे ॥२३४॥
दुरौ कहा अब उघरि परे हौ । ढके रहौ बहु गुननि भरे हौ ॥२३५॥
चेटक चटक रूप चित चोरत । देखत देखत ही मन भोरत ॥२३६॥
कौन भाँति की खगनि खगे हौ । जित तित लोचन-संग लगे हौ ॥२३७॥

२३१—मचि—मिच (वृंदा०) । २३२—सरूप—सुरूप । सोहन—मोहन (वही) । मिलाइए पृष्ठ २१५ पर के 'प्रेमसरोवर' से ।

गिरिगाथा

दोहा

श्रीकरतल - रस - परस सब, भीज्यौ दरस अनूप ।
गिरिनायक बंदन करौं, सेवा उत्सव - रूप ॥ १ ॥
ललक पुलकमय बिपुल वपु, हरिमंदिर हिय जास ।
जगमगात जगमनि सदा, लीला बिसद बिकास ॥ २ ॥

चौपाई

गिरि गोवरधन-छवि कछु बरनौं । पाऊँ नाम अरथ गुन सरनौं ॥ ३ ॥
मन पाऊँ तब रसना आनौं । गोवरधन बर लहि गुन गानौं ॥ ४ ॥
नगमनिमयी सिखर सुचि सोहैं । चकित नैन लीला-सुख जोहैं ॥ ५ ॥
सोहैं जोहैं हरिहिय मोहैं । को है अब याकी सर को है ॥ ६ ॥
निर्भर-निचय अचय रस सरसैं । गोवरधन आनँदरस बरसैं ॥ ७ ॥
द्रुम-प्रकार-रचना क्यौं कहियै । चहत चेतना जड़ ह्वै रहियै ॥ ८ ॥
केलि थकी अति भली अनूठी । निपट इकौंसी प्रेम अँगूठी ॥ ९ ॥
विविधि समय सुख साँज भरी हैं । गिरिधर-हित गिरिराज धरी हैं ॥१०॥
कियें रहे मोहन - मन हाथ । हरि कर धरैं न्याय गिरिनाथ ॥११॥
प्रेमसिंहासन परम उतंग । ब्रज-जुवराज करत जहँ रंग ॥१२॥
बिबिधि अपूरब केलि-रसमसे । लसैं स्याम अभिराम नित बसे ॥१३॥
रूप भूप वैभव जगमग अति । चँवर सिंगार-भार बरहा-तति ॥१४॥
बरन बरन बिहंग रंग-ओए । बचन-रचन-सुख-स्वाद-समोए ॥१५॥
पुहुप - वृष्टि वाटिका सुहाई । बिटप बेलि अभिलाषनि छाई ॥१६॥
निज पद-चिह्नन परस-प्रसाद । लहत सदा गिरिराज सवाद ॥१७॥
इहि प्रसाद हरिदास-निकर वर । धनि धनि गिरिवर धनि गिरिवरधर ॥

[३] नाम=जिसका । [४] वर=वरदान । गानौं=गाऊं । [५] जोहैं=देखता है । [६] को है=कौन है । सर=समानता । को=के लिए । [७] निचय=समूह । अचय=पीना । [९] इकौंसी=एकांत । [१४] बरहा=मोर । तति=पंक्ति ।

गिरि को हृदय मृदुल अति देखौ। पघिलति सिल पद-परस विसेखौ ॥१९॥
कठिन वात गिरिप्रेम-नेम की। मूरति व्रजजन-कुसल-छेम की ॥२०॥
दान-केलि-रस - भाजन हियौ। भानुकुँवरि-हित मारग कियौ ॥२१॥
दानिराय को अति रसदायक। गोरस है सो रस गिरिनायक ॥२२॥
प्रिय सख-सखी-समाजहि साजै। सर्वोपरि गिरिराज विराजै ॥२३॥
निरवधि रस को पारस पावै। गिरि की गरिमा गनत न आवै ॥२४॥
दल फल जल हरि परिकर पोपै। सव रितु सुखनि साजि परितोपै ॥२५॥
कंदर मंदिर [अति] रुचि राखै। रसिक-पुरंदर हित अभिलाखै ॥२६॥
दीपजाल मनिमाल जगावै। नेहप्रकास - दसाहिं दिखावै ॥२७॥
हरिराधा-हित हरप-भर्यौ है। केलि-कलानि सकेलि कर्यौ है ॥२८॥
हरि को हितू न ऐसो दूजो। यातैं या गिरि के पद पूजो ॥२९॥
पूजै याहि मनोरथ पूजै। गिरिवर चरन-दृगनि कछु छूजै ॥३०॥
गोपकुमारनि को अति प्यारो। गायनि देत चाय सौं चारो ॥३१॥
तटी-भूमि गोधन की माला। सिखर खरो व्रजपति को लाला ॥३२॥
सुकृत-पुंज-फल गिरि ही पायौ। दीसत यौं निज सीस चढ़ायौ ॥३३॥
अति उन्नत गिरि-भाग-निकाई। गिरिधर वेनु वजाय दिखाई ॥३४॥
मुरली - टेर व्यापि गिरि रहै। धुनि सुनि सरस रूप-सुख लहै ॥३५॥
द्रवीभूत गुन प्रगटै जबहीं। जड़ता होति सहायक तबहीं ॥३६॥
गिरिवर - प्रेम गिरिधरै जानैं। गिरा वखानौं निज अनुमानैं ॥३७॥
महालील गोपाल गोपसुत। गोधन वसत ग्वार-गोधन-जुत ॥३८॥
गिरि को गुपत मतो को पावै। हरि-राधादिन हृदय दुरावै ॥३९॥
पुजवत साध सवै विधि साधै। हित अराधि रिझवै हरि-राधै ॥४०॥
सेवारीति - महंत महामुनि। गिरि-महिमा कवि कौन सकै गुनि ॥४१॥
गिरा-वेलि गिरिगाथा फल है। परम मधुर रस भर्यौ अमल है ॥४२॥
सीस धराधर - ईसहिं नाऊँ। जुगल - केलि-चिंतामनि पाऊँ ॥४३॥

[२४] पारस=उत्तम पदार्थ। [२६] कंदर=कंदरा। [३०] पूजै=पूजने से। पूजै=पूर्ण होती है। [३८] महालील=महल्लील, महालीला करनेवाले। गोधन=गोवर्धन। गोधन=गायों का झुंड। [४३] धराधर=पर्वत।

गिरि की सरनहि गिरिहौं नितहीं। होत फिरौं न्योछावर इतहीं ॥४४॥
गिरि को मोंहि भरोसो भारी। ढिग गिरि रहैं ढरैं गिरिधारी ॥४५॥
अति लघु मति गिरि गरिमा महा। रहि न सकौं अरु बरनौं कहा ॥४६॥
गिरि के गरब गनत नहिं काहू। गिरिवरधर-पन - पैज-निवाहू ॥४७॥
गिरि की कृपा गिरिधरैं परसौं। गिरि-गुन गनौं सुनौं गिरि दरसौं ॥४८॥
आस वास या गिरि मैं रहौं। दृग गिरिवरधर सुदरस लहौं ॥४९॥
गोवरधन मंगल को आलै। व्रजबासिन को हित नित पालै ॥५०॥
व्रजधर - मंडन सदा सहायक। गिरि-महिमा बरनी व्रजनायक ॥५१॥
गिरिवर धरि गिरिवरधर सोहैं। व्रजलीला लखि व्रजजन मोहैं ॥५२॥
गिरि को हित गिरिवरधर करैं। गिरिधर-हित गिरिवर बिस्तरैं ॥५३॥
गिरा मौन मैं गिरिधर गहौं। गिरि की कृपा गिरिधरै लहौं ॥५४॥

दोहा

श्रीगोवरधन नाम गुन, सो रस ताको भाग।
महामधुर रसरासि कौं, पायौ पूरन पाग ॥५५॥
सुख-समाज गिरिराज को, रह्यौ दृगनि दरसाय।
मन तन रस भींजि लसौ, आनँदघन बरसाय ॥५६॥

पदावली

भैरव] (१) [मूलताल

मंगलनिधि ब्रजराजकिसोर, मंगल ब्रज मैं चारयौं ओर ।
मंगल घर अरु बाहिर मंगल सुख निरखत मंगल निसि भोर ।
मंगल अरसाने दृग राजत अधर मंगल रुचि रच्यौ तँमोर ।
आनँदघन सबही विधि मंगल स्रवननि मंगल मुरली-घोर ॥

भैरव] (२) [चौताला

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारे हैं हो हरि हाथ ।
तुमही कौं तुमतें जाँचत हौं देहु दया करि नाथ सब सुख साथ ।
गाय गाय ज्यौं त्यौं जीवत हौं रावरे बिसद बिरुद गुन-गाथ ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन मोन-दीन-पन पाथ ॥

तथा] (३)

अपार गुनग्राम हौ कहा गाऊँ ।
तीरहि गएँ थकित मतिगति होति, तुमलौं कहौ धौं हौं क्यौं करि आऊँ ।
अमित चरित की तरल तरंगनि बिसमय बूड़ि न ठिक ठहराऊँ ।
ई उपाव आनँदघन मो हित बोहित सुदृढ़ कृपा जौं पाऊँ ॥

भैरव] (४) [इकताल

गोपाल तुम्हरेई गुन गाऊँ ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ ।
टरत न मोहन मूरति हिय तैं देखि देखि सुख पाऊँ ।
आनँदघन हौ बरसौ मरसौ प्रान-पपीहा ज्याऊँ ॥

भैरव] (५) [चलती इकताल

तुम्हारी सौं मोहिं तुम बिना कछू न भावै ।
सोचनहीं निसि तारे गनति हौं ए सपनौहूँ न आवै ।

२-दीन०-दीपन (सतना) । ४-तुम्हरेई-तेरेई (सतना) । बरसौ०-बरसि सरैयै (वही) । ज्याऊँ-जिवाऊँ (लंदन) ।

[१] तँमोर=तांबूल । घोर=ध्वनि । [२] पाथ=जल ।

हियरे बीच रहौ न लहौ गति कोऊ कहा जनावै ।
प्रान - पपीहनि आनँदघन दैया कौन जिवावै ॥

तथा] (६)

अनु रे मेरी प्रीति लगी हो ।
कल न परति है घरि पल छिन बिन देखेँ प्यारे ।
कठिन कठिन बीतत दिन गिनत रैनि तारे ।
कब ह्वैहौ संमुख मनमोहन उजियारे ।
कहा कहियै पिय तुमसौँ बसत हिय मँझारे ।
आनँदघन चातक - जन क्यौंऽब यौं बिसारे ॥

भैरव] (७) [चौताला

मुरलिया तिहारी आछीताननि रचना करैं ।
बाँके बाँके भेदनि भँजाइ मन हरैं, को धीरज धरैं ।
मुखबिलास देख्यौई भावै बहुभाँति अभिलाष भरैं ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन लाएँइ रहति भरैं ॥

विभास] (८) [चौताला

अब यह पागी पगनि लागी हो, लाल किनि जानि जान देहु घर अपनें ।
तुम्हहि कहा सोच पुर को यह ढंग मोंहि परें जिय कपनें ।
आनँदघन उघरें न भरम जौं तौं देहैं देवा जपनें पुजापे अपनें ॥

तथा] (९)

जागौ जागौ हो निसि के मतवारे,
भोर भयौ लागे बोलन गुरु - नारी हैं चटनारी ।
गुरुजन-सोच नहीं तनकौ जिय कौन सुभाव तिहारौ ।

६—अनु—अनु (मनमा) । हो—है (वही) । क्यौं०—क्यौं अबौं (वही) ।
९—चटनारी—चटनारे (मनमा) । सोंहि०—सो जिय है (वही) ।

[८] पुर को=नगर का । भरम=भेद । देहैं=देवी । पुजापे=पूजा की सामग्री ।
[९] जागौ=जागिए, ऐसा । चटनारी=चटक-मटक । भरम=भेद ।

ब्रज के लोग सहज ही चवाई मोहि यहै डर भारो ।
आनँदघन तुम छाय रहे रुचि, काहे कों भरम उघारो ॥

विभास] (१०) [इकताला

रही निसि पाछिली घरी चारि ।
सुरत - रँगमगे जगे पगे रस लगे भरन अँकवारि ।
निपट अटपटी चाह-चटपटी नाहिन सकत सम्हारि ।
आनँदघन अभिलापनि छाए वातैं कहत उघारि ॥

रामकली] (११) [झपताल

मदनगुपाल की बाँसुरी बाजै ।
राग अनुराग-सागर तरंगित कियौ मधुर रसकंद ब्रजचंद-मुख राजै ।
मानमोचन महा रोचक रसाल धुनि मादक मनोज उनमाद उपराजै ।
सुनि रहि सकै गहि सकै धीर कौन तिय विवस नहिं
होइ तजि गुरु - लोक - लाजै ।
प्रान-चातकनि के तोपघन तोप-हित जीवन-अधार आनँदघन गाजै ॥

रामकली] (१२) [चौताला

को पावै पीर हमारे मन की ।
स्यामसुंदर तितहीँ नितहीँ वसौ गति कहा दीन द्रगन की ।
निपटहीँ निपट निठुरता सीखे बलिहारी या पन की ।
प्रान-पपीहनि कैं लगियै रहै आसा आनँदघन की ॥

विभास] (१३) [चंपकताल

कैसैं धीरज है हाथ हमैं मुरली - धुनि बौरावै हो ।
काननि पूरि महामादक रस प्यावै मनहिं घुमावै हो ।
ताननि बान चलावै भावै वैरिनि मारि जिवावै हो ।
आनँदघन प्यासनि वरसावै घरहू ढघरि भिजावै हो ॥

१०-पगे०-परसपर (सतना) । अँकवारि-इकवारि (लंदन) ।

[११] कंद=मूल । [१२] पावै=समझे । [१३] घुमावै=
चक्कर में डालती है ।

एमनि] (१४) [मूलताल

मेरी आली री मोंहि सुनत बँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनको तेरी सौं ।
चकित होति मुख जोति जगमगत मनु तौ रहत जाइ वन बन पै
घर मैं परी रहति गुरुजन-घेराघेरी सौं ।
कैसैं करियै भरियै कौं लौं कुल की कानि जँजर जेरी सौं ।
आनंदघन रसपियन जियन कौं प्रान-पपीहा तरफरात है उर-मेरी सौं ॥

टोड़ी] (१५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन विराजैं ।
सिथिल भए रस भोइ रसमसे निरखि कोकनद लाजैं ।
झरकि परनि पलकैं आरस-बस बस कै खुलति खिलति मो काजैं ।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन उनए अति सुख साजैं ॥

रामकली] (१६) [चौताला

बरजि री बरजि दै अनोखे छैल कौं मेरे द्वार मुरली न आनि बजावै ।
हौं सुनि सिथिल इत घर मैं उत बाहिर सब लोग चवाव चलावैं ।
जिय की [illegible] जीव जो जानै तौ इन बातनि कहि कहा पावै ।
चातुर है आतुर आनँदघन छाइ पराए प्रान - पपीहा तावै ॥

केदारो] (१७) [एकताल

गगनमंडल मैं नाचत दोऊ तकट धिकट धिधिकट
धिलांग थेई थेई ततथेई ।
[illegible] भेद भजावत तत धुक धुक कत कधुंगातक
धुंगाधिधि तकट थेई ।

१४-[illegible] ([illegible]) । रस०-रसपान करन ([illegible]) । १६-[illegible]
([illegible], [illegible]) । चवाव-चवाउ ([illegible]) ।

[१४] घेरा०=([illegible]) [illegible], [illegible] । जेरी=रस्सी । उरमेरी=
हृदय की [illegible] । [१५] आर०=[illegible] । लाजैं=लजाते लगता
है । [१७] धुंगाधि०=बोल हैं ।

हाव भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पियहि परम सुख देई ।
आनँदघन रस रंग पपीहा रीझ रीझ आँको भरि लेई ॥

मलार] (१८) [इकताल

तान-सुर तार सोँ जमाई है मोहन मुरली मैँ मलार ।
प्यारी के गावत अद्भुत रंग उपजत भेदनि तरंग बाढ़त
अंग अंग अनंग - सुख - समुद्र अपार ।
दृग-विलास सुख - विकास भौंहनि मधुर हास भास
पाननि रंजित अधर दसन विथुरे बार सिंगार-सार ।
आनँदघन रस आसार भीजत रीझत उदार
आपुस मैँ होत मालती-माल मरकत-हार ॥

कल्यान सुद्ध] (१९) [मूलताल

पहिरी चुनि चोंपनि सोँ सोँधे सँवारी सारी सूही ।
भाग सुहाग अनुराग रंग की ओप बढ़ी जु कछु ही ।
गोरे बदन पर अलक झलक आछी उर बर माला जाही जूही ।
आनँदघन पिय कैँ रस भीजी रीझनि भरत भट्ट-ही ॥

हमीर] (२०) [मूलताल

ब्रजमोहन की प्यारी तेरो भाग बड़ो ।
मुरली मैँ तेरे गुन गावत जाकी धुनि मोहे जंगम जड़ो ।
तेरे लाड़ की कहा कहियै जाहि लाड़त लालन अलकलड़ो ।
आनँदघन पै तो हित चातक सौतिन कैँ यह साल गड़ो ॥

१८–जमाई–बजाई (सतना), रचाई (वृंदा०)। मैँ–ने (लंदन)।
२०–लालन–लाड़न (सतना, वृंदा०)। यह–हियेँ (वही)।

आँको=गोद, अँकवार। [१८] तार=ऊँचे स्वर मैँ। भास=भासित होता है। मालती अर्थात् राधा। मरकत=पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण। [१९] सूही=लाल। ही=थी। जाही=जाती, चमेली। जूही=यूथिका। ही=हृदय। [२०] अलकलड़ो=दुलारा।

भैरो] (२१) [एकताला चलतौ

आए जु आए भोर, भलैं ही।
रसिक रँगोले छबीले मया करि सब निसि जागे
दृग अनुरागे पागे-रंग-तँबोर।
बैठी बलि हौं बिजन डुलावत स्रमित भए नए कुसल किसोर।
आनँदघन रस बरसे कित हूँ छाए हौ इहि ओर॥

कर्नाटकी कनरी ख्याल] (२२) [मूलताल

अब मेरी तुमसौं पुकार है हो,
ब्रजमोहन प्रान-अधार पुकार है हो।
कान खोलि किनि सुनियै हा हा सुंदर सुखद सुजान उदार।
दरस दुखारे नैन बिचारे तरसत बरसत साँझ सबार।
दीन पपीहन के आनँदघन आनि लोजियै वेगि सम्हार॥

सोरठि] (२३) [इकताला

राज म्हानै औलू आवै।
ऊभी ऊभी थारी बाट उडीकाँ थाँ बिन बिरहा अधिक सतावै।
म्हाँसी थाँके घड़ीँ टहलनी भँवर कमल-फुल-बास लुभावै।
प्रान-पपीहाँ रा आनँदघन थे निरमोही क्यूँ न बसावै॥

परज] (२४) [इकताला

बैरनि म्हाँरी बाँसली हे बीरा घड़ाँ दिन पाड़ै छै।
भला घराँ रा माँनसाँ नै काँनाँ लागि बिगाड़ै छै।

२१–कुसल–जुगुल (सतना)। २३–औलू–औल (वृंदा०)। फुल–री (सतना, वृंदा०)। क्यूँ–स्यौं (सतना)।

[२१] तँबोर=तांबूल। बिजन=(व्यजन) पंखा। [२३] राज=प्रिय। औलू=विरह की स्मृति। ऊभी०=खड़ी खड़ी। उडीकाँ=प्रतीक्षा करती हूँ। थाँ०=आपके बिना। म्हाँसी०=मेरे ऐसी आपके बहुत सी सेविकाएँ हैं। क्यूँ०=किसी प्रकार वश नहीं चलता। [२४] दिन०=दिन पारती है, बुरे दिन कर देती है। माँनसाँ=मनुष्यों को।

काँई करौं न क्यौं वस चालै घर बेळ्याँ नैं ताड़ै छै।
केड़ै पड़ी रहै आनँदघन छाँनी वात उघाड़ै छै॥

अड़ाना] (२५) [मूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-वसहि जू परे जू कान पियारे।
अनमिलता लैं मिलौं सुमिल से ये रँग ढँग नित नित जु तिहारे।
मोहमढ़ो वतियान गढ़त हौ सुघर साँच कैं साँचैं ढारे।
आनँदघन अचरज-झर लावौ उनएहूँ पैं निपट उघारे॥

ललित] (२६) [मूलताल

सब जग कान कान ही दीसै अब मेरी स्याम-रँग-रँगी दीठि।
रूप-उज्यारो सनमुख डोलै लाज दैं रही पीठि।
कैसो घूँघट कहति कौन सौं करौं क्यौंऽब सुनि सुघर वसीठि।
उघरि परी आनँदघन घमँडनि ऊतर दीजै नीठि॥

केदारो] (२७) [मूलताल

लालन लीजै जु फिरि लीजै वहै तान केदारे की मुरली मैं हाहा।
ललिता लेति बीन मैं चौंपनि हौं हूँ कछु मुख लै दिखराऊँ
कौन सरवरैं आहा।
या करि यौं गुन गाइ लेत हौं छकनि छवीली धुनि को लाहा।
रीझ लाज आनँदघन घमँडनि कियौ रास तैं रस-चौमासो
लियो हियौ भरि नाहा॥

बिहागरो] (२८) [झपताल

आज प्यारी पिय के मिलन की राति है।
खुलि खिलि सुभ सरस समय संजोगिनी रंग भरि अंग न समाति है।

२७—या करि—पाकरि (वृंदा०), थाकरि (लंदन)। २८—खुलि—कली (वृंदा०)। सरस—सरद (सतना, वृंदा०)। अंग न—अनंग (वृंदा०)।

काँई=क्या। वेळ्याँनै=घिरे हुए को। केड़ै०=पीछे पड़ी रहती है। छाँनी०=ढकी वात प्रकट कर देती है। [२५] मैन=मदन, काम। कान=कान्ह, कृष्ण। झर=वृष्टि। उनए०=छाए रहने पर भी अत्यंत उद्घाटित। [२६] सुघर=चतुर। वसीठि=दूती। नीठि=कठिनाई से। [२७] सरवरै=उपमा।

बहु विधि बिलास रस रास - सुख स्रम - पगे - जगमगे
जुगल बर संगम हितालि है।
आनँदघन घमँड केलि-संपति रमँड प्रीति रसमसनि सरसाति है ॥

रामकली] (२९) [मूलताल

रास करि करि सब घर आईं ।
भाईं साँवरे प्रीतम लाड़ लड़ाईं, अनेक भाँति अभिलाष पुजाईं ।
मनही मन मैं करति बधाईं, लीला ललित जहाँ की तहाँ पाईं ।
कौन सकै कहि भाग बड़ाईं, सुक सनकादिक वेदनि गाईं ।
अतुल प्रेम की रास रचाईं, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाईं ।
रसिक-मकुटमनि सीस चढ़ाईं, आनँदघन रसरंगनि छाईं ॥

रामकली] (३०) [चंपक

हौं झूठो तुम साँचे अहो हरि मोहूँ करौ किनि साँचौ ।
तिहारी सुदृस्टि सदा चाहत हौं जौ न पड़ै भ्रम खाँचौ ।
जग जंजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ वहु नाचौ ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै लगै नहीं दुःख - आँचौ ॥

गंधार] (३१)

आसा तुम्हैं जौ लागि रहै ।
कृपापियूष-पोष सौं तोपित अति लहलहनि लहै ।
हौ जिहि तुम अवलंब कलपतरु सौभग-बेलि वहै ।
चढ़ि गुन विटपनि लवढ़ि बढ़ै नित कितहूँ सिथिल न है ।
मन - थाँवरे बिराजौ थिर ह्वै तिहिं रस रासि यहै ।
फूलै फलै निरंतर माधव सोभा कौन कहै ।
बिसद बिसाल बितान आन तैं सिमिटनि फैलि गहै ।
झूमि झूमि झालरैं छबीली सीतल सौरभ है ।
चरन-मूल अनुकूल रोपियै या विधि चित्त चहै ।
निहचै वारि दीजियै चहुँ दिस चिंता-झर न दहै ।

[२८] स्रम=स्वेद । हितालि०=प्रेम करती है । रसमसनि=लगन, सरसता ।
[३०] खाँचौ=रेखा, बाधा । [३१] बितान=चँदोवा । आन=टेक ।

जिय की ताप हरौ आनँदघन करुन जानि उमहै ।
जीवन-धाम पाइ कै तुमसे क्यौं दुख - घाम सहै ॥

बिहागरो] (३२)

रावलि मैं आनंद महा है ।
कीरति कन्या जनी जसवती निज भागनि को लह्यौ लहा है ।
जसुमति करति बधाई चायनि मन ही मन हित कह्यौ कहा है ।
आनँदघन अभिलाप - लता पर रस-बरसनि की उमह अहा है ॥

रामकली] (३३)

आँखिनि गही अति अनखानि ।
पीठि दै मो तन तरकि तोरी तिनक लौं कानि ।
ह्वै गई औरै किधौं ह्वै चंचलनि वह बानि ।
मनै सपनेहू कहूं तनको नहीं पहचानि ।
निरखि स्यामसुजान - छबि जकि थकि छकीं मुसकानि ।
ललक-बस ताज पलक रस अँचवति बिसारि अघानि ।
तब न कछु समुझीं सहज रुचि रीझ की अररानि ।
अब दुसह घाता महा बिरहा बिच परथौ आनि ।
कौन सौं कहियै दसा सहियै सबै सुखदानि ।
मौन ह्वै रहियै हियैं दहियै दहकि अकुलानि ।
प्रान मन गति मति सुरति सौंपे सबै पर-पानि ।
दैन कौं दुःख ये निगोड़ी लै रहीं रहठानि ।
बसति ब्रज औरौ अँख्यारी रूप-जोबन-खानि ।
द्वैज ससि हौं ही करी बिन काज इन दुखियानि ।
जरतिं पुनि जल ढरतिं धरतिं न धीर पीर पिरानि ।
दरस - अंजन लखि लहैं आनंदघन सियरानि ॥

[३२] रावलि=राधा का ममाना । कीरति=राधा की माता । [३३] तिनक=तिनका । कानि=मर्यादा । अघानि=तृप्ति । अररानि=टूट पड़ना । पानि=हाथ में । रहठानि=वासस्थल । अँख्यारी=आँखोंवाली । द्वैज०=द्वितीया का चंद्रमा जिसे सब देखते हैं ।

हमीर] (३४) [चलती चरचरी

ये आनंदकंद बंदि लै हरिचरन ।
परम सुख की सींव दुख - समूह - दरन ।
सिव बिधि मुनि नारदादि रहत सदा सरन ।
मोद - पयोद रस - निवास प्यास - हरन ॥

नट] (३५) [चंपक

ऐसैं ही ऐसैं जात दिन बीते ।
स्यामसुँदर देखैं बिन भटकत डोलत लोचन रीते ।
बिरहा प्रबल हराइ हाइ हो नेम-धरम सब ही इन जीते ।
आनँदघन कब बरसैं दरसैं जु होहिँ चित-चातक चीते ॥

नट] (३६) [चंपक

अवधि टरी न आए ब्रजनाथ ।
कौन हमारो सुरति करावै मनहूँ रह्यौ रमि साथ ।
पंथ निहारत डीठि मंद परी रसना थकी गुन - गाथ ।
आनँदघन अब यह जिय आवति मारि फेरियै माथ ॥

तथा] (३७)

हमारी सुरति कब धौं तुम लैहौ ।
अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ ।
आनंदघन पिय चातक कूक - थकैं पछितायोई पैहौ ॥

सारंग] (३८) [मूलताल

अब मेरो तुमसौं लग्यौ है सनेहरा ।
ब्रजमोहन प्राननि प्यारे दृग - तारे रूप - उज्यारे ।
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा ।

३८–अब–अति (सतना, वृंदा०) ।

[३५] रीते=खाली । चीते=चैतन्य । [३६] मारि०=मारपीट कर इस सिर को उधर से फेर लूँ । [३७] कहा०=क्या करोगे । पछिता-योई०=पछताना ही हाथ लगेगा । [३८] छेहरा=विरह । मेहरा=वृष्टि ।

उघरि उघरि अब बरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा ।
आनँदघन दिन दूलह तुमहूँ बाँधौ जू पन - सेहरा ॥

ऐमनि] (३९) [मूलताल

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय ।
विषम वियोग जरावै जियरा सह्यौ न जाय ।
निपट अधीर पीर-बस हियरा गह्यौ न जाय ।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख कह्यौ जाय ॥

गौरी तिरवन] (४०) [चंपकताल

कब ह्वैहो हो नैननि के पाहुने मो हिय ह्वै लौ लागी ।
अँसुवनि जल सौं पखारि पायँ हौंहूँ ह्वैहौंगी सभागी ।
मन मेरो मँडरात रात दिन बनि अभिलाष बिकल बैरागी ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन ह्वै पुकार पन - पागी ॥

गौरी] (४१) [मूलताल

मेरी तुम्हरी लगनि अनसह न सहि सकैं बाम ।
राई लौन भरौं तिन आँखिनि जिनहिं न देख्यौ भावै यह धन-धाम ।
मोहिं तुम्हैं धुर को सँजोग - सुख थिर चिर रहौ अस्ट जाम ।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित तेई दुहेली दहौ दुख-धाम ॥

विभास] (४२) [चौताला

निपट निपुन लाल उज्यारे आए हौ इत उत झाँकत ।
दुरत न क्यौं हूँ रँगरैनि उघारत अपने सो बहुतै ढाँकत ।
चोरी करि चपरावत सौंहनि काहे कौं इतनो फाँफट फाँकत ।
आनँदघन पिय नागर आगर और गँवेली जु सबनि एक लग हाँकत ॥

पूरबी] (४३) [चरचरीताल

निपट निठुर तिहारी बानि दैया तुम यौं ही करी पहिचानि ।
ब्रजमोहन पै मोहे कहूँ न कहा जानौ अकुलानि ।

४१—दुहेली—डही लौं (लंदन) ।

दिन०=प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा । पन०=पन का मुकुट । [४१] अनसह= असह्य । धुर को=अत्यंत । दुहेली=अभागिन । [४२] चपरावत=बहकाते हो । फाँफट०=कूड़ा-करकट फाँकते हो, झूठी बातँ करते हो ।

हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची बिधिना यह आनि ।
आनँदघन ह्वै प्यासनि मारत प्रान - पपोहनि जानि ॥

परज कलिंगरा] (४४) [चरचरी

असाँनूँ चेटक लाइ गया की कराँ कुछ होर न सुझदा ।
साँवला सोहन मोहन गभरू इत बल आइ गया ।
चम्मड पई बलाइ बिरह दी किरथे हाइ गया ।
मुरली - तान सुनाइ आनँदघन बाण चलाइ गया ॥

सारंग] (४५) [चौताला

चंचल नैननि री मन मोह्यौ ।
मोहन मो तन जब हँसि हँसि जोह्यौ ।
अनियारी कजरारी कोरनि ह्वै छ्वै जियरा पोह्यौ ।
अब तनकौ धीरज न लगत हाथ अपनो सो मैं बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन चितवनि मिलाय चित - चातक हित हाइ
कित बिछोह-दुख दोह्यौ ॥

मालव] (४६) [मूलताल

दैया कैसैं भरिहौंगी, पिय को इक गावँ बिछोह दुख ।
सासु ननँद की डाटनि तनकौ मनहिँ न धरिहौंगी
अपनो भायौ करिहौंगी ।
वीथिनि बगर चवाइ चलि चूके कातैं डरिहौंगी ।
अति व्याकुल कौ लौं तरफरि तरफरिहौंगी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहा अब तौ गोहन परिहौंगी ॥

ललित ख्याल] (४७) [मूलताल

मैं अपनो प्यारो अंजन करिहौं ।
साँवरो रूप अनूप उज्यारो पलकनि आँकौं भरिहौं ।
कैसैं देखन दैहौं काहू अपनियौं डीठि इकौसैं धरिहौं ।
आनँदघन मिलि जीव जिवैहौं अति रसरंगनि ररिहौं ॥

[४४] होर=और, मार्ग । गभरू=प्रिय । बल=ओर । चम्मड०=शरीर में विरह की बला लगाकर । [४७] इकौसैं=एकांत में, अलग ।

मालव] (४८) [मूलताल

वन तैं ब्रजमोहन आवन की वेर भई है ।
गोधन-धूरि धूँधरी देखैं आँखिन जोति नई है ।
मुरली-धुनि सुनि प्रान जगे हैं विरह-व्यथा टरि दूरि गई है ।
आनँदघन पिय आगम उलही उर अभिलाप-जई है ॥

विभास ख्याल] (४९) [चरचरीताल

आई है दर्नीं दी तू सुनि राधे पिय के सँग सब निसि की जागी ।
झपि झपि आवत नैना तेरे ढुरि ढुरि आनँदघन-गर लागी रस-पागी ।
आगैं आव वलैया लैहौं अंगनि रंगनि की रुचि रागी ।
धुकि रहि री हौं विजन डुलावौं जिय की जीवनि प्रान-सभागी ॥

सारँग] (५०) [चौताला

गोकुल घर घर कान्ह-कहानी ।
कहि कहि सुनि वितवत निसि दिन प्रीति न परत वखानी ।
मोहन रस पीवतहीं जीवत चाह त्रिपा छिन छिन सरसानी ।
ब्रजजन - पन - पूरन आनँदघन जीवन - धन सुखदानी ॥

पूर्वी] (५१) [चरचरीताल

मेरो मन मेरैं हाथ नहीं कहा करौं री वीर ।
ब्रजमोहन के बिछुरन की निपट अनोखी पीर ।
कैसैं दुराऊँ हे सखी नैननि भरि आवत नीर ।
आनँदघन पिय के दरसे विन प्रान-पपीहा अधीर ॥

जेत कल्यान] (५२) [मूलताल

मोसौं अनबोलैं क्यौं वन पिय के प्राननि की
प्यारी हाहा किन वेग मनै ।

४८—गोधन—गोपन (लंदन) । सुनि०—सुनियत अति नियरे (सतना) । टरि—दुरि (वही) । ४९—झपि०-घुरि घुरि (सतना) । धुकि—झपि । प्रान—जान (वही) । ५१—सखी०-धीरज धरिहौं (संग्रह) । देखैं०—ब्रजमोहन जानी (वही) ।

[४८] गोधन=गाय । जई=अंकुर । [५१] वीर=हे सखी । [५२] मनै=मान जा, रूठना त्याग दे ।

मेरी सीख समझ री राधे सोच हियेँ अपनै ।
मेरो चातक ह्वै जाचत रस दै आनंदघनै ॥

सारंग] (५३)

हाइ हाइ दिन बीति चले ।
अब ब्रजनाथ साथ बिन सजनी दौं हराइयै जीति चलेँ ।
उनहूँ कौँ समझाइ सुनावै छाँडि प्रीति की नीति चले ।
उघरि बिसास कियौ आनँदघन तब क्यौं दै परितीति चले ॥

राग बिहागरो] (५४) [इकताला

राधा - मदन गोपाल की हौँ सेज बनाऊँ ।
दूध फेन फीको करै बर बसन बिछाऊँ ।
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सौँ तिन पर बगराऊँ ।
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झबा मुकतान की झालरैँ झुलाऊँ ।
सूची - गुन गस गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम - ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ।
एक उसीसौ दुहुँनि कै अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौँधो साधि कै सुख-बिबस बसाऊँ ।
मनि-चौकी ढिग राखि कै हित-सौँज़ सजाऊँ ।
रुचित उचित मधु - पान के भाजननि भराऊँ ।
लालबिहारिनि कौँ तहाँ रस - रीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप को अभिलाप पुजाऊँ ।
उमँग लाज - छबि छैलता दग देखि सिराऊँ ।
या बिधि निज करतूति को नीकैँ फल पाऊँ ।
समझि समय रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसैँ कहौँ उठि बाहिर आऊँ ।
द्वार झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।

[५४] मिलाइए पृष्ठ ३१२ पर की 'मनोरथमंजरी' से ।

टेरि लेहिँ तब लाड़िली - हित हुलसि सिहाऊँ ।
कछू कहैँ लगि कान सौँ सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपत्ति सखी मन माँझ दुराऊँ ।
नैन - सैन जोबन - छकी लखि भाग मनाऊँ ।
पान - पात्र मादक - रसैँ रुचतो भरि प्याऊँ ।
आपुस को रसमसनि कौँ क्यौँ बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौँ समझौँ बहराऊँ ।
जुगल बदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल झेल अनुराग की मति छकनि छकाऊँ ।
बीरी सरस सुगंधमै रुचि जानि पचाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौँ सकुचनि पहिराऊँ ।
औसर उसरि चल्यौ चहौँ कछु उकति उठाऊँ ।
आँचरु ऐँचि रहैँ प्रिया हौँ कछुक छुटाऊँ ।
मोहिँ भुज भरैँ छकनि सौँ जिय समझि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसबाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ।
परम चतुर रसरीति मैँ हौँ हितू कहाऊँ ।
महा मोद मानैँ भटू ज्यौँ ज्यौँ अनखाऊँ ।
अकथ कथा हित-रीति की हौँ कहा चलाऊँ ।
हौँ जानौँ कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ।
भाजि झरोखी ह्वै रहौँ कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सीँचनि प्रान को नाहीँ अरु हाँऊँ ।
मानि बधाई चाव सौँ मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपना ठौर हौँ मृदु बीन बजाऊँ ।
केलि - रसमसे मिथुन कौँ सुख-नीँद अनाऊँ ।
या विधि मनभायो करौँ जगि रैनि बिताऊँ ।
बड़े भोर अनुराग सौँ भैरवी जमाऊँ ।
अति रति-मतवारेनि कौँ नव प्रात जताऊँ ।
फिरि फिरि पट तानैँ तऊ बहुरयौ अहुराऊँ ।

निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ ।
आरस-भरी जँभानि पै चुटकीनि चिताऊँ ।
अलक-तिलक-सेवा-समय आरसी दिखाऊँ ।
बनै ठनै लाड़िलेनि कौं आँगन पधराऊँ ।
वारि वारि कै अपुनपौ अँगुरो चटकाऊँ ।
निरखि डगमगी डगनि कौं भुज गहि सम्हराऊँ ।
नित नूतन रसरीति की चित चौंप बढ़ाऊँ ।
तिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रसाऊँ ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौं कहा मिलाऊँ ।
सहज रँगीली जोट कौं जिय-बीच बसाऊँ ।
चित-चातक-आनँदघनै रस-परस रसाऊँ ॥

बिलावल] (५५)

मन मैलो न होइ सो कीजै ।
हा सुरसरि हरि-सुरस-रूपिनी गुन-गरिमा महिमा सुनि जीजै ।
सरनागतहि परमगति-दायिनि दीन-मलीन-हीन-सुधि लीजै ।
आनँदघन-हित बरस दरस पद-परस प्रबोध-प्रसादहि दीजै ॥

ख्याल भैरो] (५६) [मूलताल

जियरा मैं क्यौं समझाऊँ ।
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाहा ।
ठौर न पावै उठि उठि धावै गहि गहि ल्याऊँ ।
फिरि मुरझावै दैया री यह पीर निगोड़ी निपट सतावै कहाँ दुराऊँ ।
मेरे मन की कोई न जानै जैसैं हौं दिन रैनि बिताऊँ ।
प्रान-पपीहनि की यह बेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ ॥

ललित ख्याल] (५७) [मूलताल

अब तौ परि गयौ नैननि चसको, अगी ब्रजमोहन-दरस-तरस कौ ।
मनहूँ सँग लह्यौ उठि उनके रह्यौ नहीं मो बस कौ ।
मति गति सिथिल भई देखतहीं हियराँ धरधर धसकौ ।
आनँदघन पिय कान धरैं जौ प्रान-पपीहनि ससकौ ॥

[५७] तरस=तरसना । धसकौ=धड़कन । ससकौ=सिसक ।

सारंग] (५८) [चौताल

नीके रहौ जू प्रानपति तुम तिहारी लागौ हमहिं बलाइ।
कोटि कोटि जुग रोम रोम सुख अगनित फलहु फलाइ।
विधिना की सुदृस्टि नित नितहीं रिपुदल डारौ दलमलाइ।
आनँदघन बरसत हितु बनिकै कुसल-कथाहि चलाइ॥

गौरी] (५९) [मूलताल

कान्ह कान्ह रट लागी मेरी रसना क।
जब तैं बन गवनैं बनवारी तब तैं ये अँखियाँ औसेरनि
इक टक उतही झाँकैं।
मुरली-धुनि सुनिबे की साधनि प्रान बसेरो काननि घाँकैं।
वे आनँदघन इत चित-चातक को जानैं कित कौं छावैं
अरु कित ह्वै आवैं मारग सूधे बाँकैं॥

गौरी] (६०) [चपकताल

तनक सी मुरलिया पै बड़ो अचरज नाद।
जाहि सुनत सीठे लागत मीठे सब स्वाद।
ये गुन क्यौं न होहिं री सजनी लहति सदा हरिमुख-प्रसाद।
आनँदघन सब ब्रज रस बरसति सरसति प्रेम-प्रमाद॥

सुद्ध कल्यान] (६१) [चौताला

चटक कठतारनि की अति नीकी लटक सौं नाचै
मटक-भरयौ मौंहन।
कर-चरन-न्यास अभिनय-प्रकास मुख सुख-विलास
मन उरझै जुवरारी भौंहन।
प्यारी उघटति कंठ किलक आछी दसन-चिलक
आछी पिय के जौंहन।
आनँदघन रस रंग-घमँड सौं ललिता मृदंग बजावति
परन भरनि सी परति आवै गौंहन॥

६१—मौंहन—सोहन (सतना)। किलक—तिलक (लंदन)।

[५९] औसेर=व्यग्रता। घाँ=ओर।

कानरो] (६२) [चौताला

कौन हठ परी है हौं न जानौं प्रानप्यारो कब को हा हा करत ।
तेरो ज्यौं तनकौ कठोर कबहूँ न पायौ दैया अब किनि ढरत ।
हौं हूँ फिरि तोसौं न बोलिहौं मो बिन कहा धौं काज न सरत ।
आनँदघन अरु तोसो निठुर सौं पपीहा प्यासनि मरत
यह दुख क्यौं हूँ सह्यौ न परत ॥

अड़ान] (६३) [मूलताल

कान्ह तिहारी मुरली मैं कछु टोना है हो ।
खग मृग मोहित होत वहै गति हमहीं कौं ना है हो ।
ताननि बाननि भिदै न कैसैं जाको जीव रिझोना है हो ।
आनँदघन रस-प्यासनि बरसति बस यासौं ना है हो ॥

हमीर] (६४) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन मृदु मूरति गढ़ी ।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति जागि जड़ी ।
जौ लौं दुराय सकी तौ लौं निबही अब न दुरति बनी कठिन बड़ी ।
आनँदघन घमँडन उघरति तू हितू तातैं तोसौं कहति यह निपट अड़ी ॥

एमनि विहाग ख्याल] (६५) [चलती ताल

सुहागिनि राधा रानी ।
स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारो जाकैं बस अभिमानी ।
सोभा को सिर छत्र विराजै वृंदावन रजधानी ।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी ॥

६२–अब०–अबकैं न (सतना), अब क्यौं न (वृंदा०)। काज–काम (लंदन)।
६३–होत–होय (लंदन)। ६५–दुलारो–लाड़िलो (सतना, वृंदा०)।

[६१] कठतार=करताल, एक बाजा। न्यास=रखना। अभिनय=नाट्य। किलक=ध्वनि। चिलक=चमक। परन=मृदंग आदि बाजों के बोल के खंड। [६२] हा हा=दीनता-सूचक अव्यय। [६३] रिझोना=रीझनेवाला। [६४] पावै=समझे। जागि=जागरण अर्थात् अधिक। रति०=प्रेमाधिक्य से युक्त।

नट] (६६) [मूलताल

मोहि लियौ मन मेरो मोहन बनवारी कहा करौं मोहिं कछू न सुहाइ।
सोचति हौं दिन-रजनी सजनी हा हा बताइ कहा धौं करौं उपाइ।
सास-ननद की त्रासनि साँसनि भरि न सकौं जिय कलमलाइ।
आनँदघन बिन प्रान-पपीहा तरफत हैं कहा बनी है हाइ॥

धनासिरी] (६७) [मूलताल

तुम तन मोरी लगनि लगी है तुम बिन रहिल न जाइ रे।
घरी पल महिंकों जुग से बीतैं बेगि सम्हारौ आइ रे।
बिरहा महिंकों अधिक सतावै कछु न बसावै हाइ रे।
प्रान - पपीहा तरफत हैं आनँदघन होहु सहाइ रे॥

सारंग] (६८) [चंपक ताल

मोहन मुरलिया बजी है, हौं कहा करिहौं मोरी दैया।
मनहिं घुमावै मति बौरावै री बैरहि तेन सजी है।
लाज-लपेटी कहाँ लौं रहियै धुनि धीरज की करति धजी है।
आनँदघन रस त्रासनि प्यासनि अब कोऊ अबला न जीहै॥

सारंग] (६९) [चौताला

बंसी बजै ब्रजमोहन की बन महियाँ।
स्यामसुँदर जमुना-तट विहरत सघन कदम की छहियाँ।
मादक नाद सवाद महा छके घूमत खग मृग नग जहँ तहियाँ।
आनँदघनहिं निरखि सुरवनिता अभिलाषनि भीजी
भूलि पतिनि गरवहियाँ॥

बिहागरो] (७०) [मूलताल

जैहौं जैहौं री हरि पिय पै जैहौं मोहिं भिदी है मुरली-तान।
रोकी रहति कौन की अब हौं कहति पुकारैं खोलि कान।
घूमत मन अपनैं बस नाहीं लग्यौ है विषम अति विरह-बान।
प्रान-पपीहा पलैं तबहीं जब आनँदघन को करैं रस पान॥

६७-रहिल-रह्यो (सतना, वृंदा०)। ६८-मति-तन (सतना, वृंदा०)।
अब-अकि (सतना)।

[६७] महिंकाँ=मुझे। धजी=धज्जी, टुकड़ा। [६९] खग०=पशु-पक्षी और पर्वत।

विभास] (७१) [चौताला

बरनि मेरी रसना ब्रजमोहन की रसकेलि ।
अद्भुत सुख-सवाद को सार धरै किनि सौंति सकेलि ।
मधुर विनोद सदा फल जामैं फलित ललित अभिलाष-बेलि ।
आनँदघन - गुन-रूप - चातकी गसि नीकैं खुलि खेलि ॥

आसावरी] (७२) [चौताला

सुनहु कान्ह ब्रजबासी तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी ।
तुमहीं सौं मन लागि रह्यौ अब सब तैं भयौ है उदासी ।
ऐसी भाँति मरियत भरियत नित एक गाँव बसि भए प्रबासी ।
प्रान - पपीहनि के आनँदघन दैया निपट बिसासी ॥

टोड़ी] (७३) [चौताला

हरिचरननि की रज आँखिनि आँजौं मोहि यहै
अभिलाष रहै नित ।
कहा धौं पाऊँ कहा जतन बनाऊँ पाँख बिना तरफौं इत ।
को पावै यह पीर अटपटी चाह चटपटी चूर करै चित ।
पवन वीर तेरे पाय परति हौं आनँदघन पिय तन न
ढरकि जाहु हा हा करि हित ॥

रामकली] (७४) [चंपकताल

तिहारे कौन कौन गुन गाऊँ ।
इन अपने अनेक औगुन पै तुमहिं दयालै पाऊँ ।
सबही विधि सुधि लेत देत सुख हौं अचेत बिसराऊँ ।
आनँदघन उदार मृदु मूरति कृपा भरोसे छाऊँ ॥

सारंग] (७५) [मूलताल

मनमोहन की बँसुरिया, बँसुरिया बाजै विरह-भरी ।
सुनि व्याकुल प्रान होत हमारे रह्यौ न परत घर एक घरी ।

७१–किनि०–कित सचै (सतना)। गुन–रस (वही) । ७२–बिसासी–बिसवासी (लंदन)।

[७१] सौंति=संचित करके। गसि=कसकर। [७२] भरियत=दिन काटती हूँ। बिसासी=विश्वासघाती।

केसैँ केसैँ कुल-लाजनि वहिये कान्ह कुवँर सौँ वसाति न री ।
आनँदघन नित उमड़ि घुमड़ि कै हम ही पै लाएँ रहत झरी ॥

तथा] (७६)

तुमहि निरखि जौ प्राननि वारौँ ।
तौ पुनि उनहूँ पै वारनि कौँ कहौ कृपानिधि कहा विचारौँ ।
सफल होइ साँतनि सब दिन की एकै वेर विरह दुख टारौँ ।
सकृतै सुकृति-जनम-जस जीतौ तिनके कृतहि समझि हरि हारौँ ।
इहिँ अभिलाष लाख लाखनि विधि प्राननाथ गहि मौन पुकारौँ ।
सुचित उचित आवै सो कीजै आनँदघन चातक-व्रत धारौँ ॥

तथा] (७७)

भरोसैँ जीवौ आनि रह्यौ ।
वनिहै कृपा कियैँ हौँ हो हरि मैँ निरधार कह्यौ ।
जिहिँ तिहिँ भाँति रूप-गुन-धामहिँ कथत जनम निबह्यौ ।
त्यौँ अब तिनके मरम-परस कौँ सूछम समय लह्यौ ।
प्रान तनक सनमुख है यह पन दृगनि गह्यौ ।
हा हा हा फिरि हा हा सुखनिधि विरम न जात सह्यौ ।
नंदकुमार उदार चतुरमनि विषम वियोग दह्यौ ।
आनँदघन ढरि सुरस सीँचियै चित-चातक उमह्यौ ॥

तथा] (७८)

इते ढके अरु उघरे केते ।
कैसैँ कै कहि सकौँ रावरे मनमोहन अगनित गुन जेते ।
निकट दूरि लहि परत नहीँ कछु आनँदघन रस-मगन सचेते ।
हाइ हाइ विसवासी वालम कवहूँ तौ आँखिन सुख देते ॥

सारंग] (७९) [चौताला

वंदौँ तिहारे चरन - सरसीरुह ।
सिव-विधि-हृदय-सिंघासन-मंडन चिंताहरन कामदुह ।

[७७] साँतनि=संचय । सकृतै=एक वार मैँ ही । [७८] विरम=बिलंब । [७९] कामदुह=कामधेनु ।

कालिंदी कैं कूल केलिबस बिहरत बृंदाबिपिन कुंज-कुह ।
आनँदघन मन नैन प्रान मधि बसहु कृपा-गुन गन-गुह ॥

रामकली] (८०) [चौताला

सुमिरि मन हरिपद साँचौ रे ।
झूठैं राचि वृथा कित धावै डगमग खाँचौ रे ।
सुथरो सुथिर जहाँ नहिँ पहुँचत माया नाँचौ रे ।
कृपा-गुनहिँ गहि क्यौं न, ज्यौं न लागै भ्रम लाँचौ रे ।
अति अखंड आनँदघन दरसैं फुरति न आँचौ रे ।
तिहि रस सरसि होत किन कबहूँ जड़ रोमाँचौ रे ॥

सारंग] (८१) [चौताला

सब कछु पहिलैं ई दान कियौ हरि अब हौं अनचाहनिहौं चाहौं ।
एक तुम्हैं तुमहीं तैं जाचौं हौं इहिं जोग कहा हौं ।
कृपानाथ कोमल उदार नित बिसद बिरुद अवगाहौं ।
सुरस पपीहा ह्वै आनँदघन तिहिँ बल पनहिँ निबाहौं ॥

राग भैरव] (८२)

राधा हरि करत ललित केलि बेलि-कुंज मैं ।
आनँद - उन्मद रँगे अनंग - रंग - पुंज मैं ।
अंग अंग लपटि निपट रसबस लटपटत री ।
सुरत-समर-वीर-धीर रुपि न तनक हटत री ।
चाँपनि सौं लुभि चुभि तन विविध घात सहत हैं ।
अति सुमार मार - सार वारपार वहत हैं ।
कवचनि तैं उमगि निकसि निकसि भिरत हैं ।
कलित दलित बिगलित कच गिरि उठि उठि गिरत हैं ।
आनँदघन अद्भुत छवि दंपति - नखसिख फबी ।
रुचिरन रँगमगी धरनि जे - जुत बृंदाटवी ॥

कुह=अँधेरे में । गुह=गुहे, गुंफित । [८०] खाँचौ=बोझ । लाँचौ=दोष, विकार । [८२] मार०=काम के शस्त्र । वार०=आरपार हो जाते हैं ।

भैरव] (८३) [चौताला

कब सरस करिहौ या नीरस मन कौं, घौं।
दरसैहौ निज रूप अनूपम बरसि कटाछ सघन कौं।
तचनि रचनि अरु नचनि बहुत बिधि तिनतैं बचि
खचिहै तुम तन कौं।
जीवन-धन उदार आनँदघन जाचत चातक-पन कौं॥

सारंग] (८४) [चौताला

कौन जानैं री या मुरलिया मैँ कहा भेद बजै।
तनक भनक स्रवननि मैँ परतहीं मनु न रहत ठौर
लोक-बेद-कुल-कानि तजै।
तन की सब सुधि भूलि जाइ कोऊ कैसैँ लाज के साज सजै।
हा हा करि पायनि परि को आनँदघन पियहि नैंक बरजै॥

गौरी] (८५) [इकताला

हमारी सुरति करौ ब्रजनाथ।
तुम बिन हम अब निपट दुखारी जैसैँ मीन बिन पाथ।
निसि दिन गाइ गाइ जीवति हैँ सबरेई गुन - गाथ।
आनँदघन रस बरसि पोषियै प्रानपपीहा साथ॥

रामकली] (८६) [मूलताल

अब कछु बाधा नाहिँ रही।
मदन गुपाल मिले सुखदायक साधा सबै लही।
रोम रोम अति हरष भयो है जीवन सफल सही।
आनँदघन या रस की संपति कैसैँ परति कही॥

रामकली] (८७) [चलती इकताल

मैँ स्याम दरस पायो, भयो अब सब बिधि मनभायौ।
बहुत दिन तैँ लगी हुती आसा जिय गाढ़ी।
....।
सुंदर बदन सुखसदन की उपमा नहिँ दूजी।

[८३] तन=ओर। [८५] पाथ=जल।

प्यासे नैन प्राननि की साधा सब पूजी।
महा मोहन मधुर मूरति सुख-समूह सरसै।
मुसकि चाहनि मो पर अनुराग-रंग बरसै।
दृस्टि-मिलनि अंतर-खिलनि अंग अंग छाई।
देखि सखी मो तन आनँदघन - सरसाई॥

रामकली] (८८) [झपताल

नंदनंदन - चरन बंदन करौं हौं।
राधिका-नव-उरज-राग-रंजित ललित अति
रस - वलित क्यौं कमल सरवरौं हौं।
रुचिर दच्छिन सुअँगुठा - मूल कूल क्रम
जौ चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं।
अरध पद लौं सुभग तरजनी - संधि तैं
सूछम सुरेख कुंचित चित धरौं हौं।
मध्यमा - तर मंजु कंज सपताक धुज
दृग-अलि तहाँ हिय कहत फरहरौं हौं।
छिगुनी-तरैं चारु अंकुस कुलिस लसत
मन-गज गरव-गिरि थकनि अनुसरौं हौं।
मंगल सदन चारि साथिये इन तरैं
जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं।
तिन मधि बन्यौ अस्टकोन सब सिधि-भौन
दाहिने वल वाम करि भव तरौं हौं।
वाम अभिराम अँगुठा-मूल संख सुभ
मध्यमा - तरैं नभ निहारि न टरौं हौं।
तिन द्वै तरैं धनुप-पनिच चित चढ़ि रह्यौ
तातर सु गोपदन नैंक बिसरौं हौं।

८८—सदन-कलस (वृंदा०) घट०—घट चँवर सुधासर (सतना)।

[८८] सरवरौं=उपमा दूँ। कूल=पास। क्रम=क्रमशः। कुंचित=टेढ़ी।

तिहिं तर त्रिकोन घट चारि सब रसधाम
अरध बिधु मीन दुति किहिं पटतरौं हौं।
कहन कौं वाम पै दाहिनो मोहिं नित
हित चित्त लगाइ रुचि पानि पकरौं हौं।
उदित ससि सरद के कोटि नख-पाँति पर
वारि भुवन - चकोरनि दुख दरौं हौं।
सुढर गुलफनि पीठि तकि डीठि थकि रही
मनसा रढ़ति पूतरिनिहीं अरौं हौं।
वृंदा बिपिन अवनि सीस - आभरन जुग
गति कलाधर रास - रसिक ररौं हौं।
बिहरत सुजान प्यारी - सहित जमुन-तट
प्रानपट आनँदघन बिस्तरौं हौं॥

तथा] (८९)

राधिका - चरन चंदन करि बखानौं।
पाइ जिन बल नंदनंदनहिं हाथ करि
चैन भरि नैन मधि देहुँ थिर थानौं।
वाम अँगुठा मूल जव चक्र जगमगत
हिय हरित-करन दल - दुख-दलन जानौं।
अरध पद लौं ललित तरजनी - संधि तैं
सूछम सुरेख अनिमेष उर आनौं।
मध्यमातर - कमल धुज अमल दुति जमल
मन - मधुप सुखसदन प्रान - धन मानौं।
तिन तर पुहपलता लहलहति महमहति
हित फलित ललित चित-थावरैं ठानौं।
छवि-वनी छिगुनी निकट करी - वसकरन
इतर मदमत्त मन करखन प्रमानौं।

थकनि=रुकना। साथिये=स्वस्तिक। बल = सहारे। वाम०=संसार को बाँयाँ करके, संसार से विमुख होकर। पनिच=प्रत्यंचा, धनुप की डोर। [८९] जमल=दोनों (कमल और ध्वज)। थावरैं=थाले में। करी०=हाथी को वश

पुनि चक्रतर रुचिर वलय अरु छत्र - छबि
कबि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं ।
अरुन एड़ी उदित अरध बिधु मुदित लखि
पिय चख - चकोर जुग चौंप चित सानौं ।
यौं सुमिरि बाम पद केलि - लीला - रसद
अति बिसद मति तिहिं प्रसाद पहिचानौं ।
दुतिय एड़ी मकर कामधुज स्याम तन
रति - समर - समय फरहरनि गुन गानौं ।
तापर मनोरथ सुरथ अरु बिलास गिरि
तिनि इतै उतै गदा सकति करि ध्यानौं ।
अँगुठा सुमूल सुभ संख सोभित महा
सारदा - ओज-हित चित-बिधि बिधानौं ।
पिय - जिय - निवास बँदी छिगुनियाँ तरैं
तातर सुकुंडल निरखि लजत भानौं ।
रासमंडल - रसिक बरदान देव विमान
निधि - पोत चित चाहत लुभानौं ।
मनसा - सिंघासन सुदेस आनंदघन
तापर बिराजि सुचि रुचि बनक बानौं ॥

(६०)

रसिक राधारमन रमत रसरास रचि ।
सरद - रजनी उदित चंद लखि मुदित मन
अगनित आभीर-बनिता-संग रंग सचि ।
रूप - लावन्य गुन - माधुरी अमित अति
मति तोम-रोम-रचना कहि न सकति पचि ।
जोरि कर मंजु मंडल मनोहर गतिन
नव जतिन जव-सहित लसत सब सुमिल नचि ।

में करनेवाला अंकुश। रसद=रसदायक । सकति=शक्ति, बर्छी । बँदी=बिंदु । सुदेस=सुंदर । [६०] आभीर=गोप । तोम=समूह । जति=यति,

गान कल तान परिमान बंधान जुत
हरत हिय कहत सुर सुद्ध संक्रमन जचि ।
मानत न तृपति पुनि पुनि स्रवन - पुट पूरि भूरि
जीवनमूरि घुरि तृपित प्रान अचि ।
सुखिर आनंदघन जंत्र संचरित रव-संकुलित
सुर चकित थकित चित तुमुल मचि ।
तरुनि तिनकी तिहिँ अतन-तमक-चमक-वस
द्रवित हिय होति अभिलाप आरति नित नचि ।
आनँद-पयोद सु विनोद-आसार-चल मधुर
रसनिधि तरंगनि विराजत उगचि ।
है मकर-मीन मन-नैन या मधि पगहु लगहु
उखिल अखिल एक इहिँ परचि ॥

कानरो] (९१)

हरि भजि लै मन मेरे भाई ।
हरि भजि निरमल भए विकारी अब तेरी हू वारी आई ।
वाद-सवाद-वस पर्‌यौ तर्‌यौ तू तहाँ न तनको तृपा सिराई ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि लहि असेप सुख-सीतलताई ॥

केदारो] (९२) [झपताल

कृस्न-गुन गाइ लै रे मन गाइ लै, ऐसैं रसना लड़ाइ लै ।
सकल स्रुति - सार अविकारकारी महा मंगल सुधाहि अँचाइ लै ।
जीवन-अधार धारन करि सुधरि भलैं अंतर निरंतर वसाइ लै ।
चातक-निचय - चौंप-विवस है एकरस आनँदघनहि वरसाइ लै ॥

तथा] (९३) [चंपक

हरि नाम लै रे लै रे लै मन हा हा ।
जीवन जनम सफल ताको यह लाहा ।

विराम । जव=तीव्रता । पुट=दोना । घुरि=लीन होकर । अचि=आचमन करके । सुखिर=खोल । अतन०=काम का आवेश । आसार=वृष्टि । उगचि=बढ़कर । उखिल=अजनबी, अपरिचित ।

सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदनि गाहा ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहनि प्यावैगो कब आहा ॥

बिलावल] (९४)

गृह-सुख साध्यौ नव-बिधि सेयौ देखौ हरि मो जोग नयौ ।
इत तैं गयौ न उत लौं पहुँच्यो बीच बीच हीं भरमि छयौ ।
लखियो जू रिझवार रसिकमनि अब तौ तुम हित भाँड भयौ ।
हँसौ लसौ बरसौ आनँदघन जीवन जस है उनयौ ॥

(९५)

अब तुम तब तुम जब तब तुमहीं तुम बिन कब हौं हौ तुम हौं ।
यह दुरि उघरनि कहौ कहाँ तैं सीखे तुम्हैं तुम्हरी सौं ।
आपु बीच परि नाँव और धरि करत अटपटी बातनि कौं ।
आनँदघन सुजान दृग-तारे लखी न परति अनोखी गौं ॥

सारंग] (९६) [चौताला

पुरान पुरुष परमेसुर, ग्याँन दाता बिग्याँन बिधाता
मोहू पै ढरियै परम गुर ।
अपार हौ अति दीन हौं बिचारि लेहु उर ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन होत आए हौ धुराधुर ॥

तथा] (९७)

एक गाँव कैं बास बसियत है हो पै और सब लेखैं बिदेस ।
कौन कौन भाँति जिय समझाऊँ पाऊँ नहिं धीरज को लेस ।
आनँदघन सुजान ह्वै सुरति बिसारि दई दैया मरियत याही अँदेस ॥

तथा] (९८)

अहो प्यारे कितै गई तिहारी वह ढरकौंहीं बानि ।
पहली चौंप चाड़ सुधि करि देखौ परेख्यौ यहै अबै सब छाँडी पहिचानि ।
मृग पारधी की गति कहा कीनी नाद-रस प्याइ बान मार्‌यौ तानि ।
आनँदघन पन राखि प्रान तजि सनमुखहीं रह्यौ बड़ोई लाभ बड़ी हानि ॥

[९४] भाँड०=अप्रतिष्ठा हुई । [९५] हौ तुम०=तुम हो तो मैं हूँ । सौं=शपथ । गौं=घात । [९६] धुराधुर=आधार । [९८] पारधी=व्याध ।

तथा]   (९९)

बालम गँवन कियौ सो भलैंई कियौ पै क्यौं गए दै अनकही।
मरति जरति निसिद्यौस परेखैं जु मन की मन ही मैं रही।
ऐसी तुम्हैं जो बनी हो बिसासी तौ बस कौन हम मौन गही।
भूलैं भाइ सुधि लीजौ कबहूं कहूँ आनँदघन बिनती यही॥

तथा]   (१००)

डोलति घर आँगन बिलखौ सु न बोलति पिय कैं बिरह भई पीरी।
पल पल तपत उसासनि औसति जाति गात परि सीरी।
इत उत चितवति निसिदिन औधि-आस-दृग लगि रही री।
आनँदघन पिय कैं मिलन आतुर यातैं चाहति होन भँभोरी॥

तथा]   (१०१)

तुमसौं बिनती करियै हो किहि भाँति जाहि तुम मानौ सो
मोहि देहु गुपाल बताइ।
दरनि छबीली अपनी ओर ताही त्यौं तकत दिन राति बिहाइ।
चित चातक की प्यास भरे सुदरस रस-बरसौ आइ महा
आनँदघन छाइ॥

तथा]   (१०२)

अब तू दै री दृग अंजन।
कब की हौं आई हित बिनती करि पठाई अरबरान है हैं मनरंजन।
अलप ततो गुन तलप रचल पीत पट सौं पौंछि पौंछि नवदल कंजन।
आनँदघन सुजान रसनायक कोटि-मदन-मद-गंजन॥

(१०३)

लगौंहैं मनहीं औरै होत।
हैं जलचर बिचरत अनेक पै आमिल मीन-गति-गोत।
जंत अनंत उलूक आदि दै देखत चंद-उदोत।
कछुक चोर की चाँप न्यारियै अनल सुधा को सोत।

[९९] अनकही=मौन। परेखैं=पछतावे मैं। [१००] भँभौरी=एक पतिंगा, जुलाहा। [१०२] अरबरान=व्यग्रता। तलप=सेज। [१०३] जंत=जंतु।

जहाँ जगमगत प्रेम - दिवाकर तहाँ नेम खद्योत ।
आनँदघन रस तृपित पपीहनि कहूँ अमी तेँ ओत ॥

(१०४)

मोँहि भरोसो है हरि - हित को ।
जाहि सुमिरि बिसरै चित-चिंता सुभदायक नित नित को ।
ता कर सौँपि लोक-परलोकहि तज्यौँ सोच उत इत को ।
विधि निषेध जंजार निबेरयौ अब धौँ साँसौ कित को ।
तित को जगनि जानि सुख सोऊँ बढ़ौ आसरो जित को ।
वृथा नीँद उखनीँद मचाऊँ सो रखवारो वित को ।
सदा दयाल सुभाव सँभारो सागर कृपा अमित को ।
आनँदघन चातक-मन पूरन भयौ भावतो चित को ॥

पूरिया] (१०५) [मूलताल

तूँ नैक दरसन दै रे दै निरमोही नैन तपत हैँ आज ।
कहा करौँ कछु बस न चलत मेरो वैरिनि भई यह लाज ।
तन मन की सुधि भूलि जाति सब तनक सुनत बन बंसी-बाज ।
आनँदघन इन प्रान-पपीहनि रटना हीँ सौँ काज ॥

हमीर] (१०६) [चंपक

तेरी सूरति देखिबे कौँ मेरे लालची नैन भए ।
तरसत बरसत रहत रैन दिन ऐसी चाह छए ।
एहो कान्ह तैँ कहा कीनी जु दिखाइयौ न दीनी अए ।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा भरोसे ही रटए ॥

विहागरो] (१०७) [चंपक

हरि-मुख देखन की सु माई मेरी अँखियनि बानि परी ।
लोकलाज सौँ काज कहा रह्यो अब यह जानि परी ।
गुरुजन-सिख सुनि सुनिबे की उर अरसानि परी ।
आनँदघन इनसौँ प्रान-पपीहनि हिलगनि आनि परी ॥

अमी=अमृत । ओत=चैन, आराम । [१०४] साँसौ=संशय, संदेह । उग-नीँद=उगढ़ी नीँद, उचटी नीँद । वित=धन ।

[चौताला

(१०८)

एमन]

सकुचनि सौंहँ निहारि न सकियै।
लालन सनमुखहूँ बड़भागिनि गुरजन-डाँट निसकियै।
ओट भएँ मुरझानि होत सब अंग सिथिल ह्वै थकियै।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहनि लगियै रहति टक जकियै॥

[चंपक ताल

(१०९)

विभास]

तुम देखौ री मुरलिया तानिन रंग करै।
सुनी अनसुनी कैसैं कीजियै सुधि बुधि तुरत हरै।
प्राननि पैठि पैठि निकसति ऐसी को जो धीर धरै।
विरह-ताप मेटति आनँदघन बस करि रसहि ढरै॥

(११०)

तथा]

मोहि जगाइ जगाइ जागै री वाके जिय की न जानियै बात।
इक टक नैन लगाइ लखै हौं लजाइ रहौं नकवानी भई इहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिनिहीँ जु होत प्रभात।
अति गति कहि न परति आनँदघन इत आवत उत जात॥

[मूलताल

(१११)

विभास]

चितवनि अरसीली बोलनि सु रसीली डोलनि ढीली ढीली।
पिय समीप निसि-सुख की झलक मुख बिथुरी अलक अरु लगी
ललित कपोलनि पीक-लीक छबीली।
अँग अँगरानि जँभानि जानि झुकि मरगजी सारी अति सु बसीली।
मुकुर देखि अवरेखि मनहि मन आनदघन कछु भौंहनि होति हसीली॥

(११२)

तथा]

मन उरझै सुरझत नहिँ क्यौं हूँ चलत भवन पग पड़त पिछौंडे।
इक आरस-सिथलानि और अकुलानि बढ़ी यातैं ठठुकि
ठठुकि फिरि फिरि चितवत हित-बानि-कनौंडे।

[१०८] डाँट०=फटकार से नहीं डरती। जकियै=धुन ही। [१११] मरगजी=मैली, सलवट पड़ी। बसीली=सुगंधित। अवरेखि=विचार कर।

पुनि ढिग आइ अंग भरि भेंटत मगन होत अति रति-रस औंडे।
बिछुरत रहत न बनति आनँदघन सुधि आवत जब गुरजन भौंडे॥

बिभास] (११३) [चौताला

तेरी बलाय लीजै बार बार तोहि कीजै आँखिनि पुतरी।
कान ह्वै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी।
वारौं सिंगार आज की छबि पै हा हा न जाहि कहूँ इत उत री।
आनँदघन हौं ही देखौं न देखौं पै रहि न सकौं अद्भुत री॥

तथा] (११४)

सब रैनि जगाई री प्रानेसुर यातैं दृगनि ललाई छाई।
अंगनि आरसताई लेत जँभाई लागत मोंहि सुहाई।
अंतर की रस-सरसाई नीकैं देति दिखाई काच-घटी की रँगहाई।
रोमरोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरखि सु उलही है हरख-हरयाई॥

तथा] (११५)

ए तेरी आँखिनि मैं अनखानि भरी अरु बोलनि हूँ लै ओखौ।
मेरेइ नैन स्त्रवनन ह्वै ह्वै उपजावति प्राननि पोखौ।
मोहि तऊ नीकी लागति ज्यौं ज्यौं होति रूखी रचि रोपौ।
आनंदघन सनेह-चिकनाहट पै ढुरत नहीं अति चोखौ॥

तथा] (११६)

रस की बतियाँ करिकरि रैन बिताई री प्यारी दृगनि अरुनई भई आछी।
अति सुख लूट मची पिय सौं मिलि काहे कौं मोतैं दुराव करति
तेरे अंग अंग देखियत साछी।
आनन ओप अनूप बढ़ी त्रिभुवन तरुनीनि करति पाछी।
आनँदघन जान रसिक रसबस ह्वै तू नखसिख अति नीकी बिधि काछी॥

तथा] (११७)

तैं रस-बस करि लीनौं री प्रानप्यारो न्यारो नेकौ होन न चाहत।
तोही सौं हिय जिय हिलगनि बगोबगी पलपल छिनछिन जु उमाहत।

[११३] औंडे=गंभीर, गहरा। भौंडे=भद्दे। [११४] रँग०=रंगीनी। हरयाई=हरियाली। [११५] ओखौ=टेढ़ापन। चोख=नीखापन। [११६] साछी=साक्षी। पाछी=पीछे। काछी= ठाट ठटा।

घर आँगन वन वीथिनि जित तित तेरोइ रूप दृगनि अवगाहत।
धनि धनि भाग सुहाग राग आनँदघन सब ब्रज सु सराहत॥

विभास] (११८) [इकताल

साँवरे संग रंग रैनि-रस विलसी कहति नैन बैननि बनाइ।
अधर अरुनई नई भई कछु मुख सुख-ओप चढ़ी सुभाइ।
अँग अँगरात जँभाति जाति झुकि लड़कि लड़कि बोलति लजाइ।
आनँदघन प्राननि प्यारी या छवि की मोहिं लागौ बलाइ॥

विभास] (११९) [झपताल

रसमसे नैन अरसौंहँ नलौंहँ सिथलौंहँ।
झपकौंहँ मृदु हँसौंहँ सौंहँ जौंहँ कछु लजौंहँ
मन मौंहँ घूँघट मैं तिरछौंहँ लसौंहँ।
सुभाव चपलौंहँ कौंहँ उमगौंहँ सनेह चिकनौंहँ
अनखौंहँ लड़ौंहँ।
कटाछ बरसौंहँ सुसील दरसौंहँ आनँदघन प्राननि बसौंहँ॥

विभास] (१२०) [चौताला

मैं तुमसों केतियो बार कही पै तुम तनको नाहिं गही।
ब्रज को लोग सहज ही चवाई इत उत ढुकि लेत हैं सोध यही।
तुमहि न सोच कछू काहू को लाज निदरि नित ही निबही।
आनँदघन जिय-सौं जिय मिल्यौ तो अब कहा कसरि रही॥

(१२१)

जिनके मन सुविचार परे।
गुरपद - परम - पुनीत - प्रसादहि पाइ प्रेम आनंद भरे।
जग तैं विरल विवेक-देस बसि देखन कौं तित रहत ररे।
खान पान परिधान आन विधि अनासकत ह्वै करम करे।
साधारन सुभ असुभ न जानत नित निहचय रचि सोच टरे।
सावधान अति बिरह - बावरे मिलि सुरूप इहिं ढार ढरे।
अमल अनूप विदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति विचरे।

[१२१] ररे=रटते रहते हैं ।

तिनके पद पावन की रज मैं अखिल लोक - उपकार धरे ।
कृस्न-रसासव अनिस पान तैं घूरन पूरन काम खरे ।
तत्वबोध की बलक छलक बस ढकी गाँस ब्यौरनि उघरे ।
कब धौं मिलैं होइ हमहूँ वे संत - कलपतरु कृपा - फरे ।
सोभामूल फूल - सुख बरसत सरसत छाया हरे हरे ।
सुभ सीतल सुदृस्टि धारावलि सींचैंगे उरदाह - बरे ।
आनँदघन अमोघ रस-दायक प्रान रहत अभिलाष-अरे ॥

(१२२)

अब तौ वह गह मोहि बतैयै ।
जिहिं गह गहे परौ पुरुषोत्तम हाहा कब लौं छलनि सतैयै ।
दुरि कित रहे उघरि नाचे पै या विधि दीनहि कहा दतैयै ।
करि किन लेहु आपनो संगी बहुरंगी लखि लजहु ततैयै ।
अवसर गए कौन जन स्वामी ढीठ्यौ दै जदुनाथ जतैयै ।
आनँदघन जग सुजस छाइ कै पतित पपीहै निपट न तैयै ॥

सारंग] (१२३) [चौताला

कैसी नीकी सीरी सरूप पत जमुना तीन तन वारी ।
तहाँ बैठि मधु पियत जियत अधरनि सौं मिलै रसिक राधा छके बनवारी ।
अति रसमगन उछट नहिं मानत कबहुँ होति हाहा मनवारी ।
दंपति चौंर केलि आनँदघन भाँतिनि अन अन वारी ॥

तथा] (१२४)

अनखनि सूधियों न बोलैं ।
डीलियें डगनि डरनि जोबन - छटा कटि पै टेढ़ी डोलैं ।
नैनेहि मुख मोहूँ सौं दुरावति ऐसी प्रकृति कित पाई अहो लैं ।
आनँदघन की रमँडनि घमँडनि उघरनि सब अंगनि
पानिप ओप अतोलैं ॥

घूरन=घूर्णित, मत्त । गाँस=द्वेष । ब्यौरनि=विवेचन । उघरे=प्रकट होने पर ।
[१२२] गह=पकड़ । दतैयै=डटे रहने को विवश करते हो । ततैयै=चालाक को ।
न तैयैं=तपाओ मत । [१२३] उछट=उचाट । अन=अन्य या अनु=बारंबार ।

तथा] (१२५)

ये नीके नीके सगुन भए।
लालन नियरे सुनि हियरे तें सब दुख दूरि गए।
उरज उमँगि सरकत बँद तरकत फरकत आगम अंग अए।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन जस रस लै उनए॥

बिभास ख्याल] (१२६) [चलती

प्यारे तिहारे मिलिबे की औसेर, लागिये रहति मो जिय मैं।
तरसत नैन रैनि दिन बरसत दरसत जग अँधेर।
कीजै कृपा लीजै जिवाइ दीजै दरसन इक बेर।
व्याकुल महा कहा करौं क्यों भरौं परौ बिरह कैं घेर।
प्रान-जीवनधन आनँदघन पिय सुनहु कान दै टेर॥

तथा] (१२७)

निमाँनियाँ तुम्क बिना असी हुइयाँ।
दरस दिखावीं आनि जिवावीं नातर एवी मुइयाँ॥

भैरो] (१२८) [झप

बिरुदै सुमिरि बेसम्हारनि सम्हारौ।
अकारन करुना, कहा करनी निहारौ।
सुकृती-कुल ह्वै मिलौं तुमहि तौ कहौ या बिधि कृपानिधि पलै पन तिहारौ।
संकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रबल मतवारौ।
ताप आतप तलफि बिलखि मुरझात जननाम आनँदघन कौन हित धारौ॥

राग बिभास] (१२९) [चौताला

डगमगे चरन धरत हैं दोऊ आरस-बस निसि जागे।
कुंज भवन तैं उठे भोर ही परम सुरति-रस-पागे।
बिथुरे चिहुर जगमगे आनन गरबहियाँ दियैं अति नीके लागे।
तन मन आनँदघन घमँडनि लखि लोचन भए हैं सभागे॥

१२७–हुइयाँ–कुइयाँ (सतना)।

[१२७] निमाँनियाँ=अमानी। [१२९] चिहुर=केश।

विभास] (१३०) [चौताला

कछू रह्यौ अंजन फैल्यौ ती कौ कहूँ कहूँ लगी है कपोलनि पीकौ।
हौं वारी फिरि वारी राधे या बानक पै सुखदायक मो जी कौ।
छूटे चिकुर कंचुकि-बँद टूटे अधर दसन छत है अबही कौ।
भाग सुहाग घमँड आनँदघन बरसत सरसत पोप पपीहा पी कौ॥

राग देशकार] (१३१) [चौताला

बलिहारी हो कान्ह न पाई परति अटपटी बानि।
मन और मुख और ठौर ठौर ठानत डोलत पहिचानि।
ब्रजराजा के कुलमंडन हो तुमहि कौन की है हो लाज कानि।
आनँदघन पिय रस-प्यासनि हमहूँ सौं करत आनि सरसानि॥

कानरी बिलावल ख्याल] (१३२ [मूलताल

सालूवाली मुरलीवाला तँडा यार है।
घरी घरी आवदा घुम्मर पाँवँदा विसर गया घर-बार है।
तुझ बल तकदा रहि नहीं सकदा लग्ग नवेला प्यार है।
मिहिर नजर मुडि वेखनी से ये आनँदघन दिलदार है॥

सोरठ] (१३३) [चौताल

मेरी बानी मैं बनवारी बसौ, एक मुखी करि गुन गसौ।
अमद अलाप अलपौ ना होइ सिथलताई तजि नीकैं कसौ।
मुरली-सुर सौं समोइ लीजियै ज्यौं गावैं रधिका-सुरस-जसौ।
आनँदघन हित सरसौ बरसौ रोइ कहत हौं कहा धौं हसौ॥

परिया कल्यान] (१३४) [चंपक

गोवरधन धरिबौ खेल कियौ हो।
नंद महर के कुँवर कन्हैया कठिन बात कैसे कहि आवै
बहुविधि रत्न लै दियौ हो।
इंद्र बापुरो स्वर्ग खिसायौ निज ब्रज नीकैं राखि लियौ हो।
बरन नरनि अचरज आनँदघन सींच्यौ हितनि हियौ हो॥

[१३०] ती=स्त्री, राधा। अबही०=टटका। [१३२] सालू=लाल कपड़ा। तँडा=तेरा। घुम्मर०=चक्कर काटना है। बार=द्वार। बल=ओर। मिहिर=कृपा। मुडि०=मुड़कर देखना।

रामकली] (१३५) [चंपकताल

गाइ लै री रसना गुन गुपाल के।
गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।
राधारमन रसिक रससागर नागर नवल सुनयन विसाल के।
आनँदघन व्रजजन - जीवनधन परम - प्रीति - पन - पाल के ॥

गौरी ख्याल] (१३६) [मूलताल

तुमहीँ हो हरि गति मेरी ।
सबै ठौर सब भाँति सब समय पति मेरी ।
तुमहीँ मैँ तुमतैँ निहचल रहौ मति मेरी ।
आनँदघन चातक लौँ राखौ रति मेरी ॥

कनरी ख्याल] (१३७) [मूलताल

सलोने स्याम सौँ मन लाग्यौ री ।
गनत नहीँ कुलकानि तनकहूँ अब ऐसो अनुराग्यो री ।
छिन पल कल न धरत बिन देखैँ उनहीँ के पन पाग्यौ री ।
आनँदघन हित भयो है पपीहा और सबै कछु त्यागौ री ॥

कानरी दरबारी (१३८) [चौताला

जमुना सरस सिँगार हिये मैँ बाढ़त तेरो रूप निहारि ।
तरल तरंगनि अति रति रंगनि भैँटत स्यामहि सहस भुजानि पसारि ।
मंजन करत कान्ह मनरंजन पै परत परम प्रीति पन पारि ।
नवघनमै आनँदघन घमँडनि अदभुत रस - वढ़वारि ॥

राग हमीर] (१३९) [चंपकताल

मोरचंद्रिका मोहि चाहि रहै हौँ हूँ वाहि निहारौँ ।
चकित डीठि करि लेत मेरियौ घूँघट कैसैँ सुधारौँ ।
व्रजमोहन की नई तरुनई रंग भरी छवि पै कहा वारौँ ।
रीझ रमँड आनँदघन घमँडनि प्रान - पपीहनि पारौँ ॥

१३७—पन—रस (सतना)। भयौ है—प्रान (वृंदा०) ।

राग बिभास] (१४०) [इकताला

लाग्यौ जी अब तौ मन तुमसौं कैसें हूँ करि होत न हातौ।
सुनहु कान्ह अँखियनि के तारे निपट कठिन है नेह को नातौ।
मोहन मूरति देखि लुभानौ उमहत नहीं और की घाँतौ।
आनँदघन कुलकानि-संखला डारी तोरि महा मदमातौ॥

गंधार] (१४१)

जसुमति लालहि नेहु लड़ाइ।
करौ क्यौं न यौं सफल भली बिधि जीवन सो धन पाइ।
यह सुख सोभा अरु यह औसर भल्यौ बन्यौ है आइ।
गोपराज के बास बसौ मन जौ लौं कछू बसाइ।
स्याम सजीवन ब्रजजन-जीवन रहत एकरस छाइ।
हिलनि मिलनि बोलनि डोलनि खेलनि अप अपनै भाइ।
यह जमुना यह रमन भूमि छबि देखन को है दाइ।
रची बिधाता अति रसरंगी रंग चढ़ै तो चाइ।
रस-चसकौ जो परै जीव कौं जियै उयाइ गुन गाइ।
प्रान-पपीहनि पोषि पालियै आनँदघन बरसाइ॥

राग बिभास] (१४२) [चौताला

अरी चलिचलि उठि चलियै घर कौं चली निसि ये तो मचलि परे हैं।
इन बातनि कबहूँ न अघाने ये धुर के रसलोभी रसिक छैल
अति छल-बलनि भरे हैं।
चोरी मैं चौचँद मठनाठ चतुर कन्हाइ निसंक खरे हैं।
फूंकि फूंकि पाय धरि ब्रज बसियत ये आनँदघन छाइ छाइ उघरे हैं॥

एमनि बिला] (१४३) [चलती इकताला

अरी मैं कैसें भरौं कहा करौं प्यारे ब्रजचंद बिना।
रैनि अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीं पलौ छिना।
कहा हूं क्यों हूं होत सवारौ बाट निहारौं नव दिना।
आनंदघन पिय भूलहि तई प्रान-पपीहनि की सुधि ना॥

[१४०] संखला=(शृंखला) कड़ी। [१४२] धुर के = आरंभ।

विलावल] (१४४) [इकताला

प्रान सनेही साँवरे सुधि दीजै हाहा ।
एक तिहारे आसरे लगि जीजै हाहा ।
जो जिय भावै भावते सो कीजै हाहा ।
रैनि दिना अँसुवानि सौं उर भीजै हाहा ।
विरह तचैं सियरो परै तन छीजै हाहा ।
मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हाहा ।
जित तित हित अनहित भजै क्यौं धीजै हाहा ।
ज्यौं तरसत प्यासनि भरथौ रस पीजै हाहा ।
आनँदघन छाए कहाँ वे बीजै हाहा ॥

विभास] (१४५) [मूलताल

ऐसैं और कौन दुलरावै, राधा मोहन कौं जैसैं जैसैं हौं गाऊँ ।
हिय उमंग अनुराग रंग रागनि तरंग सौं रीझनि भीजि भिजाऊँ ।
एक वरन मैं जुगल - वरन वर वरनि वरनि वानी वर पाऊँ ।
रोम रोम सुख संपति लहि आनँदघन वरसाऊँ ॥

पंचम ख्याल] (१४६) [मूल

मेरो कह्यौ सुनि लै री राधे हाहा मान न कै री राधे ।
व्रजमोहन अँखिया को तारो तो विन व्याकुल है री राधे ।
विनती करि करि मोहिं पठायो वहुत भाँति सौं नै री राधे ।
आनँदघन पिय तृपित पपीहा रिस तजि कै रस दै री राधे ॥

(१४७)

आरति करत वियोगी नैन ।
मोहन मूरति देखैंहू विन देखत हैं दिन रैन ।
हिय-जिय-दसा सनेह-सँजोई जगमगाति जगि मैन ।
आनँदघन पन-पले पपीहा लै वारत सुख-चैन ॥

[१४४] नहिं थीजै=स्थिर नहीं होता । धीजै=धैर्य धरे । बीजै=(विद्युत्) विजली ।

अड़ानो] (१४८) [मूलताल

क्यौं जू कान्ह कहौ तिहारी चितवनि मैं कौन ठगोरी ।
चाहतहीं चित जात बिबस ह्वै लागि रहति हित-डौरी ।
कैसैं अपुनपौ साधि राखियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी ।
ताजौ रीझ भाजि आनँदघन मिल्यौ चहति भरि कौरी ।

भैरव ख्याल] (१४९) [चलती इकताल

मेरी अँखियनि के आगैं रहियै प्यारे ।
सहि न सकैं अंतर करि राखौंगी तारे ।
हित की गति को बूझै तुम बिन और न सूझै रूप-उज्यारे
ब्रजमोहन मतवारे ।
आनँदघन जीवनधन तुमहीं सौं लाग्यो मन बिन
देखे छिन छिन रहैं प्रान दुखारे ।
तनक दया गहौ हाहा तुमहीं कहौ कैसैं कै बितवैं ये बिरही बिचारे ।

दोहा] (१५०)

पनघट जौ जैयै न तौ, करै ननदिया सोर ।
घट पट सुधि भूलैं तबै, देखैं कान्ह किसोर ॥

रामकली] (१५१) [मूलताल

ए जू स्याम रंगीले रंगनि रँगीले अनत जाइ रति मानी ।
अपनो सो बहुतै दुराव करि आए मोहन बात रहति क्यौं छानी ।
नैन बैन अति सिथिल लगैं न चित चैन चाँप चितवनि पहिचानी ।
आनँदघन उनए गरजे बरसे सरसे हम जानी है जू जानी ॥

बिभास] (१५२) [कपोतताल

राग रागनी के नीके नीके भेद मोहन मुरली मैं बजावैं ।
सुनि सुनि सजनी जिय तैं गुरजन की लाज भजावैं ।

१४८–ताजौ–ताजौं (मनो, वृंदा०) ।

[१४८] डौरी=धुन । कौरी=(अंक) गोद । [१५१] छानी=ढकी, छिपी ।

भाल भौंह नैन अधर मुख सुखमा कछु कहत न आवै देखि भावै।
ताननि के त्यौंनार व्यौरि आनँदघन छावै रस बरसावै रीझ भिजावै ॥

बिभास] (१५३) [मूलताल

रंगमहल मैं अति रति-पागे राधा - मोहन जागे हैं ।
लाखनि अभिलापनि सौं भोए भोर भएँ उर लागे हैं ॥

(१५४)

गुन गावत मन और न आवै ।
ऐसी करौ रसीले मोहन प्रेम-उरझ परि सुरझ न पावै ।
थके छके रसविवस निरंतर नीरसता तजि तनक न धावै ।
आनँदघन पन पोषि पालियै चातक भयौ एक रट लावै ॥

सोहनी ख्याल] (१५५) [मूलताल

कोई है निसैयँ साँनूँ कान्ह मिलावै ।
सौंहँणी सूरति नूँ अख्याँ तपदाँ आनँदघन मुख आणि विखावै ॥

रागनी ललित ख्याल] (१५६) [मूलताल

मेरो मन मोहन सौं मान्यौ ए सलोनी मूरति जब तैं हेरी।
अब तौ जानि परी घर बाहिर उघरि उघरि बरसे री ।
आनँदघन कहा करैगी सास ननदिया रहति न इनकी घेरी ॥

भैरव राग] (१५७) [मूलताल

सुखदाई सुख दै दै सुख ही दीजै ।
ब्रजमोहन अँखियनि तारे मन भाई सोई कीजै हो जस लीजै ।
मन बस करि यौं सुरति बिसारी इन बातनि अब क्यौं करि जीजै ।
प्रान - पपीहनि कैं आसा नित आनँदघन रस पीजै ॥

सारंग] (१५८) [चौताला

तू लाड़िली री तोहि लाड़त लाड़ौ लाड़नि ।
अलबेली अँखियनि रसभीजी चितवनि चाड़नि उलंघति आड़िनि।

१५६–बरसे री–बरसत (लंदन)। इनकी–एक (वही)।

[१५२] त्यौंनार = ढंग ।

[१५५] विखावै=दिखाए। [१५८] लाड़ौ=प्यार भी। आड़=ओट, सीमा।

तेरी निकाई पै मति बिकाई हँसनि जगति जोति जव कपोल-गाड़नि ।
आनँदघन पिय-हित नित झर करि छाड़ि दई छिन छाड़नि ॥

हमीर] (१५९) [मूलताल

प्रिय मूरति देखन कौं नैन तरसत हैं ।
मोहन-मुख-लालसा उनए उघरि उघरि बरसत हैं ।
लोकलाज-त्यौं तनकौ न ताकत अति ही अरसत हैं ।
आनँदघन हित चातक चौंपनि पल पल सरसत हैं ॥

हमीर] (१६०) [चंपकताल

लाल उजियारे नैननि के तारे हमारे आइ क्यौं न सुधि लेत ।
तब सब विधि सुख दै दै बिसासी अब ऐसैं दुख देत ।
मन तैं तनकौ न टरत परेखौ जु कहा भयौ वह हेत ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन सुरस भरौ पन-खेत ॥

(१६१)

हरि सब काज सुधारे मेरे ।
दूरि दूरि लौं मन फिरि आयौ गहि पाए अति नेरे ।
सोवत जगत चलत जितहीं तित लेत रहत हैं फेरे ।
आनँदघन प्राननि के संगी मोहन मूरति हेरे ॥

(१६२)

प्रेम तौ गोपिनि ही को भाग ।
जिनके नंद-सूनु सौं साँचो रच्यौ राग अनुराग ।
कहियै कहा निकाई मन की जो कछु लागी लाग ।
सर्बसु बिसरि बिसरि सुधि साधी महामोह की जाग ।
ब्रजमोहन की महा मोहनी अनुपम अचल सुहाग ।
आनँदघन रस केलि झालरीं नव वृंदाबन बाग ॥

एमनि] (१६३) [इकताला

मोहिं बिरहा करै नकवानी ।
कैसैं रहौं कासौं कहौं जिय की बिथा न ढुरै अँखियनि को पानी ।

गाड़=गड्ढा ।

नये नेह राचे ब्रजमोहन हम सौं परी पहिचानि पुरानी।
आनँदघन हित प्रान-पपीहनि अपनी पैज हठानी ॥

सारंग] (१६४)

गोपाल भरोसैं सोइये।
जागि जागि भ्रम भूलि सोच मैं क्यौं यह अवसर खोइयै।
जो कछु उन्हैं सुहाइ सोई भई होति है होइयै।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि परम प्रेम-रस भोइयै ॥

सारंग] (१६५) [चौताल

जमुना तरंगनि बाढ़ी सुनि सुनि मोहन-मुरली-नाद।
स्याम-रची हित-मचनि मची भाँवर भरति रहै पूरन प्रेम-सवाद।
रसिकराय के अमित-रस-भरी केलि-सदन-बन की मरजाद।
आनँदघन घमँडनि जाकैं तीर आभीर-तरुनि-भीर महामद उन्माद ॥

गांधार] (१६६) [चंपक

जहाँ जहाँ गुन रूप के बिना न पाइयत तहाँ तहाँ तुम ही हौ सबादी।
तिनही तिन सौं बाँधि बाँधि मन ऐंचि खचि लेत जानै महा रसवादी।
मोहि कहा दोष आप गुन भरे अनवादी हौ अनादी।
आनँदघन घमँडत गरजत बरसत सरसत रस मोहन मुर-
लिया के नित नादी ॥

राग बिहाग ख्याल] (१६७) [मूलताल

लई कन्हैया ने हौं घेरि।
खोरि साँकरी माँझ सँझौखैं आइ गयौ कितहूँ तैं हेरि।
कौरी भरि उर धरी औचकाँ अकली काहि सुनाऊँ टेरि।
आनँदघन घुरि सराबोर करि पठई घर लौं निपट लथेरि ॥

१६७–हौं–हो (सतना)। उर–औ (सतना), और (वृंदा०)।

[१६३] पैज०=प्रतिज्ञा का हठ हो रहा है, प्रतिज्ञा पर डटे हैं। [१६५] मरजाद= मर्यादा) सीमा। [१६७] सँझौखैं=सायम् होते ही। कौरी =(क्रोड़) गोद।

पूरिया] (१६८) [चंपक

हिय तैं न हाते होत पल एकौ ।
फिरि ताकी सुधि लेत क्यौं न पिय बिलग न मानौ कहे कौ ।
हियौ कठिन कियौ ब्रजमोहन ह्वै टरत न गहि लाड़लो टेकौ ।
आनँदघन हौ एक हमारैं चातक तुमहिँ अनेकौ ॥

एमनि] (१६९) [चौताला

वारी हौं वारि डारी आछी बनक यै नंद के कुँवर कन्हैया ।
कोटि काम हूँ तैं अभिराम मधुर सलौनी स्याम मूरति
आँखिनि जोति जगैया ।
स्रवननि सुधा पिवाय जिवावत मोहन मुरली-तान सुनैया ।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन नित ही रस - बरसैया ॥

नट] (१७०) [मूलताल

गई लगाय चटपटी पिय के चित कौं ।
घूँघट मैं मुसिकौंहीं अँखियनि तैं जु जतायौ हित कौं ।
भाँवरि भरत रहत मनमोहन चौंपनि ही नित इत कौं ।
आनँदघनहि पपीहा करि तब अब तरसावति कित कौं ॥

केदारो] (१७१) [मूलताल

मितवा रे तुमी सन मोरा लागीलो नेह कैसैं छूटै ।
आनँदघन पिय प्रानपपीहा आस लागि जीवत है यह तौ तोरैंऊँ न टूटै ॥

ख्याल केदारो] (१७२) [चलती चरचरी

कैसैं भरौं तुम बिना अब मोहि कठिन कठिन बीतत पल-छिनवाँ ।
तुमरे देखन की औसेर लगी रहै बलमाँ निसि-दिनवाँ ॥

ललित ख्याल] (१७३) [मूलताल

मोरा मनवाँ है तुमी सन लागीलौ,
रूप-उज्यारे अँखियनि तारे प्राननि प्यारे ।
ब्रजमोहन पिय तुम्हरे कारनवाँ अरे बलि सगरो रैन जागीलौ ॥

१६९–मधुर–ललित (सतना)। मोहन–मधुर (वही)। १७१–लागी-लौ०–लागी लगन (सतना)। १७२–तुमरे–तिहारै (वही)। १७३–ब्रज०–स्यामसुंदर (लंदन)।
[१६८] हाते=दूर ।

रामकली ख्याल] (१७४) [चरचरी

तुम्हैं काहू को कछू कहा अजु भए कान्ह कठोर महा।
नेह कनावड़ नैंक नहीं कहूँ अपनी गौं के अहा।
बसि करि देत बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नये लहा।
आनदघन पिय प्रान - पपीहनि की गति कौन हहा॥

गंधार ख्याल] (१७५) [मूलताल

आँवो साँवलरा मैंडी जान।
वेखण कारण अख्याँ तपदीं रत्त - दिहाड़े तैंडा ध्यान।
मुरली सुनाइ साँनूँ चेटक लाया सोहन सजन सुजान।
प्रान - पपीहाँ दे आनँदघन वंदी हाँ कुरवान॥

एमन विहाग ख्याल] (१७६) [चरचरी

साँवला दिलजान मैंडा है।
प्रान - पपीहाँ दा आनँदघन सोहन सजन सुजान॥

एमन] (१७७) [मूलताल

सभना नाल तैंडा नेह नवेलरा।
साडरे प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन प्यारिया लग्गा इश्क अकेलरा॥

परज] (१७८) [मूल

ढोलन वेखाँदीं जीवानी।
नैन - पियाले भरि भरि सेये रत्त - दिहाड़े मैं पीवानी॥

राग मारू] (१७९) [आड़ चौताला

आज हमारैं आवैला घनस्याम आनँदबधावरौ मनाइस्याँ।
फूलाँ केस गुँदाइस्याँ काजलरी रेख बनाइस्याँ।
सोंधा भीनी काँचली कसाइस्याँ, मोत्यारा हार ढुलाइस्याँ।
आँगनरौ चंदन लिपाइस्याँ गजमोत्याँ चौक पुराइस्याँ।
घीयाँ दीवला जगाइस्याँ चित्रसारी ढोलीयौ बिछाइस्याँ।
हँसि हँसि कंठ लगाइस्याँ आनँदघन झड़ बरसाइस्याँ॥

१७४—हहा—कहा (लंदन)।

बिहागरो] (१८०)

क्यौँ सुख दै दुख बहुरि देत हौ।
हरत हियो बस करत हँसनि मैँ ब्रजमोहन फिरि सुधि न लेत हौ।
तुम्हैँ कहा काहू को चिंता नित निधरक सब सुखसमेत हौ।
आनँदघन अचरज झर लावत अचै अचै चातकनि चेत हौ॥

मालकोस ख्याल] (१८१) [चरचरी

अरे हाँ रे तोरे दरसन काँ तरसै मोरा जियरा घरी पल।
आनँदघन पिय छाइ रहे कहूँ कासौँ कहौँ यह बिथा न परै
परेखवाँ निसिदिन कल॥

सारंग] (१८२) [चौताला

लै अनबोली कब लौँ रहैगी मोसौँ हितू सौँ अचगरी।
रिस तौ उनसौँ मोसौँ कहा अर आजु करति अगरी।
जौ ऐसो जानती तौ डुलती न बेकाज हित के भरोसे ह्याँ लौँ डगरी।
आनँदघन अभिलाषनि उनए चाहत ह्वैहैँ मग री॥

सारंग] (१८३) [इकताल

मैन-मद छाकी गुजरिया मतवारे मोहन के संग लागी डोलै।
मुरली-नाद-सवाद रीझि रही घूमति झूमति उरझि उरझि मन खोलै।
बन-कुंजनि बिहरत गजगमनी अति कमनी रवाँनी को लै।
आनँदघन-रस रूप-चातकी चौँपनि बाढ़ी उर अनुराग अतोलै॥

सारंग] (१८४) [चंपक

मोहन मूरति बिसरै नहीँ, कैसैँ मन बहरैयै।
जागि जागि लूटैँ अँग भरै जोति जगमगे घूमि
झूमि रहै तहीँ तहीँ।
भूले से दिन रैनि बितैयै सुनियै समझियै न गुरजन की कहीँ।
आनँदघन मँडराति रहै मुरली-धुनि काननि प्राननि
भिजवै माँगति उमहि मुहाँचहीँ॥

[१८२] अचगरी=शरारत। अगरी=अधिक। [१८४] मुहाँचहीँ=दर्शन।

पटराग] (१८५) [मूलताल

श्री गोपाल गोकुलविहारी वारी तिहारी आवनि निहारियै।
चरन-धरनि मैँ धरनि होति धनि कहा कहौं फिरि कहा वारियै।
नखसिख ललित सलोनी मूरति नैन जुगल लालसा भारियै।
आनँदघन झर लगै लगौँहैं प्रान-पपीहनि रुचि विचारियै॥

आसावरी] (१८६) [चंपक रूप भेद ताल

वँसुरिया मैँ कहा विष लै भरयौ निपट बिसासी स्याम।
जाकीताननि काननि परसत घूमत मन अस्ट जाम।
आन हाथ आन पाइ हूजियत कैसो धाम अरु कैसो काम।
आनँदघन रोम रोम छाइ हाइ व्यापत विरहा-घाम॥

सारंग] (१८७) [मूलताल

सनमुख चाहन कौँ चित चाहै लाज निगोड़ी रोकति आनि।
मोहन-रूप माधुरी पान करन को नैननि वानि।
घूँघट कानि करन त्यौँ सजनी उपजी जिय मैँ अति अरसानि।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि॥

लहचारी विहाग राग] (१८८) [मूलताल

राधा माधौ विहरैँ वन मैँ।
हरी भरी कुंजनि जमुनातट फूले फूले मन मैँ।
मदन-केलि-सुख-पगे जगमगे जगी तरुनई तन मैँ।
अरस-परस तन वन परसत आनँदघन भीजे पन मैँ॥

भैरौ] (१८९) [इकताला

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन।
इतने पै घरहू मैँ जीवति ये अपराधी तजत न गोहन।
सब विधि तुम्हैँ सुखी चाहति हौँ स्याम सुजान सुभाय के सोहन।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय विरह-बिछोहन॥

१८७—करन—करत (सतना)।

सावंत] (१९०) [इकताला

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रसवाद ।
रंग रहै सो करियै लालन भलौ न अति अनबाद ।
ब्रजमोहन जू गोहन छाँडौ गीधे वीधे सरस सवाद ।
आनँदघन हठ घमँडनि ढुरि घुरि घेरी हौं वन बाद ॥

एमन बिहाग] (१९१) [चरचरी चलती

मुरली कौन रंग सौं बाजै ब्रजमोहन बनवारी की ।
जाकी धुनि सुनि विकल होत हिय कुल की कानि लोकलाज लाजै ॥

केदारो] (१९२) [मूलताल

तुमसौं मेरी प्रीति लगी पै तिहारी कौन ढौर ।
साँची कहौ मनभावन हाहा कहा बनावत और ।
मोही से जौ औरनिहूँ सौं तौ मोहिय तिनहूँ की रौर ।
आनँदघन पिय अचरज-झूमनि रसिक-छैल-सिरमौर ॥

(१९३)

सबतैं न्यारो ह्वै हरि भैंटि ।
रे मन मद-बिकार-भरथौ तू निखरि मैल कौं मैंटि ।
निज सरूप सौं सम्हारि छूटि लगि भूलनि भलैं भुलाव ।
औसर है हाहा जिनि हारै दाव दैन को दाव ।
चेतन तैं जड़ भयौ संग-बास अजहूँ तजत न संग ।
तन तैं निकसि बिदेह देह धरि रचि आनँदघन रंग ॥

सारंग] (१९४) [चंपक

कान्ह कितेक दिननि तैं याही डगर डोलिबो लयौ है ।
तुहूँ देखियति जब तब ठाढ़ी ओट अटा की जाग्यौ नेह नयौ है ।
रूखी बतियनि दुरति कहाँ लौं मोहिं कछूक जनाव भयौ है ।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ आनँदघन उनयौ है ॥

[१९०] अनवाद = फालतू बात । गीधे = परच गए । [१९२] ढौर = ढंग । रौर=हलचल ।

नट] (१९५) [चंपक

व्रजमोहन प्रानप्यारे मेरी अँखियनि हिलग परी।
रोकी रहति न घूँघट पट की चौंप चटपटी खरी।
बिन देखेँ कल पलकौ नहीँ धरेँ लाएँ रहति झरी।
आनँदघन पिय कितहूँ छाए इत की सुधि बिसरी॥

(१९६)

जयति जयति नरसिंह प्रह्लाद आरतिहरन वत्सल विपुल
बल विनोदकारी।
पूरन प्रताप अरितम-विहंडन खंड खंडनि प्रचंड जस तुंडचारी।
सर्वथा सर्वदा सुहृद सम सर्वत्र सम्यक सुतंत्र सामर्थिधारी।
सत्यसंकल्प-संदोह संसर्ग संग्राम जृंभा असुरसंघहारी।
अरुन अति तरुन ग्रोपम तरनि चरन वर सोचमोचन विलोचन विहारी।
सुर सनक सुक स्वयंभू संभु संस्तुत महामंगलकरन अभय भारी।
वंदन करौँ कृपाधाम अभिराम पद भूभार टारन अटल मुरारी।
तृपित जन दुखित परितोप पोपन भरन आनंदघन अखंडित खिलारी॥

काफी राइसा] (१९७) [झपताल

गुन गाइ लै गोकुलानंद के व्रजचंद सुखकंद सुछंद के।
सकल रससार स्रुतिसार मोहन महा आधार सनक सुक संद के।
मंगल-मुकुटमनि मनोरथ-कलपतरु उदार अति अदभुत अमंद के।
ललित लीला-वलित संपदा-संकुलित अतुल जय अमल जगवंद के।
क्रीड़त सदा सुहृद-संग जमुनातीर लड़िले जसोमति नंद के।
कृपाधन-मूल आनंदघन अनुकूल हरन दुख-वृंद भ्रम-फंद के॥

सारंग] (१९८) [चौताला

श्रीराधा-चरन करि मन! मेरे वंदन।
मोहन मधुप भरयौ अभिलापनि सहित लेत मकरंदन।

१९७—वृंद—द्वंद्व (सतना)।

[१९६] तुंड = मुख। संदोह = समूह। [१९७] संद=सनंदन।
[१९८] रवनी०=राधा।

बनअवनी रवनी-सिर-मंडन जगमगात द्युति उदित अमंदन।
बेद पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन, गति स्वच्छंदन॥

तथा] (१९९)

जब जब सुधि आवै मोहन बनवारी की तब
तब तन निकसि जाइ।
डरी रहति परवस हौं घर मैं यासौं यौं न बसाइ।
मुरली-भनक इतै पै सतावै आन हाथ होत आन पाइ।
बिरह-घाम ब्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराइ॥

होड़ी] (२००) [मूलताल

तूँ जब चाही री मुसिकौंहीं अँखियनि तब तैं उन मन मानी।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानी।
प्रीति बढ़ै चित चौंप-रंग चढ़ै सो कीजै सुनि सुघर सयानी।
आनँदघन पै तोसौं हित गति चातक तें अधिकानी॥

अड़ान] (२०१) [चरचरीताल

सारी सुरँग सुही चुहचुही निपट पहिरैं राधा गोरी।
साँवरे-बरन-कोर कपोलनि हिलि मिलि झिलमिली खिली
झूलै जोबन-उमंग-बोरी।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बैंदी मधुर
अधर बीरी-रचनि उघरि करति चित की चोरी।
आनँदघन पिय को हियौ नीबी - कसनि गसनि बस्यौ
लंक लचक संक अंक भरति दृगनि ओ री॥

राग मलार] (२०२) [चौताला

कान्ह की बँसुरिया रंगनि बरसै।
राग अमृत की नवल घटा घमँडी अनुरागहि सरसै।
संकीर तानैं तेई चपला की चमकैं धुनि-ब्यापनि धुरवा-गन दरसै।

२०२—बँसुरिया—मुरलिया (सतना)। राग—नाद। रसनै—रसमय (वही)।

[१९९] डरी०=पड़ी रहती हूँ। [२०१] कोर=किनारा। [२०२]
संकीर = संकीर्ण।

मोहन मादक मधुर कहा रसनै आनँदघन पिय के अधरनि परसै
याहि सुनि सुनि क्यौं न हियरा तरसै ॥

आसावरी] (२०३) [चंपकताल

सगरी रैनि जागे री ये वियोगी नैन हरिमग हेरि ।
व्रजमोहन अवधि बढ़ि लुभाने पायौ कबहुँ न यौं चैन ।
कहा करौं मन क्यौं हूँ न समझत तनहि दहत दुखदाई मैन ।
आनँदघन पिय चौंपनि छाए आए अजौं उत तैं न ॥

राग केदारो] (२०४)

मुरली मेरेई गुन गावै ।
सुनि री सखी स्यामसुंदरि क्यौं न महारस पावै ।
हौं हीं भई बाँसुरी उनकी याही तैं अति भावै ।
अतुल प्रेम के भेदभाव को यौं कहि कौन सुनावै ।
याकी अकथ कथा है हेली ह्याँ मति गतिहि घुमावै ।
फिरि आनँदघन पिय त्यौं मेरेई प्रानपपीहनि तावै ॥

राग धनासिरी] (२०५) [चंपकताल

नंदनंद जिय मैं बसैं आखैं देख्योई चाहैं ।
चौंप चटपटी की गति अतिहीं अटपटी बिन बानो ये कराहैं ।
दसा हौं ही जानति जैसैं बूड़ति उछरति प्रीति-परेखनि गहरे थाहैं ।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि की सुधि भूले उनए कहूँ नए लाहैं ॥

टोड़ी] (२०६) [चौताला

तेरी निकाई तोही दई है विधाता राधे रूप रती भरिपूरि ।
रति रंभा सची रमा उमा आदिकनि के गरब टारे री चरननि चूरि ।
रसिक - मुकटमनि व्रजमोहन मनमानी जानी बखानी
वेदनि महिमा भूरि पदवी परम दूरि ।
आनँदघन के प्रान-पपीहनि रस-संपति-दैनी जिय की जीवन मूरि ॥

२०६–दूरि–पूरि (सतना) ।

सारंग] (२०७) [चौताला

तुम्हरे सुख सुखी कब ह्वैहै मन ।
सकल ठाँव तेँ छूटि एक तुमहीँ सौँ ठहरिहै पन ।
ब्रजमोहन याहू किन मोहौ रँगीले रिझवार ब्रजजन के धन ।
अपनो पपीहा परितोपौ पोषौ रसमय आनँदघन ॥

देसी] (२०८) [मूलताल

मुरली मैँ मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीलो छैल ।
ब्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ बरज्यौ न मानै अरैल ।
प्रेम-लहर तन मनहि घुमावै नाद निगोड़ो निपट बिसैल ।
रोम रोम आनँदघन घमँडनि बिरह-व्यथा की फैल ॥

बिहागरो] (२०९) [चंपक

भावती बतियनि लगि लगि छतियनि लाग निपट रसबसे रसाल ।
जोबन रूप अनँग - रँग - राते मदमाते करत रँगीले ख्याल ।
छैल छबीले राधा मोहन प्रेमपगे जगमगे लाल ।
आनँदघन रस-भीजे रीझे बिलसत हुलसत बाढ़ति चौँप बिसाल ॥

कालिंगड़ा ख्याल] (२१०) [पंचम चरचरी

कान्हा बाँसुरी बजाइ रह्यौ, सुनि सुनि कैसेँ करि जाइ रह्यौ ।
मनमोहन मूरति आनि अरै, कुलकानि सखी तब कौन करै ।
बन बेलिन मैँ धुनि छाइ रहै, मति गति उत ही उरझाय रहै ।
घनआनँद यौँ उनयौ नित है, मेरे प्रान-पपीहनि सौँ हित है ॥

दोहा] (२११)

सुधि आएँ पिय मिलि खिली, यौँ याही बन माँझ ।
सरसौँ सी फूलति सखी, देखत फूली साँझ ॥

ऐमन बिहाग ख्याल] (२१२) [चरचरी

अनी दिलजान ढोलन पाया, रब्बे कीता साडरे दिलदा भाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारा पपीहाँ दे घर आया ॥

२०८—मनहि०—उरझावै (सतना) ।

सारंग] (२१३)

क्यौं जमुना यौं कब लौं रहियै ।
तेरे तीर बिना या मन की पीर कहाँ निधरक ह्वै कहियै ।
ब्रजमोहन बिन यह तेरो तट औरै भयौ आय कै बहियै ।
तब तमाल-तर आनँदघन भर अब ऐसैं वियोग-भर दहियै ॥

रामकली ख्याल] (२१४) [चरचरी

निसदिन लागी है औसेर तुम्हरे दरस की ब्रजमोहन प्यारे ।
आनँदघन पिय कान करौ किनि प्रान-पपीहनि टेरे ॥

एमनि ख्याल] (२१५) [मूलताल

क्यौं मियाँ मैं तैंडी बंदी सानू भी निवाहि लैंवीं ।
दरस दिखावीं ना तरसावीं आनँदघन प्यारिआँ प्रान-
पपीहौं दी की आहि लैंवीं ॥

गौरी ख्याल] (२१६) [मूलताल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है ।
तुमहि लगे ब्रजमोहन कितहूँ अपनी अपनी गौं है ।
तुमहिं बहुत तुम एक हमारैं गति चकोर ससि लौं है ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैयै हिये परेखनि दौं है ॥

गौरी] (२१७) [झपताल

हरि-सरन तकतहीं मरन-भय भाजै ।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख-संपदा संतत बिराजै ।
धाम धामी और दास-सेवा-समय एक रस निरद्वंद दुंदुभि बाजै ।
देस अदभुत महाविभव कहियै कहा आनँदघन घमँड
अमित छबि छाजै ॥

सारंग] (२१८) [चौताला

बंसी की धुनि सुनियत याही ओर आए नियरे कान्ह किसोर ।
नैना उतहीं लागि रहे गए गाय-चरावन भोर ।

२१६—तुमहिं०—छिन-पल कल न परत बिन देखैं (सतना) ।

मन उन संग सदाई डोलत गिरि बन कुंज खरिक अरु खोर ।
प्रान-पपीहा आनँदघन हित चौंपनि भए हैं चकोर ॥

परज] (२१९) [इकताला

ब्रजमोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही ।
सोवन देति न सोवति बैरिनि ऐसी टेक गही ।
ताननि बाननि प्राननि बेधै निरदय निपट चही ।
इतने पै धुनि सुनियै भावै गति नहिँ जाति कही ।
मेरी सी गति मेरियै किधौँ औरनि हूँ की यही ।
घर कैं घेर परी तरसति हौं आनि बनी सु सही ।
आनँदघन पिय बस करि राखे पूरन प्रीति - नही ।
गरब-भरी गरजै सौ लेखैँ रस की रासि लही ॥

राग धन्यासिरी] (२२०) [चौताला

ऐसैँ ऐसैँ मुरली बजैबो कान्ह कहौ कब तैँ नाँध्यौ है ।
तान किधौँ प्रान बेधि जिवावन विषम बान साँध्यौ है ।
अबला बिचारिनि के मन हरन-करन कौँ पन बाँध्यौ है ।
आनँदघन उनए ही रहत तुमहूँ बस याकैं अरु मदनौ मद आँध्यौ है

सोरठ] (२२१) [चंपकताल

उनींदो अँखियनि छबि फबी है ।
चौपनि भई है जगार भावते संग संग मैँ झपकि झपकि
उघरति उघारो ही तचि तवनि आरस दबी है ।
अधरराग-अनुरागीँ पागीँ इनकी उपमा बनति नबी है ।
आनँदघन मिलि भामिनि दामिनि अति रस-ढरनि ढबी है ॥

विभास] (२२२) [चौताला

तिहारी कौन देव है प्यारे सदा तैँ ऐसैँ हीँ करि आए ।
जानत नाहिँ पराई कनावड़ गौँ हीँ गौँ ललचाए ।

[२१९] नही=नथ दी, गूँथ दी । सौ०=सौ प्रकार से । [२२१] जगार=जागरण । नवी=नवीन । ढवी०=ढली है ।

इन बातनि मोहि भले नहिँ लागत अपनो सो बहुतै समुझाए।
चोरी मैँ बरजोरी कहत हौ आनँदघन पिय नई रसिकई छाए ॥

रागिनी देवगिरी] (२२३) [इकताला

राधा मोहन को यह नेह निपट नवेलो है नितहीँ।
बिछुरि मिलत मिलि बिछुरि परत हैँ चाह-उमाह-गहे चितहीँ।
नीकी जोट अनूप रूप गुन सुनी न कतहूँ देखी इतहीँ।
आनँदघन रसरंगनि बरसत उनै उनै ब्रजबन जित-तितहीँ ॥

टोड़ी] (२२४) [मूलताल

आलो री तेरे अधरनि अंजन-रेख खुली है।
नवल केलि रस-झेलि ललित लट बिमल कपोल झुली है।
बस करि राखे रसिक बिबस ह्वै अतुल अतन कैँ तेह तुली है।
आनँदघन पिय रीझनि भीजे उर लगि खगि न डुली है ॥

सुद्ध] (२२५) [मूल

ततथेई ततथेई थेई ततथेई तत तेथेई तेथेई ताथुंगा थुंगा ततथेई थेई।
उघटत रसिकराय नटनागर नव नागरि सुधंग सौँ लेई।
तान गान बंधान मान संगीत रीति प्रमान अति जेई।
आनँदघन पिय रीझ भीजि भुज भरि मनिमाल वारनै देई ॥

आसावरी] (२२६) [इकताला

मिहँदी राचनी लगि लसी हैं नवेली कैँ हाथ।
छुटे बार मुख ओप डहडही अलि गावत गुनगाथ।
ब्रजमोहन की नवल दुलहिया सोहति ललित सहेली साथ।
आनँदघन पिय उमँगनि उनए भरत सुबल कौँ बाथ ॥

पूरिया धन्यासिरी ख्याल] (२२७) [चलती चरचरी

हमैँ न बिसारि दीजै हो हा हा हा हो सनेही स्याम।
जिय धरिबे कौँ न ठौर कहूँ और तुम ब्रजमोहन हौ बहु-
नायक सोच यह आठौँ जाम।

[२२४] अतन=काम। तेह=वेग, उमंग। खगि=धँसकर। [२२६] राचनी=रचनेवाली। सुबल=एक सखा। बाथ=अँकवार।

मन बावरो न क्यौँ हूँ समझै पावै नहीँ तनकौ बिसराम ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहा आस लागि जीवत हैँ
निसिदिन रटत तिहारो नाम ॥

अड़ानो] (२२८) [मूलताल

स्याम घन तेरियै घाँ घुरि बरसै ।
उघरि उघरि मुरली-गरजनि मैँ सुर के धुरवा सरसै ।
रमड़्यौ रहत रैनिदिन राधे रसमूरति चातक लौँ तरसै ।
आनँदकंद नंदनंदन त्यौँ कौँधि कहूँ दै दरसै ॥

सारंग] (२२९) [चंपक

घमँडि रह्यौ री बन बेनुनाद कैधौँ मदन-दुहाई ।
सुनि बिथकित सरिता समीर पघिले पखान जड़ जंगम गति पलटाई ।
अबला बिचारिन कौँ कहाँ धीरज ऐसैँ कैसैँ आवति रहाई ।
आनँदघन मकरंद द्रवित द्रुम सारँग सरस बजाई ॥

सारंग] (२३०) [चौताला

जो सुख होत है इन अँखियनि ब्रजमोहन को मोहन मुख चाहि ।
सो एई जानति कै ज्यौ कैसैँ कै कहियै ताहि ।
अंग अंग की बनक ठनक लखि मैन मनहिँ डारत अवगाहि ।
इतने पै आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि कितहूँ की सुधि काहि ॥

अरगजापंचम] (२३१) [मूलताल

मैँ वारी मैँ वारी वारि जावाँ, वो वो वो ।
अरज असाडी सुनि ब्रजमोहन सोहन मुख विखलावीँ ।
तुझ वाजू असी खरी वो निमाँनी कीवाँ दिल परचावीँ ।
प्रान-पपीहौँ दे आनँदघन रिमि झिमि रिमि झिमि आवीँ ॥

[२३१] असाडी=हमारी । विखलावीँ=दिखाइए । वाजू=पास । असी०=हम खड़ी हैं । कीवाँ=कैसे । आवीँ=आइए ।

गंधार राग ख्याल] (२३२) [मूलताल

ब्रजमोहन सौं प्रीति लगी है अब तौ मेरी ।
कहा करैंगी सासु ननदिया रहति न इनकी घेरी,
आनँदघन रस चितवनि हेरी ॥

पंचम ख्याल] (२३३) [मूलताल

अब तौ जानी है जू जानी ब्रजमोहन सुखदानी ।
मेरी तिहारी लाग ननदिया दुरि कितहूँ पहिचानी ।
चौकस भई रहति है वैरिनि जौऽब निकसियै पानी ।
वाकैं डर सूखति आनँदघन इत के झर नकवानी ॥

तथा राग] (२३४) [ताल

ए री रूप-अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
तेरे मिलिबे कौं ब्रजमोहन बहुत जतन हूँ साधे ।
उनकैं निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे ।
आनँदघन पिय चातक चौंपनि हा राधे आराधे ॥

धनासिरी] (२३५) [चंपक

कौन पै गावत गनत बनै हो ।
गुन अनंत महिमा अनंत नित निगमौ अगम भनै हो ।
जो जाको अनुमान जानमनि मानत मोद मनै हो ।
चातक चौंप चटक त्यौं चितैवो उचित आनंदघनै हो ॥

ललित] (२३६) [मूलताल

रसिया को रस लै आई है, तेरी आँखिनि मैं छक छाई है ।
अति रतिरँग-बढ़वार भए की मुख सुख-ओप सुहाई है ।
भूषन-बनक बनी कछु औरै अँग अँग नवल निकाई है ।
उघरि परी आनँदघन घमँडनि कैसैं दुरति दुराई है ॥

बिभास] (२३७) [इकताला

सुनौ ब्रजमोहन छैल सुजान निवाह इन बातनि क्यौं होइ ।
जौ कबहूँ कछु मिस करि अइयै तुम न तजत सुख भोइ ।

२३३—झर-झर (सतना) ।

मोहि कहा मिलिबो नहि चहियै डारत हौ मन हठन घँघोइ ।
आनँदघन रसरासि बरसियै अति न भली है खोइ ॥

मलार] (२३८) [मूलताल

आयौ आयौ चौमासो आवन सीखे हैँ घन स्याम ।
मेरो ज्यौ उनहीँ सौँ लाग्यौ जिनको है ब्रजजीवन नाम ।
अवधि-आस लगि बहुत बचे हैँ तचे प्रबल अति बिरह-घाम ।
आनँदघन त्यौँ प्रान - पपीहा तकत आठहू जाम ॥

रामकली] (२३९) [झपताल

हरिचरित - सुरसरित - मज्जित सुबानी ।
महामोहन मधुररस - बलित ललित अति सुखद सुछंद
सुचि काव्य - कुल-रानी ।
बदन सोभासदन दरस महिमा बरस परस सर्बार्थदायक महत मानी ।
ब्रजतरुनि - रमन आनंदघन चातकी बिसद अदभुत
अखंडित जगत जानी ॥

गंधार] (२४०) [मूलताल

ऐसैँ आरती करौं ।
सुथिर थार हिय बिसद बीच लै प्रेम-प्रदीप धरौं ।
उज्जल दसा सनेह - सँजोई जोति जगाइ ढरौं ।
भाव-पुहप प्रतीति सौँ संजुत वारनि ओर अरौं ।
मोहन-मुख जगमगनि पानि पै निरखत हरष भरौं ।
आनँदघन उमाह आरति कौँ हरिहि बढ़ाइ हरौं ॥

बिलावल] (२४१)

तुम्हैँ लियैँ हौँ कहाँ फिरौँ ।
ललित धीर बलि बीर जानमनि छिमासील अनखाइ भिरौँ ।
हौ जगदीस कोऊ पूजत माया की गति हेरि हिरौँ ।
असुचि असाध कामना-किंकर घिनि आवै इन आस घिरौँ ।

२३९–सोभा–सुषमा (सतना) । तरुनि–रमनि (वही) ।

मन बुधि चित अहँकार एक तुम करहु कृपा कितहूँ न फिरौं ।
आनँदघन पन पालि पोपियै पायनि पै गिरि धरनि गिरौं ॥

बिलावल] (२४२)

दुसह दुरासा दूरि करौ ।
अंतरजामी अजित कृपानिधि हारि परथौ हहरानि हरौ ।
अपनोई बिसवास दीजियै अधम-उधारन बिरुद भरौ ।
आनँदघन पन पालि पोपियै दीन पपीहा ओर ढरौ ॥

रागिनी रामकली] (२४३) [चंपक

भुरहरैं ही कान्ह कहौ कित भूले ।
रैनि-रसमसे नैन बिराजत मनहुँ कोकनद फूले ।
रुचिर अधर मसिरेख रही लसि अति रतिरस अनकूले ।
आनँदघन घुरि घमँडि सजल भए अलकनि धुरवा भूले ॥

धनासिरी] (२४४) [चंपक

हमारी इतनी विनती चित धरियै ।
अपने दासनि के दासनि कौं काहू विधि कछु करियै ।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहैं पोपि पालि लै भरियै ॥

कान्हरो] (२४५) [इकताल

अपनी ओर राखियै ऐसौ ।
यह मन मंद अमंद नंदसुत जानि बूझि जग भटकत जैसौ ।
सब दिसि तैं हरि हरथौ करौ हरि आसा लागि ढरि चलौ वैसौ ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहै पालि पोपि राखौ पालौ पन वैसौ ॥

रामकली] (२४६) [चंपक

तिहारी आस लागि जग जीजै ।
अतिहीं अधम अनाथ कृपानिधि आप उचित सो कीजै ।
ऐसी कौन भेंट है माधव जो लै तुमकौं दीजै ।
दीन पपीहा तुम आनँदघन एक भरोसैं भीजै ॥

[२४१] न फिरौं=कष्ट न सहूँ ।

बिलावल] (२४७)

माँगि मन ब्रजबासिन के टूक ।
तजि बिंजन-सवाद इत उत के यहै बिचार अचूक ।
प्रान राखि अभिलाषि स्याम कौं लोकलाज दै लूक ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहा ह्वै बन मैं करि कूक ॥

नट] (२४८) [चंपक

या मुरलिया कैसैं काम किये ।
हमारे हियरा काढ़ि लियेताननि गुननि गाँस गस गसि
बिसवासी-हाथ दिये ।
निकसत नहीँ भनक स्रवननि तैं नैन रहे भरि ये ।
आनँदघन रस - आसनि अब लौं चातक-प्रान जिये ॥

बिभास] (२४९) [चंपक

हरि मेरी सम्हारि ही सैं रहैँ ।
बिछुरि बिछुरि हौं जात मिलै मैं पैठें भुज गहैं सु गहैं ।
कहा भयौ भूले से रहियत सो सचेत नित हैं ।
सोए जगैं जगैं ढिग बैठे मौनहू भेद कहैं ।
पूरन पन प्राननि के संगी सुख दै स्रम न लहैं ।
आनँदघन उदार जीवनधन अपनैं सील सहैं ॥

बिभास] (२५०) [इकताला

मेरी रसना लाड़िली भई, जसुदा के लालैं लड़ाइ लड़ाइ ।
लड़कि लड़कि बोलति सो लेखैं अति रसरंग-रई ।
कहि न सकति या सुख-सवाद कौं ऐसैं भोइ गई ।
आनँदघन हित चतुर चातकी नित चित चौंप नई ॥

२४७–रस०–दिसि त्रिपित (सतना)। २४९–सैं–मैं (सतना)। पैठें–वहै। भेद–बात। पूरन०–प्रान अधार सदा के संगी। जीवन०–जगजीवन (वही)। २५०–लड़कि०–लटकि लटकि उनहूँ सौं बोलति (सतना)।

मालकोस] (२५१) [चौताला

अंतर मैं बैठे कहा दुख देत निकसि क्यौं न
आवत अँखियन आगैं।
ये दुखहाईं मुख देखन कौं जागि जागि अनुरागैं।
इनकी दसा वनै गह नित देखैंई गैहैं पल पल जल त्यागैं।
आनँदघन पिय चातक चौंपनि प्यासभरी घन पागैं॥

पूरिया कल्यान] (२५२) [कपोतताल

घन-पूरन प्रेमी प्रवीन पुनीत पुरुषोत्तम परमानंद।
चीरहरन चिंतामनि चतुर चमतकारो अचरज-चरित सुछंद।
मोहन मुरलीधर मंगल मुकटमनि महामधुर मूरति मदन कहा मंद,
अदभुत अखंडित आनंदघन रसकंद॥

रामकली] (२५३) [भूलताल

हो जी हो जी आया जी मन भाया।
व्रजराजकुमार अमलाँ रा माता आया।
म्हानै तो थारी ओलू सतावै थे ओठैं बिलमाया।
अधराँ अंजन माथै अलतो लाग्या छै खरा सुहाया।
सघली रैनि आनँदघन वरस्या पगड़ै म्हाँ पर छाया॥

रामकली] (२५४) [चंपक

तिहारो रस कौन वखानि सकै।
रस ही रस जो ढरै महा रस तौ मति छकनि छकै।
रसवस ह्वै रसमसो रहै हिय रसना लागै सुजस-जकै।
आनँदघन व्रज-वधू-भाव की घमँड निहारि थकै॥

ललित] (२५५) [चरचरी ताल

नंदकुमार उदार सम्हार कीजै हो हमारी सम्हार।
अंतरजामी सब सुख स्वामी तुमही लौं है पुकार।

[२५३] अमलाँ०=नशे मैं मत्त। ओलू=स्मृति। थे=आप। ओठैं=वहाँ। अलतौ=महावर। सघली=सब। पगड़ै=प्रभात मैं।

दीन हीन बलछीन जानि कै लागौ लाल गुहार ।
दीन-पपीहनि के आनँदघन जीवन-प्रान-अधार ॥

बिलावल] (२५६)

बँसुरिया सौति तैँ अधिक दहै ।
बन घन लियेँ फिरति मोहन कौँ यह गति कौन कहै ।
देखन हूँ की चोर, कानि बस को ये सूल सहै ।
परी न रहन देति घर हू मैँ साँसनि गनति रहै ।
चाहति कियौ कहा इतने पै कल पल एक न है ।
आनँदघन पिय बसौ किये पै बैठी बैर बहै ॥

सारंग] (२५७) [चौताला

लहकन लगी री बसंत-बयारि मन बनवारी त्यौँ लग्यौ बहकन ।
जानौँ न आगैँ कहा करिहै जब लग है पलास-बन दहकन ।
मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै औरौ पुहप लागे बरन बरन महकन ।
आनँदघन पिय छाए तितहा इत कुहूकि कुहूकि लागी कोकिला गहकन ॥

श्री बृंदावनी सारंग] (२५८) [मूलताल

सुनहु सयाने स्याम तुमसौँ कहति सरोतर ।
ऐसे ढीठ ढिग ढुकौ ताके होइ तिहारी गोतर ।
ये रसबाद भले न भावते करियै वही होइ जो होतर ।
आनँदघन पिय नई घमँड सौँ देत दरबरयो डोलत अजौँ अजोतर ॥

पूरवी] (२५९) [मूलताल

न जानौँ कब आवँगे हिय उमग्यौ है औसेरनि ।
साँझ परी सुनियत न अजौँ वह कानन पिय टेरनि ।
मुरली बजाइ आइ मो द्वारैँ नेहभरी अँखियनि हँसि हेरनि ।
आनँदघन अभिलाप घमँड की बाढ़ी घेरनि उरझै कहाँ धौँ उबेरनि ॥

२५६—बहै—चहै (सतना) ।

[२५७] मरक काढ़िहै=बदला लेगा । [२५८] सरोतर=साफ, स्पष्ट । गोतर=गोत्र की । होतर=होने योग्य । दरबरयो=त्रास । अजोतर=स्वच्छंद ।

हमीर] (२६०) [चंपक

उन्हैं कहा मेरी सी चटपटी है, कान्ह सदा के निखरके ।
वे रसलोभी आहिं पाहुने को जानै के घर के ।
अपनी गौं उठि गौंहन लागत ब्रजछैल छबीले भरे अर के ।
आनँदघन कहूँ अवधिनि काँधत कितहूँ वायदे भर के ॥

कान्हरो] (२६१) [चंपक

सुख तौ एक नँदनंदन दुलराएँ ।
कौन कहि सकै होत हिये जो मोहन-मूरति आएँ ।
भूलि जाति सुधि हू की सब सुधि रूप-छटा दरसाएँ ।
आनँदघन रस प्रानपपीहा प्यासनि पियत अघाएँ ॥

भैरो ख्याल] (२६२) [चरचरी ताल

अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी आव रे जियज्यावन प्यारे ।
हिय उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे उज्यारे ।
जब तें सुनी है मोहन मुरलिया तरफरात से प्रान बिचारे ।
दीन पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन रसरासि सुखारे ॥

बसंत] (२६३) [चौताला

वृंदावन मधि मधु रितु आई अति छबि पाइ सुहाई ।
कुंज कुंज सुखपुंज मधुप - गुंज कोकिला - सुर की झाई ।
बिलसत हैं अपनी रुचि संपति दंपति कैं बिनोद अधिकाई ।
आनँदघन रस-रमँड घमँड सौं मुरली - तान बजाई ॥

बसंत] (२६४) [इकताला

प्रगटी है बसंत-गुन-गोभा आवौ री बन देखन जैयै ।
चरन बरन फूलनि के भूपन रचि रचि रुचि सौं राधा कौ सिँगार

२६०–छैल०–मोहन हैं भरे छरवर के (सतना)। वायदे–वात के (वही)।

[२६०] निखरके=बेखटके । अर=अड़, हठ । वायदे=वादा । [२६३] झाई=प्रतिध्वनि । [२६४] गोभा=अंकुर ।

गूँथि मालती-माल मनोहर ब्रजमोहन कौं लै पहिरैयै ।
आजु मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ैयै हिलमिलि आनँदघन बरसैयैं ॥

हिंडोल] (२६५) [मूलताल

तू मन मानी है उनकैं तौ मन मान्यौ है मान ।
सो मन भायौ करति क्यौं न मिलि पिक-पुकार धरि कान,
रितुपति आयौ देत निसान ।
मदन सहायक सज्यौ संग ही लै कर तीखे तीखे बान ।
सैन रैन पराग धूँधरि लखि चलियै बेगि सुजान अकिलै
आनँदघन पिय प्रान ॥

ख्याल हिंडोल] (२६६) [चलती

स्याम सौं रँगीली राधा खेलैं बसंत बरसि सरसि दरस परस राग रंग।
गावति तान तरंग उमंगनि आनँदसदन बदन लसनि
भृकुटि लचनि मान संग ॥

ललित] (२६७) [मूलताल

छतियाँ दलमलै गुलाल अनोखो खेल सीख्यौ नँदलाल ।
कैसँ कै निकसियै गैल गरथारँ अचकाँ उचकि करै बनमाल ।
घात लगाएँ फिरै रैनि दिन फागुन लाग्यौ किधौं जँजाल ।
मोही सौं कहि कहा बैरु है औरौ बसति बहुत ब्रजबाल ।
मेरेई नगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै कासौं कहौं सखी ये हाल ॥

देवगिरी] (२६८) [मूलताल

गोकुल गरथारँ होरी खेलै रंगभीनो ब्रजमोहन छैल ।
नवल वधुनि कौं तकि तकि भिजवै रोकि रहत पनघट की गैल ।
उघरि उघारीँ गारीँ गावै तारी दै दै हँसत हँसैल ।
आनँदघन अपबस करि छाँडै जोवन-मातो निपट अरैल ॥

२६५–देत–देख (लंदन)। २६७–कैसे०–निकसि न सकियै (सतना)।
सखी-भट्ट (वही)।
मनोज०=वसंतपंचमी। उस दिन कामदेव की भी पूजा होती है।

रागनी धनासिरी] (२६९) [मूलताल

हो हो होरी हो हो होरी खेलत नीको रंग रह्यौ है ।
राधा - मोहन हिलनि - मिलनि - रस कैसैँ परत कह्यौ है ।
नित यह फाग सुहाग-भाग नित अवसर लाहु लह्यौ है ।
आनँदघन ब्रजवन जमुना-तट सुखसागर उमह्यौ है ॥

अड़ानो] (२७०) [चंपक

झूलत फूल - डोल फूल - भरे दोऊ ;
राधा-मोहन गुन-रूप-रासि पटतर को नाहिन कोऊ ।
जमुना-तीर सघन बृंदावन अति कुसुमित हुलासमय सोऊ ।
चैत-चंद सुखकंद चंद्रिकनि जगमग जगमग होऊ ।
महामोद-परिमल विनोद-भर महकत मलय-समीर-समोऊ ।
मधुर गान कल तान आनँदघन थिर चर मनहिं बिलोऊ ॥

एमन] (२७१) [मूलताल

ऍसौ होरी ऐसैँ खेलौँ उघरि उघरि ब्रजमोहन सौँ मनमानी ।
परु की कसरि काढ़ि सब नीकैँ लेउँ भावतो दाव चाव सौँ
अब मैँ यह जिय ठानी ।
कानि कनोड़ कौन की सजनी भई बहुत दिन यौँ नकवानी ।
आनँदघनहिं भिजाऊँ तौ हौँ वेऊ भए फिरत रसदानी उनहूँ परिहै जानी ॥

एमन] (२७२) [इकताला

गुजरिया तू रँगराची मोहन कैँ अनुराग ।
होरी मैँ उनहूँ की तोसौँ नीकी लागी लाग ।
छुटे बार मुख-ओप अनूठी जगमगि रह्यौ है सुहाग ।
आनँदघन चित चतुर चातकी पगी प्रेम-पन - पाग ॥

विभास] (२७३) [इकताला

तिहारो कान्हर कौन सुभाव ।
मोही सौँ जब तब खौरत हो सब मिलि करैँ चवाव ।

२७१–ऍसौ–ऐसैँ (सतना) । चाव-भयौ । हौँ०–बृषभानुजा साँची (वही) ।

[२७१] ऍसौ=इस वर्ष । परु=गत वर्ष ।

कहा भयौ जौ होरी आई तुम अटकरत अटपटो दाव ।
नयो खेल कितहूँ तैं सीखे हाँसी को सतिभाव ।
हँसी ठठोली छूटैं छमाहँ तुम्हैं नित नयो बाढ़त चाव ।
आनँदघन कोऊ लखि पैहै हाहा टरि किंनि जाव ॥

बिभास ख्याल] (२७४) [चरचरी

तुम उनहीं सौं होरी खेलौ जिनसौं खेलि रहे हौ लाल लगाँहैं ।
नैन गुलाल भराएँ आए रस की रैनि जगाँहैं ।
इतने पै मो तन मुसिकत हौ धुर तैं निपट लजाँहैं ।
घर आएँ को बरजै बैठियै कै धरौ पायँ अगाँहैं ।
आनँदघन अब उघरि नचे हौ अपनी गौं बरसाँहैं ॥

ललित] (२७५) [मूलताल

आए नैन गुलाल भराएँ, होत कहा है डीठि दुराएँ ।
सौंधो - चोर - चतुरई ठानत, और गँवारि तिहारे भाएँ ।
अंतर की उघरनि सब इन ह्वै काच-घटी-रँग उपमा पाएँ ।
आनँदघन रसमसी घुरनि की अब लीजै तिन तोरि बलाएँ ॥

मालव] (२७६) [मूलताल

सब रंग होरी खेलौं तुम संग ।
मोहिं तुम्हैं बनि आई अब तौ मन मान्यौ है यह ढंग ।
गुरजन दुरजन कहा करैं निधरक भरि लपटैहौं अँग अंग ।
आनँदघन पिय भीजि भिजैहौं बरसैहौं गहि गहिरो रंग ॥

ललित] (२७७) [इकताला चलती

मटकि मटकि गारि गावै लटकि लटकि डफ बजावै ।
मनमोहन के मन की मोहनी छबि छकी छकावै ।
कंठ किलक दसन - चिलक स्रवन दृग सिरावै ।
अधरनि की लाली ललित लालै ललचावै ।

२७४-बरसौंहैं-भरसौंहँ (सतना) ।

[२७३] खौरत=छेड़छाड़ करते हो । अटकरत=ताक लगा रहे हो । [२७४] धुर तैं=आरंभ से, पहले से । [२७५] सौंधो०=सुगंध चुरानेवाला चोर ।

छुटी अलक बदन - झलक रूप - छलक छावै ।
पानिप की ओप उमँड प्यासनि बरसावै ।
माल-डुलनि अँचरा - फुलनि अलवेली गति आवै ।
सौभग वर लंक - लचक संकहि उपजावै ।
अंग अंग रस - तरंग रंगनि सरसावै ।
आभा-उदधि रसिक छैल के नैन - मीन जिवावै ।
भँवर-भीर सहज तीर अति अधीर धावै ।
रसिया पिय भावना मैं चिवस चाँर ढरावै ।
सखि - समाज संग लिये चाँचरि मचावै ।
कुमुदिनी के मंडल ससि पटतर क्यौं पावै ।
भागभरी रागभरी फाग यौं मनावै ।
भीजि भीजि उमँगनि आनँदघनहि भिजावै ॥

सारंग] (२७८) [मूलताल

गोकुल गलिनि मच्यौ है खेल, वाढ़ी अति रँग-झुरमट झेल ।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोवन - छाक अलवेल ।
चौकस चपल चतुर व्रजगोरीँ आई सजि अपअपने मेल ।
गारीँ चोख ठठोलीँ बोलीँ रस की ठेलाठेल ।
चौँकनि चलनि भरनि अरु भाजनि उलटनि उसरि उमँग पगपेल ।
आनँदघन वरसत रुचि सरसत फैलि परी रस - रेल ॥

धनासिरी] (२७९) [इकताल

रसिक छैल नँदलाल खिलारी ओर के हम जाने ।
अब करि भए निपट ही टौंडिक आनत नहीँ आँखि तर
काहू फागुन - मद - उमदाने ।
भँवर-भाव रस लेत फिरत हौ बीथिनि बगर रहत मँडराने ।
मसि मजीठ रंग रचे अधर दृग आनँदघन बरसाने,
तिहारे गुन नहिँ परत बखाने ॥

२७६—टौंडिक—ढीठक (सतना) ।

[२७९] टौंडिक=शरारती ।

अलहिया बंगाली] (२८०) [मू

नंदलला सौँ खेलौँ होरी ।
कैसैँ दुरति सखी इहिँ औसर उघरि परी हित - चोरी ।
रोकी रहति न सासु ननद की रस लैहौँ बरजोरी ।
प्रान - जीवन आनँदघन पिय कौँ गहि राखौँ पन-डोरी ॥

बिहागरो] (२८१) [इ

साँवरो होरी खेलै अपनी गोरी - संग ।
जमुना कैं तट सघन कुंज मैँ भीनौ प्रेम - उमंग ।
चोवा-चित्र रचत चोली पै परसत लोने अंग ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसत अति रति-रंग ॥

पूरिया धनासिरी] (२८२) [इ

होरी खेलि आए खेलन मेरैँ रसिक छैल खिलवार ।
नैन रसमसे बैन रसमसे रूप - छके रिझवार ।
हिय खरकत गुलाल किनि काढ़ौ कै कहूँ भई भावती जगा
आनँदघन भुरहरैँ उनए बरसत रस - बढ़वार ॥

ललित] (१८३) [मू

ए मेरी ननदी री कहि कहा करौँ ।
तेरे बीरन परदेस रमि रहे फागुन के दिन कैसैँ भरौँ ।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौँ ।
आनँदघन मोही पै घमँड्यौ रीझि लाज सौँ कौ लौँ अरौँ ॥

पंचम] (२८४) [इ

होरी खेलै छैल छबीलो मोहन साँवरो ।
रंग-रँगीलो रस-बरसीलो मोहि लियौ गोकुल गाँवरो ।
बरुनिनि सौँ तरुनिनि हिय बेधत कँवलनैन नीको नाँवरो ।
आनँदघन घुरि भिजवै रिझवै सबही भाँतिन है जिय भाँ

केदारो] (२८५) [इ

रंग - रँगीले सौँ आज, होरी दाँव बन्यो है ।

अंग अंग सुख रंग साँज सजि सकिल्यौ है अभिलाष-समाज ।
चौंप चाह रीझनि भीजी आनँदघन भिजवन - काज ॥

धनासिरी] (२८६) [इकताला

कहूँ किनि होरी खेलौ रंग रहै मो संग ।
तिहारैं गुलाल खरक मो अँखियनि ब्रजमोहन नवरंग ।
जो मन फगुवा दै तुम आए मैं पाए अभिलाष अभंग ।
सुघरि उघरि आनँदघन वरसे ढकत नहीं ये ढंग ॥

सकरा] (२८७) [चरचरी

रस राखि होरी खेलौ खिलार जाने हौ जू उदार ।
आनँदघन उनए नए छैल अजू हठि होत फिरौ गरहार ॥

सहानो] (२८८) [इकताला

गुलाल - भरी तूँ आई है ।
अँचरा है रसमसी महा दलनि ढुरि ढुरि देत दिखाई है ।
ललित कपोलनि ओछैंऊँ पाछैं लाली लसति सुहाई है ।
आनँदघन रसकेलि - कलानिधि अँग अँग रँगनि भिजाई है ॥

धनासिरी] (२८९)

आनि वन्यौ होरी को दाव ।
विधना रच्यौ रंगीलो अवसर वाढ़ि रह्यौ हो चित मैं चाव ।
राधा-मोहन के हिय हिलगनि रचति हुती बहुरंगनि भाव ।
सो सब सहज उघरि आई अब दवे चहूँघाँ चपरि चवाव ।
मचियै रहति चौंप की चाँचरि सरस खिलार सुदेस बनाव ।
बिलसौ लसौ हँसौ आनँदघन उनै उनै बरसौ रस-राव ॥

सावंत] (२९०) [इकताला

होरी के खेल तोही पै वनि आवै यह छरवर पै छरई ।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चौंपनि मनभावन भरई नैंक न डरई ।

[२८६] फगुवा=फाग की भेंट, उपहार । [२८८] ओछैंऊँ=साफ कर देबे पर, पोंछ देने पर भी । [२८९] राव=ध्वनि ।

पहिलेई कौंधन भरति चखनि मैं चौंपनि फिरि जो मन भावै सो करई।
आनँदघनहि पपीहा करि राख्यौ राधे ऐसैं सौतिनि दरमरई ॥

ऐमनि] (२९१) [इकताला

गोपी ग्वाल गुपाल संग रंग होरी माची है।
झपट लपट कपट छोरि पट झटकनि गहि झकोरि लाज्यौ
सरस औसर लखि उघरि नाची है।
अप अपनी रीझ बूझ सब तन तकत हीँ सूझ अति रस
बढ़वारि सुख की सींव खाँची है।
स्यामसुंदर आनँदघन राधा कैं रस भीजि रहे ब्रज बन
गिरि खोरि हित-सहेट साँची है ॥

अड़ानो] (२९२) [चौताला

गावै होरी छैल ब्रजमोहन नवरंगी गितार तार सुर तान सौँ।
नटवा निपट निपुन रासमंडल मैं अभिनै - भेद बतावै,
गीत रीति परवान सौँ।
राधा नवेली कैं रँग भीनौ रँग मूरति रसिकमनि मन्मथ-
मान हनै नैन-बान सौँ।
सहचरि चुहल चौंप ही चहूँ ओर आनँदघन तत बितत
सुखिर घन आछी आछी ठान सौँ बाँकी परन उठान सौँ ॥

देसी बरारी] (२९३) [इकताला

मनभायो त्यौहार मनायौ मान्यौ है भाग फागु लागैं हीँ।
उघरि उघरि खेलत रस झेलत रोमनि भीजि रहे आगैं हीँ।
सब रँग साज-समाज लियैं ँग गावत रागनि अनुरागैं हीँ।
ब्रजजन जीवनधन आनँदघन राधा - मोहन - पन पागैं हीँ ॥

हिंडोल] (२९४) [चौताला

आदि हिंडोल गायौ आदिनाथ हौँ हूँ गावत पाछैं।
भक्तराज गुनरहित-गुनीसुर गंगामौलि महोत्सव-मूरति काछैं।

[२९२] गितार=एक बाजा। परवान=प्रमाण। तत०=नृत्य के भेद। परन = बोल।

गिरिजापति गिरिवासी चंदचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साछैं ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-गुनगान गरज दै राखौ निरंतर आछैं ॥

विभास] (२९५) [मूलताल

निपट निडर खिलार हो देखे होरी को खेल यह कौन ।
आनँदघन पिय झूमेई आवत वहियाँ पकरि हठि गरैं
लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन ।
कित कौं भोरहीँ आई जमुना जल तुम घर तैं लै निकसे सौन ।
चतुर छैल ह्वै देत गँवारथौ देहदसा लखि लरैंगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन ॥

विहागरो] (२९६) [इकताला

छैल साँवरिया खेलै रसहोरी अपनी गोरी राधा कैं साथ ।
सहचरि - भीर तीर जमुना कैं पहिरैं नव रँग चीर ।
केसू केसरि रंग कमोरीं झोरीं गुलाल अबीर ।
दाव चाव वहु भेद भाव सौं चाचरि चुहल मचाइ ।
चलति कटाछ सहित पिचकारी तन मन लागति जाइ ।
चित चकोर चौंगनि चितवत मुखचंदहि पलक विसारि ।
भीजि रह्यौ अनुराग रंग मैं रीझनि सरवस वारि ।
कुंज केलि कौतुक नित नितहीँ रची रहति यहै फाग ।
गावत सरस कंठ रसगारी झर लाग्यौ अनुराग ।
फगुवा देन लेन को जो सुख सो कहि सकत न वैन ।
आनँदघन रस रमँड घमँड सुख लेत पपीहा नैन ॥

प्रेमन] (२९७) [मूलताल

ज्यौं मैं खोले किवार त्यौं ही आनि लवढ़ि गौ गरैं ।
घरवारे को भेप बनाय आयौ लंगर ताक लगाय छल सौं बोलि हरैं ।
ऐसैं होरी दाव लियौ है जैसैं पासे पैज परैं ।
आनँदघन ब्रजमोहन घुरि ढुरि भिजई खरैं खरैं ॥

[२९५] सौन=गुलाल । हौन=अपनापन । [२९७] लवढ़ि०=लिपट गया । पैज=प्रतिज्ञा, शर्त ।

ख्याल ऐमन] (२९८) [चर्चरी

सुघर खिलार याकी बहियाँ क्यौं मरोरी ।
बहियाँ क्यौं मरोरी गिरिधर निधरक झकझोरी ।
नीठि निहोरैं खेलन निकसी आनँदघन तुम उनए बरजोरी ।
ए रहौ दैया कौन भाँति सौं खेलत होरी ॥

सारंग] (२९९) [इकताला

सब रंग होरी को तैं राख्यौ राधे सरस खिलार ।
निपट रँगमगी चितवनि तेरी निपट नयौ रस चाख्यौ ।
मोहन पै मनमान्यौ फगुवा लियौ बहुत दिन को अभिलाख्यौ ।
आनँदघनहिं भिजै तू आई यह सुख परत न भाख्यौ ॥

बिभास] (३००) [इकताला

कन्हैया मोही सौं रसवाद रचै री, न्यौज लगौ यह फाग ।
अपनो सो हौं बहुत बचौं पै निपटै निडर वह कैसैं हूँ न बचै ।
छाँह न छ्वावत ही कबहूँ वह बहुत दिना को लागि पचै ।
अब तो होरी को मिस पायो कानि कौन की काहे न उघरि नचै ।
ताक लगावै ढूक्योई आवै डोलत है निज लाज अचै ।
आवौ मिलि गहि गाढ़ैं भिजैयै आनँदघन कौं जैसैं नैक लचै ॥

सारंग] (३०१) [झप

पहिरि निकसे कान्ह केसरी वागौ ।
चारु चौत्रा-चित्र बाहुमूलनि खुले उमँगि भेंटनि प्रगट
करत जिय-लागौ ।
सवँरई सौं गुराई मिलैं छवि फबति सुनि समझि
भामिनी प्रीतिपन पागौ ।
आनँदघन वगँड आनि औसर बन्यौ दरस दीजै
सरस कीजियै फागौ ॥

[२९८] सुघर=चतुर । नीठि०=कठिनाई से और विनय करने पर । [३००] न्यौज०=दैवकार्य में लगे, समाप्त हो जाए । हौ=थी । अचै=पीकर । लचै=दबे, नम्र हो । [३०१] वागौ=अंगा, जामा ।

हिंडोला] (३०२) [चौताला

नीकौ खुल्यौ री तेरैं भाल ए नव बाल गुलाल-टीकौ ।
राग-रचावन रंग-बढ़ावन प्यारे लालन के जी कौ ।
भई है इकोसी-फाग कहूँ तैं हूँ फगुवा लियौ है लगौंहीं ही कौ ।
आनँदघनहिं सजल कियौ तैं दामिनि यह फाग
भाग है री राधे तो सी कौ ॥

हमीर] (३०३) [इकताला

आए बन तैं गोपाल जसोमति आरती उतारै ।
राई नोन वारि वारि तिनुका तोरि डारै ।
आँचर तैं उमगि उमगि चलति दूधधारै ।
मोदमगन मैया मन छैया - छवि निहारै ।
वदन चूमि हिय लगाइ मंदिर लै पधारै ।
ताते जल पाय पखारि गोद मैं बैठारै ।
मधुर मोदक जननी - कर कछुक मुख जु ढारै ।
आनँदघन हित घमँडनि कहाँ लौं विचारै ॥

सारंग] (३०४) [इकताला

चतुर खिलार खेल की हौंसनि भए फिरत हौ
हो निपट मायक से ।
ते औरै जे तुम रँग राचीं तुमहूँ रचे तिन्हैं लायक से ।
मिस ही मिस ढिग ढूके आवत लै गुलाल कर जानि
परे हौ रसनायक से ।
आनँदघन अब उघरि रचे हौ नित ही रहत अब फागु नायक से ॥

धनासिरी] (३०५) [इकताला

होरी खेलिहौं उमंग्यो है मो चित चाव ।
लाजहिं सौंति कहा करिहौं अब खुलि खेलन को दाव ।
अपने मन की कसरि काढ़िहौं कौ लौं करौं दुराव ।

[३०२] इकोसी=एकांत मैं । [३०३] छैया=बच्चा, शिशु । [३०५] सौंति=

इन फागुन हौं आज जिवाई मारत हुते चवाव ।
तरसति ही दरस कौं परस कौं बिधना रच्यौ बनाव ।
आनँदघन अबीर-घमँडनि मैं करिहौं कौंधि मिलाव ॥

सारंग] (३०६) [इकताला

नई पाहुनी आई है तूँ अरु आई फागौ उफनाइ ।
कालिह कान्ह की डीठि परी कहूँ आज भोर तैं इत मँडराइ ।
बरजति ही निकसै जिनि पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाइ ।
वा रसलोभी को हियरा हठि लै आई लावनिहि लगाइ ।
अजहूँ बैठि रहै किनि घर मैं कित डोलति बिछियानि बजाइ ।
मेरो ज्यौ सुनि चलत ठौर तैं रसिक छैल छकि घूमै न्याइ ।
भागनि वन्यौ आनि यह औसर जो कछु तेरैं हूँ चित चाइ ।
दै चुकि होरी कैं सिर यह जस नीके आनँदघनहि भिजाइ ॥

दरज] (३०७) [चौताला

सुघरराइ ऐसैं कोऊ है गुलाल चलावत खेल
किधौं सति भाव ।
भली भई पाकी आँखिन परचो हो तौ वतवढ़ाव
रहौ जू तकत गँवेलो दाव ।
रंग राखि रस राखि खेलियै जैसैं वढ़ै चित चौगुनो चाव ।
आनँदघन घमँडनि मैं उवरे अपनो सो करति दुराव ॥

सारंग] (३०८) [चौताला

यह वृंदावन यह जमुना - तीर यह सारंग राग ।
यह भागभरी भूमि यह तरु - लता - झूमि यह विहंग-
वड़भाग राधा मोहन को सुहाग बाग ।
याकी लहलहनि याही मैं पाइयति भीज्यौ आनँदघन अनुराग ।
नैननि को फल चाहिवो समझत स्यामा-स्याम सेवत हैं
करि नित ही जाग ॥

संचित करके । हौ=थी । [३०६] लावनि=लावण्य, सौंदर्य ।

सारंग] (३०९) [चौताला

सारंग पूरयौ री बनवारी बंसी मैं कैधौं बैर बिसाह्यौ ।
धुनि की भिदनि हियौ पघरयौ जाइ हाइ बिसासी कहा करन है चाह्यौ ।
तीखीताननि चपल करै मति जियराहू ढुरि मिलन उमाह्यौ ।
आनँदघन रीझनि भिजवै सोचनि सुखवै ऐसैं कौ लौं परिहै निवाह्यौ ॥

धनासिरी] (३१०) [चौताला

आँखिन सौं आँखि मिलाइ होरी खेलियै ।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक ह्वै रस झेलियै ।
अंजन आँजि माँडि रोरी मुख हँसि गरबाहीँ मेलियै ।
गहरु करन को दाव न राधे तू धुर की अलबेलियै ।
मोहनलाल तमाल बाल वर तू सुहाग नवबेलियै ।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै ॥

धनासिरी] (३११) [मूलताल

हौं कहा करौं हो दैया फागुनवा आयौ ।
दिन चारिक तैं बिरह निगुड़वाँ कैसो मूड़ उठायौ ।
ब्रजमोहन भए निपट बिसासी यौं इन अवसर पायौ ।
औसेरनि औसति आनँदघन नव रंगनि झर लायौ ॥

सारंग] (३१२) [इकताला

मदमाती फागुन भोज की ।
छैल कान्ह कौं लाइ लगौंहीं गावत गारी चोज की ।
लोनो वदन रतौंहैं अधरनि फूलनि कहा सरोज की ।
मोहन भँवर भयौ सँग डोलत तकत गैल तिहिं खोज की ।
चित्रित डफ विचित्र कर सोहत गति मति हरन मनोज की ।
आनँदघन की घमँड होति लखि उकसनि लसनि उरोज की ॥

[३१०] मरक=हौसला । [३११] निगुड़वाँ=निगोड़े ने । औसेर=प्रतीक्षा-जन्य व्यग्रता । औसति=व्याकुल होती हूँ ।

धनासिरी] (३१३)

लगै जौ चटक चौंप की चोट ।
तौ क्यौं सही परै प्राननि के प्राननि सौं पल ओट ।
पाथर तें पोढ़े जड़ मेरे मनहीं की कछु खोट ।
तौ लौं कहा होइ नहिं जौ लौं कसकैं लोटकपोट ।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि चेतनहूँ की टोट ।
चरन-धूरि ब्रजगोरिन की जाचत है निलज निखोट ।
वृंदावन - रस भिदै न याके कपट कुटेव अगोट ।
द्रुम-वेलिन लिखि फुरै सु कैसैं ललित रँगीली जोट ।
भरि दै री जमुना करुना करि इहिं रस आसा-वोट ।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चारिक छींटनि छोट ॥

नट] (३१४) [चौताला

उमहि उमहि रस बरसत राधा सोहन सोहन सबके जीवन-प्रान ।
नव घन दामिनि रीझनि भींजे पहिलेई पुनि रसभीज्यौ
फागुन पायौ नेही नवल समान ।
पैंज-रूपनि दुहुँ ओर चौंप चुहल चाचरि सोर ढोल-ढनक
घोप मंगल सुनत सफल होत कान ।
आनँदघन सुखसमूह सुर भूले लखि कुतूहल छायौ केलि-वितान ॥

विहागरो] (३१५) [इकताला

होरी खेलै राधा गोरी साँवरे प्रीतम संग चाँचरि चौंप रचाइ ।
जोवन जगी जगमगी सखिन मैं अति लोनी मीठी गारी दै
लालहि लेति लुभाइ ।
पानभरैं मुख बिथुरी अलकैं दुति मुख को पानिप कछु कह्यौ न जाइ ।
रीझनि भरि भिजए आनँदघन पिचकारीहिं रंग रह्यौ छैल कैं
छवि देखन को दाइ ॥

३१३–पोढ़े–खोटे (सतना) । गोरिन–खोरिन (लंदन) ।

[३१३] लोटक० = लोटपोट । अगोट = आधार । आसा० = आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान । कादंबिनि = मेघमाला ।

सहानो] (३१६) [इकताला

मोहन अब तौ रँगनि भरौंगी ।
मोसौं खोरि दौरि कित जैहौ देखौगे सु करौंगी ।
आजु रँगीलो दाव बन्यौ है काहू तैं न डरौंगी ।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौं या अर तैं न टरौंगी ॥

परज] (३१७) [इकताला

अटपटे पेचनि आए निपट लटपटे लाल ।
होरी को मिस पाइ दाइ रचि लीने फैंटि गुलाल ।
खेलति होइ री खेलियै तासौं लखे अनोखे ख्याल ।
आनँदघन बरजोरी उनए उरझि करत उरसाल ॥

ऐमन] (३१८) [इकताला

हौं उनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि माँची रसहोरी है ।
भली भई फागु के दिननि मैं उघरि परी हितचोरी है ।
प्रीतिरीति गीतनि गावत ब्रज घरघर केसरि घोरी है ।
आनँदघन राधिका दामिनी जगत-उजागर जोरी है ॥

गंधार] (३१९) [इकताला

हो होरी खेलै अलबेलो नंद महर को ।
चंदमुखीं लखि बढ़यौ रूपनिधि रंग अनंग लहर को ।
बोरत लै मन नैन सबनि के पूरन प्रेम-गहर को ।
गुपत प्रगट भिजवत आनँदघन रसिया आठ पहर को ॥

विभास] (३२०) [इकताला

आजु कान्ह कुँवर की बरसि-गाँठि है आवौ री
मंगल गावौ सब बर नारि ।
ब्रजमोहन-मुख सुख-सोभानिधि भागनि को फल लेहु निहारि ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ जापै सरबसु दीजै वारि ।
आनँदघन चिर जियै लड़ैतो विधि पै माँगति गोद पसारि ॥

रामकली] (३२१) [चंपकताल

नंद को आनंद कह्यौ न परै हो ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन प्रगटे को इहि सुकृत फरै हो ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कैँ सोभित सुभग घरै हो ।
जसुमति जाकैं घरनि सपूती दीपति भवन भरै हो ।
भई वधाई-भार सुहाई हेरत हियो हरै हो ।
वहुत भाँति चातक-जन गन पै आनँद मेघ भरै हो ॥

विभास] (३२२) [इकताला

चरन तिहारे सब सुफलदायक ।
रमन-भूमि व्रजमंडल-मंडन सुनहु साँवरे गोकुलनायक ।
रसविलास-सपदा-स्वामी सुखनिधान सुमिरिबे सु लायक ।
आनँदघन अमोघ रसमूरति सरनागत भयहरन सहायक ॥

राग अड़ानो] (३२३) [चरचरी चलती

सुहेलरा आजु नंद कैँ आनंद ।
घर वाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेई वनै व्रज वाढ़ी ओप अमंद ।
जसुदा की कूख सिरानी भई है सवके मन मानी प्रगटे
सुखदानी कुलमंडन व्रजचंद ।
आनँदघन-घमँड तहाँ अदभुत छवि फवी जहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद ॥

सारंग] (३२४) [झपताल

मंदिलरा गहगहो गाजै वाजै वधाई व्रजपति के घर ।
हरि जसुमति जन्यौ स्याम लोनो ललन अति मुदित नचत नारी नर ।
को कहि सकै भागनि को निकाई अदभुत मनोरथ-महीरुह लाग्यौ सुफर ।
पूरन करी आस-प्यास निज जननि की सवनि पर आनँदघन घन झर ॥

३२१—गन०—गाव (सतना) ।

धनासिरी] (३२५) [मूल

सुभ दिन आजु को सखी री जनमे मोहन स्याम ।
घरघर महा महोच्छौ व्रज मैं पूरे मन के काम ।
नंद जसोमति अति वड़भागी सब विधि रस-जस-धाम ।
आनँदघन वरस्यौ सरस्यौ हित जगजीवन अभिराम ॥

धनासिरी] (३२६) [मूल

मिलि चलहु वधाएँ जाहिं कीरति कुँवरि जनी ।
सुख की रासि विधाता दीनी आज भावती वात वनी ।
देखौ री देखौ किनि सजनी दिसि दिसि वाढ़ी ओप घनी ।
गोकुलचंद - चंद्रिका प्रगटी अतुल प्रेमरस - रंग-सनी ।
वाजत्ति अति गहगही वधाई चैन चुहल चहूँ ओर ठनी ।
गैल गरथारनि गहमह मार्चा रावरि-छवि नहिं परति गनी ॥
भागनि को परागनि को फल लेहिं निरखि मुख पूरन
करहिं आस अपनी ।
आनँदघन वरस्यौ इहिं औसर धनि धनि धनि यह दिन-रजनी ॥

संकराभरन] (३२७) [मूल

सव व्रज सुख समुद्र ह्वै वाढ्यौ प्रगटे गोकुलचंद सुछंद ।
गरजि उठ्यौ अमोघ मंगल-धुनि दूरि गयौ दुख-द्वंद ।
हरषे द्रुम-वेलीँ नरनारीँ प्रेम-पियूष - मयूख अमंद ।
आनँदघन अनेक रस वरसत धन्य जसोदा-नंद ॥

रामकली] (३२८) [चंपकताल

नंदभवन की सोभा आज देखेई वनि आवै ।
कमलनैन सुखदैन प्रगट भए भाव - भेद को पावै ।
जो कुछ व्रज को भाग उदै भयौ सो कहि कौन वतावै ।
आनँदघन अनेक रस वरसत सब जग मंगल गावै ॥

३२५—महा०—महामोद छवि (सतना) । ३२८—उदै—प्रगट (सतना) ।

[३२६] रावरि—रावल, राधा का ननिहाल ।

रामकली ख्याल] (३२९) [मूलताल

आछी गति बाजै मंदिलरा स्यामसुंदर के जनम-समै व्रजपति-घर।
आनँदघन की घमँड घोर चहुँ दिसि लाग्यौ है रस-झर ॥

धनासिरी] (३३०) [मूल

वरजत वरजत अँखियनि व्रजमोहन-मुख चाह्यौ ।
धीरज धन दै हाथ परायैं विरहा-विषहि बिसाह्यौ ।
उनहिं कहा कहि दोष दीजियै इनहीं उरझनि नेम निवाह्यौ ।
मन मोहन लगाय आनँदघन तनहूँ बन लै गाह्यौ ॥

भैरव] (३३१) [चरचरी

गिरिधर आनँदकंद ।
व्रजजन-लोचननि चंद रसमय आभा अमंद मंडित-गोपाल-वृंद ।
नित नित लीला सुछंद गिरिवन तनया-कलिंद सुंदर वदना-
रविंद मुरली-धुनि मंद मंद ।
जयजुत गोकुलानंद वंदित सुर-अरि-निकंद महा मधुर
वय किसोर गोपवधू-हृदय-कंद ।
आनँदघन अदभुत अभिराम स्याम प्रेमधाम नाम रूप
जीवनधन धनि जसुदा धन्य नंद ॥

विभास] (३३२) [चंपकताल

स्यामसुंदर व्रजराज-दुलारे मेरी अँखियनि के तारे हैं ।
मोहन मुख देख्यौई भावै गुननिधि रूप-उज्यारे हैं ।
वेनु बजावत लटकत आवत मदगज गति पर वारे हैं ।
आनँदघन रस पीवत जीवत चातक-प्रान सुखारे हैं ॥

भैरव] (३३३) [चौताल

जगतारन करुनासिंधु मुरारि दीन असम्हारनि लेत सम्हारि ।
अधम-उधारन बहुविधि सुखविस्तारन स्वामी दयाल पन-
पूरन पालन व्रत धारि ।

[३३०] गाह्यौ = थहाया, खोजता फिरा ।

अघ - वारन - कंठीरव दारुन दुखदल - विदारन गुन
अपारन को सकत विचारि।
आनँदघन रसधारन सकल संतापनिवारन घमँडि विराजत
प्रान - पपीहनि पारि ॥

विलावल] (३३४) [मूलताल

संकर गिरिजापति नंदीसुर चंद्रचूड़ गंगाधर।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय - हर।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर।
आनँदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित - वृंदावन - थर ॥

आसावरी] (३३५) [इकताला

धनि ब्रज-आँगन जहाँ घुटुरुवनि ऐसो बालक डोलै हो।
धनि धनि रता जसोमति की जासों लड़कि तोतरें बोलै हो।
मोहन स्याम सकल ब्रजजीवन बालविनोद कलोलै हो।
आनँदघन हित घमँडि गोद मैं बैठ्यो ब्रजपति सो लै हो ॥

कान्हरो दरबारी] (३३६) [चौताला

वृंदावन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन।
मंजुलद्रुम - बेलिनि-दल-फल मैं दरसति राधा मूरति यह
सुख जानत जाके जोहन।
श्रीपद सरस परस नित हितमय अनुपम भागनिकाई गोहन।
दंपति चातक - जुगल आनँदघन करत मनोरथ - दोहन ॥

धनासिरी] (३३७) [झप

ऐसो को जो तिहारे गुन गाय जानै गाय जानै तुम्हैं रिझाय जानै।
दीन रसना जो कछु बखानै तौ कृपा के प्रसाद को पाय जानै।
कृस्न कमनीय कोविद करुन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानै।
प्रान-चातकनि के आनँदघन सुनौ विरही विचारो बरराय जानै ॥

३३६—अनुपम—अद्भुत (सतना)।

[३३३] वारन=हाथी। कंठीरव=सिंह।

देव गंधार] (३३८) [मूल

तिहारो सुख जौ मन मैं आवै ।
तौ मेरे भागनि की महिमा को कबि बरनि बतावै ।
जमुनातट कुंजनि की सोभा लखि आनँदघन छावै ।
श्री वृंदावन राधा मनोहर वसिबोई नित भावै ॥

आसावरी] (३३९) [चंपकताल

बिछुरिबे को दुख न जानत हैं स्याम ।
बीच दियें हीं मिले बिसासी ये कपटिन के काम ।
हम भोरी बेकाज बिकाईं निज सरबस दै उलटे दाम ।
निधरक छाय रहे आनँदघन हम बिलखतिं ये धाम ॥

(३४०)

सुख - सवाद स्यामहि सुमिरैं सब ।
साठे भए गए छुटि सहजै निज सुरूप रस-परस लस्यौ अब ।
नेह देह जगमगा ज्योतिमै भाव-भेद ढरि लगे ढार ढब ।
आयौ घमँडि महा आनँदघन उघरि परी अति अगम दसा दब ॥

टोड़ी] (३४१) [चौताला

साँचे सुरके बिस्तार साँचे तार साँचियै साँचीताननि मुरली साँचत ।
भौंहैं भंग त्यौंगी तरंग-रंग संग-बिलासिनी के नीके नैना नीके नाचत ।
मन के हरन हैं कान्ह सहज सखी तापै इते भेदपन क्यौं बाँचत ।
आनँदघन पै बहुत गतिन सौं मदन - आँच तउ आँचत ॥

सारंग] (३४२) [चौताला

गावत सुघरराय सारंग तीख चोखनि सौं ।
निपट रसीली डाट लाग लेत ललित भाँतिन संपूरन सुख पोपनि सौं ।
गुनीनि मुकटमनि कान्ह गितार अतुल कहत पोपा धुनि जोखनि सौं ।
आनँदघन भर कदमतर कालिंदी-कूल नैन स्रवन प्राननि मन तोपनि सौं॥

३३९—जानत—जान (सतना) । ये—निज (संग्रह) ।

[३३८] राधा० = राधा के निवास से मनोहर ।

तथा] (३४३)

गोरी गोरी री अति गोरी जमुना तू क्यौं लागति स्याम ।
काचघटी लौं सुभर भरी रँग महामधुर रस बाहिर लसत ललाम ।
राधा ही को हिय अभिलाष घुमेरत भौंरनि है अभिराम ।
भानुकुँवरि आनँदघन कँ बल तोहि बढ़नि बाढ़िये देखति अस्ट जाम ॥

रामकली] (३४४) [चंपक

देवी पूजि पूजि वर पायौ ।
चीरचोर चितचोर और को सरवसु दै अपनायौ ।
को समझै यह प्रेम नेम - गति पूरन पन दरसायौ ।
रसमय वचन - रचन आसा-चल उर आनँदघन छायौ ॥

मलार] (३४५) [चौताला

मोहन मूरति मेरी आँखिनि आगैंई रहै ।
ज्यौं खोलौं मूदौं त्यौं त्यौं ही त्यौं ही दृस्टि गहै न बातौ कहै ।
अरु आँकौं भरि भरि भेंटनि को अभिलाषनि बावरो हिय उमहै ।
आनँदघन पिय के संजोग-वियोगनि पापी जियरा दुखसूल सहै ॥

केदार मलार] (३४६) [चंपक

तुम्हँ को रिझाइ सकै हो बड़े रिझवार ।
रती साँच सौं रीझि रहत हौ सो मोहि भयौ है पहार ।
झूठै सवाद हिल्यौ झूठो हिय तजि साँचो रससार ।
अब आनँदघन उमँडि घुमँडि कै करौ कृपा-आसार ॥

सारंग] (३४७) [इकताला

ब्रज के रूखनि लै दरसैयै ।
रमनभूमि-रज अंजन बन घन सोभा - सुख सरसैयै ।
जमुना - तीर भीर मनभाई प्रीति - रीति परसैयै ।
तचे बचे हैं प्रान-पपीहा आनँदघन बरसैयै ॥

ऐमनि ख्याल] (३४८) [मूलताल

मोरा मन बाँधिलो है, तोरे गुन छैल छबिलवा रसिक रसिलवा ।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबिमतवारे हँसि नैन बान
भरि साँधिलो है ॥

सूहो ख्याल] (३४९) [चलती

हमसों परदेसी की प्रीति करी प्रीति करी कि अनीति करी ।
तब ब्रजमोहन आनँदघन छाए अब लागी है औसेर - झरी ॥

रागिनी देवगंधार] (३५०) [चौताला

ऐसी कौन पै मति है जो तिहारे गुनरूप - रसहि बखानै ।
सुनौ राधामोहन एक भरोसो है जू कृपा की अद्भुत गति है
यहै सुनि सुनि बाढ़ी अभिलाषा अति है ।
बलि बलि जैयै कोमल सुभाव की जातैं पैयै निरंतर रति है ।
आनँदघन ह्वै सींचि हरी करौ आसा-बेली बार बार यही नति है ॥

हमीर] (३५१) [चंपकताल

अँखियनि लाग्योई रहै देख्यौ धौं कौन घरी कौ ।
एक दिना अटक-भटक भई री भटू ता छिन तैं न मलोलो मिटै
मो ही कौ न परइ भरोसो निरमोही कौ ।
नैन-सैन मैं बैन कहि गयौ अधखुले अधरनि प्यासो जी कौ ।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर ब्रजमोहन सब भाँतिनि है सब ही कौ ॥

परज ख्याल] (३५२) [चरचरी चलती ताल

हो सुदिन सनेहरा लग्यौ हो रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो ।
उबरे भाग आनँदघन उमड़्यौ हँसौली भौंहनि रसीले जोहन सौं हो ॥

देव गंधार] (३५३) [चौताला

गन गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गरुए गावत हैं तिहारे ।
गाइ गाइ छकि छकि जकि थकि जीतत हैं जनम कहि हारे ।
सेस महेस निगम असेस गति पावत नाहिं बिचारि बिचारे ।
ब्रजमोहन आनँदघन हौ चित - चातक - पन - रखवारे ॥

भैरो] (३५४) [चौताला

हरौ मेरे हिय तैं यह दुखसूल, करौ किनि अब याकौ कछु सूल ।
जान न देहु कहूँ कबहूँ राखौ जू चरन - कमल के मूल ।

३५३–जकि–जीभ (मतना) । जीतत–जीवत (वही) ।

अपनैंई गुन-गननि गसौ सुधि एक रहै और भरै भूल ।
रतिरस दीजै पपिहा कीजै आनँदघन हौ अनुकूल ॥

पटराग] (३५५) [चलती चरचरी

रसिक छैल नँदलाल मेरी अँखियनि बसे रहैं ।
हिय जिय भरि मोइ समोइ न्यारे नैंक न है ।
सोवत जागत रागत पागत लागत गौंहन गैल गहैं ।
मौनहूँ मैं सुनि सखी कछु सैननि बैन वहैं ।
आनँदघन घमँडि घमँडि उघरि सुख-सवाद लहैं ।
व्रजमोहन विसारौ इते पैं कियौ कहा चहैं ॥

टोड़ी] (३५६) [चपकताल

बजावै कान तीखी तान टोड़ी की ।
मुरली अधर धरैं सुंदर बदन मैनमद-घूमरे नैन केसरि-
खौरि छूटी अलकैं और मुरि परलनि री टोड़ी की ।
अपनैंई मन रीझि, रीझि तहाँ ताही सौं होड़ाहोड़ी की ।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन छवि देखि रीझि भीजि सुधि
काहि लाज निगोड़ी की ॥

सारंग] (३५७) [चौताला

बाँसुरिया सौं कछु न बसाइ ।
अपनो सो मन गाढ़ो करियै पै ये उलहीं चलि जाइ ।
ताननि बाननि प्राननि वेधति बैरिनि इतनें हूँ पैं हिताइ ।
आनँदघन वर बैठें भिजवति सौचनि सुखवति हाइ ॥

सारंग] (३५८) [चौताला

हिलगनि मन की निपट दुहेली ।
कासौं कहौं हौं ही जानति जैसैं निसिदिन भरति अकेली ।
लपटी रहति स्यामसुंदर सौं दीरघ आस-बेली ।
आनँदघन पिय अनत ऊनए औंसनि परति न झेली ॥

३५६–अपनैंई–मन ही (सतना)।

[३५७] हिताइ=प्रिय लगती है, रुचती है । [३५८] औंसनि=ऊमस ।

सारंग ख्याल] (३६४) [चरचरी चलती

न रहै मेरो मन बिन देखें ब्रजमोहन उजियारे ।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान पपीहा निसिदिन रटत बिचारे ॥

बिहागरो] (३६५) [मूलताल

तुम सौं न नेह लगैये ब्रजमोहन हो बिसासी ।
पावत नाहिं पराई बेदनि डोलत भँवर बिलासी ।
अपनो गौं दुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी ।
आनँदघन पिय हैं बरसौंहैं राखत आसनि प्यासी ॥

सारंग] (३६६) [चौताला

प्रीतम याकी बयारि जब जब मो तन परसति ।
ता छिन प्राननि की गति कैसें कहौं जो अरवरनि सरसति ।
ताप सीत दुख सुख को संगम देखि देखि मति अति ही थरसति ।
आनँदघन पिय मिलन-लालसा रोम रोम है बरसति ॥

तथा] (३६७)

जागि री जागि मति मेरी जागि लै जागि लै री ।
रसमूरति ब्रजमोहन सौं नीकैं पागि लै अनुरागि लै री ।
मति है तो कितहूँ मति उरझै वृंदावन-द्रुम-बेलिनि मैं लागि लै री ।
आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि सुनि गुन रागि लै री ॥

ऐमनि] (३६८) [चंपक

हँसि हँसि करैं बातैं रँगीले दोऊ मदमाते ।
गोर स्याम अभिराम अंग अंग हिय उमग बाढ़ी गाढ़ी
अति सरस परस ललचाते ।
नई तरुनई की ओप भई मुख-सुख समोद पुलकाते ।
रीझि चौंप आनँदघन बरसत मिलत हार करि हाते ॥

३६५—आसनि—आपनि (सतना)।

[३६६] थरसति=अस्त होती है। [३६७] मति = बुद्धि। मति=मत, नहीं। लागि०=तन्मय हो। [३६८] हाते=दूर।

तथा] (३७४)

वंसी वजाइ वजाइ हाइ ज्यौं तरसावै विसवासी कान्हा ।
आनँदघन पै तीखीताननि विष - बाननि लौं बरसावै ।
सदा संग सुख ही को दुखिया उरझि उरझि फिरि मुरलि वजावै ।
वाहि न पीर कछू याकी वह जित भावै तित ही धावै ॥

बिलावल] (३७५) [मुरली ताल

जमुना अपनो दरसन दै री, मोहि तेरियै आसा है री ।
नीको कूल वसाइ रसीलो रसहि पिवाइ ज्याइ किनि लै री ।
धीरसमीर भीर-सुख-सोभा लसत बसत दंपति रसमै री ।
आनँदघन की घमँड निरंतर रहै जु यहै विनती नित नै री ॥

तथा] (३७६)

तुमहिं रिझाऊँ हौं हूँ रीझौं ।
ऐसैं रीझौं खीजि कहत हौं रातिद्यौस इन सोचनि बीझौं ।
ब्रजमोहन हौं मोह कीजियै निगुनीयै गुन सुमिरि अरीझौं ।
आनँदघन पिय जिय विचारियै उचित न औसि उदेगनि सीझौं ॥

तथा] (३७७)

छैल छबीले ब्रजमोहन रसीले ।
दच्छिनता-लच्छननि लसीले रजनि जगे लोचन अरसीले,
भावत आवत ढीले ढीले ।
मधुर किसोर चोंप-चटकीले चतुरसिरोमनि गुननि गसीले ।
नवजोबन-मधुपान-छकीले महामोहनी-मंत्रनि कीले ।
अंग अंग अति ही दरसीले सब विधि प्रीति-रीति-सरसीले ।
आनँदघन धुरि ढुरत ससीले, प्रान-पपीहनि हित बरसीले ॥

[३७६] बीझौं=विद्ध हूँ । अरीझौं=उलझ जाऊँ, बँध जाऊँ । औसि=ऊमस सहकर । सीझौं=पकूँ, परेशान होऊँ । [३७७] दच्छिनता=दक्षिण नायक की विशेषता, अनेक नायिकाओं से प्रेम । कीले=मंत्र-प्रभाव से अवरुद्ध-गति । ससीले=शीलसंपन्न ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूपननि समेत ।
उमँडि घुमँडि आनँदघन बरसत सरसत हूँ हिय हेत ॥

अलहिया ख्याल] (३८३) [मूलताल

तोरे कारनुआँ का करौं मोरा जिय तरसै ।
आनँदघन पिय दरस औसेरनि अँसुअनि मेहा बरसै ॥

आसावरी ख्याल] (३८४) [परघरीताल

न जानियै कौन भाँति मिलौ तिहारी भँवर की सी रीति ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर रसबाद हिलौ दई दैं नई परतीति ॥

सारंग] (३८५) [चौताला

बनवारी बन बन विहरत डोलत हूँ आपने रंग ।
कहूँ चरावत गाइ कहूँ चढ़ि जाइ तरुनि बंसी-धुनि पूरत कहूँ
गावत ग्वारनि संग ।
ब्रजगोरिनि के नैन स्रवन मन गोहन लागेई रहत अभंग ।
नंद-जसोदा-प्रानजीवन आनँदघन ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥

सारंग] (३८६) [चौताला

कब लौं धीरज धरौं मोहिं उन बिन अब न बिहाय ।
निपट बिसासी निकसे मोहन बातनि मोह बढ़ाय ।
उनके मन की कछु न समझि परै मेरो तौ लीनौ बौराय ।
अलप अवधि बदि बहुत रहे छाय ।
आनँदघन पिय प्रान - पपीहनि औसेरनि औसाय ॥

देवगिरि] (३८७) [चंपक ताला

आइ सुधि लेहु सबेरी स्याम ।
औसर गएँ बहुरि कहा ऐहौ ब्रजजीवन धरि नाम ।
रही निपट मुरझाइ बिलखि बलि प्रबल बिरह के घाम ।
आनँदघन रस सींचि हरीं करौ बेलि बिचारीं बाम ॥

[३८७] सबेरी=शीघ्र ।

पूरिया धनासिरी] (३८८) [मूलताल

हम सौं तब कहि कहि वे बतियाँ ।
सुनहु प्रान सुखदैन परेखनि क्यौं जारत हौ छतियाँ ।
इत ऐसैं दिन पारि बिसारी उत बितवत सुख-रतियाँ ।
आनँदघन कितहूँ किनि बरसौ ये बरुनी वैलतियाँ ॥

पूरवी] (३८९) [इकताला

बाजै बन मधुर बैन सुनि न रह्यौ परत भवन ।
देखन कौं दृग दरबरात प्रान मिलन अरबरात सिथिल होति
अंगनि गतिमति तितहीं करति गवन ।
लोकलाज उरझि उरझि रहियै मन मुरझि मुरझि कासौं
कहियै परी जैसैं काम लागै तनहि तवन ।
रंगबरस दरस परस आनँदघन सरस होइ तरसि तरसि
कौ लौं कोजै जियरा बिरह-अनल हवन ॥

विभास] (३९०) [चौताला

रसमसे नैननि आए हौ लागत निपट सुहाए हौ ।
कौन सींचत रतियाँ बस करि सब रैनि जगाए हौ ।
सूधैं चितवौ क्यौं [नीचे] चितवत हौ बिधना रसिक बनाए हौ ।
आनँदघन रस बरसि सिराए इतहूँ छाए हौ अजू बलि ।
भागनि पाए हौ ॥

बिलावल देवगिरी ख्याल] (३९१) [मूलताल

कहा करैंगो कोई री मन ब्रजमोहन सौं मान्यौ री ।
लोभी लग्यौ तुरत उठि गोहन हाथ न आवत आन्यौ री ।
उघरि परी सौंधे की सी चोरी सबनि मरम यह जान्यौ री ।
आनँदघन हित प्रानपपीहनि अति पूरन पन ठान्यौ री ॥

[३८८] वैलती=ओलती, ओरी । [३८९] दरबरात=छटपटाते हैं । अरबरात = हड़बड़ी कर रहे हैं । [३९१] उघरि०=सुगंध की चोरी की भाँति बात खुल गई ।

सारंग] (३९२) [मूलताल

विसवासी ह्वै भए बातनि भोरि भोरि मन मेरौ ।
अनाकनी दै रहे हाइ अब कोऊ कितनौऊँ किनि टेरौ ।
व्रजमोहन इन घातनि ही हिले मुरली-धुनि करि घेरा घेरौ ।
भूलेहूँ आनँदघन प्रान-पपीहनि त्यौं ह्वैरौ ज्यौं फेरौ ॥

पूरिया] (३९३) [चौताला

साँचे सुरनि गावत मोहन राग-रंग-बिनानी ।
धुनि-प्रकास तैसो सुख - विलास रस चुहल चटक सरसानी ।
ताननि की व्यौरनि त्यौरनि रई, दसन-ज्योति मिलि होति रवानी ।
आनँदघन नैननि अरु स्रवननि चोंप बढ़ी मनमानी ॥

सारंग] (३९४) [चंपक

जिन सौं दान लै ही लै रहे हो ते न होहिं यह ग्वारि सुनौ नए दानी ।
अलगे ही बतराव लगौंहिँ छाँह छियैं हूँ अब ही परिहै जानी ।
खोरि साँकरी डगर सदा कौ आज कहूँ तैं अर लै ठानी ।
आनँदघन रसवाद करौ कित रसिक बिनानी गरज-प्यास पहिचानी ॥

विभास ख्याल] (३९५) [मूलताल

अँखियाँ वो अँखियाँ वो आँखियाँ वो मैंडे कोल ।
तैंडे नाल जिद लगी मुझ वो निमाणी दे मान गुमाणी
कदी तो हम हँस हँस बोल ।
साँवली सूरति पर घोल घोल घत्तो बंदी ह्वाँ बिन मोल ।
प्रान - पपीहाँ दे आनँदघन दिल दी घुंडी खोल ॥

ऐमनि ख्याल] (३९६) [मूलताल

ऐसी करी हम सौं दैया क्यौं जू बनवारी ।
दरस दिखाय कै यौं तरसावत अटपटी बानि तिहारी ।
बातनि मोह बढ़ाइ बिसासी एक बेर सब सुरति बिसारी ।
प्रान-पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन हितकारी ॥

[३९३] बिनानी=जानकार, सुजान । व्यौरनि=विस्तार । त्यौर=ढंग । रई=लीन, युक्त । रवानी=प्रवाह की छटा । [३९५] मैंडे=मेरे यहाँ ।

आसावरी ख्याल] (३९७) [मूलताल

वसि करि करि क्यौँ बिसारी प्यारे निसदिन
जियरा अति ही व्याकुल रहत परेखैँ ।
आनँदघन ह्वै विरह तचावत वैसी करि ऐसी ठानी दैया किहि लेखैँ ॥

पूरवी] (३९८) [चौताला

चटपटी लगाइ गए पिय मन कौँ ठगी हौँ बातनि मोह बढ़ाइ ।
भूलँ सुरत्यौ लई न बिसासी कासौँ कहौँ दुख हाइ ।
रसलोभी ललचाइ रहे कहूँ ब्रजमोहन हैँ भँवर सुभाइ ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहनि निसदिन रटत बिहाइ ॥

मलार सुद्ध] (३९९) [इकताला

गौर-स्याम-धारनि को लहरिया झूलत लहरैँ लेतु ।
पहिरयौ सरस चौँप सौँ स्यामा उघरि परयौ हिय हेतु ।
उफनि उठयौ संगम-सुख-सागर लोने अंग दिखाई देतु ।
पिय मन मगन होत अभिलाषनि बँधत न धीरज-सेतु ।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझतु भीजतु चितु चेतु ।
छुटे चिहुर आनँदघन वरसतु भरत मनोरथ-खेतु ॥

सारंग] (४००)

जाको मन बाँसुरी हरयौ ।
सो निकसै न रागसागर तेँ सुर कैँ फेर परयौ ।
धुनि-मँडरानि कान प्राननि मैँ इकलग वास करयौ ।
छकी रहति मति-गति मनोज-रति मादक भेद भरयौ ।
मुखससि रुचि-तरंग-बढ़वारनि बूड़नि संग तरयौ ।
लोकलाज मरजाद मेटिकै प्रेम उमंग ढरयौ ।
बिसरि गई सुधि बुधि सब दिसि की उर अभिलाष अरयौ ॥

तथा] (४०१)

सालति है मुरली की बाजनि ।
सुनि सुनि धुन्यौ जात हिय सोचनि धुरत सीस गुरजन की लाजनि ।

३९९–भरत–फरत (सतना) ।

स्रवन बीच मँडराति रातदिन जकि जकि बिसरि परति गृहकाजनि ।
झुकति सास ननदिया रूकति क्यौं ढुकति न चढ़ति पैज की पाजनि ।
ज्यौं तरफत स्यामसुँदर - छवि देखन कौं अभिलाष - समाजनि ।
आस लागि जीवत चातक लौं आनँदघन जीवनधन गाजनि ॥

ऐमनि] (४०२) [इकताला

कान्ह मो त्यौं चितयौ ललचाइ ।
मो दोहनी मुरि दई ठनि लई भई नई पहिचानि, जानि
जिय खरकै खरिक-सुधि छाइ ।
मोहन मन-मोहन करि लीन्हौ आइ घरहिं पराए पाइ ।
पठई सराबोरि करि पल मैं आनँदघन रसभेद-भरी
बातनि घातनि बरसाइ ॥

भैरव] (४०३)

तरनितनूजा तोहिं तकौं ।
चंचलता तजि भजि नँदलालहिं मन करि तेरे तीर थकौं ।
धीरसमीर सुदेस ठाँव ठिक ठहरि भली विधि पनहि पकौं ।
सावकास ह्वै घनी घुटनि तें बिसद पुलिन मँडराइ सकौं ।
सरस सिंगार अनूप स्याम को लखि चखि मादक रूप छकौं ।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं ।
उबरि परौं अनुराग उमँग मैं नाद-बिवस मरजाद ढकौं ।
नव व्रजवधू - बिमोहन लीला लपटि एकटक टेक टकौं ।
एरी कुँवरि कलिंदनंदिनी बिनती बिरचि बिचार चकौं ।
महिमा अमित कृपा आनँदघन चाँपनि चातक-जलप जकौं ॥

रामकली ख्याल] (४०४) [भूलताल

डगर न छाँडै मेरी लँगर कन्हैया ।
आनि अचानक घेरि लेत कैसैं बचौं अकिली हौं दैया ।

४०३-चखि-चकि (लंदन) ।

[४०१] पाज=बाँध । [४०३] सावकास=छूटकर ।

हौँ सकुचौँ वह ढीठ न मानै निडर निपट रसदान-लिवैया ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजवै ऐसैँ गोकुल को है रहैया ॥

(४०५)

केदारो]

राधारमन की बलि जावँ ।
सघन बृंदाबन मनोहर अति मधुर रस-ठावँ ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रही द्रुम-बेलि ।
महा अनुपम रूप - शोभा लहलहनि रस केलि ।
आपु वन वन आप तनमय ह्वै रहत निसि-भोर ।
यह वनक याहीँ बनै यहीँ जोर याही जोर ।
देखि भूलत भूलि देखत अतुल अचरज-मूल ।
चाहि चौँधनि चौँधि चाहनि परसपर अनुकूल ।
नई रुचि नइयै रचनि छिन छिन नवल नित रीति ।
पन पलहु आनँदघन सौँ चितहि-चातक जीति ॥

[चरचरी ताल

(४०६)

दरबारी कानरो ख्याल]

कौन देस बसायौ है निरमोही कान्ह हमारी
अँखियनि ऐसैँ उजारि ।
आस बढ़ाइ उदास भए बिसवास कियौ घनआनँद प्रान-
पपोहनि प्यासनि मारि ॥

[चंपक ताल

(४०७)

विभास]

तुमहिँ रिझाइ रिझाइ रीझि हौँ हूँ हरषौँ सुनहु रसिक रिझवार ।
मोहन गुननि गाइ ब्रजमोहन तिनतैँ तुम्हैँ आकरषौँ ।
मन दै मनहि समोइ लीजियै याकी घटी बढ़ी कौ लौँ परखौँ ।
आनँदघन ढुरि ढुरि पन पोषौ जु रसहि निरंतर बरसौँ ॥

[चौताला

(४०८)

अढ़ानो]

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेईँ बगर नित आवै
मुरली मैँ रसभेद - भरी बतियानि सुनाइ रिझावै ।
मन अरबरत दौरि देखन कौँ सास ननद की त्रास तनु तावै ।
आनँदघन हित प्रान - पपीहा तरफरात रहैँ बीर पीर को पावै ।

राग संकरा भरन] (४०९) [धरधरी

मंडल मधि लटकि लटकि नाचत पिय प्यारी ।
फैलि फबति काछनी लग लेति लहर सारी ।
पहुँचनि मुरि मंजुल कर कंज तरल तारी ।
रूप अजिर गरजति लखि चखन निमिष टारी ।
सुखमय मुख मधुर हसनि दसन-दुति उज्यारी ।
सरद चंदकांति छटनि पाँति छेकि डारी ।
भृकुटि नचनि ग्रीव लचनि लंक लहक न्यारी ।
थेइ थेइ कहि कंठ-किलक पिय तिय जिय-ज्यारी ।
उरसि मुकतमाल हाल हेरत हियहारी ।
कंचुकि गुन-गसनि रसिक-लोचन फँदवारी ।
चोंप चुहल मचि सचि सुर करि अलापचारी ।
विरल राग रूप रचत स्रवन - मोदकारी ।
ससि-मयूख-रंजित बन रसनिधि-बढ़वारी ।
आनँदघन पलित फलित केलि-बेलि-वारी ॥

राम कानरो] (४१०) [एकताला

मोरमुकट बनमाल पीतपट कटितट छुद्रघंटिका
ए नूपुर बजाइ गति लेत मटक सौं ।
ललित हास मुख-सुख-प्रकास कुंडल-उजास दृग-भ्रुव-विलास
कर-चरन-न्यास भुज ग्रीव ढोरि मुरि चलत लटक सौं ।
आछी भाँति तान गावत बाँकी रीतिन सुर-ग्राम - ग्रास
गहि चोख चटक सौं ।
आनँदघन मन धीर बापुरो कैसेँ ठहराय आय जहाँ पैठत
री यह रूप भूप सजि काम सुभट कटक सौं ॥

(४११)

आज बनि बनि ब्रजबाल बाल मोहनलाल - संग रंग-
भरीँ रासमंडल नाचति ;

[४१०] ग्राम=संगीत में स्वरों का सप्तक । ग्रास=संगीत-भेद

नई नई गति लेति लटकि ग्रीव-डुलनि भृकुटी-मटक मुख-बिलास
ललित हास होड़ाहोड़ी चोखनि चित चौंप-चुहल माचति ।
तान गान मान के बंधान जे बिधान बिदित तेई तेई अति अति
अनुपम संगीत-रीति साँचति ।
आनँदघन अद्भुत छबि बरनै कौन कोबिद कवि रूप-गुन
लावन्य-माधुरी की लीक खाँचति ॥

ऐमनि] (४१२) [इकताला

रासमंडल बनि नाचत राधा-मोहन रसमगन ।
अँग अँग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन ।
छिति पर सखी नछतजुत बिबुध सगन गगन ससि भरत लखि डग न ।
आनँदघन कलतान गान सुनि को न लग्यौ डगमगन ॥

रामकली] (४१३) [झपताल

पलक पट दै रही रोकि मनवाँ मैं ।
जतननि बनाइ बरुनी सघन साँकरनि जटि निपट बिकट
करि अगम उर-धामैं ।
हौं न जानौं कि यह नट छली छंद सौं कौन मग दुरि
निकसि मिलि गयौ स्यामै ।
उनहि कहि कौन बिधि दोप आनँदघन बाँधि निज गाँठि
गथ लोह के दामै ॥

केदारो] (४१४) [मूल

मुदित मन नाचत री बनि रासमंडल मैं मधुर
मूरति पिय प्यारी ।
नई नई गति अति ललित रसबलित लेत लटकि पद
पटकि मटक सौं चौंप-चटक-भरे भारी ।
सहचरि-गन गावति कल ताननि डहडहे आनन पानन
रंजित मोहन धुनि कानन सुखकारी ।
चहूँ कोद बाढ़यौ प्रमोद आनँदपयोद बरसत दंपति-
सोभा-संपति-बिसतारी ॥

[४१३] गथ=पूँजी ।

बिलावल] (४१५)

हरि - राधा रहगहनि मिले ।
कहु निसि रहैं चले उठि घर कौं मन-मदगज फिरि परत पिले ।
अंग अंग आरस-रस-बस झूमत महासुरत-सर-केलि हिले ।
गुरजन-भय अंकुस करि प्रेरित आनँदघन छलबलनि ठिले ॥

आसावरी] (४१६) [चौताला

वारे तुव दृग पर मृग वारे ये छबिभारे सलज ढरारे ।
इनकी गति आगे मति हारे वे बन बन भ्रमित बिचारे ।
घूँघट घिरे हरत मोहन मन चंचल बिमल सहज कजरारे ।
आनँदघन अनुपम अनियारे चित चुभि लागत प्यारे ॥

पूरबी] (४१७) [चौताला

आँखें तेरियै देखी बतकहीं ये सब काहू पै परति न लहीं ।
याही तें खंजन मृग मीन कमल इनकी पटतर नहीं ।
सरल कुटिल मंथर अधीर सित असित सुछबि लैं बिराजि रहीं ।
इनके गुनगन गनि को सकै जिन बिचित्र आनँदघन
पिय बस कीन्हे मिसहीं जब मुसकि चहीं ॥

सारंग] (४१८) [चंपक रूपक भेद

मान तौ तासौं करियै जासौं कियैं ठिकु ठहरै ।
बरिक माँझ मन मृदुल ढरकि फिरि परिहै सोच कैसैं वहरै ।
हाहा हित की बात मानि किनि भौंह - हँसनि - तरु
करि-कर जिनि झहरै ।
कागद-नाव जलधि को तरिबो आनँदघन गुन गहरै ॥

हमीर] (४१९) [चंपक

बगर बगर तैं मोहनी जोहनी बाल दोहनी लै निकसीं
बिकसीं गाय - दुहावन ।
दिन प्यासी अँखियानि चकोरिनि स्यामसुँदर - मुख मृदु
मयूख पियूष प्यावन ज्यौं-ज्यावन ।

रसमूरति अँग अंगनि तिन ह्वै लपटि उरताप-सिरावन ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि कटाछ-धारनि सौं होत मनोरथ-सावन ॥

अलहिया] (४२०)

पुरानी परि गई पहिचानि, लगी तुम्हैं नेह नए की बानि ।
भौंर की भाँवरि भरत फिरत हौ रसलोभी तजि कानि ।
सौंहैं सौंहैं खात इते पर ग्वारि गँवेली जानि ।
नखसिख साँच के साँचे ढारे आनँदघन गुनखानि ॥

विभास धुरपद] (४२१) [चौताल

स्यामसुंदर की मुरली बाजै, सह सुरभेद सौं स्रवन सुनत
सुधि बुधि सब बिसरै रह्यौ न परत बिन देखैं ए री ।
हाहा परति हौं पाय उपाय बताय जिवाय लै ह्वैहौं बित बिन
हित सौं तेरी चेरी तो पर वारी फेरी ।
कासौं कहौं बिथा या जिय की कोऊ जानत नाहिन हिय की
मन ही मन मुरझाय रहति हौं तन परबस गुरजन की घेरी ।
आनँदघन पिय कौं जब देखौं तब ही जनम सफल करि लेखौं तुही
हितू तोही सौं इतनी बिनती मेरी ॥

टोड़ी] (४२२) [झपक

बजावै साँवरो बंसी जमुनातीर ठाढ़ो पनघट-भौंहूँ कैसैं गैयै ।
घट पट सँभार तजि निकट कौं धैयै मोहिनी धुनि सुनि लुभैयै ।
वाकी छबि हेरि तन सुरति बिसरैयै डगमगत पग डग भरनहूँ न पैयै ।
जोऽब आनँदघन उलटि घर ऐयै तौ निपट ही अटपटैयै ॥

जौनपुरी] (४२३) [मूलताल

हेली मोहिं ढोली लागी री हरिमूरति-हेरन की ।
बिसरति नाहिं बिसारेहू छबि हँसि हँसि दृग-फेरन की ।
मुरली-माँझ जमाय नाम वह गति हित सौं टेरन की ।
आनँदघन उठि गई आइ अब सब गुरजन-घेरन की ॥

४२२-उलटि-नीठि (सतना) ।

[४२२] भौंहूँ=टीला, कगारा । [४२३] ढोली=डोरी, धुन ।

भैरो] (४२४) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैंन कहत ये निसि जगिबे के चैंन ।
भली करी भोरहीं भाग रागभरे हमें आए सुख दैंन ।
सौंहैं देखि न सकत दीठि-डर नखसिख बने नवल छबिऐन ।
आनँदघन प्राननि सींचत हौ बोलि अमीनिधि बैंन ॥

रामकली] (४२५) [मूलताल

रैंनि उनींदे नैंन तिहारे हो लाल सुहावने लगे ।
सीतल कियौ हियौ जु दरस दियौ भावते भाग जगे हो ।
मेरियै डीठि औंर भई कै तुम आज अनूपम रूप पगे ।
अँग अँग रँग बरसत आनँदघन प्राननि आनि खगे ॥

बिलावल] (४२६) [मूलताल

मोहिं न करि रे नकबानी लंगर होति अबार जान दै
जान दै जमना पानी ।
कहा तेरैं ह्वैं आयौ राज लाज तजि खौरत औंरै काज
तोहिं ठलवारि घरबसे न जानत बात बिरानी ।
भरि भरि डगरि गईं साथिनि हौं कौन घरी की घिरी
हाय ऊतरु न आयहै पूछैंगीं जब ननद-जिठानी ।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहिचानी ।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि पत्याइ इहिं
गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी ॥

परजदेसी] (४२७) [मूलताल

हेली साँवरो सलोनो कित जाय हाहा नेकु बताय ।
अब इहिं गैल छैल छबि सौं मन लै गयौ संग लगाय ।
कहा नाँव कहा ठाँव न जानौं ठगी अचानक आय ।
चलत न पाय उपाय कछू नहीं क्यौं जैहौं घर हाय ।

[४२५] खगे=धँस गए । [२२६] खौरत=छेड़ते हो । ठलवारि=हँसी-ठट्ठा । घरबसे=उपपति ।

नैननि हुई अनाथ भई दुई धन अरु मीत गँवाय ।
परी सोच-सागर आनँदघन तीर कहूँ न लखाय ॥

गौरी तिरवन] (४२८) [कपोतताल

अँखिया उठि उठि उठि दौर बन की ओर आली ।
भोर के नंदकिसोर गए इहि गैल-ओर सु तब तैं लागी हैं आवन-आस ।
सुंदर वदन छविपान-विबस ये पलु न धरति कल बाढ़ी है पूरन प्यास,
मोहूँ सौं भई उदास ।
कहा धौं अवार भई दुई अब लौं ज्यौं त्यौं करि राखी इनकी
दसा देखैं आवति त्रास ।
वे आनँदघन हैं हो भट्टू को लहै उनकी गति गौरी गावैं कि बिभास ॥

विभास बिलावल] (४२९) [चौताला

आई रसमसी उठि बड़ैं भोर भावते सौं हिलि
मिलि सब सुख लूटि ।
रँगीले नैन ढीले बैन छबीले मुख अलकैं रहीं छूटि ।
अधर दसन-छत राग रह्यौ लसि मुकतमाल-लर लटको टूटि ।
अँगिया दरकि दरसत नख-खोज सुरति-रन-ओज मनोज-
विसिख आनँदघन मनहु उरोज-सुभट-घट वेधे हैं कवच फूटि ॥

संकराभरन] (४३०) [चौताला

ज्यौं ज्यौं भिदति सुखद सुदेस हिमरितु रात की सियरानि ।
त्यौं त्यौं सरकि सरबस ढरकि खगि खगि लगि रहत हियरानि ।
रूप अनूप अमल सुगात मिलि झिलि रोम रोम समात कहि
आवति न सो नियरानि ।
आनँदघन तऊ बिच आय अरवरनि देति चिताय पुनि पुनि
लखत यह खियरानि ॥

ऐमनि बिलावल] (४३१) [चौताला

तेरी बलाय लीजै वार वार तोहि कीजै आँखिन पुतरी ।
कान दै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी ।

[४३०] खियरानि=खेदभरी स्थिति ।

वारौं सिंगार आज की छवि पर हाहा कहूँ न जाहि इत उत री।
आनँदघन हौं ही देखौं पै रहि न सकौं अद्भुत री॥

रामकली] (४३२) [चौताला

भुरहरैं ई बोलत डोलत मोहन साँचे बैन।
चोरी करि चपरावत सौंहनि निपट लजौंहैं नैन कहत निसि-चैन।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक उर नखछत कीने बसन छिपैं न।
सबही अंग उघरत आनँदघन झूमि झूमि अब हमैं आए सुख दैन॥

बिलावल] (४३३) [इकताला

आँखिन को सुख जमुना देखैं।
रुचिर कूल रसमूल परस ही होति सिंगार सुअंजन-रेखैं।
राधा-मोहन-रूप-माधुरी आछैं उघरि परैं सो लेखैं।
आनँदघन की घमँड निरंतर अंतर भाव-तरंग विसेखैं॥

गौरी] (४३४) [इकताला

जमुना देखे ही दुख भाजैं।
इंद्रनीलमनि इंदीवर-दलहूँ की उपमा लाजैं।
सब सुखरासि रसामृत-सींवा वृंदावन मैं राजैं।
आनँदघन व्रजमोहन पीय के अंग-संग रंग साजै॥

गौरी] (४३५) [चंपक

मोहन राधा के अनुराग छक्यौ मुरली मैं गुन गावै।
बासर विरह-सरहु उर सालत बन बन डोलै ऐसैं ज्यौं बहरावै
पीत बसन-द्युति देखि देखि पलकनि सौं परसि नैननि कौं मनु मनावै।
आनँदघन यौं प्रान-पपीहनि रस-प्यासनि परचावै॥

गौरी ख्याल] (४३६) [मूलताल

सहोणी मैं कद लग इस्क छिपावाँ।
गुंजे घाव दिलाँ दे अंदर कित वल कूक मचावाँ।

४३५—सरहु—सरक (सतना)। ४३६—सहोणी—सैयोनी (लंदन)।

[४३६] सहोणी=सखी। गल=तक। गुंजे०=हृदय मैं गहरे आघात की वेदना हो रही है किस ओर पुकार करूँ। माह्ल=प्रवृत्त। दारू०=दर्शन की मदिरा।

कासौं कहौं यह विथा सजनी घूमि घूमि रहै विरहा-वानन ।
आनँदघन वन घन रस वरसि वरसि तरसावत है प्यासे प्रानन ॥

सारग] (४४५) [झपताल

कृपा - कादंविनी जमुना विराजै ।
मोद-मूरति दरस प्रेमपूरित परस स्याम रस विमल जस संपदा साजै ।
अद्भुत अनूप भूतल लसति वसति नित हेतमय नाम कैं लेत भ्रम भाजै ।
आनँदघन घमँडि तीर विहरत रमडि व्रजवधू वसकरन वंसिका गाजै ॥

रामकली] (४४६) [चंपक

महाराज व्रजराज पूजि गिरिराज परम आनंदे ।
वल मोहन लै संग रंग सौं दहिने दै दै वंदे ।
गोपी - गोप - समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदे ।
आनँदघन गरजनि जै जै धुनि सुनि मघवा-मद मंदे ॥

परज] (४४७) [मूलताल

जमुना जमुनाहीं रटिहौं हो ।
मधुर किसोर केलि चिंतामनि रसना लै जटिहौं हो ।
वृंदावन सौभग - सींवा की रुचिर पुलिन अटिहौं हो ।
आनँदघन कदंव - कुंजनि वट सुख - पुंजनि ठटिहौं हो ॥

रामकली] (४४८) [चंपकताल

वृंदावन वसि कान्ह आज नीके निसि वितई ।
किये मन भाए चैन ढीले सु रसीले वैन आरस-रँगीले
नैन इकटक प्रानप्यारी-छवि चितई हो ।
प्रगटी भागनिकाई गाधा रूपनिधि पाई विलसे हो
सुखदाई अंक भरि भरि सब संक रितई ।
आनँदघन उदार परसत सोभासार करौं नितहीं विहार
मरगजैं हार प्रीत-रीत जितई हो ॥

४४५—मोद०—मोद-मंडित (सतना) ।

[४४६] मघवा=इंद्र । [४४७] अटिहौं=घूमूँगा । [४४८] रितई=दूर कर दी । मरगजैं=मसले हुए ।

कालिंगरा] (४४९) [एकताला

वारी हो वारि डारी हो आज की तिहारी या छवि पैं ।
रसिक छैलबिहारी ऐसी न कहूँ निहारी कैसैं कही जाय काहू कवि पैं ।
जावक - तिलक भाल निपट लग्यौ रसाल तिन तोरि डारियैं
नवल नौका फवि पैं ।
आनँदघन पिय रसीले लजीले नैंन नवल कै उधारैं जात दवि पैं ॥

टोड़ी ख्याल] (४५०) [मूलताल

हेलो हौं कैसैं कै जावँ जमुना-जल लँगर छैल ठाढ़ौ
गैल माँझ करैं घोलो ठोलो ।
व्रजमोहन आनँदघन उनयौ ही रहै कहि कहा रहौं
दैया ऐसैं अबोलो ॥

ऐमन] (४५१) [मूलताल

कैसैं कैसैं मन बहराऊँ, गहत गहत न रहत है ।
लोनो मुख सुखनिधि देखें बिन आँखिनि कहा दिखाऊँ ।
सुनि सजनी राधा के रूसैं विरह विकल अपनपौ न पाऊँ ।
सरस परस आसा आनँदघन झरैं भरोसैं छाऊँ ॥

मलार] (४५२) [मूलताल

आए आए री बादर अतिहीं सुहाए घुरि वरन वरन ।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाइ रहे सुर धुरवा से लागे हैं ढरन ।
जमुना - तीर कदंब-तर ठाढ़े वनक ठनक उर अभिलाष भरन ।
आनँदघन रसरग - झरन कामताप - हरन ॥

सोरठ] (४५३) [चौताला

झूलियो करति हरि-हिय के हिंडोरे हाँसनि राधे लाड़-गहेली ।
तँहीं रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस को भाग-सुहाग - नवेली ।
हुलसि झुलावति बिजन डुलावति रीझन भीजि चाह-सहेली ।
सावन मनभावन आनँदघन बरसावन सौं मिलि झुलियै अलवेली ॥

४५१-रूसैं-बिछुरैं (सतना) । झरैं-तेरे (लंदन), मेरे (वृंदा०) ।

सारंग] (४५४) [इकताला

परै जौ ब्रजरज - परस - सवाद ।
ब्रजमोहन की चरन - धरन - छवि लोचन लैहैं प्रसाद ।
प्रान पोप पावै पल पल मैं मादन मुरली-नाद ।
आनँदघन लीला - रस चाखैं बढ़ै प्रेम - उनमाद ॥

रामकली] (४५५) [चंपकताल

कीरति - कुल - उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो ।
मंगलवेलि सकल जग छाई सुकृत - समूह - जई ।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढ़ी है ब्रज - ओक नई ।
ब्रजजीवन की प्रानसजीवनि मोद - विनोदमई ।
जाकी चरनरेनु कमलाहू चौपनि सीस चढ़ाइ लई ।
आनँदघन घमँडनि को बरनै बहु विधि तपति गई ॥

बिहागरो] (४५६) [इकताला

रावलि मैं अति ओप बढ़ी ।
गोकुलचंद अभूत चंद्रिका सुकृतनि कीरति - ककुभ कढ़ी ।
श्री वृपभानु गोप भागनि की महिमा कैसैं परति पढ़ी ।
चिर जीवौ लली लड़ैती राधा आनँदघन गुन-रूप-अढ़ी ॥

सारंग] (४५७) [इकताला

झँत्रावति पायनि चायनि पाय ।
नायनि को कर परस होत ही हियो चढ्यौ हुलसाय ।
चित्रा चतुर चोप सौं ल्याई देखि रसमसो दाय ।
आनँदघन रस रमँड घमँड मैं घूँघट खुल्यौ बनाय ॥

गंधार] (४५८) [चरचरी

तेरे मुखचंद को चकोर, सुंदर ब्रजचंद छैल नंद को किसोर ।
अति अनूप रूपरासि चाहत निसिभोर, अद्‌भुत सुधावृस्टि

४५४–पोप–चोप (लंदन)। लीला०–झर लगै निरंतर (सतना, वृंदा०)।
४५५–बहु–अब (सतना)।

[४५६] अढ़ी=युक्त।

होति चितवन दृगकोर ।
सुनि सुजान राधे हिय कीजै न कठोर, आनँदघन प्रान-पपीहै
दीजियै न खोर ॥

कनरी ख्याल] (४५९) [मूलताल

हौं कहा करौं हे, गोकुल गाँव बसि कैसैं भरौं हे ।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावै, वाकी धुनि सुनि मेरो ब्यौं बौरावै ।
तानन बानन बेधै प्रान, और दसा कहा करौं बखान ।
अपनो सो हौं करौं दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव ।
त्रासै ननदिया सासु रिसाय, काहू बिधि कछुवै न बसाय ।
छाँह छियनहूँ को न बनाव, गैल गरधारिन चले चबाव ।
मो ही जो गति लागी मोहि, कै औरनि हूँ बूझति तोहि ।
जो कछु ही सो दई जताय, हाहा अब हित की सु बताय ।
आनँदघन या बिधि रह्यौ छाय, बिरह-ताप डारत तनु ताय ॥

टोड़ी] (४६०) [चौताला

ग्याँन ध्यान धारना समाधि धरि धरि देखे पै न देखे ।
ईस गिरीसन हूँ जो कहूँ लखे तौ चटपटिन टरत न परेखे,
अपनायें इच्छा बिसेखे ।
मोसे अनकछू की गनती कहा अब एक कृपा-गुन सुनि अवरेखे ।
आनँदघन हौ ढरौ तौ हरौ दुख - पूर परैं सब लेखे ॥

बिभास] (४६१) [चौताला

जनम जनम गुन गाइ आयौं अजहूँ गावत आगेहूँ गाइहौं ।
जो सुख होत सु हौं ही जानौं न सकत जनाइ हौं ।
प्रान-अधार सदा के संगी तुमहीं तैं तुमकौं पाइहौं ।
दीन पपीहनि के आनँदघन आस बढ़ाइहौं ॥

सारंग] (४६२) [चौताला

अंजन दै री राधे न करि गहर हे हा हा ।
निमकक बार टरी जाति मनभावन ब्रजमोहन-मिलन-उमाहा ।

४६०–सुनि–उर (सतना) ।

सखी त्यौं मुलकि मुसकि दरपन गहि आनि चढ़यौ चित नवरंगी नाहा।
उमँडि उठी आनँदघन घमँडनि रीझनि भीजि दुरि चली आहा ॥

सारंग] (४६३) [इकताला

व्रज को विरह सह्यौ न परै।
वनवारी की औसेरनि हिय हाइ गह्यौ न परै।
देखि देखि अनदेखैं हूँ अपरस-दुख लह्यौ न परै।
आनँदघन भरिपूरि चाह-रस-स्वाद कह्यौ न परै ॥

धनासिरी] (४६४) [मूलताल

चोवो दरस दिखावाँ तामैं घोली घोली जावाँ।
सुण वो साँवलिया गोकुल-वालिया दी नानू ना सरसावाँ ॥

खंभाइच] (४६५) [मूल

छैलवा रँग-रँगिलवा रँग-रँगिलवा रसिक-रसिलवा।
व्रजमोहन दिन दूलह छबिलवा जोवन-छकिलवा।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन रस-वरसिलवा।
अपनो तनमन सरवसु वारौं अरी नीको लाड़-गहिलवा ॥

ऐमन बिहाग] (४६६) [मूलताल

वंसी कहा बैर परी है।
कानन धुनि मंडराति रातदिन कल नहिं एक घरी है।
तानन वानन बेधे हियरा ऐसैं अरति अरी है।
जौ गोकुल वसियै आनँदघन लागी बिरह-झरी है ॥

टोड़ी ख्याल] (४६७) [चरचरी ताल

घुम्मर पाँवदीं जिंद तुसाँ नाल वेखन रंगला चंगला जमाल।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारिया निपट गरीब पपीहाँ नू पाल ॥

बिहागरो] (४६८) [इकताला

बलिहारी गोकुलचंद की।
भादौं-अरध राति आठैं निथि प्रगटनि ज्योति अमंद की।

[४६२] निकनक=नीरव, निर्जन। मुलकि=प्रसन्न होकर।

मिट्यौ तिमिर ब्रजलोक-श्रोक को दवी धरक दुख-दंद की ।
भागनिकाई को वरनै आनँदघन जसुदा-नंद की ॥

विभास] (४६९) [चंपकताल

दोऊ रूपरासि प्रेमरासि सब सुखरासि करिकै
विलास नीकै चले हैं भवन कौं ।
रीझि गरबाहीं दियैं मुख देखि देखि जियैं मन मन हाथ
लियैं अति रति ओप वाढ़ी रवनी रवन कौं ।
वृंदावन-कुंज तम-पुंजनि हैं निकसत अंगनि प्रकास सोई
साधत गवन कौं ।
आनँदघन सधीर ठाढ़े हैं सुधारैं चीर रँगीलो-जमुना-
तीर जानिकै पियारी सोभा सुधा अँचवन कौं ॥

सारंग] (४७०)

जै जमुना मंगलकारिनी ।
जमानुजा तमतापटारिनी विविध फंदनिरवारिनी ।
मधुर किसोर केलि-रस-रैनी वृंदावन-भू-चारिनी ।
चाहत ही मन-पटहिं चटक दै भाव रंग-विस्तारिनी ।
गोपी-गोप ग्वार-गैयाँगन सब कौं सब सुखधारिनी ।
नित श्रीअंग-परस तें सरसी दरसी नित्यविहारिनी ।
तीर गएँ मोहन मन आवत निहचय परिचय-पारिनी ।
देखी कहाँ सुनी आगैं हूँ जगजननी जगतारिनी ।
देखैं बनै कहत क्यौं आवै महिमा अमित अपारिनी ।
आनँदघन रसरासि-रसीली नीरसता-अघ-हारिनी ॥

सारंग] (४७१) [इकताला

जै जमुना जाँचौं तोहि री ।
तेरैं तीर गाय वलवीरहि विहरौं यह है मोहि री ।
वृंदावन मैं लखौं निरंतर तो छवि रही जु सोहि री ।
तो सी तुहीं महारसवाहिनि मैं गहि पाई टोहि री ।

परिचय रचै स्याम रंग बाढ़ै कृपादृष्टि सौं जोहि री ।
आनँदघन झर लगै निरंतर अंतर निज गुन पोहि री ॥

कान्हरो] (४७२) [इकताला

हिमरितु दंपति अति सुखदाई ।
गिरिकंदरनि-रचावत मंदिर लखि निज संकेत ठौर ठहराई ।
नव मखतूल तूल तैं कोमल दल-बल कल अनुकूल महाई ।
रसिकराय रसनिधि राधा-हित रचि पचि सुंदर सेज बनाई ।
पीत बसन बिछाइ हिय तापर भुज-भरि प्रानप्रिया पधराई ।
सो सुख कछू कह्यौ क्यौं आवै अतुल अभंग प्रेम अधिकाई ।
हिलनि मिलनि उर झिलनि पिलनि रुचि खिलनि अभूत
बिलास-निकाई ।
आनँदघन संपै धुरि घमँडनि बिबिध केलि की झरी लगाई ॥

टोड़ी] (४७३) [चंपक

कहा तू अंजन दै करिहै हे ।
पिय को हिय तैं हरयौ सहज ही अब धौं कहा हरिहै हे ।
तेरो गहरु लाल की आरति कौ लौं सही परिहै हे ।
बात कहत सतराइ निहारति बहुरि कहा लरिहै हे ।
आनँदघन सौदामिनि ह्वै मिलि चंद चल्यौ ढरि है हे ॥

रामकली] (४७४) [चंपक

अहो हरि आए महा दरबर मैं, कहा बनि आवै टहल दरबर मैं ।
साधुसिरोमनि घर मैं साधन धोखैं धँसे पखर मैं ।
सजल सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैं ।
ब्रज चंद की प्रीति प्रगट उर आनँदघन रस-झर मैं ॥

बिलावल] (४७५) [मूल

कैसे रहत कहाइ सनेही रसिक छैल ब्रजमोहन स्याम ।
वृंदावन के चंद छबीले वहाँ अँधेर छलत हौ वाम ।

[४७२] संपै=शंपा, बिजली । [४७४] दरबर=उतावली ।

कपटी कुटिल कालिमा-मूरति बरसत विषहि सुधाधर नाम ।
बीच दियेँ ही मिलौं बिसासी ऐलेन के गैने ही काम ।
कहा करैं क्यौं भरैं भावते तनकौ नहीं मनैं बिसराम ।
भँवर भाव डोलत रसलोभी बलरि कीजियें तुमहिं प्रनाम ।
मिलौं महूरत साधि परब लौं नाहि न परौं छल-बल के धाम ।
प्रानदान-सुख दुखहिं दिखावत चितवत बिमस परेखनि जाम ।
चाहति अनिल चकोरी अखियाँ बिरह-झरनि परीं तन-दाग ।
आनँदघन घुरि दुरे रहत क्यौं करि घातकीं पिवावत घाम ॥

तथा] (४७६)

गरब-वारुनी-छके छबीले झूमत फिरत नौंक अरु भोर ।
अति गंभीर वेदना वेदी करनी विवस काम के जोर ।
रूप - भूप बीगासन - मंडित कुवलय-केलि कलिंदी-ओर ।
वृंदावन घन कुंज - पुंज तहँ साह भए विहरौ चितचोर ।
बरन बरन तन लेप ललित गति अलक सिंगार के छोर ।
निपट निरंकुस घिरे न कितहूँ तोरि संक - साँकरैं कठोर ।
भँवर भहरानि दान - बस मच्यौ महा ब्रजवीथिन सोर ।
डरपत विकल बापुरीं अबला चिढुकि रहति खरिक गिरि खोर ।
चूकत कठिन कपाट कानि के पैठत घर घर करत ढँढोर ।
धीरज आड़ टारि आनँदघन करत विविध सुख सरनि झकोर ॥

ऐमन ख्याल] (४७७) [मूलताल

कछु लखी न परै तिहारे जिय की कान्हा कपटी ।
अपनी गौं दुरि आनि मिलत हौ तहीं जाहु जहाँ सीखे
हौ झपटा-झपटी ।
काहे कौं रसवाद करत हौ सो सत ही लगी दौरि लपटी ।
आनँदघन बिसास-बूँदनि अब आए हौ करन रपटा-रपटी ॥

ललित] (४७८) [चौताला

बसन सुधारि बदन पखारि सुधरि आए तौ मेरे गेन ।
सब विधि साधि साधु ह्वै निबटे पै कहाँ लौं दुरत ये रैनि-जगौंहैं नैन ।

काहे कौं एतौ पटम रचत हौ मन रूखे मुँह चिकने वैन ।
आनँदघन भोर ही उनए उघरि उघरि दुखदैन ॥

कानरो] (४७९)

ले राखौ अपने पायनि तर ।
यह मन भटकि आयौ जग कृस्न कमललोचन करुनाकर ।
याकी दसा देखियै मोहन दानिसिरोमनि लै थापौ थर ।
लैहौ तौ दैहौ सबही कछु चिंतामनि अधमनि चिंताहर ।
मरम भरयौ मँडरात निरंतर निहचै रचै न एक घरी घर ।
हा हा हे हो हरि फिरि हालें कीजै निज चरन-चक्र-चर ।
भूल्यौ फिरत भरोसो भारी तुम से नाथ न ऐसो खलवर ।
महा त्रिजाती बिरल मोहमय थक्यौ चपल छाँडत नाहिन छर ।
प्रेमसिंधु के कूल वास दै लीला - मगन करौ निसिबासर ।
सोच-ताप-मोचन आनँदघन अपनो करि लगाइ दीजै झर ॥

(४८०)

गोकुल कै कान्ह मन मोह्यौ ।
डगर चली हौं जाति सहज ही मो घाँ मुसकि जोह्यौ ।
अब तब तैं धीरज न धरत है अपनो सो बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजयौ मुरली कीताननि पोह्यौ ॥

सारंग स्याम] (४८१) [मूलताल

ब्रज की खिलवारि नवेली ग्वारि रँगमगी फिरतिं
जगमगे स्याम के संग ।
गोरे तन पहिरि पतंगी सारीं झमकि झपकि गावैं गारी
भिजावैं आनँदघन पिय रसरंग ॥

बिलावल] (४८२) [मूलताल

जमुना आगैं जमुना पाछैं जमुना देखौं सब ही ठौर ।
बनवारी कौं ढूँढ़ि थकनि मैं जमुना ही लौं मेरी दौर ।

[४७८] ऐन=घर । पटम=छल-छंद । [४८१] पतंगी०=रंग-बिरंगी महीन साड़ी ।

याके तीर सदा ज्युलि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर ।
अब आनँदघन घमँड भरोसे या बिन काहि ताकियै और ॥

धन्यासिरी] (४८३) [चंपक

हौं न जानौं हो हरि भलो बुरो तुमहिं कर्यो सो फरियै ।
अपनो जानि जिवैहौ कबहूँ इन अभिलाषनि मरियै ।
अंतर की गति देखि दयानिधि अपनेहूँ गुन ढरियै ।
आनँदघन हौं दीन पपीहै पालि पोषि लै भरियै ॥

तथा] (४८४)

लीला को मरम न जान्यौ जाइ ।
कैसैं कै करियै उपासना नगुरुन मति बौराइ ।
एक कृपाई गुन उर आएँ रंचक ठिक ठहराइ ।
वे आनँदघन को सुधि थावैं सहजैं दरसैं आइ ॥

कामोद] (४८५) [सूलताल

मैं न जान्यौं री कछु ऐसो भेद गोकुल निपट अनीति ।
कान्ह कहा काहू को लेत और किन करि लीनी प्रीति,
चबाइनि सों नहीं सकियै जीति ।
या विधि को बसबास दियौ विधि रही भाँति सौं मिलि पछीति ।
आनँदघन को वचन सुनत ही लहलहाति रसरीति ॥

कानरो] (४८६) [चौताला

यह सुख कैसैं कहिवे मैं आवै जाहि मन विचारे हूँ न पावै ।
जो पावै तौ आपौ गँवावै इतनियौ कौन सुनावै ।
वृंदावन धाम दंपति सुख - संपति निगमौ दूरि तैं दूरि बतावै ।
तिनही की कृपा भएँ आनँदघन सरस मौन गुन गावै ॥

सारंग] (४८७) [चंपक

गुन गाइ गाइ ज्यौं ज्याइ लियौ ।
सुनहु बिसासी व्रजमोहन मैं यह धौं कहा कियौ ।
इतने पै दरसौ न देत हौ काहे को है तिहारो हियौ ।
आनँदघन तुम छाइ रहे हौं जरति भरति जु कछु विधना है दियौ ॥

टोड़ी] (४८८) [चंपक ताल

कोऊ है या समुझावै बन रोकत टोकत है पराई बहू बेटीं।
ढीठ भयौ ढिग ढूक्योई आवत बातैं कहत कपट - लपेटीं।
घरी द्वैक मैं समुझि परैगी आजु भले कों भोर खखेटीं।
आनँदघन जोबन उनयौ देई देवतान की कान्यौ मेटीं॥

सारंग] (४८९) [चंपक ताल

बनवारी आँखिन आगैंई रहौ बोलत क्यौं न बिसासी।
बन मैं बंसी बजावत डोलत घर मैं भए हौ मवासी।
काननि धुनि मँडराति रहति है तुम नव बेलिनि भँवर बिलासी।
आनँदघन उघरनि लैं उनए राखत हौ कित प्यासी॥

सारंग] (४९०) [इकताला

बिरहा होरी खेलन आयौ।
कहा कहौं ब्रजमोहन जू जैसो इन सीस उठायौ।
रंग लियौ अबलानि अंग तैं धीर-अबीर उड़ायौ।
प्रान अरगजैं राखि रही हैं तुम हित-बास बसायौ।
नकबानी करि नाक नचावत चौंचंद महा मचायौ।
चोवा चैन न रहन देत है जतन चाइ चरचायौ।
भजी फिरति बिचारि हथचलई यह डोलत सँग धायौ।
तुम्हारी ठौर गैर पारी इन कै तुम प्रेरि पठायौ।
कहियै कहा बिगोवनि याकी रस मैं बिरस बढ़ायौ।
सुघर स्याम आनँदघन पिय तितै छाए इत यह छायौ॥

बिलावलि] (४९१) [इकताला

जमुना देवी दीनदयाले।
अघहरनारिनी जगउधारिनी मो से बहुत पतित प्रतिपाले।
तान्यौ लै निज सरन कृपा करि दूरि किये जे जे दुख साले।
आसा-बेलि सींचि आनँदघन हरँ बढ़ाइ लालसा लाले॥

[४८९] मवासी=दृढ़ किले का रक्षक, घर से न टलनेवाला।

सारंग] (४९२) [चंपक

कहाँ जाइ विरमि रहे हो कान्ह कंत आयो है बहुरि बसंत ।
देखि देखि तेई हाल होत बेलिनि पै अलि मैमंत ।
झूलत फूलत रमत भमत रस राखत चाखत हैं हिमवंत ।
आनँदघन हम यौं मुरझति लहियै न तिहारो तंत हा जिनि लीजै अंत ॥

तथा] (४९३)

देखौ देखौ हो बड़भागी राधामोहन अनुरागी ।
ब्रजबन को सुख लेत सदाई ऐसी कछू लग लागी ।
पूरन-प्यास-भरे रसमूरति गति-मति अति रति-पागी ।
आनँदघन सँजोग - झर भीजे विरह - वैरागी ॥

नट] (४९४) [एकताला

हरि होरी खेलत रस राख्यौ ।
प्यारी पै हठ आँखि अँजाई सरस परस-रस यौं चाख्यौ ।
धनि यह फाग कियो जन ऐसैं सफल हिये को अभिलाख्यौ ।
आनँदघन विनोद-झर झुरमुट लखैं बनै न परत भाख्यौ ॥

धनासिरी] (४९५) [मूल

थे कैयाँ होली खेलौ भोरा कान्ह जी ।
औराँ काँ धोखा सूँ म्हारी आँख्याँ चूको मेलौ ।
परा रहो जी इसौ कूँड छै थाँसू होसी भेलौ ।
आठ पहर अमला रा माँता हेलो देता डोलौ ।
आनँदघन झूम्याई आवौ कोई गाली देलौ ॥

जैतसिरी] (४९६) [इकताला

अति रस बाढ़्यौ री बाढ़्यौ पिय प्यारी कौं होरी ठानत ।
भरत भजत झपटत लपटत सनेह सौं तन मन सानत ।

४९६—बनति-वर्नन (सतना) ।

[४९५] कैयाँ=कैसे । परा=दूर । इसौ०=ऐसा कौन है । होसी=होगा । भेलो=साथ । अमला०=नशे में चूर । हेलो=पुकार ।

राधा - मोहन की रँग - राचनि कैसैँ बनति बखानत ।
आनँदघन विनोद घमँडनि सुख सखि नैनाई जानत ॥

गौरी] (४६७) [चरचरी

तैँ कहा है टौंना कीनौ अरे अरे साँवरे ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि खौरि घूमरे नैना बिथुरीँ अलक बदन रँगभानौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजई तो पर सरबसु वारनै दीनौ ॥

ऐमनि ख्याल] (४६८) / [मलताल

तिहारे दरस की आस, अँखियनि लागि रही हो ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय आनि अब सिरैये हिय दौ लपट उसास ॥

मलार ख्याल] (४६६) [चलती चरचरी ताल

बरसैं स्रमजल-बूँदनि रसीलो साँवरो नयो मेह ।
आनँदघन को घमँडनि ब्रजमोहन सोहन उज्यारी चौंपनि
सौं रमँड्यौ अपनी चातकी के गेह ॥

पूर्वी] (५००) [चौताला

राधा राधा रटि राधा राधा रटि मेरी रसना रसीली भई ।
ज्यौं हीँ ज्यौं पीवति या रस कौं त्यौं त्यौं प्यास नई ।
ब्रजजीवन की परम सजीवनि सो निज जीवनि जानि लई ।
आनँदघन उमंग - झर लाग्यौ ह्वै रही नाममई ॥

पूरिया] (५०१) [चंपक

रूखियैं रूखियैं रहनि है राधे देखति हौं कौ लौं
कान्ह सौं न रचिहै ।
तेरी यह मनरौंहीं बानि तेरी दई मानि कब नचिहै ।
मुरली-धुनि संकेत बजि रही फूलनि सेज सँवारी सचि है ।
आनँदघन अभिलाषनि उनए दामिनि लौं कब नचिहै ॥

टोड़ी जौनपुरी ख्याल] (५०२) [मूलताल

सुंदर ब्रजमोहन प्यारे नीके लागौ जू ।
जितहीं तित बरसौ आनंदघन नित ही नवल रस पागौ जू ॥

रामकली ख्याल] (५०३) [मूलताल

रैनि-उनींदे नैंन लालन लागत हैं अति नीके ।
पीकें-पगे अनुराग-रँगे या नवल छबीली ती के ।
इनकी सरस अधखुलनि आगैं परे हैं कोकनद फीके ।
आनँदघन झूमेंई आवत निपट लगौं हैं जी के ॥

केदारो] (५०४) [चंपक

बसि रहे तरनितनैया-तीर, कान्ह राधिका भामा बृंदावन मैं ।
सब निसि जागि रस पागि पागि उर लागि भुज भार,
रंगनि भरीं जोन्हक जगमग मैं निपट रँगमगे उमँगनि अधीर ।
आनँदघन बरसत सरसत परसत तरसत दरसत आपुस मैं
सौंवल गौर सरीर ॥

ऐमनि ख्याल] (५०५) [मूलताल

बनवारी रे तैं तो बावरी करी ।
बिसबासिनि बिष-भरी बँसुरिया तनिक बजाइ सब सुरति हरी ।
मन की बिथा कौन सौं कहियै बीतत जैसैं घरी घरी ।
आनँदघन सनेह-झर झूमनि घर बाहिर अब उघरि परी ॥

गौरी ख्याल] (५०६) [मूलताल

मेरी आँखयनि लाग्यौई रहै साँवरो उजियारो ।
आनँदघन ब्रजमोहन रसीलो प्राननि को रखवारो ॥

कालिंगरा] (५०७) [इकताला

गोकुल नौं कान्ह जी मूँनैं भावै छै ।
बनमाला-पहिरयाँ ग्वाला-सँग,गउआँ-चारयाँ आवै छै ।
काँमड गारो नद जी रो प्यारो मधुरी बैन बजावै छै ।
आनँदघन ब्रज रूरो ब्रजमोहन रस-बरषा बरसावै छै ॥

पूरिया] (५०८) [चंपकताल

गनि गनि डगनि भरति है डगमगी, रँगमगी भई पिय-संग ।
जोबन-रूप सुहाग राग भरि नवल दुलहिया जगमगी ।
लाड़-लड़ीली रस-बरसीली लसीली हँसीली सनेह-सगमगी ।
आनँदघन पिय प्रान पैठि रही ढीली डगनि खगमगी ॥

सारंग] (५०९)

परेखनि दरके जात हिये।
ब्रजमोहन पिय भए अमोही कैसें परत सिये।
विषम विसासिनि वंसी-धुनि करि व्याकुल काढ़ि लिये।
वन मैं वोलिन खोलि कपट-पट निपटै खेल किये।
सरद सुहाई रातिनि के सुख तव ता भाँति दिये।
दुसह दिनेस-विरह ताचे अव ये निलजे प्रान जिये।
जमुना-तीर ताकि वूड़त ज्यौं जहँ जहँ सुरस पिये।
आनँदघन उदेग-झर झूमैं परत न छाँह छिये॥

तथा] (५१०)

ब्रज को विरह न वरन्यौ जाइ।
थिरचर भए दुखारे भारे पल पल कठिन विहाइ।
देखैं वनै न परत विचार्‌यौ चहूँ ओर उफनाइ।
दुख-दौं लाइ द्वारका छाए आनँदमेह कहाइ॥

सारंग ख्याल] (५११) [मूलताल

चपल चतुर कान्हर प्यारे सूधैं चितवौ मेरी ओर।
ब्रजमोहन आनँदघन तुमहिं कनौंड कौन की वरसत हौ रीझ झकोर॥

जैत] (५१२) [मूलताल

ल्याइहौं मनाइ करि करि मनुहारि।
अव तुम लेहु निहोरि रसिकवर समुझि सँभारि।
जाके अंग संग सुख चहियै ताकी सहियै रारि गारि।
आनँदघन तुम सुघरराय रस राखियै विचारि॥

रागिनी विलावल] (५१३) [इकताला

ब्रजमोहन की वल्लभा राधा वनरानी।
सोभानिधि सौभाग्य-सींव विधना-वरवानी।
धन्य पिता वृपभान जू जगमनि वड़दानी।

[५०८] खगमगी=धँसन।

धनि कीरति कुलवती महिमा जगजानी ।
भाँदों सुकला अष्टमी तिथि परम स्यानी ।
जनमी लली सुलच्छनो जिहिं पृथ्य सिरानी ।
श्रीदामा की पीठि पै लाड़नि सरसानी ।
हगनि ज्योति लखि होति है भोरियौ सयानी ।
वरस बधाई चाव सों वरसाने मानी ।
नँदरानी की हित-कथा क्यों परति बखानी ।
ब्रजमंडल मंगल महा सुषमा अधिकानी ।
आनँदघन बरषा भई मनसा उलहानी ॥

गौरी] (५१४)

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलिकालीन मलीन दीन जन पावनकरन परम गंभीर ।
भाव अभंग तरंग - बिभंगित महामधुर रसरूप सरीर ।
बोहित-नाम चढ़ाइ बहुत जन प्रेममगन करि पठए तीर ।
पूरन चंद नंदनंदन को उदय सदा उमगनि की भीर ।
निज जन रतन-जाल जुत राजत धुनि हुंकार उसास समीर ।
त्रिविधि ताप तें जरत जीव जे सीतल किये परस-पदनीर ।
करुनादृस्टि बृस्टि सों सींचे जय जय जय आनंदमुदीर ॥

परज] (५१५) [इकताला

हो आजु रावलि रंग रह्यौ ।
कीरति कन्या जनी सुलच्छनि सुनि गोकुल उमह्यौ ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ ।
सुर - समूह पुहप बरसैं परम सचु लह्यौ ।
वेदनि या रस को जस भेद सों कह्यौ ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ ॥

[५१३] श्रीदामा=राधा के बड़े भाई । [५१४] बिभंगित=तरंगित । परस=स्पर्श । आनँद०=आनँद के बादल (चैतन्यदेव) ; आनंदघन (कवि) ।

रागिनी मरहटी] (५१६) [झपताल

झूलत हिँडोरना स्याम-स्यामा प्रेम - रसमसे ।
रूप-जोबन-भरे रहसि रंगनि ढरे जगमगे बदन अतिहीँ लसे ।
बिथुरे सुथरे बार हियेँ फूलनि हार रँगमगे बसन परिमल-बसे ।
मधुर बृंदाबिपिन सरस जमुना-तीर द्रुम-बेलि केलि-गॉसनि गसे ।
आनँदघन घमँडि राग बरसत रमँडि पावस बिलास प्यासनि रसे ॥

टोड़ी] (५१७) [मूलताल

सुमन हिंडोरनाँ हुलसि झुलावत रसिक छैल अपनी प्यारी कौँ ।
अतुल रूप की उझिल झेल मैँ परे नैन मन फूलत झूलत
लाड़नि मतवारी कौँ ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन सेवत सुख-हित-हरियारी कौँ ।
आनँदघन रीझनि भर भिजवत बेली सुकुँवारी कौँ ॥

बिभास] (५१८) [चंपक ताल

कुलही दै उलही स्याम-रूप-गोभा बैठे कान्ह ब्रजपति की गोद ।
रुचिर डिठौना लौने मुख छबि देखि देखि मन मगन-मोद ।
वारि वारि मनिमाल देत बड़भागी नंद पूरन बिनोद ।
बरस-गाँठि कुलमंडन की बरसत सरसत आनंदपयोद ॥

भैरव] (५१९) [चंपक

झुलावति ब्रजरानी कनक - पलक पौढ़े ललन तनक ।
देखि देखि सुखसदन बदन अति फूल - भरी बिधिना
बनाई मनभाई बनक ।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागनि जस बरनत सुक सेस सनक ।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसुदा जननी नंदराय जनक ॥

गंधार] (५२०)

आजु के दिन की हौँ बलि जावँ ।
कुलमंडन की जनम - बधाई बाजति गोकुल गावँ ।

[५१८.] कुलही=टोपी । गोभा=प्राकट्य, अभिव्यक्ति ।

महाभाग ब्रजरानी जू के बंदन कीजै पावँ।
जिन हित घमँडि रह्यौ आनँदघन जसुदानंदन नावँ॥

सारंग] (५२१) [एकताला

हौं कहा जानौं इन साँवरिया मुरली मैं कहा धौं बजायौ।
सुनि मेरो मन तरफरात तब तैं न धरत कल मैं बहुतै बहरायौ।
सनमुख ह्वै है जात सलोनो मोहन-मूरति क्यौं हू न हात गहायौ।
ब्रजमोहन आनँदघन मोही पै अति छायौ विरह-ताप तनु तायौ॥

कनरी ख्याल] (५२२) [मूलताल

देखन की लगी हौरी है।
साँवरी मूरति जब तैं निरखी परी ठगौरी है।
इतने पै यह बैरिनि बँसुरिया अतिहीं खौरी है।
रीझनि लै भिजई आनँदघन मति भई बौरी है॥

भीमपलासी] (५२३) [चंपक

बलैया लैहूँ आजु के दिन की राधा प्रगट भई है।
मंगलमनि महिमामनि सोभा की मनि सुहागमनि विधिना दई है।
नीके रही लही सुख-संपति सुकृति - बेलि की सरग जई है।
कीरति-कूख धन्य आनँदघन जाकी कीरति बरनत निगम नई है॥

सारंग] (५२४)

जमुना - सरन मरन जौ होइ।
तौ जी परियै भली भाँति सौं यामैं फिर संसय नहिं कोइ।
नित-विहार हित-साझी पैयै लाहौ बड़ौ भरम सब खोइ।
आनँदघन अभिलाप घमँड मन-तनहि तीर-रज धरौं समोइ॥

धनासिरी] (५२५) [चंपक

भूलि मेरे मन न और कछु आवै।
ब्रजबन की बीथिनि अरु कुंजनि फिरिबोई नित भावै।
ब्रजमोहन जू छैल छबीले गुन रसना गसि गावै।
आनँदघन ही सुरस बरसिंगे चातक टेर सुनावै॥

[५२२] खौरी = बुरी, कष्टदायिनी।

रागिनी भीमपलासी] (५२६) [मूलताल

बन बजी बँसुरिया कैसैं रहौं घर दैया ।
कलमलात जियरा मिलिबे कौं को है धोर-धरैया ।
न्यौज लगौ यह लाज निगोड़ी करिहै कहा चवैया ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब डरु करै बलैया ॥

भैरव] (५२७) [चौताला

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तैं निसि-बिलास-अरसाने ।
मंद मंद गति अति रति पागे जागे चौंपनि परम प्रेम सरसाने ।
अंगनि दुति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर मुख सुखमय दरसाने ।
गौर स्याम आनँदघन् दामिनि देखत नैन सिराने
जमुना-तीर बरसाने ॥

पूरबी] (५२८) [चौताला

नादमहंत गिरिजाकंत दीननि के दयावंत ।
तुम्हारी कृपा तैं निसदिन गाऊँ श्रीहरि-गाथा जैसैं् गाइ आए संत ।
बरदराज सब काज सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत ॥

नट] (५२९) [चंपक

पाथर हियौ उड़्यौ ही डोलै हरि के दुसह बियोग ।
अचरज महा कहा कहियै अब बन्यौ नवल संजोग ।
पोढ़ौ अति पिसि रह्यौ घिसनि मैं आगि-उदेग भर्‍यौ ।
जानै नहीं साँवरे सुंदर चेटक कहा कर्‍यौ ।
ज्यौ लै गए कौन धौं जारत यह कछु सुधि न परै ।
बिबिधि जातना भर्‍यौ निगोड़ो जीवै नाहिं मरै ।
निपटै जड़ पै एक चेतना - चिंता - चोट सहै ।
आनँदघन पिय हित सियरो परि औरै दहनि दहै ॥

५२६—न्यौज—आग (संग्रह) ।

[५२८] जंत= (जंतु) जीव, व्यक्ति ।

बिलावल] (५३०) [इकताला

मची चुहल चाँचरि की नंद महर के द्वारैं ।
आई उमहि व्रजवधू चोंपनि चतुर खिलारैं ।
सुमिल सुगीतनि गावैं निपट रसीली भासनि ।
मोहन मनहि घुमावैं प्रेम - लपेटी गासनि ।
अद्भुत उकति अनौंठी प्यारी परम सुगारीं ।
जसुमति-ललहि सनमुखीं लाजनि ढकी उघारीं ।
रूप - गहगहीं गोरीं बैस डहडहे गातनि ।
गोकुल की छुरिहाईं बनीठनी सब बातनि ।
मिंहदी रचे करनि डफ विविध विचित्र विराजैं ।
महा मनहरन हाथनि परस सरस गति बाजैं ।
झूमर झमक रमक सों भाँवरि भरन लगी हैं ।
खुलनि झुलनि झलकनि की मिलि मुख-ज्योति-जगी हैं ।
कान्है करपि हरप सों चाहति नाच नचावन ।
चौकस चपल चिकनिया चपरयौ चहत बचावन ।
गुलचनि रुचिर कपोलनि उलचति धीरज हिय को ।
प्रगट परस होरी मैं जिय ज्यावत है पिय को ।
बंक बिहारी मोहन किये सरस व्रज - बालनि ।
गाँसनि हाँसनि सों सनि समझि सहत इन हालनि ।
बिच बिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी ।
मरम - परस की घातनि तकि वृपभानुदुलारी ।
नई लगनि के लाले फागुन भरि पुरए हैं ।
छाँह छियन हूँ दूभर उररि उररि सु रए हैं ।
लगत निपटहीं नीके मोहन रूप - उजागर ।
दरस परस रस परवस नायक नगधर नागर ।
बदन गुलाल - रँगमगे दिपत अबीर - अँध्यारैं ।
मदन - कुलाहल कौतुक गनत न बनत बिचारैं ।
ग्वार गरधारिनि ढूके सैननि स्यामहि बोलैं ।

बुधिबल बरनि न पावत घिरि नवबधू कलोलैं ।
इचनि खिंचनि कर पट की लपट झपट रँग-रपटनि
भरनि भुजनि फिर उलटनि दलनि दबोचनि दपटनि
छलनि छुटे मोहन की गौंहन लागति बाला ।
नैन भौंह कर नचनि लचनि कटि डोलन माला ।
दाव लैन के चावनि चौगुन चौंप चढ़े हैं ।
ग्वार ग्वारनिनि टोल आपनी पज बढ़े हैं ।
फागुन फबी सु बिलसनि हुलसनि हौंस नई है ।
यह सुख सोभा संपति दंपति भाग भई है ।
घोष घमँडि आनँदघन अति रस-रमँड मची है ।
भीजि रीझि रसमसनि समै छबि दृगनि खची है ।
सगुन साथ त्यौहार सदा बिहरैं हरि भामिनि ।
महामोद - बढ़वारि कौन ब्यौरै दिन जामिनि ।
नित बसंत रसवंत कंत कामिनि सुख भोए ।
बसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए ।
भाग - भरी ब्रजबधू सनेही स्याम सभागौ ।
इनहीं के अनुराग पागि रसना गुन रागौ ।
ऐसैं देखत रहौं रहस आनँदकंद के ।
महा रसवती राधा कौतुक कृस्नचंद के ॥

धनासिरी] (५३१) [इकताला

ब्रज माची सरस धमारि होरी रंग रह्यौ ।
घोप नागरीं फगुवा माँगन आईं जसुमति-धाम ।
प्रेमपगे रँगमगे जगमगे निरखे मोहन स्याम ।
गावति गारीं दै दै तारीं गति सौं डफहि बजाय ।

४७४—दिपत—दिखत (सतना) ।

- [४७४] भासनि=बोली से । अनौंठी=अनूठी । हुरिहाई=होली खेलने-वाली । चपर्यौ=फुरती की । गुलचनि=कपोल पर हाथ की मुट्ठी से किए आघात । उररि=उमंगित होकर ।

आँगन मैं औसर की चाँचरि चौंपनि रही मचाय ।
फैलि फबी छबि छकीं खिलारें चंदमुखी चहुँ ओर ।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्ह-किसोर चकोर ।
काजर दै मुख माँडि गुलालहिं झगरति फगुवा देत ।
सैननि ही मैं सुघर साँवरे छाहा करि हँसि देत ।
पून्यौं सुदिन समदि सब सुखनिधि बढ़यौ महा समुदाय ।
गोद भरति रोहिनी जसोदा मोद कह्यौ क्यौं जाय ।
या घर यह सुख सदा विराजौ देति असीस बखानि ।
आनँदघन रस रह्यौ लह्यौ जस नित त्यौहारनि मानि ॥

बिहागरो] (५३२) [इकताला

देखि सुहाई सरद की जामिनि रंगभीनी ।
पूरन ससि प्राची उदै बिहरनि रुचि कीनी ।
मोहन मदन गुपाल कौं वृंदावन मोहै ।
जमुनातट कुसुमित महा अवनीमनि सोहै ।
ज्योति - जगमगे द्रुमलता अति सघन सुहाए ।
त्रिविधि पवन सुखमै बहै कहिये सु कहाए ।
बिसद पुलिन रसरास कौ अभिलाप बढ़ावै ।
नटनायक नँदलाल को मन पकरि नचावै ।
राग भागनिधि ब्रजवधू तिनकी मनि राधा ।
जाके हित मुरली धरी धुनि प्रेम - अगाधा ।
रूप अनूपम साँवरो गुनरासि रसीलो ।
नाद-स्वाद - स्वामी सदा अति छैल छबीलो ।
कहि न परति सुर-मधुरिमा जिन सुनी सु जानै ।
परम प्रेम - फँदवारि है प्यारिनि गहि आनै ।
चौंपनि चुहल मची महा गोपीं चलि आवैं ।
अगनित पूरन ससि मनो धरनी पर धावैं ।
रची मंडली भावती राजति चहुँ ओरनि ।

५३१] समदि=भेंटकर ।

मधुर हँसनि हुलसनि महा दृग सौं दृग जोरनि ।
हिलनि मिलनि ब्रजचंद की अति उमँग-भरी है ।
प्रीति-पगे रस - रँगमगे पन परनि परी है ।
दरस परस रसबढ़नि की गति कहै सु को है ।
आनँद - उदधि - तरंग मैं मति की मति मोहै ।
अदभुत गान - कलान की रचना सरसी है ।
ललित रीति संगीत की सुषमा दरसी है ।
मच्यौ महारस रास है बृंदाबन माहीं ।
या सुख - सोभा की कछू उपमा कौं नाहीं ।
चटक मटक गति-लटक सौं नाचैं पिय प्यारी ।
आपुस मैं रीझनि रचे वारथौ कहि वारी ।
कुंडल अलक कपोल की झिलमिलनि फबी है ।
चकचौंधी लागति लखैं दुति दृस्टि दबी है ।
बिबिधि बिनोद प्रमोद मैं सनि रहे रसीले ।
मुकुट चंद्रिका दुहुनि के झुकि लसत छबीले ।
मगन महारस - केलि मैं मोहन ब्रजबाला ।
सुरबनिता रीझनि छकीं वारैं मनिमाला ।
थिर चर सब रस मैं पगे सुधि रही न काहू ।
राधा मोहन हिलि मिले हित - रीति - निबाहू ।
राग - भोग - संजोग को अति पुंज बढ़थौ है ।
महा निसा जकि थकि रही ससि कढ़नि कढ़थौ है ।
आनँदघन बरसत सदा भीजे या रस मैं ।
परम रसमसे रीझ सौं दोऊ परबस मैं ॥

टोड़ी] (५३३) [चंपक

घेरि बन राखत हौ अबलानि दिना दस तैं मिस ठानि दान को ।
कान्ह लाड़िले अनीति करौ जिनि डरौ न देवतानि हूँ
ढँग सीखौ सयान को ।

गैल चलौं अमैंडई छाँडौ यह तौ है जू भयानो भान को।
आनँदघन घुरि घुरि उघरत हौ एठ न भलो निदान को ॥

टोड़ी] (५३४) [चौताला

पिय को परस रस तैं ही पायौ।
सुनि राधे अनुरागमंजरी उरजनि बीच दुरायौ।
इनकी फूल फैल परी नखसिख टहडहौ मुख सुखमदन सुहायौ।
ब्रजमोहन आनँदघन री रीझनि झमडि घमँडि रमँडि
रमँडि सरसायौ ॥

संकराभरन] (५३५) [जतिताल

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखैं।
मुरली - धुनि मोहनी करि पवन पंग राखैं।
मुकुट-लटक गति की मटक अंग सुधंग राखैं।
महा अद्भुत रूप धरे मोहि अनंग राखैं।
राधा के हित नटवा निपुन अति उमंग राखैं।
आनँदघन चातक - व्रत एक संग राखैं ॥

राग केदारो] (५३६) [चौताला

ऐसो मन कहाँ तैं ढूँढि ल्याइयै जो पै फिरि हरि ही मिलाइयै।
अरु तेई आँखैं जिनसौं निरंतर वह मुख दिखाइयै।
कहा बनाइयै कैसैं बहराइयै तपनि महाइयै।
आनँदघन के हेत रैनिदिन सोचनि छाइयै ॥

राग स्याम कल्याण] (५३७) [इकताला

नटवर नंदलाल रासमंडली रची हो।
राधा - संग जमुना - पुलिन परम प्रीति मची।
महामोहन मुरलिका - धुनि तान - ग्राम जँची।
सरद-निसा गोपिनि मिलि सुख की रासि सची।

[५३३] अमैंडई=शरारत। भयानो=डरना। भान=प्रकाश। निदान०=अंत में। [५३५] पंग=पंगु, गतिहीन। सुधंग=बाँके, बढ़िया ढंग से।

अभिनय संगीत-रीति नचनि देखि नची।
रूप जोबन गुन-गरिमा रोम रोम खची।
यह सोभा देखँई बनै बरनिबँ बची।
आनँदघन रस की रासि कैसैं जाति अची॥

राग केदारो] (५३८) [चौताला

सब निसि बिलसत रास-रसी है।
राधा के अंग-संग रंग राचे नाचे मोहन परम-प्रीति सरसी है।
कुसुमित बृंदाबन जमुनातट पूरन सरद-ससी है।
आनदघन भामिनि दामिनि मिलि अदभुत छबि बरसी है॥

ऐमनि] (५३९) [इकताला

नंद-नंदीसुर बास अरी बड़भागनि पैयै।
नित उठि मोहन-मुख निहारिवो पुजवत है जिय-आस।
हम ये दूरि बसति तरसति हैं झुरि झुरि भरति उसास।
इक दिन गाइनि लै इत निकसे बाढ़ी अँखियन प्यास।
तब तैं आनँदघन औसेरनि प्रान-पपीहा उदास॥

आसावरी] (५४०) [इकताला

जमुनातीर बजावै बंसी स्यामसुँदर नवरंगी हो।
गागरि भरन न देत अचगरो तीखी-तान-तरंगी हो।
केसरि-खौरि घूमरे नैना चंदन-चरचित-अंगी हो।
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि मधुर हँसनि रुचि-संगी हो।
उर वनमाल बिसाल बिराजित मोहन-मदन त्रिभंगी हो।
रीझनि भीजि थकी निरखतहीँ घनआनंद उमंगी हो॥

परज] (५४१) [मूलताल

हियरा सुर-साल करै मुरली ऐसे हाल करै मुरली।
प्रान समोइ लेति तानन सौँ अटपटे ख्याल करै मुरली।
वसति ससति सीँ घिरी घरनि मैँ ये जंजाल करै मुरली।
आनँदघन रस वरसि बिसासिनि बिरह की ज्वाल करै मुरली॥

सारंग] (५४२) [चौताला

जहाँ जहाँ डोलत री घनघागे तहाँ तहाँ मन मेरो मँडरात ।
सुरति सहेली सँग नहिं छाँडति वन वन वीथनि वीथनि पग
पग पाँवड़े लौं बिछि जात ।
यह सुख तौ मेरो जियराई जानत कहा भयो तनु नचि मुरझात ।
आनँदघन को विरह संजोग हू तें इन बातनि सरसात ॥

सारंग] (५४३) [चौताला

कहा हौं बैठिये रहौं, गठीली बोलति नाहिं बुलाएँ ।
कौन कौन भाँतिनि समझाय अनोखी तोसों कहौं ।
बनि आएँ ठनगन ठानति है नवीपर राधे नोहि लहौं ।
आरत है पपई आनँदघन तातें पैज गहौं ॥

सोहनी] (५४४) [इकताला

सुन वे बेपरवाह निमाणीं दाहानल बुझदा ।
प्राण-पपीहों नू आनँदघन तुझ बाजू होर न सुझदा ॥

सोहनी] (५४५) [जामाताल

असे साडे दिल दी मुराद पुजाईं ।
साँवले सज्जन साँई जिंद निमानी तपदी आनँदघन सोहन
मुख चुक विखलाँई मिहिर नजर बरसाईं ॥

सोहनी] (५४६) [झूलताल

वो वो सानू ना तरसाँई, जिंद कीती कुरबान
तेंडे दम ऊपर साँवल साँई ।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन हा वे मेहर नजर बरसाँई
इत वल आँई घोल घुमाँई ॥

धनासिरी] (५४७) [इकताला

मैंडा दिल तैनू लोडे तू क्यों मुखडा मोडे ।
इस वो निमानी नू विरह सिर्के दा तैनू की परवाह
आनँदघन वडा तिना दा भाग जिना नाल तुसी वो मोहब्बत जोडे ॥

[५४३] ठनगन = मान, रूठना । पपई = चातकी । [५४४] बाजू = वर्ज्य, अतिरिक्त । होर = और, अन्य । [५४५] चुक = किंचित् ।

सारंग] (५४८) [इकताला

सिंघासन प्रेम को गिरिराज ।
ब्रज तुव राज बिराजत नितहीं सँग लै सुहृद - समाज ।
याकी गुन-गरिमा याही मैं भरि सेवन सुखसाज ।
जै जै मंगलमनि आनँदघन थिर अनुचर सिरताज ॥

सारंग] (५४९) [चौताला

हरि-चरननि सौं चिन्हारि करि लै ।
मन मेरे तू मानि कह्यौ या सुख-संपति घरि भरि लै ।
बन-महीमंडन ब्रजरमनी - उर - मंडन तिनहीं के हित ढरि लै ।
आनँदघन अदभुत अरबिंद पपीहा-मधुप-ब्रत धरि लै ॥

तथा] (५५०)

ऐसी बजाई है बनवारी बंसी बन, है सुनत धुनि काहू पै न रह्यौ मन ।
उमँग उदेग आँच लागे तैं पुलकि पसीजि चले हैं सब तन ।
रीझनि रमँडि घमँडि आनँदघन बरसि बहावत अबलनिपन ॥

आसावरी] (५५१) [मूलताल

ठगिया बसत है री याही गाँव ।
जमुन-तीर तैं मनु न हाथ मेरे, अब न रहत घर पावँ ।
परी है ठगौरी लागी वहै ढौरी बौरी भई जागत बररावँ ।
साँवरैं बरन आनँदघन भिजई जानौं न कहा धौं नावँ ॥

ललित] (५५२) [मूलताल

चले किनि जाहु लला तुम सूधैं आपनी गैल ॥
काहे कौं उरझत काहू सौं भली भई भए छैल ।
दान दान यौं ही करि राख्यौ रोकत खोरि खरेई अरैल ।
आनँदघन रसदादनि उनए फिरत मनावत सैल ॥

टोड़ी बराड़ी] (५५३) [मूलताल

सुरति सवेरी लेहु बिसासी बालम जियरा अति अकुलाय ।
अब न बिरम करियै ढरियै हरियै दुख हाहा नतरु आइहै धाय ।

[५५२] सैल=मौज ।

कहा कहौं जौ तुमही न समझौ अपनी करि यौं दई भुलाय ।
आनँदघन रस बरसि सरसि तब अब लाई यह लाय ॥

बिहागरो] (५५४) [झूलताल

निपट बिरहिया लोग ब्रज को, स्याम-सनेह-सगमगे
सब ही रूप - रँगमगे नैन ।
मिलि मिलि बिछुरि बिछुरि फिर मिलि मिलि पावत चैन कुचैन ।
मौन धरे मचि रही चहूँ दिसि कान्ह कान्ह पुकार ।
आनँदघन झर लाग्यौ सदाई घर बन बरस बढ़वार ॥

पूरवी] (५५५) [इकताला

उरझिबो करैं री हम सौं नंद महर को अचगरो ।
घाट घाट रोकत टोकत है सबही गुननि को अगरो ।
गोकुल निपट अनीति चलाई चलन न पावत डगरो ।
मुरली बजाइ बजाइ करत बस टरत सयानप सगरो ।
आनँदघन यौं घमँडि मचावै गोरस मिस रस-झगरो ॥

गंधार] (५५६) [इकताला

कालिंदी - कूल की मँडरानि ।
भावति है दिन दिन छिन छिन ही प्रेमपगी अकुलानि ।
राधा - मोहन - रूप माधुरी परसि दरसि थकि जानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि आनि परी यह बानि ॥

तथा] (५५७)

निहारयौ वृंदाबन सुखखानि ।
द्रुम - बेलिनि सौं भई भलँई इन अँखियनि पहिचानि ।
जमुना - तीर भीर सहचरि की राधापिय - रहठानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि बाढ़ि परी ललचानि ॥

तथा] (५५८)

मदनगुपाल की बलि जावँ ।
हरषि सिरात हियो सुनि सजनी हेली महा मनोहर नावँ ।

५५४—घर०—भर लागत रस (सतना) ।

[५५३] लाय=आग ।

स्याम रूप रँग पागि लियौ है सबही गोकुल गावँ ।
ब्रजजन - जीवनधन आनँदघन रमँडि रहौ दृग ठावँ ॥

भैरव छंद] (५५९)

रिषि मुनि सत्तम सब विधि उत्तम हरि-हित-हारद नमो नमो ।
गुह्यक - तारक पर - उपकारक रस - आसारद नमो नमो ।
भ्रमतम - नासक प्रेम - प्रकासक मुखससि सारद नमो नमो ।
भवनिधि - पारद गान-बिसारद जय जय नारद नमो नमो ॥

सारंग] (५६०) [झपताल

बरजि री या छबीले हठीले कौं कहा पौरि पिछवार ढूकत डोलै ।
घर वैठे आनि उखनींद करत काँकरु चलावत निडर याहि
किन सीख दीनी अहो लै ।
घमँड्यौ रहत रातिद्यौस आनँदघन जोवन के मद आँख्यौ न खोलै ॥

रामकली आड़] (५६१) [चौताला

सवितानंदनी सुख देति ।
कृपारस - पूरन सदाई उमँगि लहरैं लेति ।
स्यामसुदर - संग रंगनि अंगराग रमेति ।
नीर - महिमा - माधुरी कौं बदति बानी नेति ।
तीरभूमि निहारि हिय तें जाति जड़ता चेति ।
द्रवित आनँदघन निरंतर परति नाहिन छेति ॥

राग भैरव] (५६२) [इकताला

आवौ आवौ हो सनेही स्याम बहुतै लगाई बेर ।
रूप - उजियारे टारौ विरह महा - अंधेर ।
सुंदर वदन सोभा देखन की प्रानप्यारे नैननि कैं निपट
ही लागियै रहै औसेर ।
अवधि बितानी रैनि जागत बिहानी हा हा रसिक रँगीले
छैल उरमें नवेली भेर ।
आनँदघन सुभाय अनत बिराजे छाय स्रवन परी न
हाय काहू दुखिया की टेर ॥

[५६१] रमेति=रमती है। छेति=विच्छेद। [५६२] भेर=प्रीति की तरंग।

रामकली] (५६३) [मूलताल

अधम-उधारन मैं तुम जाने।
दीनानाथ कृपानिधि स्वामी सदा दयारस-साने।
सोचहरन सुखकरन छमापति अति उदार उर आने।
पतित पपीहनि के आनँदघन जीवनधन पहिचाने॥

पटराग] (५६४) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागर छैल सौं छबीली कुँवरि
रावे राख्यौ न कसरि।
लियौ दाव अति चौंप चाव सौं रँगीले ललन मुख आइ
है गुलालहि अलग मसरि।
हाथ लगाइ हाथ कियौ मोहन रूप-कौंध चौंधि रह्यौ है थसरि।
आनँदघनहि भिजै रस रिझयौ दामिनी कहा विचारी
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि॥

आसावरी] (५६५) [चौताला

नैननि मन रोम रोम कान्है कान्है कान्ह रम्यौ है।
कोउ बेचति कोउ लेति गुपालहि गोरस लौं घर घर
फिरत कहाँ नीको नेह जम्यौ है।
गोकुल प्रेम की पैंठ सदाई जहाँ जगमोहन ऐसैं भ्रम्यौ है।
आनँदघन अचरज रस भीजि भीजि रीझि रीझि सुक सन-
कादिक सेस संकर गिरीस सीस रज-चकसीस नम्यौ है॥

भैरव] (५६६) [झपताल

सकल - सुखमा - सदन बनराज राजै।
राधिका मदनमोहन निवासित सदा अति मधुर केलिहित संपदा साजै।
तरनितनया - तीर जगमगत ज्योतिमय पुहमि पै प्रगट
सब लोक - सिरताजै।
अद्भुत अनूप आनँदघन रसरूप महामंगलकरन पूरन कला जै॥

४६४–सरि–भरि (लंदन)।

[४६४] थसरि = शिथिल होकर।

बिलावल] (५६७) [चंपक ताल

आवति चली कुंज-गहबर तैं कुँवरि राधिका रूपमढ़ी।
मोद - बिनोद - भरी मृदु मूरति का बिरंचि या घाट घढ़ी।
बरनौं कहा गुराई मुख की अलक - सँवरई संग बढ़ी।
बंक चितवनी सरल बान लौं उर इकसार दुसार कढ़ी।
सहज मधुर मुसिकानि सलौनी मौन मोहनी - मंत्र पढ़ी।
अधर पानि पै निरखि घुरथौ हिय उतरति क्यौं जु घुमेर चढ़ी।
सुनि री सखी घुटनि जियरा की तू ही एक उपाय - अढ़ी।
प्याइ प्याइ रस आनँदघन कौं रसना चातक - चौंप - रढ़ी॥

लहवारी विहाग] (५६८) [इकताला

राधे राधे राधे राधे श्री राधे राधे।
ब्रजजीवन के प्रान - जीवनधन येई बरन आराधे।
आनँदघन चातक - रट लागी मुरली - सुर मैं साधे॥

सावंत] (५६९) [इकताला

कान्ह - कथा कान्है सुनाइयै।
तनक इकौसैं ब्रजमोहन कौं भागनि वल जौ कहूँ पाइयै।
जो कछु दसा नैन मन जिय की सो कैसैं काहू जनाइयै।
जाकी लाई लाइ लगन की आनँदघन ताहीं सिराइयै॥

सारंग] (५७०) [ईकताला

सुमिरन स्याम कौं मन लाग्यौ।
मन सुमिरन सौं लगै न क्यौं फिरि सरस-परस-रस-पाग्यौ।
सोवत जगत न उहटै कितहूँ हित ऐसो कछु जाग्यौ।
रीझनि झूमि झूमि आनँदघन गुर गरजनि अनुराग्यौ॥

[५६७] गहबर=भीतर, गहराई, गर्भ। का=क्या। घाट=शैली। घढ़ी=गढ़ी, बनाई। इकसार=एक ओर घाव। दुसार=आरपार घाव। घुमेर=नशा, चक्कर। अढ़ी=करनेवाली। रढ़ी=रटती है। [५६९] इकौसैं=एकांत में। वल=सहारे, द्वारा। लाइ=आग। [५७०] अरस० = आलिंगन के आनंद में लीन। उहटै = उचटे। गुर=गहरी, भारी।

सारंग साँवत]　　　　(५७१)　　　　[चौताला

आनँदमंगलदाता दरसन सूरसुता को ।
जब जब देखियै नयौ नयौ लागत रूप अनूप जु ताको ।
राधा-हरि-सहचरि-समूह मिलि विहरनि-कूल-कुतूहलता को ।
रसना छाय रहौ आनँदघन जस याकी प्रभुता को ॥

सारंग]　　　　(५७२)　　　　[झपताल

धरम अरु धीर मन प्रान अरु ग्यानहूँ हेरि हरि लेव हरि देव प्यारे ।
सो बहुरि कौन कौं देव कहि देव किनि कपटी कठोर गिरधर उज्यारे ।
कंदरा मंदिरनि बसत घातनि छैल गैल गाहत अबारे - सबारे ।
घमँडि आनँदघन उघरि गोहन लगत दान मिस ठानि हठ निडर भारे ॥

गौरी]　　　　(५७३)　　　　[मूलताल

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवन राधाप्रान ।
राधा-बदन-सरोज-मधुव्रत सदा करत राधा-रसपान ।
राधा राधा ही रट लागी राधा बिन सुमिरत नहिं आन ।
नित हित-घमँडनि सौं आनँदघन मुरली मैं राधा-गुनगान ॥

आसावरी]　　　　(५७४)　　　　[इकताला

होरी होरी खेल मचायौ गोकुल-गैल - गरधारैं ।
ब्रजगोरिनि भोरिनि घातनि लगि डोलत साँझ - सबारैं ।
चंचल चतुर चिकनिया मोहन गोहन परयौ है हमार ।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कौ लौं धूम सहारैं ।
भिजै रिझै आनँदघन को सब दिन की कसरि निकारैं ॥

हिंडोल]　　　　(५७५)　　　　[चौताला

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं वागौ बसंती ।
चोवा-चित्रनि फबी है छैल-छबि अरु उर राजति बरन
बरन फूलनि की बैजंती ।

५७४—चंचल—चौकस (सतना) ।

[५७४] धूम=ऊधम ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं जोवन - उलह निपट लहलहंती ।
तेरैं हित आनँदघन घमँड्यौ ढुरि घुरि रस राखियै
सुनि राधे सुहागवंती ॥

हिंडोल] (५७६) [कपोती ताल

आवौ री मिलि गावौ बजावौ बसंतपंचमी है आई ।
राधा लै वृंदावन चलियै देखन सोभा सुनियति मोहन मुरली सुरझाई ।
कोकिला कुहकनि औरौ खग चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई ।
आनँदघन की गरज सुहाई माची है मदन-बधाई ॥

सारंग] (५७७) [चौताला

नवल बना री नवेली बनी राधा को ।
ब्रजमोहन नीको नाँव रसीलो भागभरे दुलहा को ।
जमुना-तीर सघन वृंदाबन मंडित मंडप-सुमन सदा को ।
आनँदघन हित घमँडि भाँवरैं भरत रहत धनि धनि सुहाग याको ॥

सारंग] (५७८) [चंपकताल

टेर मुरली की मोहिं टेरिबोई करति है ।
रितै रितै मन मैं तैं धीर बीर विषम पीर लै भरति है ।
कठिन जोग घर ही मैं भोगियत बिरह-आगि उर-बीच बरति है ।
आनँदघनहि परस सीतलता परति है, परति है ॥

हिंडोल] (५७९) [चौताला

बसंत फूल्यौ री वृंदावन मैं आइ ।
नितहीं वसंत-मूरति ब्रजमोहन के देखन कैं चाइ ।
ताहि सफल करि राधे माधवी है हिलि मिलि खिलिबे को दाइ ।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाइ
अब तू दामिनि लौं धारि पाइ ॥

हिंडोल] (५८०) [इकताला

विहरत वृंदावन रितु वसंत राधा रमनीमनि कान्ह कंत ।
प्रफुलित जमुनातट विविध कुंज, धूँधरि पराग अलिपुंज-गुंज ।

५७६—सुरझाई—सुर गाई (सतना) ।

गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार ।
यह सुख सोभा बरनी न जाइ, तन मन आनँदघन रह्यौ छाइ ॥

हिंदोल] (५८१) [चौताला

रँगमगे अंग नित बसंत खेल ।
सजल गुराई लोने गात मानौं केसरि रँगरेल ।
सहज सुगंध सौंधो कपूर छ्यान चिकुर चिकनई चोवा फुलेल ।
अधर-अरुनता गुलाल रोचना आनँदघन पिय हित
सब सुख-साँज सकेल ॥

राग हिंदोला] (५८२) [मूलताल

राधे रमनीमनि रूपमंजरी तेरी हँसनि बहुत बसंत कौं हँसति ।
कहा कहौं हौं हूँ देखि रहौं जैसो नखसिख लौं जोबन-गोभ लसति ।
रँगीलो बदन सुखसदन बिराजत भृकुटी पासि मति गतिहि गसति ।
मधुर माधवी सरस बिकास विलासभरी तू आनँदघन ब्रज-
मोहन पिय-हिय-जिय मैं बसति ॥

कलिंगरा] (५८३) [एकताला

स्याम प्यारे हमसों होरी खेलन आए भोरैं कित के ।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब बिधि लायक नित के ।
निपट रँगमगे सौंधे-सगमगे जावक-खौरि कनौड़े हित के ।
आनँदघन चित चोंपनि उनए उघरे भाग भुरहरैं इत के ॥

धनासिरी] (५८४) [मूलताल

दरद बंदा नू दरद घनेरा है मासूकाँ वेपरवाही ।
सुन वे साँवलिया कुडिया दे उपर की हुया फिरदा सिपाही ।
तैनू दरद सुने दरसे मैंडा यार निगाही ।
प्रानपपीहा नू जिलावीं आनँदघन मिहिर-नजर वाहवाही ॥

गंधार] (५८५) चौताला

तिन सब कछु साध्यौ हो जिन साधी साधुजननि-संगति ।
पतितपावन पुरुषोत्तम पदवी पावन की परम गति ।

[५८२] गोभ=प्रस्फुटन । पासि=फँसकर । [५८४] कुडिया=टोप ।

धोइ धोइ मन-वसन वासना रच्यौ है रागरुचि - रंगति ।
आनँदघन रस-परस - प्रसादहि पाइ पल्यौ पन-पंगति ॥

ऐमनि] (५८६) [मूलताल

झूलि झुलावैं, रसिकविहारी अपनी प्यारी कौं ।
अंक भरें पुटली पै वैठे मुख लखि जीव जिवावैं ।
छुटे वार मुकतानि हार मिलि उरझि उरझि सुरझावैं ।
सरस परस वीरो खवाइ आनँदघन रस वरसावैं ॥

रामकली] (५८७) [चौताला

व्रजपति-मंदिर मैं रंगवधाई प्रगटे हैं कुँवर कन्हाई ।
भाग - वलो जगमनि कुलमंडन मन - नैननि सुखदाई ।
स्यामसुंदर दिनहोनो लोनो जनमत मैया-कूँखि सिराई ।
आनँदघन अनेक रस वरसत जससरिता सरसाई ॥

केदारो] (५८८) [इकताला

वाजति रंगवधाई गोकुल नंद कैं ।
औरै ओप वढ़ी सुनि सजना उद भएँ व्रजचंद कैं ।
नैन चकोर भए सुख - सीतल परस मयूख अमंद कैं ।
दुख-तम दूरि गयौ हिय-जिय तैं निरखत आनँदकंद कैं ।
वंदीजन विरुदावलि वोलत मुदित विप्र-धुनि - छंद कैं ।
पूरव पूरव - भाग आनँदघन जसुमति नंद सुछंद कैं ॥

विहागरो] (५८९) [इकताला

गोकुलचंद्र - चंद्रिका प्रगटी सव व्रज लगत रवानौं ।
कोटि कोटि पूरन सारद ससि उदै भए हैं मानौं ।
उत व्रजपति कैं अति गहगह इत गहमहात वरसानौं ।
मोहमंडन वड़भाग - सिरोमनि नदराइ वृषभानौं ।
दुहुवनि की इकमनी रीति को कौतुक कहा वखानौं ।

[५८६] पुटली=पटुली, पाटा। [५८८] पूरव=पूर्ण होगा।

राधा मोहन नाम रसीले जीवन को फल जानौं।
उनैं उनैं आनँदघन वरसत जस - सायर सरसानौं ॥

गौरी] (५९०) [चौताला

गंगा गंगा गंगा गाय लै री मेरी वानी।
दुरित-दवागिनि दूरि करन जाको परम पावन पानी।
हरिपद-रति मति गति अति दाइनि कीरति विसद पुरान-वखानी।
मोद-वितरनी जगतरनी मैं जानी भागीरथ आनी ॥

रामकली] (५९१) [चौताला

सुदिन हहै जाहि भेटिहौं स्याम।
तन की तपति विपति टरि जैहै पैहै मन विसराम।
बहुत भाँति के सुखनि सौं चिहै रसमूरति व्रजजीवन नाम।
आनँदघन धुरि घमँडि रमँड सौं हरिहैं विरहा-घाम ॥

तथा] (५९२)

बंसी बाजि बाजि घर घालै, घरवसी सौं कोउ न बोलै चालै।
व्रजमोहन को अधर सुधा लै देति सौति के सालै।
जाकी बनि आवै सोइ गावै रसवस करि छिन छाड़त लालै।
आनँदघन गरजै सो लेखै परम प्रीति - पन पालै ॥

हमीर] (५९३) [चौताला

कहाँ एती बार लाई हो विसासी मोहन।
ठौर ठौर के पाहुने प्यारे तुमहिं काहू सौं मोह न।
अबला बपुरी भोरी विचारी चतुर छैल गीधे नई टोहन।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर करत फिरत रस - दोहन ॥

हमीर] (५९४) [इकताला

मन मेरो फेरि लेतु है, गिरि गोधन सौं अति हेतु है।
सीतल सुंदर सुखद कंदरा हरि - राधा - संकेतु है।

५९२—पन—प्रति (लंदन)।

[५८९] इकमनी=एक मनवाली। सायर=सागर।

फूलन के फल दल जल कै गोबिंद गैयन सुख देतु है ।
आनँदघन छबि छाइ रही तित नित ही मो चित चेतु है ॥

पूरवी] (५९५) [इकताला

आवै आवै नंद महर को मोहि जानि याही गैल ।
रसभीजी चितवनि सौं चितहि लगाइ लेत है छैल ।
इकटक लागि रहति उत अखियाँ मेरोऊ मन भयौ अरैल ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब कौन की दवैल ॥

आसावरी] (५९६) [मूलताल

जौन देखै तौन देखौं हौं तौ देखैंईं सुख पाऊँ ।
गरव - गहीली गोरी ग्वारि जाकी पटतर कौं न पाऊँ ।
सुनि सजनी हित चित की बातैं हितू जानिकै तोहि जताऊँ ।
आनँदघन पै चातक चौंपनि तेरे भरोसैं छाऊँ ॥

टोड़ी] (५९७) [मूलताल

मेरे भाग जागे री जागे री मैं देख्यौ मोहन-दरस ।
आँखिन को सुख कहत न आवै जैसैं सब अंगनि तैं
पहलेईं पायौ परस सरस ।
बहुत बरुनीं-अँकवार भरे री करे सुबस अभिलाष बरस ।
आनँदघन त्यौं उनैं उघरि इन्हैं अब सब सौं उपज्यौ है अरस ॥

टोड़ी] (५९८) [चौताला

देखौ देखौ जमुना की गहराई जो कछु इनहीं मैं बनि आई ।
राधामोहन-सिंगार-रस-पूरन उमँग-भरन नित देखियति लहराई ।
उमँग-भरी अभिलाप-गहवरी मुरली-धुनि सुनि सुनि ठहराई ।
आनँदघन छबि अब कहिबे कौं सरसुति-मति थहराई ॥

आसावरी] (५९९) [मूलताल

राम आए ये आए अब तू लै मिलि सिय सुनि रे सठ ।
जिनको यहि भुव-मंड खंड खंडनि प्रचंड जस तिनसौं रे करै कौन हठ ।

[५९७] अरस=आलस्य ।

साधु-मतो क्यौं मानै दुरमति जाको सबै सयान परयौ भठ ।
आनँदघन अद्भुत प्रलाप - झर पजरि भुज्यौ रावन-कठ ॥

केदारो] (६००) [चौताला

फूली सरद - जुन्हाई तैसी मल्लिका बेलि ।
रजित सजित बसननि पहिरैं राधा मोहन जगमगे करत रँगमगी केलि ।
जमुना-तरंगनि अति दुति बाढ़ी चंदकिरनि झिलिमिली झेलि ।
आनँदघन दंपति रस बरसत हुलसि गरैं भुज मेलि ॥

ललित] (६०१) [मूलताल

जुवनौ ऐसैं काम करैं, अपनी अरनि अरैं ।
कित को छैल छबीलो मोहन मेरी डीठि परैं ।
मन मिलि गयौ मिलत अँखियनि ही आई घूमि घरैं ।
अपनो सो बहुतैं समझाऊँ नैंक न धीर धरैं ।
चलत चबाव चाव सुनि लागत क्यौं हित-टेक टरैं ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरैं ॥

भैरो] (६०२) [इकताला चलती

सदा दया दीनबंधु बिनती सुनि लीजैं ।
पतितपावन करुनानिधि बिरद - लाज कीजैं ।
बिधि-अबिधि - बिचार-हीन अति मलीन मन को ।
जड़ता मैं जनम खोइ चेत्यौ नहिं तनकौ ।
तुम से प्रभु तुम ही हौ अपनी ओर देखौ ।
मेरी करतूति कहा लेखैं परेखौ ।
जगतारन पारन हौ मोहूँ पार करियै ।
नाथ को भरोसो भारी अब तौ कर पकरियै ।
असरन के सरनदायक धुर तैं सुनि आयौ ।
यहै बात सुरति राखि सब कछु बिसरायौ ।

६०१-बहुतैं०-बरजत बहुतेरो (सतना)। सुनि०-चित बाढ़त (वही)।

[५९९] भठ=भ्रष्ट। कठ=काष्ट।

चिंतामनि जानिराय कहि कहा जनाऊँ।
बिन माँगे देहु मोहिँ मोहन गुन गाऊँ।
सोएँ हूँ जागत हौ जागैँ ढिग बैठे।
मौन धरैँ बोलत हौ जागैँ ढिगै पैठे।
सकल ठौर सबै समय प्रानसंगी नित के।
आनँदघन जीवनधन दीन जननि हित के॥

राग हमीर] (६०३) [मूलताल

हो हरि हमसौँ बतियाँ कब साँची बोलौगे।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गूँज खोलौगे।
अवधिनि बदि बदि आस बढ़ावत अपनी गौँ इत उत डोलौगे।
आनँदघन पिय बरसि परेखनि छतियाँ ही छोलौगे॥

सोहनी ख्याल] (६०४) [मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैँ होरी।
बहुत दिननि लाजनि भीजी भागनि फागुन है आयौ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानि-कनौँड कौन कौ करिहौँ
करिहौँ रे अब तौ मन भायौ बिधना बान बनायौ॥

टोड़ी] (६०५) [चंपकताल

लालन-आवन त्यौँ ही ननदी बुलावन निपट साँकरो साहौ।
को जानै कब बिधना बनैहै निधरक देखन-लाहौ।
ता छिन की पछितानि मलोलनि दुख तैँ चोट बढ़्यौ दुखदाहौ।
आनँदघन पिय परस दूभरो दरस चटपटी चाहौ॥

गंधार] (६०६) [मूलताल

तारे गनत गनत निसि बितई।
मनभावन-आवन की गैलहिँ हौँ जानति ज्यौँ चितई।

६०४—बान—बनक (सतना), बनाव (वृंदा०)।

[६०४] बान=साज, अवसर। [६०५] साहौ=दरवाजे के पार्श्व भाग के दोनों पत्थर, यहाँ द्वार।

भलैं सखी तू ताहि पत्याई जाकों हित जित तितई।
आनँदघन त्यौं दीठि विचारी भरि भरि आँखिन रितई॥

ऐमनि] (६०७) [इकताला

व्रजमोहन जू निपट चिन्हानी प्रीति किधौं काहून ही पैन।
हर तें निकसि जाहु कें आवौ कहा लगाए रहौ ओंसेर।
चातक नहीं छांह छुवैंवे को घर घर माँगि रहौ है गैर।
सुनि सुनि हियो सिहात साँवरे चित चढ़ि गयौ गोहा के गैर॥

सारंग] (६०८) [इकताला

व्रजरानी पठई संवारि बहुत विधि अपने लड़ैते लला कों छाक।
भूखभरयौ चढ़ि रूख चौंप सों लागि रह्यौ मधुमंगल ताक।
लै आई छकिहारी चाइनि वदन देखि ठगी हगनि थाक।
आनँदघन व्रजजीवन जैंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि-टाक॥

काफी] (६०९) [मूलताल

सब गोकुल-गैल-गरधारैं डोरी माँचि रही।
व्रजमोहन मातो डोलैं, अब बचिहै दुरि कहि को लै।
घरघर तव ताक लगावैं, फिरि ऐसो औसर पावैं।
साँवल छवि सहजै ठगोरी, मन हरकि लगावै डोरी।
छलछंद सुघातनि ठानै, हथचलई कौन बखानै।
या वगर भमेल मचावै, अठपहरा ऊधम भावैं।
मोसों मन ही मन बीध्यौ, फागुन मिस गों गहि गीध्यौ।
कैसें कै वासों बचियै, यह फागु मची सो मचियै।
वहि अति ही आतुर पाऊँ, अपनो सो लै ठहराऊँ।
मन मेरोऊ रिझवारै, चपरै पै को निरवारै।
को लौं गहि याकों रोकों, सुनि सजनी बूझति तोकों।
मन नैन बस्यो वह जैसें, हा हा कहि तू ही तैसें।
वह सबको हियो घुमावै, रीझनि सों भीजि भिजावैं।

[६०८] छाक=कलेवा। मधु०=एक सखा। छकिहारी=छाक ले जाने-वाली। टाक=पलाश।

अंतर बाहिर खुलि खेलै, भोवै भरि नेह फुलेलै ।
यासौं कहि क्यौं नहिं रचियै, लाजहि लै कौ लौं सचियै ।
होरी को लाहौ लैहौं, फगुवा लै गुलचा दैहौं ।
आनँदघन भले भिजैहौं, रीझनि भरि भेंटि खिजैहौं ॥

टोड़ी] (६१०) [चौताल

जब जब निकसत मोहन द्वार, मेरैं लै आवत पहुँचाइ देत नैन ।
बगर बुहारथोई करत डीठि-कर कहे न परत ये चोंप चाव चैन ।
दूरथौ तैं समीप को सुख लेत फिरि क्यौं अलग ह्वै लगत मोहि दुखदैन ।
इकटक चितवत चितवत रितवत उघरि घमँडि आनँदघन रसलैन ॥

देवगिरी] (६११) [मूलताल

बनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरजन-डरनि कहा घर घिरिहौं ।
ब्रजमोहन सौं सनमुख ह्वै ह्वै भावभरी भटभेरनि भिरिहौं ।
अब तौ ऐसियै जिय आई प्रीतम के पन तैं क्यौं फिरिहौं ।
आनँदघन पिय की औसेरनि कौ लौं इन अँसुवन झर झिरिहौं ॥

राग विभास] (६१२) [इकताला

खेलि कितहूँ आए हौ हरि होरी सी मनमानि ये नई ।
निसि की जगनि गुलाल-भरे दृग खरकनि मोहिं भई ।
सौंधो रच्यौ भई नकवानी तुम भिजए हौ सूखि गई ।
नखछत खुले छबीली छतियाँ मो हिय हाय हई ।
फगुवा ताहि मोहिं चकचोंढ़ौ यह रसरीति ठई ।
आनँदघन इन कित झूमत हौ सरकौ नैक दई ॥

रामकली] (६१३) [चरचरी

कहा मेरे गौंहन लागे हौ देत नहीं छिन चैन ।
तुम अति आतुर डोलत हौ इत मैन महा दुखदैन ।
न्योंज लगौ यह लाज निगोड़ी देखन कौं तरसत हैं नैन ।
आनँदघन अब उबरि नचौंगी और उपाव बनै न ॥

[६११] फिरिहौं=विमुख होऊँगी । [६१२] चकचोंढ़ौ=चकचौंध । सरकौ=हटो, दूर होओ ।

केदारो] (६१४) [चंपक

संग लगाएँई डोलैं मुरली के जो रति ।
कहा करैं बपुरीं ब्रज-अबला गरब-गाँठि गहि खोलैं ।
धुनि सुनि औरैं ह्वाति थिर चर गति भोरि बिचारिनि की मति कोलैं ।
आनँदघन हूँ रीझनि भिजए क्यौं न बड़े बोल बोलैं ॥

रामकली] (६१५) [चौताला आड़

अब लैं राखियैं ब्रज माहिं ।
स्यामसुंदर सुंदर सुहृद सुनि बलि बिलम करियै नाहिं ।
बेलि ता द्रुम वे सरोवर निरखि नैन निराहिं ।
गोपी गोप खरिक गोधन देखि सब दुख जाहिं ।
दूध दधि माखन सुगोरस पोष प्रान अघाहिं ।
बहुत दिन के दूबरे ये कहाँ लौं बिललाहिं ।
चैन ही की चुहल चहुँ घाँ रावरे गुन गाहिं ।
मोदघन बरसत सदाई इत अधिक अकुलाहिं ॥

सारंग] (६१६) [इकताला

जब सुधि आवत जमुना - तीर ।
चलति सलति काती लौं छाती दुसह दुहेली पीर ।
राधा-बिरह - बेदना - व्याकुल जितहि कूकतो जाय ।
तेई तहाँ मिलाय ताहि तब करते हाय सहाय ।
गायनि जल देते सुख लेते मुरली मधुर बजाय ।
कहियै कहा अधम गति ऊधो परे कहाँ सब आय ।
कब धौं फिरि ह्वैहै वैसो दिन चित चूरत है चाय ।
बिष सो लगत राजसुख इत को हित आनँदघन छाय ॥

पंचम] (६१७) [झपताल

गोपी गुपाल मिलि खेलत सरस फागु गोकुल
सुगाँव ग्वैंड़े गरबारैं निकसि ।

[६१४] कोलैं=काढ़ लेती है । [६१५] मोद०=आनंदघन ।

कछु कहि न परति अति उमँग मन दृगनि की चौंप
चुहल जु अनुपम रूप ब्रज रह्यौ
एक मोहनहि अगनित तरुनि तकति प्रथमहि डी
अँकवारि मैं भरति
छैल खिलवार दच्छिन सुलच्छन भरथौ सवनि त
सनमुख होत हौंसनि
बहुरि झुरमट मचनि रचनि चाँचरनि को चल
चौंकनि झमकि झिझकनि
खेल के रंग नित रंग-बढ़वार अति कोटिक मनोज-र
ओज दुरि दवत
कचनि की फैल डहडहे वदन रँगमगे बहुल निसि व
प्रगटत निकरि सरव
जोति की जगनि जगमगनि जानत नैन गौर साँव
ओप संगम परथौ
धूँधरि गुलाल की निपट चढ़ि वढ़ि गई रसनि रँग
फैली चहूँ दिसनि
अंग परिमलनि मिलि विविध सौंधे ढरकि पवन
गवन उरझत जिहिं सुवार
गारि गावैं कुल कला-कौतुकनि ढोल की ढनक ड
गरज स्रवननि
पिचकरनि छुटनि बहुरंग रस की लुटनि पुहप-गेंद
डटनि चुटनि ले दा
औसर अनूप को रूप कहत न बनै अद्भुत विनोद वा
थकित गुनि
रीझ भींजे रहत सदाय सुख लहत लाल ललना लि
आनँदघन

बंदनीय विभु विग्यान - प्रकासक विकासक सुहृद हृदय
विमल कमल - माल।
आनँदघन उर-उदयाचल मैं अब उवजैं हरि अनुराग अमोल लाल ॥

भैरो] (६१९) [झपताल

हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण हा हा ।
दीजियै मोहि निज दरस को लाहा ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण कैसैं ।
मुकट बनमाल मुरली धरे जैसैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आछैं ।
राधिका सनमुखे छैल तन काछैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण प्यारे ।
सुघर सुंदर सरस रूप - उजियारे ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हरौ हिय - पीरैं ।
धीर गति बिन लखैं क्यौं धरौं धीरैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आवौ ।
मधुर मूरति दिखै आँखिन सिरावौ ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण क्यौं जू ।
आस लाग्यौ जियौं ताकि तुम त्यौं जू ।
हा कृष्ण हा कृष्ण व्याकुल महा हौं ।
जानमनि रावरे बरनौं कहा हौं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण कोमल हियो है ।
दीन पै ऐसो कठिन क्यौं कियो है ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सुनियै पुकारैं ।
जीवन - अधार हौ लागौ गुहारैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण बिरहा सतावै ।
दरस - रस बरसियै महा तन तावै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सकल सुखस्वामी ।

६१८—दिवाकर—दिव्य रूप (सतना) । विमल-कमला (वही) ।

नाम की लाज है कृपानिधि नामी।
हा कृष्ण हा कृष्ण आसा तिहारी।
गिरिधर सुहृद सुखद सुंदर विहारी।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण गाऊँ।
आनँदघन प्रान - चातक जिवाऊँ॥

हमीर] (६२०) [चंपक

कहियै कहा हरि हिय की आरति जु कछू बढ़ी राधे ताकि तोहि।
रूपनवेली निहारि लेहि नैक जिन अँखियनि आई बनहि जोहि।
जब मिलिहै तब करिहै कहा धौं कबहूँ वह घरी मिलिहै मोहि।
आनँदघन अभिलाप सजल दृग हा हा कहि पठई टोहि॥

विभास] (६२१) [इकताला

परख्यौ करत मुहर लौं मिहरियनि खोटौ खरौ महर को कन्हैया।
ताहू मैं फिरि होरी माची अब कैसैं बचियैगी दैया।
चौचँद की चाचरैं मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघनहि कहूँ जौ भिजवै बजै फागु मैं बीथि बधैया॥

गंधार ख्याल] (६२२) [मूलताल

व्रजमोहन प्यारे आइयै आइयै।
अजू तुम अजू तुम भले बने हौ और दिननि तैं
उजियारे छवि-मतवारे।
जावक-तिलक छुटी अलक उनींदे नैना घूम घुमारे,
आनँदघन घूम घुमारे॥

टोड़ी] (६२३) [चंपक

कहा मन मिलाएँ होत अनमिल सौं जाको सहज
चंचल परयौ है सुभाइ।
दिन दस गौं लगि लाहौ लेत बपुरी अबलानि भुराइ।

६२१–मुहर–महर (सतना)। बजै–बनै (लंदन)।

[६२१] बजै० = फाग में मिलकर बधाई बजने लगे। खूब बदनामी हो।

करत फिरत बिसास बधुवनि के ब्रजमोहन कहूँ मोहीं न ढाउ ।
कहूँ उघरि कहूँ घमँड आनँदघन रचत नए नए दाउ ॥

घनासिरी] (६७४) [एकताला

. क्यौं नकवानी करत हौ अनमिलें होरी खेलौ ।
बेसम्हार कित करत मोहि इत उत भावती भरि भुजनि सकेलौ ।
रजनी-रँग-भीजे तुम आए हरद रंग सो अंगनि रेलौ ।
सौंहैं न होत गुलाल-भरे दृग खरकनि सो पुतरिन गहि मेलौ ।
नखछत-खुलनि पीर मनियत है अचरज झकझोरनि रस झेलौ ।
आनँदघन पिय नए खिलारी झूमि झूमि छल-चलनि झमेलौ ॥

रामकली] (६७५) [चरचरी

सलोने सोहन प्यारे ब्रजमोहन उज्यारे ।
स्याम नवल नेही रसिक अँखियन तारे ।
रैनि-जगे भले लगे नैन घुमारे रँगमगे डगमगे पधारे, छवि-मतवारे ।
जावक-तिलक बिथुरीं अलक सरस सँवारे ।
आनँदघन उनै उनै भाग उघारे ॥

आसावरी] (६७६) [मूलताल

साडे रा हाल न बुझदा है गुज्झी गल्लाँ केनूं आखि सुनावाँ ।
ब्रजमोहन दी बेपरवाहियाँ महरम किसे भी न पावाँ ।
दरद दिवानियाँ खरी निमानियाँ कोवाँ दिल परचावाँ ।
आनँदघन बेमिहराँ दी हाँसी असी वो रो रो झड़ लावाँ ॥

कनरी] (६७७) [मूलताल

मुरली बन मैं बाजै है ।
धुनि सुनि रह्यौ न परत घर ननदी को करै काजै है ।
थाकी गति मति चलै ठौर तैं धीरज भाजै है ।
आनँदघन मोहन-मुख लागी क्यौं नहि गाजै है ॥

(६७८)

गोपीनायक गोपीवल्लभ गोपीजीवन गोपीप्रान ।
गोपीकिंकर गोपीमोहन गोपीमंडन गोपीमान ।

गोपी-सरवस गोपी-मंगल गोपी-मंडल-केलि-निधान ।
गोपीनागर रति-सुख-सागर गोपी आनँदघन रसदान ॥

टोड़ी] (६२९) [चौताला

आगम रितुराज के रतिराज - रंग तेरे अंगनि झलक्यौ ।
रोमराजी पर अति छबि राजी हियरा हुलासनि ललक्यौ ।
मुख की ऊठ औरई कछु अंतर को रस बाहिर छलक्यौ ।
आनँदघन जीवनधनि सुनि राधे सौतिन को मद दलक्यौ ॥

भैरव] (६३०) [यात्राताल

आए हौ जू आए हौ मेरे मन भाए हौ ।
स्याम उज्यारे अँखियनि तारे भागनि जागि जगाए हौ ।
या छबि पर न्यौछावरि छिन छिन प्राननि के धन पाए हौ ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे नखसिख रंगनि छाए हौ ॥

आसावरी] (६३१) [चौताला

चौंपनि धुरि बरसै महादानी नंदराय ।
सरस बरस - गाँठ ब्रजमोहन की फूल्यौ अंग न समाय ।
सबकौं सब कछु भरि देत अघाय ।
मैया को उछाह कहा कहियै लला को सिँगारति लेति बलाय ।
हँसनि हुलसि चौक चाँदनी रचि लै बैठारति बहु धन
बारति मंगल गीत गवाय ।
जोवौ कोरि बरीस असीसत द्विज बंदीजन बोलत बिरुदाय ।
गोकुल परम कुलाहल को ध्वनि जित तित सुनियति
आनदघन रह्यौ छाय ॥

ऐमनि] (६३२) [यात्राताल

साँवरे ब्रजमोहन मोही रह्यौ न परत मोहन मूरति
देखे बिन घरी पल हेली ।
कहा करौं कैसैं मन समझाऊँ व्याकुल जियरा धीर न
धरत लागियै रहति तबेली ।

[६२९] रतिराज=काम । रोम०=रोमावली । ऊठ=दीप्ति ।

सुधि बुधि बेनु बजाय हरी सब परी रहति घर परबस
कासौं कहौं यह दसा दुहेली ।
आनँदघन हँसि चितवति कौंधनि प्रानपपीहनि सींस
ठगौरी है मेली ॥

टोड़ी] (६३३) [इकताल

डोल की झुलनि मैं बिराजैं झुलनि हार-बारनि की मोतिन
सिंगार अपार ओप लसैं गोरे सांवरे अंग ।
अतुल रूप-जोबन की तुलनि मैं झलकत नए नए रंग ।
सरस फाग खेलि खेलि झेलि सकल सुख रीझे भीजे रुचि-तरंग ।
जमुना-तीर कुसुमित वृंदावन नित नित ही आनँदघन
बरसत सखि-समाज लिये संग ॥

टोड़ी] (६३४) [चौताला

जा पैं तुम अपने ढार ढरौ हौ कान्ह प्यारे
ताहि चाहौ सु करौ ।
रोकि रहत मन नैन गैल छैल छतियाँ आनि अरौ ।
सोवत जागत कछु न न्यौरि परैं मोहन गुन लै सुभर भरौ ।
इतने पैं आनँदघन पिय उनए उघरे नहिं जानि परौ
पराए मरम हरौ ॥

केदारो] (६३५) [चौताला

बूँदैं थोरी थोरी थोरी बहुत नीकी लागैं ।
नवजोबन-मदमाते दंपति सरस परस-रस पागैं ।
गरबाहीं दियैं झूलत फूलत मुक्ताभरन तिलौनियाँ बागैं ।
आनँदघन अभिलाषनि घमँडे मधुर मधुर सुर रागैं ॥

सारंग] (६३६) [इकताला

जब तैं मन स्याम को धाम भयौ ।
लोकलाज-बस त्रास को सब ही सोच गयौ ।

[६३२] तबेली=तालाबेली, छटपटाहट । [६३५] तिलौनियाँ=
सुगंधित । बागैं=जामा ।

देखतहीँ ब्रजमोहन - मूरति रंग - तरंग - रयौ ।
डीठि मिले घुरि मिल्यौ दूरि तैँ संगम - स्वाद लयौ ।
अब कछु कहि न परति गति याकी छिन छिन उमँग-छयौ ।
उनयौ रहत सरस आनँदघन नित ही चाव नयौ ॥

अलहिया बिलावल] (६३७) [इकताला

नित बिहार बृंदाबन राधा-मोहन करत रहैँ ।
सहज रँगीले छैल छबीले हित - चित - लाह लहैँ ।
नित ब्रज नित ब्यवहार नित नए तन मन पननि वहैँ ।
नित ही हित झूमैँ आनँदघन जमुना - तीर गहैँ ॥

कनरौ] (६३८) [मूल

साँवलिया मेरे मन को लागू नित इत आवै ।
चितवनि चाँप जनावै भावै बंसी - टेर सुनावै ।
रीझ-लाज-बरबस यह जियरा कल नहीँ पलकौ पावै ।
हित चित की झूमनि आनँदघन को लौँ कोउ दुरावै ॥

केदारो] (६३९) [मूल

फूली जोन्ह सुहाई मधुरितु की बनमाली बिहरत रास ।
मधुर मालती के सिंगार सजि पहिरि बिसद बस-बास ।
साँवल गौर अनूप रूप गुन मोहन गति भोहन बिलास ।
आनँदघन मुरली-धुनि घमँडनि ताननि झर अनयास ॥

बिभास] (६४०) [चौताला

अचानक मूँदी री अँखियाँ ओटपाई अछन
अछन पाछे है आय ।
हौं जमुना के तीर इकौसैं न्हाय बसन पलटाय सुखावति.
केस कहाँ तैं बैरी तकत हो दाय ।
जौ कोऊ कहूँ देखि पावतो तौ कहा करती हाय ।
आनंदघन अनचाहनि उनयौंहैं देखियैं इन बातनि ज्यौं अनखाय ॥

६३६—बस-बस (मनना) । ६४०—हाम मोहन (वही) ।

[६३८] लागू = प्रेमी । [६३९] बस = सुवासित ।

प्रेमनि] (६४१) [धामाताल

मोहन सौं नैना लागे चितवत रहत चकित इत
उतहीं निसिदिन इकटक टेक गही है।
इनकी पीर न पावै कोऊ अंजन-रंजन एक वही है।
आनँदघन हित सरसत वरसत लोकलाज कुलकानि वही है॥

रामकली] (६४२) [मूलताल

इतनी माँगौं हौं हरि हाहा ज्यौं मन फिरै रावरे पाइनि।
छिन बिछोह जिनि होहु मोह बाढ़ौ अति गाढ़ौ बिनती करत हौं चाइनि।
सुहृद स्याम नटनायक मोहन गोहन लेहु लगाय सुभाइनि।
आनँदघन हौ सुरस सरस करौ तन्यौं तलफ के ताइनि॥

कानरा] (६४३) [चौताल

रविकुल-मंडन खलखंडन राम प्रवल वलधाम प्रगट भए।
हित-चितकनि महा-मनवंछित को फल विधना आजु दए।
जननी-जनक-सुकृत कहा वरनौं सुखनि परे दुख दूरि गये।
अवधि पुरी आनँदघन उनयौ सुरसमूह दुंदुभी वजावत हरषत
वरषत पुहुप नए॥

सुघाग] (६४४) [चंपक

कौन के ज्यौ पै कटाछ पैनाए।
काजर विन ही करत है घाइल फिरि लै सान चढ़ाए।
सूधे सहज हीं सालत ये इते पर बंक बनाए।
जानति हौं आनंदघन पिय त्यौं तानि तानि वरसाए॥

तथा] (६४५)

यह मेह मोही पै वरसैहौ।
रसभीजी चितवनि चिताइ चाहि चौंप-चटक सरसैहौ।
मन अँखियनि गति कहा कहौं जब मोहन मुख दरसैहौ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं कौ लौं जिय तरसैहौ॥

६४३–चितकनि–चातकनि (सतना)।

देवगिरी] (६४६) [मूलताल

कैसैं मिलन बनै गोपी को।
रातिद्यौस सोचन ही मरियै क्यौं हूँ दुख न दवत या ही को।
स्याम-रूप रीझीं ये अँखियाँ और कछू लागत नहिं नीको।
चातक-रट लागी सुनि सजनी आनँदघन जीवन है जी को॥

टोड़ी] (६४७) [मूलताल

बेगि लै आव री लालबिहारी प्रानपिया कौं।
कलमलात उनके देखन कौं राखि लै बिकल जिया कौं।
हितू जानि कै तोसौं कहति हौं चेरी मानि आधीन तिया कौं।
आनँदघनहि मिलै सियरौ करि बिरहा-बरत हिया कौं॥

तथा] (६४८)

आवीं ओ तू आवीं जान मँडरी गलियाँ।
ब्रजमोहन तैंडे दरस पियासियाँ पैंडरा उडीकाँ खलियाँ॥

कानरो बागेसुरी] (६४९) [चंपक

अहो प्यारे हम सौं प्रीति करि करि अति चाड़नि
काहे कौं अंतर-पट राख्यौ।
कपटनि की यह रीति सदा की कहूँ न साँच रस चाख्यौ।
भँवर-भाव जित नित डोलत हौ छिन छिन नयौ
सवाद अभिलाख्यौ।
आनँदघन कहूँ घमँड कहूँ उघर यह दुख परत न भाख्यौ॥

गौरी] (६५०) [चंपक

ललन न आए अबार भई।
सो बिरहिनि कों सुरति नवीनी कहूँ नई पहिचानि ठई।
दिन चारक नें निपट निठुर भए पहिली चिन्हारि बिसारि दई।
अब ऐसी जिय आवनि आनँदघन पिय सौं करिहौं उघरि रई॥

[६४८] पैंडरा०=मार्ग में खड़ी प्रतीक्षा कर रही हूँ। [६४९] चाड़=उमंग। [६५०] ठई=[illegible]।

[चरचरी

(६५१)

हिंडोल]
आजु मोहि तुम्हें बन्यौ खेल सरस बसंत को ।
भागनि फागुन के आगम मनभायौ औसर आयौ मिलि कामिनि कामिनि-कंत को ।
गहिरे रंगनि भीजि भिजैहौं लैहौं सुख गुन-रूपवंत को ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे बरसैगौ रस परम तंत को ॥

[इकताला

(६५२)

विभास]
राधा मोहन छैल छबीली बनक सौं दोऊ मदमाते होरी के ।
फागुन ओट उघरि आए गुन - हित चोराचोरी के ।
सरस खिलार चौंप भरि खेलत रूप बैस जोरी के ।
आनँदघन बरसत रस-रंगनि झकझोरा - झोरी के ॥

[जात्राताल

(६५३)

रामकली]
राधा - रंग - विलासी, कान्ह ।
गोकुलजीवन प्रान - छबीलो गिरि - गोवरधन - वासी ।
जमुना - तीर - विहारी मोहन कुंज - कुटीर - निवासी ।
आनँदघन ब्रजमंडल - मंडन बट - संकेत - उपासी ॥

[चंपकताल

(६५४)

रामकली]
कान्ह की बँसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग ।
ब्रजमोहन याके रँग राचे नित ही नयो अनुराग ।
बस कै रस दै लै अधरासव मन मान्यौ फगुवा सुहाग ।
आनँदघन पिय भिजए रिझए धनि धनि याको भाग ॥

(६५५)

तथा]
मुरली गुपाल की बन बाजै ।
आछी ताननि सौं रस भीजि रिझवति भिजवति लाजै ।
याकी धुनि सुनि सब सुधि बिसरै कौन करै गृहकाजै ।
आनँदघन पिय प्रेमपन - पगी याहि सबै कछु छाजै ।

[६५१] तंत=तत्त्व । [६५३] उपासी=उपासक ।

मोहन-अधर महा मादक रस पीवति क्यौं नहिं गाजै ।
याको भाग कहत नहिं आवै हरि-कर-कमलनि राजै ॥

राग बिहागरो | (६५६) [जातताल

घोप-नृपति नंदसदन बजति है बधाई ।
प्रगट्यौ कुलमंडन व्रजमोहन सुखदाई ।
गहगह सौं सुनियत धुनि लगति अति सुहाई ।
ढोल - ढनक झाँझ - झनक गोमुख सहनाई ।
नरनारी नाचति मिलि आनँद अधिकाई ।
बोलत हैं बंदीजन बिरुद की बड़ाई ।
हरद दही भींजि रहे फागु सी मचाई ।
दूध माखन गोरस की सरिता उमगाई ।
धर अंबर औरै कछु सोभा सरसाई ।
पवन परम प्रानिनि कौं बहुत विधि सहाई ।
गहमह अति माचि रही भई सबनि भाई ।
घरघर व्रजमंडल मैं मंगलनिधि आई ।
कहि न परति जसुमति के भाग की निकाई ।
कुलचंद उदै भयौ कूख सुख - सिराई ।
सफल भयौ व्रज सुबास बिधना आस पुजाई ।
अवसर कौ फूल फैल चहूँ ओर पाई ।
देखत सुर बनिता मिलि पुहुप - झरी लाई ।
थिर चर कै मोह बढ़यौ हित की अगराई ।
व्रजपति के मन की उमग अति उदारताई ।
धेनु धन अनेक दियौ कीरति जग गाई ।
जसुदा को ललित ललन चिर जियौ कन्हाई ।
आनदघन व्रजजीवन चिलमौ ठकुराई ॥

बिलावल | (६५७) [मूलताल

नंद तिहारो लाल जियौ, हो ।
बड़ो चैन बड़भागनि बिधना ऐसो पूत दियौ ।

[६५६] गोमुख=नरसिंहा ।

ब्रजरानी की कूख सिरानी ब्रज सब सफल कियौ।
भयौ हमारे मन कौ चीत्यौ हुलस्यौ सजन हियौ।
बहुत भाँति याके सुख देखौ तुमसौं कौन बियौ।
उनैं उनैं बरसौ आनँदघन खेलौ खाहु पियौ॥

सारंग]　　　　(६५८)　　　　[मूल

बधावनो नंद के भवन भयौ।
ब्रजमोहन सो पूत बुढ़ापैं बिधना याहि दयौ।
जसुमति रानी कूख सिरानी नित हित-लाड़ नयौ।
यह सुख-सोभा सरसौ बरसौ आनंदघन उनयौ॥

जैतश्री]　　　　(६५९)　　　　[मूलताल

वृषभान-भवन में मंगल की निधि है, हो।
कीरति-कूख-मँजूष प्रगट भई सुख-सोभा-सिधि-है हो।
इनको भाग कहा कहि बानौं कछुक कह्यौ बिधि है हो।
आनँदघन रावलि हित घमँड्यौ सरसत रस-रिधि है हो॥

ऐमनि]　　　　(६६०)　　　　[मूल

लाड़ली राधा की सरस बधाई गाऊँ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठी भास मल्हाऊँ।
भागभरी के भाव चाव सौं नित सोहिले मनाऊँ।
आनँदघन रस बरस दरस हित याही आँगन छाऊँ
यह न्यौछावरि हौं हीं पाऊँ॥

बिभास]　　　　(६६१)　　　　[इकताला

कीरति भई जगत-उजियारी भागभरी राधा के जाएँ।
भाग-उदै वृषभानु पिता को जग जान्यौ मंगलमनि आएँ।
औरै ओप बढ़ी ब्रजमंडल नरनारी रँगमगे बधाएँ।

६५७—याके०—के सुख देख्यौ (सतना)। खाहु—खाँह (वही)। ६५९—मँजूष—तूखि (सतना), मयूष (वृंदा०)। रिधि—निधि (वही)।

[६५७] ब्रैस=वयस, उम्र। बियौ=दूसरा। [६५९] रिधि=ऋद्धि, समृद्धि। [६६०] भास=वाणी।

नंद जसोदा अति ही फूले सुत - सनेह अंतर सरसाएँ ।
गोकुल रावलि की हित - संपति कैसैं आवति वरनि वताएँ ।
नित नित सुख सोहिले दुहुँ घर आनँदघन भीजे गुन गाएँ ॥

सारंग] (६६२) [चंपक

घरघलू बँसुरिया कौं कोऊ हटकै ।
बैठी रहन न देति घरी घर गोंहन परी है निपट कै ।
धुनि सुनि बिसरि जात सुधि सबई प्रान तान-गुन उतहीं अटकै ।
लाज रीझ आनँदघन घमँडनि तन परवस मन भटकै वन
बनवारी-त्यौं लटकै ॥

देसी] (६६३) [चौताला

आजु मेरैं आए मया करि मोहन अतिहीं रति-रस-पागे ।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक झपकि झपकि निसि जागे ।
बैठौ जू हौं बिजन दुराऊँ स्रमजल सुखऊँ स्याम सभागे ।
आनँदघन अलकनि धुरवा छूटे मोहिं निपट नीके लागे ॥

राग जयत] (६६४) [चंपक ताल

घूमरे नैंन सहजहीं रावरे इते पै सब निसि जागि आए हौ ।
बार बार झपि जात जम्हात लगत नीके ताकी चौंपनि झुकन न पाए हौ ।
कैसैं कैसैं छूटे छबीले रस निचोरि सराबोर पठाए हौ ।
आनदघन पिय बैठौ मया करि बरसि बरसि छाए हौ ॥

राग केदारो] (६६५) [झपताल

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नवमी उज्यारी ;
दसरथ-निकेत जन्म-मंगल-उपेत वपु अतुल-बल-विक्रम-विनोदकारी ।
सानुज मकुंद निज जनवृंद सुखकंद रविकुल - प्रकासक प्रतापधारी ।
करुनानिधान कीरति बिमल गंभीर धीर वरवीर भूभारहारी ।

६६५—उ० १०—उधा, तब पुन 'गृ०'०) । मकुंद—मुकुंद (पाठा) ।

[६६२] घरघ०=घर बिगाड़नेवाली । [६६४] घूमरे=नशीले । झुकना=
झुकना, अर्थात आराम करके, सोने का अवसर नहीं मिला ।

मंडित अखंड धुनि मंगल सकल पुरी औसर अभूत सुपमा निहारी ।
जयति कौसल्याकुमार आनंदघन अवधमंडन सनातन बिहारी ॥

सारंग] (६६६) [मूलताल

मोहन मुरली मैं धुनि पूरैं सुर की चोखनि सों चित चूरैं ।
सुनि ज्यौं ही जानैं जैसैं यह परवस परयौ बिसूरैं ।
सुख उजास औंहनि बिलास गति मति मोहै मन मैन-मसूरैं ।
आनँदघन घर बैठैं ऊँ भिजवैं क्यों राखौं री लोकलाज
कुलकान्यौ गरब-गरूरैं ॥

धनासिरी] (६६७) [मूल

होली खेलन दै री ननदिया ।
कान्ह गरथारैं ऊधम पारयौ सह्यौ न परत मोपै री ।
जु कछु कहैगी सोई करौंगी फागुन मैं जस लै री ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझाऊँ आजु यहै पन है री ॥

सारंग] (६६८) [मूलताल

गोकुल बधाई माई बगर बगर, प्रेम-चुहल माचो डगर डगर ।
व्रज को चंद नंद-घर प्रगट्यौ चहुँ दिसि होति ज्योति जगर जगर ।
सोभासदन बदन मोहन को देखि जो जियैं टगर टगर ।
जसुमति-भाग धन्य आनँदघन जस-बितान छायो नगर नगर ॥

भैरव] (६६९) [मूलताल

चलौ री बँधाएँ नंद कैं अति आनंद ।
मंगल गावैं नैन सिरावैं भाग सफल करि लेखैं देखैं मोहन व्रज को चंद ॥

कानरौ] (६७०) [इकताला

कहा कहौं जसुदा मन को मोद ।
मोहन-मुख निहारि जो बाढ्यौ लै बैठी भरि गोद ।
अँगुरी अधर परसि दुलरावति गावति बालबिनोद ।
आनँदघन रस बरसि बहायौ जनम जनम को तोद ॥

६७०–दुलरावति–हलरावति (सतना)।

[६६५] सछंद=सपरिकर । [६६८] टगर०=ध्यान देकर देखना ।
[६७०] तोद=दुख ।

गौड़] (६७१) [इकताला

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई बोलत मधुर
पिक चातक और माते मुरवा ।
स्याम घन मैं चपला-चमकनि चहूँ ओर छूटे छबीले धुरवा ।
चलि राधे वृंदावन बिहरन औसर बन्यौ है मनोरथ-पुरवा ।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि
बुलावत लै रीझनि भीजे सुरवा ॥

ऐमनि] (६७२) [मूल

राधा-मोहन को सुख सोचौ ताहि गाय गाय जीजै ।
व्रज वृंदावन बसत रसत अपने चायनि भायनि नितबिहार मैं मन दीजै ।
परम प्रेम को सिंधु अमित अति तिनहीं को हित बोहित कीजै ।
आनँदघन रसरासि पाय कै क्यौं जग - छीलर छीजै ॥

ऐमनि] (६७३) [मूल

रंग रह्यो है निपट ही लाल सौं होरी खेली ।
चौंपनि रची रहस रुचि-चाँचरि जोवन-रूप-नवेली ।
बस करि लियौ भावतो फगुवा अंगनि अति रति-रंगनि झेली ।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस की रासि सकेली ॥

टोड़ी] (६७४) [इकताला

मेरे मन नैननि के भाए, राधामोहन छैल सुहाए ।
होरी-खेल के बसन बनाए, अंग उमंग रंग सरसाए ।
नीके लगत कहा ए, चौंपनि रचि रुचि-राग जमाए ।
परम अनूप रूप दरसाए, मादक धुनि मति-प्रान छकाए ।
जमुनातीर आनँदघन छाए, सरस विलास पुंज बरसाए,
ऐसेई लखौं सदा ए ॥

तथा] (६७५)

मोहि तुम ही तुम दीसत हौ, स्याम उजियारे नैननि के तारे ।
इतने पै जौ न दीसौ तौ प्रान परेखनि पीसत हौ ।

[६७१] पुरवा=पूर्ण करनेवाला । [६७२] छीलर=तलैया । छीजै=छूऊँ ।

तुमहीं जु दीसि परी सोई देखौ पनहिं न खीसत हौ ।
आनँदघन पिय न्यौति पपीहनि प्यास परोसत हौ ॥

विभास] (६७६) [चौताला

भुज भरि भरि गाढ़ैं लगाई री सु तू छतियाँ प्यारैं ।
आनन पियराई धरक हियराई लड़ाई बहुत भंतियाँ प्यारैं ।
पीक कपोल सुहाग छाय जगी लगियैं आवति आखैं
मदमतियाँ प्यारैं ।
अंग अंग ऊठ अनूठी भई आनँदघन धुरि धुरि ढुरि
ढुरि भिजई रिझई सब रतियाँ प्यारैं ॥

बिहागरो] (६७७) [इकताला

भरोसो रावरो हमैं ।
पिय ब्रजचंद कौन धौं टारै तुम बिन ताप-तमैं ।
हौ हरि दुख हरिहौ करि सुख ज्यौं दृग रूप रमैं ।
आनँद-अमी-बरस सुदरस दै सींच्यौ स्याम समैं ॥

कानरो] (६७८) [इकताला

आवन दै होरी धोरी रहि ।
कहा नचावति मोहन अबगरी लैहौं दाव भावतो गहि ।
बहुत रही बचि रचिहै तब जब कोऊ कछु सकत नहिं कहि ।
आनँदघन धुरि भलै भिजैहौं अब तौ रहत मसोसनि सहि ॥

सुद्ध बिलावल] (६७९) [ताल गीत

नंदनंदन-चरन चुंबन करि भलैं मन मेरे ।
सदा बृंदावन-बिलासी तरनिजा-तट नेरे ।
राधिका संग रासमंडन ज्योति-मंडल घेरे ।
मोद परम पयोद चातक प्रानजीवन हेरे ॥

[६७५] खीसत=नष्ट करते हो । परीसत=परोसते हो । [६७६] लड़ाई=प्यार की हुई । ऊठ=छटा । [६७८] अबगरी=बुद्धिमती ।

पूर्वी] (६८०) [चंपक

मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखे बिन न रहति ।
सब मिलि देति बहुत विधि सिख सखी ये अमैंड तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भीजि रीझि रहीं औसेरनि जल बहति दहति ॥

(६८१) [आड़ चौताला

ब्रज को बिरह बरनै कौन ।
टरत बिचार बिचारि हिय तैं गहति बानी मौन ।
स्याम बिछुरे कहाँ कैसैं ह्वै रह्यौ सब स्याम ।
बिछुरि मिलि मिलि बिछुरि जीवत मौन टेरत नाम ।
यह सँजोग वियोग व्यापनि बचन क्यौंऽब समाय ।
मन कहाँ या रस - परस को सुनत जड़ ह्वै जाय ।
ते लहैं ढूँढ़ैं तेई सोई सहैं यह घूम ।
हाय ब्रज - ब्यौहार - गति अति मतिहि बितुनति धूम ।
लाल ब्रजमोहन छबीलो रैनिदिन दृग-संग ।
घमँडि घुरि घुरि उघरि बरसत चौंप-चेटक-रंग ।
रमन ब्रजबन गिरि जमुनतट मचि रह्यौ यह खेल ।
भावभर बढ़वार आनँदघन महा रसरेल ॥

धनासिरी] (६८२) [मूलताल

कछु न सुधि परति हिरानी हाय ।
ब्रजमोहन को बिरह सखीरी जा बिध व्यापत आय ।
मेरी कहा रौर ब्रज माची जहाँ जहाँ कान्ह - पुकार ।
आनँदघन झर लग्यौ सदाई देत न नैन उघार ॥

सारंग] (६८३) [इकताला

जमुनातीर की बतियाँ ।
ब्रजमोहन के संग रंग मैं सरद - समै रतियाँ ।

[६८१] घूम=नशा; चक्कर । बितुनति=रेशा रेशा पृथक कर देती है । धूम=तेजी से ।

सरकति नहीं सरक हियरे तें हूक उठति छतियाँ।
आनँदघन पिय प्यासनि टपकति बरुनी बँलतियाँ॥

बिहागरो] (६८४) [इकताला

रंगमहल में ललन बिहारी।
बैठे अति उमंग रति-बाढ़े ढिग तें प्रानपियारी।
सेज-बसनि छवि बसी हिये में लटकि रही उजियारी।
आनँदघन बृंदावन रस-झर जमुन-पुलिन सरसारी॥

टोड़ी] (६८५) [चौताला

उमँडि उमंडि घुमंडि घुमँडि घुरि घुरि ढुरि ढुरि खेलत
राधा-मोहन रस-फागु रवानी।
विकसि विकसि निकसि अपने अपने झुंडनि तें झूमत झुकत
झपटि लपटि बातनि घातनि कहत गहत बनक बनी मनमानी।
मचत रचत पचत बचत नचत लचत घिरत भिरत मोरत
झकझोरत करि ऐंचातानी।
आनँदघन भिजवत रिझवत भंजत रीझत रस लेत देत मन-
मैननि सुखदानी॥

देसी] (६८६) [इकताला

देखौ हो राधा को भाग फाग याही बनि आई है।
ब्रजमोहन ब्रजराज लाड़िलो भीजि रह्यौ याके अनुराग।
पूरयौ करत सदा मुरली में अरु मुखहूँ याही के राग।
यासौं रचि ब्रज सबै रचायौ चटक चढ़यौ पूरन पन-पाग।
याके अंग-रंग की राचनि नखसिख लौं सनि रही सुहाग।
कही न परति याहू के हिय की नित नित निपट नवेलो लाग।
खेलन कौं पायौ मनभायौ सुंदर बृंदावन सो बाग।
हित-चाँचरि धमँडनि आनँदघन नित इत फबी इन्हैं यह फाग॥

धनासिरी] (६८७) [चौताला

रसना गुपाल के गुन उरझी।
बहुत भाँति छलछंद-बंद बकवाद-फंद तें सुरझी।

ब्रजमोहन-रस-चसकैं बीथी हिलग-जाल गसि गुरझी ।
आनँदघन रसपान - चातकी आन-कथा-रुचि मुरझी ॥

टोड़ी] (६८८) [मूलताल

ललित लतानि हिंडोरैं झूलत राधा-मोहन रीझनि भीजे ।
रूप अनूप गौर साँवल मिलि परसत तरसत सरसत बरसत
दरसत पुलक-पसीजे ।
जमुना-तीर कुंज मंजुल मैं अति रति-बाढ़े अधिक अधीजे ।
वृंदावन आनँदघन घमँडनि पूरन - प्रीति - पतीजे ॥

(६८९)

दृगनि मनोरथदायक रथ चढ़ि निकसे मोहन स्याम ।
ब्रजजुवराज विराजित अतिहीं पहिरैं मोतिन - दाम ।
सुरँग लपेटा लेत लपेटैं अलक - पेच परि सोहैं
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि. चाहत ही मन मोहैं ।
केलि - कमल सूँघ्यौ मो घाँ तकि मुमके छैल बिहारी ।
रूपनिकाई निरखि बिकाई हौं हूँ चकित निहारी ।
सुबल सारथी अधिक पियारो बदन-चंद्रमा नीको ।
ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिलौ जीको ।
गोकुल चारु चौहटैं चौंपनि देखनि कौं सब झूमैं ।
मादक रूप छके नरनारी बिबस रीझ-बस घूमैं ।
कौतुक हेत भावतो नागर डोलै अपनैं ·चायनि ।
अगर गरथारैं ग्वैं डुँ या विधि रचत रँगीले दायनि ।
पुहुप - झरा जितहीं तित लागे सबकौं सब विधि भावै ।
जसुदाजीवन नंदलला दिन आनँदघन बरसावै ॥

सकराभरन] (६९०) [इकताला

देख्यौ देख्यौ राधा को वृंदाबन देख्यौ ।
जीवन जनम करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ ।

[६८८] अधीजे=अधैर्य, अधीर । पतीजे=विश्वस्त । [६८९] दाम=माला । सुरँग=लाल । लपेटा=पगड़ी । परि=अधिक । घाँ=ओर । सुबल=एक सखा । जीको=जिसका । दिन=प्रतिदिन ।

जमुना के तट सजल स्यामघन सब दिन सहज सुहायौ ।
दंपति सुख - संपति निज मंदिर हित-मंडप नित छायौ ।
सब तैं ऊँचौ लसत पुहमि पैं दीसत दूरि दुरायौ ।
अमल अखंडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ ।
मोहन महा मदनमोहन को बानक बरनौं कैसैं ।
दरस्यौ बरस्यौ करौ सदाई आनँदघन यह ऐसैं ॥

तथा] (६९१)

सलोने साँवरे हाँ मोही मुरली मधुर बजाय ।
जमुना-जल कौं जाति ही मेरी आँखिनि लाग्यौ आय ।
नैननि मैं ललचानि सौं दियौ मो त्यौं उन मुसिकाय ।
ता छिन की गति क्यौं कहौं मेरो अजहूँ हियो घुमाय ।
देख्योई भावै सखी बिन देखैं ज्यौं अकुलाय ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं सूझो यहै बनाय ॥

सारंग] (६९२) [इकताला

जौ कोऊ बृंदावन बसि जानैं ।
सब कछु तज भजै हरि-राधा मन पूरन पन ठानैं ।
छक्यौ रहै भरि भाव निरंतर करि लीला-रस पानैं ।
रसिक-संग रुचि-रंग रचै नित प्रीति-रीति उर आनैं ।
चकित नैन चाहै द्रुम-बेली दंपति-हित पहिचानैं ।
घूमत फिरै तीर जमुना कैं निधरक ह्वै गुन गानैं ।
आस-रास रज ही मैं राखै स्रम न करै भ्रम भानैं ।
आनँदघन रस भीजि रीझ सौं जनम-सफलता मानैं ॥

बिहागरौ] (६९३) [मूलताल

मेरो मन मोहन मान्यौ है ।
देख्यौ करौं साँवरी मूरति यह पन ठान्यौ है ।
मुरली तान-बान हिय बेध्यौ कसि करि तान्यौ है ।
रीझनि बसँडि रह्यौ आनँदघन मैं हूँ जान्यौ है ॥

[६९१] घुमाय=चक्कर खा रहा है । बनाय=भली भाँति ।

ब्रजमोहन-रस-चसकैँ वीथी हिलग-जाल गसि गुरझी ।
आनँदघन रसपान - चातकी आन-कथा-रुचि मुरझी ॥

टोड़ी] (६८८) [मूलताल

ललित लतानि हिडोरैँ झूलत राधा-मोहन रीझनि भीजे ।
रूप अनूप गोर साँवल मिलि परसत तरसत सरसत बरसत
दरसत पुलक-पसीजे ।
जमुना-तीर कुंज मंजुल मैँ अति रति-बाढ़े अधिक अधीजे ।
वृंदावन आनँदघन घमँडनि पूरन - प्रीति - पतीजे ॥

(६८९)

दृगनि मनोरथदायक रथ चढ़ि निकसे मोहन स्याम ।
ब्रजजुवराज विराजित अतिहीँ पहिरैँ मोतिन - दाम ।
सुरँग लपेटा लेत लपेटैँ अलक - पेच परि सोहैँ
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि. चाहत ही मन मोहैँ ।
केलि - कमल सूँध्यौ मो घाँ तकि मुमके छैल विहारी ।
रूपनिकाई निरखि विकाई हौँ हूँ चकित निहारी ।
सुबल सारथी अधिक पियारो वदन-चंद्रमा नीको ।
ताहि जतावत मरम हिये को निपट मन मिलौ जीको ।
गोकुल चारु चौहटैँ चौंपनि देखनि कौँ सब झूमैँ ।
मादक रूप छके नरनारी बिबस रीझ-बस घूमैँ ।
कौतुक हेत भावतो नागर डोलै अपनैँ चायनि ।
बगर गरयारैँ ग्वैँडैँ या विधि रचत रँगीले दायनि ।
पुहुप - झरा जितहीँ तित लागे सबकौँ सब विधि भावै ।
जसुदाजीवन नंदलला दिन आनँदघन बरसावै ॥

सकराभरन] (६९०) [इकताला

देख्यौ देख्यौ राधा को वृंदावन देख्यौ ।
जीवन जनम करम अपनो सब भाँति सफल करि लेख्यौ ।

[६८८] अधीजे=अधैर्य, अधीर । पतीजे=विश्वस्त । [६८९] दाम=माला । सुरँग=लाल । लपेटा=पगड़ी । परि=अधिक । घाँ=ओर । सुबल=एक सखा । जीको=जिसका । दिन=प्रतिदिन ।

ब्रज की सोभा मंगलमूरति ग्वालमंडली-संग।
उनै उनै बरसत आनँदघन छिन अनुराग अभंग॥

(६९९)

अरी पनघटवाँ आनि अरै।
अटपटि-प्यास-भरो ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।
रुचिर चाय ललचाय निहारै मेरोऊ धीर हरै।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोंपनि लाय झरै॥

(७००)

अरी पनघटवाँ जान न देइ।
मुरली बजाय हरै घट-पट सुधि मन अपबस करि लेइ।
जितहि जाउँ तित आड़ौ ठाढ़ौ टरत न मारग सेइ।
रोम रोम भिजवै आनँदघन हियरा मदन-खखेइ॥

बिलावल] (७०१) [इकताला

अरी तेरे कान्ह की बलाय मोहिं लागौ।
आँखिन को तारौ सब गोकुल-प्यारौ जीवौ जागौ।
याकै सुख सब ही कौं सुख है डारौं आँखिन आगौ।
उनै उनै आनँदघन बरसौ बैरिनि के उर दागौ॥

(७०२)

नित समाज ब्रजराज कौ, नित गोधन की भीर।
नित नित मंगल गाइयै, कान्ह कुँवर बलबीर॥

सुघराई] (७०३) [चंपकताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई।
सुघराई सुर सौं मुरली मैं अपनीयै तान बजाई।
मोहिं जताई मैं हीं पाई उनकी हित-अगराई।
आनँदघन पिय घर बैठे हूँ रीझनि भीजि भिजाई॥

[६९९] ओक=चुल्लू, अंजली। [७००] आड़ौ=बीच में। खखेइ=पीड़ित, चुटीला करके।

गौरी चैती] (६९४) [मूलताल

को पावै मेरे मन की पीर ।
सही न परति कछु कही न परति है कैसैँ भरौँ कहा करौँ बीर ।
साँवरैं बरन मनहरन छबीलो डीठि परयौ जमुना कैं तीर ।
जोवन-जगमगे रँगमगे अंगनि देखि भई हौं अधिक अधीर ।
कदम-तरैँ वनमाल गरैँ लखि उर बाढ़ी अभिलाषनि भीर ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रितयौ घट नैननि भरि नीर ॥

कालिंगरा] (६९५) [इकताला

आवै आवे हे देख्योई भावै उजियारो स्याम सुहावै ।
गोकुल को कान्ह कहावै मनमोहन बैन बजावै ।
सुनि चेटक मनहि लगावै रसभीजी ताननि गावै ।
चितवनि मैँ चाँप जनावै मेरोऊ ज्यौ ललचावै ।
कोउ कौ लौँ हिलग दुरावै आनँदघन उघरि भिजावै ॥

आसावरी] (६९६) [चौताला

कान्ह गुवार नै गैयनि घेरि घेरि मन घेरयौ ।
प्रीति-रीति परतीति जनाई गोरी कहि कहि टेरयौ ।
हौं सुनि समझि रीझि भीजी उरझि सुरझि नहिं परत निवेरयौ ।
आनँदघन तन चोपनि घमँड्यौ क्यौं हूँ फिरत न फेरयौ ॥

सारंग] (६९७) [मूलताल

मोहिं न कल है सुनि पलको घर मैँ मोहन बंसी बाजै ।
उमगि उमगि मन बन कौँ धावत गनत नहीँ कुल-लाजै ।
ऐसैं कैसैं भरौं कहा महा कठिन उदेग उपराजै ।
आनँदघन सौं उघरि बुरौंगी उसरि पैज की पाजै ॥

बिलावल] (६९८) [इकताला

छबीलो रसिकराय नवरंग ।
सुंदर वर मुरलीधर प्यारो व्रजमोहन सब अंग ।

[६९७] उसरि=तोड़कर । पैज=प्रतिज्ञा । पाजैं=बाँध को ।

मोहिं मिली महामंगलदायिनि मगन रहौं नित हौं याके वर ।
सरस दरस रसपान गान गुन लाग्यौ आनँदघन-झर ॥

भैरों] (७०८) [चौताला

अगनित गुन रावरे गुपाल ।
तिहारी कृपा तें एहो कृपानिधि गनि गनि करि राखौं उरमाल ।
मुरलीधर स्यामसुंदर वर राधामनि नैन विसाल ।
आनँदघन उदार व्रजजीवन सब ही भाँतिनि दयाल ॥

सारंग] (७०९) [इकताला

व्रजमोहन देख्यौ चेटकी ।
कहा कहौं कछु कहन न आवै बात अचानक भेट की ।
लई लुभाय सुभाय तुरत हौं, चितवनि चौंप-लपेट की ।
भूलत नाहिं भटू कैसें हूँ भरनि सु पलकनि जेट की ।
अब कित क्यौं हूँ कल परति न वा बिन करि गौं सैन सहेट की ।
आनँदघन प्यासनि व्याकुल है हितू कहति हौं पेट की ॥

बिलावलि] (७१०) [इकताला

तुम्हैं जु कछु आछी लगै सो करियै स्याम ।
मन चाहै तन-सँग है वन मैं विसराम ।
अज उमाधव से जाचहीं रज अगम सुधाम ।
तहाँ कौन हौं वापुरो अति असुचि सकाम ।
सुहृद सुजान उदार हौ करुनानिधि नाम ।
व्रजनायक लायक सुनैं गाऊँ गुनग्राम ।
सोच-विमोचन हो सदा लोचन-अभिराम ।
कृपा-दृष्टि तें सब सधै यह केतिक काम ।
सुढर सुगम सुमिरत रहौं नित आठौ जाम ।
आनँदघन हौ घमँडि कै मेटौ दुख-घाम ॥

सारंग] (७११) [इकताला

मुरलियावारे साँवरे नैंक ठाढ़ौ रहि रे ।
मान लै चल्यौ हाथ करि मेरो को धौं कहि रे ।

[७०९] जेट=छटा ।

विभास] (७०४) [इकताला

अनोखे ये दिन होरी के।
कैसैं कै कोउ भरै करै कहा अति बरजोरी के।
उघरि करत उखर्नैंद अचगरो नंद महर को छैल।
लै करि संग इकमनै ग्वारनि रोकत बन घट गैल।
तनक न कानि करत काहू की तकत नवेली बाल।
फागुन के मिस मसरि गुलालै पकरि करत उरमाल।
आवौ घेरि कनौड़ो करियै कान्ह ऐठि गुलचाय।
आनँदघनहि भलैं करि भिजवैं रिझवैं नाच नचाय॥

सारंग] (७०५) [इकताला

फागुन राच्यौ है ब्रज बाखरि बाखरि माच्यौ है खेल खिलारन।
ग्वारमंडली लै ब्रजमोहन डोलत गैल - गरधारन।
निपट अटपटो औसर पाएँ तकत अटारिन द्वारन।
कहूँ झपट कहूँ लपट कहूँ कछु को बरजै मतवारन।
आजु सखी या ओर भोर तैं ऊधम देत अपारन।
दूभर परयौ पनघटौं जैबो हरि कौं साँझ-सवारन।
हाँसी को सतिभाव करत हैं पैठत ठेलि किवारन।
थर थर कँपति रहति आनँदघन बरसत गोराधारन॥

झगरी] (७०६) [मूलताल

अरी गंगा हौं तेरो गुनगायक अब तू अपनोई गुन करि री।
मधुसूदन-पद-प्रीति बढ़ै नित ऐसो भाँतिनि ढरि री।
जगत-जीव-निस्तारिनि जननी दीन जानि हिय को दुख हरि री।
आनँदघन रस छाऊँ आऊँ तेरैं तीर कहत हौं पायनि परी री॥

विभास] (७०७) [चौताला

हरिपद-जनित जगत-पावन जल जानि गंगा सीस धरैं हर।
और कहा कहि महिमा बरनियै यह देखी सर्वोपर।

[७०५] गोराधारन = मूसलधारा।

मोहिं मिली महामंगलदायिनि मगन रहौं नित ह्वौं याके घर ।
सरस दरस रसपान गान गुन लाग्यो आनँदघन-झर ॥

भैरों] (७०८) [चौताला

अगनित गुन रावरे गुपाल ।
तिहारी कृपा तें एहो कृपानिधि गनि गनि करि राखौं उरमाल ।
मुरलीधर स्यामसुंदर वर राधामनि नैन विसाल ।
आनँदघन उदार व्रजजीवन सब ही भाँतिनि दयाल ॥

सारंग] (७०९) [इकताला

व्रजमोहन देख्यौ चेटकी ।
कहा कहौं कछु कहन न आवै बात अचानक भेट की ।
लई लुभाय सुभाय तुरत हीं, चितवनि चोंप-लपेट की ।
भूलत नाहिं भट्ट कैसें हूँ भरनि सु पलकनि जेट की ।
अब कित क्यौं हूँ कल परति न वा बिन करि गौ सैन सहेट की ।
आनँदघन प्यासनि व्याकुल है हितू कहति हौं पेट की ॥

बिलावलि] (७१०) [इकताला

तुम्हैं जु कछु आछी लगै सो करियै स्याम ।
मन चाहै तन - सँग है बन मैं बिसराम ।
अज उमाधव से जाचहीं रज अगम सुधाम ।
तहाँ कौन हौं बापुरो अति असुचि सकाम ।
सुहृद सुजान उदार हौ करुनानिधि नाम ।
व्रजनायक लायक सुनैं गाऊँ गुनग्राम ।
सोच - बिमोचन हौ सदा लोचन - अभिराम ।
कृपा - दृस्टि तें सब सधै यह केतिक काम ।
सुढर सुगम सुमिरत रहौं नित आठौ जाम ।
आनँदघन हौ घमँडि कै मेटौ दुख - घाम ॥

सारंग] (७११) [इकताला

मुरलियावारे साँवरे नैंक ठाढ़ौ रहि रे ।
मान लै चल्यौ हाथ करि मेरो को धौं कहि रे ।

[७०९] जेट=छटा ।

गोकुल गाँव अनीति होति है गैल चलत सकियै न निबहि रे ।
चेटक-गुननि भरयौ आनँदघन निरख्यौ परख्यौ अबहि रे ॥

टोड़] (७१२) [मूलताल

जियहु जसोदा मैया जियौ पिता ब्रजराज ।
या ब्रजमोहन कौं हित लाड़ लड़ावन चावन दिन दिन सुखनि समाज ।
यह धन धाम बिराजौ जुग जुग या घर सौं सब ही को काज ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन ब्रजमंडन सिरताज ॥

मलार] (७१३) [चौताला

सुरति - सुख - बेली सरसति रँगनि ।
ललित लहलहो चपला - चाँपनि चाँपति नव-घन-अंगनि ।
स्रमजल-कन पुहपावलि-प्रगटनि कूजित कोकिला-काकली-संगनि ।
जमुना-तट बृंदावन आनँदघन झर लाग्यौ है उमंगनि ॥

ललित] (७१४) [मूलताल

घरघलू बँसुरिया बैर बढ़ो है ।
ब्रजमोहन मुँह लाइ बिगारी अति ही गरब चढ़ी है ।
देति डुलाइ ठौर तैं मति - गति चेटक - मंत्र पढ़ी है ।
तान-बान बरसति आनँदघन हियराँ जाति कढ़ी है ॥

बसंत] (७१५) [इकताला

खेलौंगी बसंत रँगीले प्रानपिय सौं ।
न्यारे न करौंगी छिन आँखौ भरि हिय सौं ।
ब्रजमोहन उजियारे नैननि के तारे कैसैं कै मिलन
देहौं काहू आन तिय सौं ।
आनँदघन सुजान गुन-रूप के निधान राखौंगी समोइ
मोइ जियराहि जिय सौं ॥

एमनि रागिनी] (७१६) [इकताला

मन न रहै मेरो ब्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेलें बिन ।
दुरि दुरि कुरि कुरि कौ लौं रहौं री बिधिना दियौ है ऐसो दिन ।

अपने रंगनि भलैं भिजऊँगी जैसैं हौं भिजई घर मैं इन।
आनँदघन सनेह की घमँडनि जानी है अब सबहिन॥

सारंग] (७१७) [चंपकताल

जानिहौं जो आज अछूते बचौगे।
होरी-मिस करि नाक नचावत पै तुम नीकैं नचौगे।
चपल चखनि काजरु भरिहूँ करिहूँ तेई हाल लाल ज्यौं लचौगे।
आनँदघन रिझवैंगी भिजैं छूटन को छंद क्यौं रचौगे॥

धन्यासिरी] (७१८) [मूलताल

राधा कैं हिंडोरैं हाहा तनक झुलाय कब की कहति
यौं हीं अब न डुलाय।
अंग-संग रंग की उमंग उर बढ़ी अति कहाँ लौं धीरज
धरौं मन अकुलाय।
रँगीले रिझवार सजहु बधु-सिंगार सोभा-सुख हेरैं रहैं सुरति भुलाय।
जतन लतन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की पाहुनी कहि
लैहौंगी बुलाय॥

तथा] (७१९)

को है जू विसाखा यह पाहुनी तिहारी।
साँवरे वरन मन हरति लजौंहीं बानि ऐसी धौं लगति
कहूँ कबहूँ निहारी।
मेरे मन भावति है झूलै तौ झुलाऊँ याहि हौं तौ याकी
ऊठ को परख पचि हारी।
झूलि फूलि रस लेहु बरसौ आनँदमेहु गहवर बन
ये विहंगम विहारी॥

केदारो] (७२०) [चंपक

जो तुम बनावौगे सोई बनिहै मेरो सोच कहा।
अब लौं तुम सब नीकी बनाई बनाइहौ नीकी महा।

७१८—तनक-तन की (लंदन)। अंग—अंस (वही)। भुलाय—लुभाय (वृंदा०)। जतन०—अतन-जतन (सतना)।

[७१८] जतन=यत्न, उपचार।

आजु हमारैं हाथ चढ़यौ तू चपरि गयौ करि करि लँगराई ।
छलबल छाय छाय भूम्यौ आनँदघन सबै उघरि आई ॥

भैरव] (७२६) [मूलताल

मंगल आरति जगमंगल की करियै मंगल रूप निहारि ।
मंगल ब्रज मंगल बृंदावन मंगलदायक जमुना-वारि ।
मंगल गोपी गोप धेनु हित गिरि गोधन मंगल-विस्तारि ।
मंगल मुरली-धुनि आनँदघन मंगल गुन-लीला उर धारि ॥

बसंत] (७२७) [चरचरीताल

कुसुमित बनराज आज देखें ई बनि आवै री ।
जमुनातट सघन स्याम कैसी छबि पावै री ।
पवन-बस पराग-पुंज कुंजनि पर छावै ।
मधुप-गुंज मंजु घोष आनँद उपजावै री ।
तरु बेली-वलित ललित उमँग उर बढ़ावै ।
नूत-मुकल-कलित मुदित कोकिल गावै री ।
मुरली-रस भु रली धुनि सुनियै अति भावै ।
तेरे गुन गाय गाय भेद सौं बुलावै री ।
चलि बलि अब निकरि गहर समझि चौंप चावै ।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री ।
वृंदावन-रानी तू बेदो बिरुदावै ।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस बरसावै री ॥

विभास] (७२८) [इकताला

मेरो चित चाहै री जित चाहै निधरक भेटौं सुंदर स्यामैं ।
रूप जोबन गुन कहा करौं जो आवै न प्रीतम-कामैं ।
न्योज लगौ गोकुल-धरम निगोड़ौ मोहि कहा मीठो है यामैं ।
आनँदघन जीवनधन मेरैं जीवति लै लै नामैं ॥

विभास] (७२९) [चरचरीताल

प्रानअधार हौ जू मेरैं सुंदर नंदकुमार ।
दरस दुखारे नैन बिचारे तरसत बरसत हैं दिनराति आइ देहु इक बार ।

दया लेहु जिन देहु अनाकनी तुम तौ परम उदार ।
आनँदघन पिय सुनियै हा हा दीन-पुकार ॥

सारंग] (७३०) [मूलताल

आवति है मुरली की टेर ।
गिरि घाँ तैं जमुना त्यौं सुनियति भई गैयनि जल दैबे की बेर ।
चलौ सखी पनघट जैयै पैयै मोहन-दरस लागी कब की औसेर ।
आनँदघन अभिलाष घमँड हिय बढ़ी रहति है साँझ-सबेर ॥

कल्यान] (७३१) [इकताला

सलोनो स्याम उज्यारो ब्रजलोचन को तारो ।
ताक लगाय फिरत फागुन मैं जोबन को मतवारो ।
आँखिनि पैठे हियरा बैठे क्यौं हूँ टरत न टारो ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ-सबारो ।
गारि गुलाल कसरि नव काढ़े चेटक-भरयौ ठगारो ।
नकबानी करि लेत इते पै लागत है अति प्यारो ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै खोरि खरो अपढारो ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारो ॥

रामकली] (७३२) [चरचरीताल

सलोने साँवरे गुपाल आँखिनि लागि रहे रूपनिधि
रसाल, केसरि की खौरि रचें भागभरे भाल ।
चितवनि चित चोरि लेति घूमरे नैन बिसाल ।
कुंडल चटक भृकुटी मटक लटक-भरी चाल ।
कौस्तुभमनि कंठ दिपत उर बर बनमाल ।
सुंदर मुकुट दीरघ भुजा मोहन-ब्रजबाल ।
आनँदघन जोबनधन रसिक नंदलाल ॥

[७३१] नकबा०=दुखना करके छूट भी देता है और आपसे आप अनुकूल भी हो जाता है ।

राग गौर सारंग] (७३३) [मूलताल

जै जै जै श्री वामन विसाल ।
कृपासील महासील नरोत्तम निरहौं नित दीनदयाल ।
सत्यवद सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल ।
सच्चिदानंदघन अनघ त्रिविक्रम-पद-नख-जल जग सुजस-जाल ॥

ऐमन] (७३४) [चंपकताल

मुरलिया कितिक छंद पढ़ी है ।
लगियै रहति मोहन-मुख यातें अतिहीं गुमान बढ़ी है ।
हम कहा जानें भोरीं बिचारीं गवेलिनि की मति मोहमढ़ी है ।
आनँदघन पिय रीझ-भिजे इन हाथ किये इन चेटक-चौंप चढ़ी है ॥

आसावरी] (७३५) [चौताला

मेरो काहू सों न अब कछु काम है ।
जिय को जीवन नैनन को तारो प्यारो उजियारो मोहन स्याम है ।
कोरि चवाव करौ किनि कोऊ मो कौं तौ वाही को पन अस्ट जाम है ।
आनँदघन रसमूरति मैं मेरे प्रान-पपीहनि बिसराम है ॥

मलार] (७३६) [इकताला

बदरा उनै आए बरसन लागे रस ही रस ।
ब्रजमोहन सँग हौं बन भीजी रीझि परी उनकैं बस ।
अंतर निपट भिजे घर पठई रुकत नहीं करि हारी बहुत कस ।
उघरि घुरौंगी आनँदघन सौं अब सब तजि सजि पटदस ॥

राग सारंग] (७३७) [चंपक

अजौं मुरली की टेर वहै सुनियति है होइ नहिं काननि ।
निकसति नाहिं कहा धौं करियै पैठि रही पापी प्राननि ।
मोहनमूरति आगैं ठाढ़ी मन की रीझ नहिं बनति बखाननि ।
भौंह तानि हँसि हेरि आनँदघन बरसत रस-बूँदनि बाननि ॥

आसावरी] (७३८) [इकताला

अब मोहिं राखि लीजियै अपनैं चरन-कमल की छाँह ।
डगमगात हौं सुनौ हो गिरिधर एक तिहारी बाँह ।

[७३६] पटदस=सोलहो शृंगार ।

दया लेहु जिन देहु अनाकनी तुम तौ परम उदार ।
आनँदघन पिय सुनियै हा हा दीन-पुकार ॥

सारंग] (७३०) [मूलताल

आवति है मुरली की टेर ।
गिरि याँ तैं जमुना त्यौं सुनियति भई गैयनि जल दैबे की बेर ।
चलौ सखी पनघट जैयै पैये मोहन-दरस लागी कब की औसेर ।
आनँदघन अभिलाष घमँड हिय बढ़ी रहति है साँझ-सबेर ॥

कल्यान] (७३१) [इकताला

सलोनो स्याम उज्यारौ ब्रजलोचन को तारौ ।
ताक लगाय फिरत फागुन मैं जोबन को मतवारौ ।
आँखिनि पैठै हियरौ बैठै क्यौं हूँ टरत न टारौ ।
रँगनि भिजै रिझवै ब्रजमोहन गनत न साँझ-सबारौ ।
गमरि गुलाल कसरि मव काढ़े चेटक-भरयौ ठगारौ ।
नकबानी करि लेत इते पै लागत है अति प्यारौ ।
जित जैयै तित सनमुख पैयै खोरि खगै अपढारौ ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

रामकली] (७३२) [चरचरीताल

सलोने साँवरे गुपाल आँखिनि लागि रहे रूपनिधि
रसाल, केसरि की खौरि, रचैं भागभरे भाल ।
चितवनि चित चोरि लेनि घूमरे नैन बिसाल ।
कुंडल चटक भृकुटी मटक लटक-भरी चाल ।
कौस्तुभमनि कंठ दिपत उर बर बनमाल ।
सुदर सुटर दीरघ भुजा मोहन-ब्रजबाल ।
आनँदघन जीवनधन रसिक नंदलाल ॥

[७३१] खोरि०=झुकना पड़े कट भी देना है और आपसे आप अनुकूल भी हो जाता है ।

भूलें भगत बने विग्नि से कौन रंक का विधि धाऊँ ।
सुनौ स्यामसुंदर ब्रजनायक यह रस लै रसनैं ध्याऊँ ।
आनँदघन उदार जगजीवन कृपा-भरोसैंही छाऊँ ॥

तथा] (७४४)

आजु राधा बलि प्रगट भई ।
जसुमति सुनत चली कीरति कैं नखसिख मोदमई ।
कनियाँ किये छबीले लालहि चित हित-चौंप नई ।
साँज बधाई को सब सजि कै नीकी भाँति लई ।
भाग-सुहाग-भरी की सोभा त्रिभुवन ओप दई ।
सुत-सोहिलो मनावत मन मैं अतिहीं रंगरई ।
नंद परम आनंदनि भीजे हिय मैं उमँग छई ।
हुलसि हुलसि भेंटत वृषभानैं जीवौ सुकृत-जई ।
गोकुल रावरि एकमेक ह्वै प्रेमघटा उनई ।
कही न परति आनँदघन घमँडनि सब उर-ताप गई ॥

(७४५)

बरसाने की तीज सुहाई । हरियारी सबहिनि मन भाई ।
कीरति उबटि न्हवाई राधा । अपनी लाड़िलरी हित-साधा ।
मेहँदी रची रुचिर कर-पाइनि । ललित लली कौं सजति बनाइनि ।
पाटी पारि दियौ दृग अंजन । वारौं कोटि सरद के खंजन ।
सुरँग ओढ़नी ढिगनि साँवरी । छवि-फबि पै बलिहार जाँव री ।
भूषन बनक तनक क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ।
रूपमाधुरी बरसति रंगनि । फूली मात समात न अंगनि ॥

सारंग] (७४६) [चौताला

मेरे अरु गुपाल के बीच मति कोऊ परो हो ।
मोहिं उन्हैं रसखेल मच्यो है जो जाकैं जिय मैं सु धरो हो ।
बारह मास फाग सुख या ब्रज हौं उन वे मो रंग ढरो हो ।
जो होरी-औसर विधना दयौ तो आनँदघन ढुरि घमँडनि उघरो हो ॥

[७४५] ढिग=किनारा ।

रह्यो न काम कछू काहू सौं पालत प्रान रावरी आँह ।
आनँदघन दुखताप मेँटियै कीजै कृपा-सिराँह ॥

धनासिरी] (७३९) [मूलताल

हमकौं तिहारी है हो सरन हरि ।
जगमंगलकारी जदुनंदन अंतर-ताप-हरन ।
अंतरजामी सब-सुखस्वामी वंछित-पूरनकरन ।
करुनानिधि उदार आनँदघन जीवन-पोषन-भरन ॥

टोड़ी] (७४०) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौं गहि करत कान्ह केतेऊँ काम ।
गिरि गोवरधन घाटिया घेरत हेरत हौ नव बाम ।
हौं जानति जैसे हौ मोहन गोहन लागत सोहन स्याम ।
आनँदघन कहा कूमैं आवत घर जान देहु किनि फिरत बरावत घाम ॥

तथा] (७४१)

स्याम सलोने सौं आई है मनभाई रति मानि ।
अंगनि औरै ओप पलोजै अँखियनि मैं सिथलानि ।
बगरे बार भीने सार मैं झलकति अधर नई अरुनई-सरसानि ।
आनँदघन पिय रीझ घमड सौं भरि भैंटी रस सानि ॥

सारंग] (७४२) [कपोती ताल

बरसानेवारी राधा नंदीपुर को मोहन ।
निपट रसीली रूपीली जोरी देखि सिरात जोहन ।
इनको प्रेम सदा व्रज व्यापक सबके मन-दृग इनहीं मोहन ।
आनँदघन रसभीजे विलसौ सरस मनोहर दोहन ॥

धनासिरी] (७४३) [इकताला

मेरी कहा सकति जो गुन गाऊँ, गुन गाऊं मन परचाऊँ ।
जिनको पार न पावत कोऊ तुम तौ हौं कैसैं आऊँ ।
लीला ललित परम पुरुषोत्तम क्यों सुरूप उर ठहराऊं ।

[७३८] आँह=आगे । सिराँह=शीतलता । [७४०] बरावत०=घाम बचाते हो, घर दंगे में लगे हो। [७४१] सार=शय्या ।

भूले भ्रमत बड़े बिधिहू से कौन रंक का बिधि धाऊँ ।
सुनौ स्यामसुंदर ब्रजनायक यह रस लै रसनैं प्याऊँ ।
आनँदघन उदार जगजीवन कृपा-भरोसैंई छाऊँ ॥

तथा] (७४४)

आजु राधा बलि प्रगट भई ।
जसुमति सुनत चली कीरति कैं नखसिख मोदनई ।
कनियाँ कियैं छबीले लालहि चित हित-चौंप नई ।
सौंज बधाई की सब सजि कै नीकी भाँति लई ।
भाग-सुहाग-भरी की सोभा त्रिभुवन ओप दई ।
सुत-सोहिलो मनावत मन मैं अतिहीं रंगरई ।
नंद परम आनंदनि भीजे हिय मैं उमँग छई ।
हुलसि हुलसि भेंटत वृषभानैं जीवौ सुकृत-जई ।
गोकुल रावरि एकमेक ह्वै प्रेमघटा उनई ।
कही न परति आनँदघन घमँडनि सब उर-ताप गई ॥

(७४५)

बरसाने की तीज सुहाई । हरियारी सबहिनि मन भाई ।
कीरति उबटि न्हवाई राधा । अपनी लाड़लरी हित-साधा ।
मेहँदी रची रुचिर कर-पाइनि । ललित लली कौं सजति बनाइनि ।
पाटी पारि दियौ दृग अंजन । वारौं कोटि सरद के खंजन ।
सुरँग ओढ़नी ढिगनि साँवरी । छबि-फबि पै बलिहार जाँव री ।
भूषन बनक तनक क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ।
रूपमाधुरी बरसति रंगनि । फूली मात समात न अंगनि ॥

सारंग] (७४६) [चौताला

मेरे अरु गुपाल के बीच मति कोऊ परौ हो ।
मोहिं उन्हैं रसखेल मच्यौ है जो जाकैं जिय मैं सु धरौ हो ।
बारह मास फाग सुख या ब्रज हौं उन वे मो रंग ढरौ हो ।
जो होरी-औसर विधना दयौ तौ आनँदघन ढुरि घमँडनि उघरौ हो ॥

[७४५] ढिग=किनारा ।

ललित] (७४७) [चलती ताल

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय रिझाय लई ।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढ़ो भोरहीं भेंट भई ।
देखनहीं मनमोहन मूरति सब बिधि बिसरि गई ।
आनँदघन पिय हँसि चितवनि मैं नखसिख लौं भिजई ॥

सारंग] (७४८) [इकताल।

जेठ दुपहरी को सुख लेत ।
राधा मोहन सहज सनेही करि बन घन संकेत ।
लीला-मगन रहत रससागर उमँगत हिय भरि हेत ।
झूमि झूमि बरषत आनँदघन भरत मनोरथ - खेत ॥

सुघराई] (७४९) [चंपकताल

बदराऊ नए नए नए ।
स्यामसुंदर मनभावन आवन के सगुन भए ।
मोहि भरोसो है उनको बदि साँची अवधि गए ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैहैं चातक - प्रान तए ॥

मलार] (७५०) [इकताला

पचरँग पाट विचित्र पवित्रा पहिरैं मोहनमदन गुपाल ।
उर बिसाल पैं अति दुति बाढ़ी ब्रजगोरिन मन-लोचन-जाल ।
जुग दियैं कियैं नटवर वपु केसरि-खौरि बिराजति भाल ।
रीझे नैन अनियारी भौंहैं हँसि हेरनि मैं करत निहाल ।
चिक्कन कुटिल रुचिर अति मेचक छूटे छबीले अलक बिसाल ।
मनिकुंडल मिलि बिमल कपोलनि झलनि झलत मनि की गति हाल ।
जमुना-तीर लसत नवरंगी धरैं बैन कर तरैं तमाल ।
टरी न परति राग-रचना की थिर चर सुनत होत बेहाल ।
नित-आनँद-मूरति ब्रजमोहन करत रहत रसरंगनि ख्याल ।
रीझ-भरे राख्यौ नवहीं ब्रज आनँदघन गुन-रूप-रसाल ॥

[७५०] पाट=रेशम । पवित्रा=रेशमी डोरों की माला । मेचक=काले । हाल=तुरत ।

विभास] (७५१) [इकताला

एक पालनैं झुलावति जसुमति कीरतिकुँवरि आपनैं लालैं।
कही न परति अति आनँद की गति वारि देति मनि-मोतिनि मालैं।
ओड़ि ओड़ि आँचर विधना पै माँगत कुसर प्रीति-पन पालैं।
उनै रनै बरसौ आनँदघन गोकुल रावलि करत निहालैं॥

पूरवी] (७५२) [इकताला

ए देखौ देखौ मुरली की बिराजनि।
व्रजबधूनि की सुधि बुधि कौं हरति याकी वाजनि।
अपवस करि लेति है नित नित सजति सुख-समाजनि।
आनँदघन रीझि भीजि करै कौन काजनि॥

सारंग] (७५३) [मूलताल

कान्ह चरावत गया बन मैं।
जिनहि जिन ठौरनि ह्वै निकसत पैठत मेरे मन मैं।
लट्टू भयौ पायनि लगि डोलत अति व्याकुलता तन मैं।
व्रजमोहन हँसि चितवनि भिजई कौंधनि आनँदघन मैं॥

टोड़ी] (७५४) [इकताला

सलोने व्रज बगराई है, अपने रस की ठगौरी।
व्रजमोहन सब ही विधि सौं रसरीति चलाई है।
काहू की कछु कही न परति अतिहीं अँगराई है।
आनँदघन मुरली-धुनि घमँडनि प्रेम-दुहाई है॥

जैतसिरी] (७५५) [इकताला

मोहि दीजै जू व्रजवास।
सुनौ नंद वृषभानराय जू पुजवौ जिय की आस।
नीकैं रहौ राधिका-मोहन दिन दिन अधिक हुलास।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ दुहुँ घर कैं चहुँ पास॥

७५४–विधि–भाँतिनि (सतना)।

[७५१] ओड़ि = पसारकर।

आसावरी] (७५६) [आड़ चौताला

नंद तिहारैं दिन दिन ऐसोई रहौ ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन के सुख ऐसियै भाँति लहौ ।
जसुमति-वारी अँखियनि तारौ नितहीं हितहि चहौ ।
गोकुल - जीवनधन आनँदघन उनै उनै उमहौ ॥

(७५७)

मनमोहन चितचोरन प्यारे मन मोह्यौ चित चोरी जू ।
जो जो करी सहैं सोई सो तुम्हैं रूप को जोरी जू ।
आइ उघरि ढुरी डर की सब कहूँ जोरी कहूँ तोरी जू ।
नई चोंप उनए आनँदघन जिय न दई डर थोरी जू ॥

पूरिया धन्यासिरी] (७५८) [चौताला

कौन जानै कितहिँ कितहिं तुम करत फिरत कैसैं बनि ।
काहू सौं बदत बोल कितहूँ करत मोल कहूँ लै मदन
झोल ठगत बिमासी सबनि ।
अनख होति भारी ब्रज-अबला चतुर छैल ठगी अपनेई ढबनि ।
आनँदघन ब्रजमोहन रसरंगी तुम्हैं सोहै नई नई फबनि ॥

मारू] (७५९) [इकताला

नव - सुख - सोभा - मूल बृंदावन बन मेरैं ।
गायाँ - गोहन गाऊँ न्हाऊँ जमुना साँझ - सवेरैं ।
[illegible] पाऊँ [illegible] बेनुबट नेरैं ।
आनँदघन कर सदा लगाऊँ नितबिहार-हित हेरैं ॥

गौरी] (७६०) [इकताला

चढ़ि चली पिय पै को बटारैं ।
[illegible] ।
[illegible] निहारैं ।
[illegible] पारैं ।
[illegible] निरवारैं ।
[illegible] आनँदघन रसधारैं ॥

टोड़ी] (७६१) [चौताला

ज्यौं ही ज्यौं ही चाहौ त्यौं ही त्यौं तनि तुमहीं विस्तारौ ।
तुमहीं गावौ तुमहीं सुनि समझौ यामैं कहा है हमारौ ।
एक रूप मैं अनेक आभा दिपै सुघरराय त्यौनार तिहारौ ।
आनँदघन झर लाय रहे ऐसें क्यौं हूँ न भरम उघारौ भलैं
भलैं हौ जू बड़े रिझावारौ ॥

टोड़ी] (७६२) [चौताला

मुरलिया मैं त्यौनार भरे हैं ।
धुनि सुनि हिय बेहाल होत है इन ये हाल करे हैं ।
याकी घालीं घरनि मैं घूमति गुरजन-सोच टरे हैं ।
मुँह लगाय ब्रजनाथ बिगारीं ऐसे रीझि परे हैं ।
लगी रहति गौंहन दिनरजनी कित के वैर धरे हैं ॥
आप असैंड भई गरजति है लाज के साज हरे हैं ।
कान्ह कुँवर ब्रजमोहन मोहे याही ढार ढरे हैं ।
कल न देति काहू थिर चर कौं सबके मरम छरे हैं ।
सुबस बसौ गोकुल पै इन अब ऊलट रचे खरे हैं ।
सुखवति भिजवति रिझवति खिजवति धीरज धरम दरे हैं ।
आनँदघन रसबस करि राखे नाद-सवाद ररे हैं ।
याहि सबै कछु फबै सखी री पूरन पुन्य फरे हैं ॥

भैरव] (७६३) [चौताला

गुन गुपाल के गाय मन, भटकत फिरत वृथा कौं ।
इनहीं मैं बिसराम लहैगौ दूरि दूरि फिरि आय मन ।
सीतल भयौ न कितहूँ बौरे तचि तचि रह्यौ मुरझाय मन ।
आनँदघन रसपान करौं किनि ऐसैंई सचु पाय मन ॥

मालकोस] (७६४) [कपोतताल

ताल-सुर-भेद जानत एकै मोहन ब्रजनायक ।
नटनागर रूपउजागर गुनसागर सबही बिधि आगर
ऐसो कौन सुद्ध सुद्रागायक ।

[७६३] सचु=सुख ।

जाकी मुरली सुनि मोहे जड़ जंगम बेधे मरम महा-
व्यापक सुरसायक ।
आनँदघन रस-तानन्नि छायौ वृंदावन गोपीजन मन-नैन-
प्रान साँचे स्रवननि सुखदायक ॥

टोड़ी] (७६५) [चौताला

को पावै उनके मन की बात ।
काहू कौं करियै परेखो ए ब्रजमोहन कपटनि के नायक
इत आवत उत जात ।
कहूँ सैन कहूँ बैन कहूँ तोर कहूँ जोर गौं गहि डोलत साँझ-प्रभात ।
आनंदघन रसबादनि उनए गुननि भरे सब गात ॥

धनासिरी] (७६६) [मूलताल

फागु-सुख विलसत मोहन स्याम, हिल मिलि गोपबधू अभिराम ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कैं सुंदर पुलिन पुनीत ।
उमग भरे सजि साँज खेल कौ गावत होरी गीत ।
रमनीमनि वृषभानुनंदिनी साजे सखिनि समाज ।
गोपकुँवर मंडल मैं राजत ब्रजमोहन सिरताज ।
बरनौं कहा रूप-गुनमहिमा महाभाग दुहुँ ओर ।
अतुल उमँग अनुराग रंगमगे अरस-परस नाचि चोर ।
नागरि मननि पीय-चोरनि सौं गावनि रसनिधि गारि ।
कंठ निलक मधुरिमा मनोहर...... .... ॥

पेतनि]

ललित] (७६८) [जाग्रताल

इन्हैँ तुम्हैँ आछी फाग मची है ।
निपट नवेली चोंप-चटक सौं प्रीति की रीति रची है ।
नैन गुलाल-भरे अरसौंहैं यातें डीठि लची है ।
सब ही अँग रँग बोरि पटाए काहू विधि न बची है ।
झकझोरनि बँद टूटे छूटे उर नखरेख खची है ।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौं बुद्धि विचारि पची है ।
मनमान्यौ फगुवा दैं आए सो गति उघरि नची है ।
आनदघन इतहूँ हित छाए पन-परतीति जची है ॥

रामकली] (७६९) [याग्रताल

अति रंगभीजी राति बसी है, प्रानप्यारे पैं ।
लगति छबीली ढीली डोलनि भुज भरि नीकैं कसी है ।
अंगनि रंगतरंग उठति कछु औरैं ऊठ लसी है ।
आनँदघन ढुरि घुरि चौंपनि सौं भिजयौ स्याम रसी है ॥

रामकली] (७७०) [मूलताल

राधे लाड़-गहेलरी प्रीतम प्रान-सहेलरी सरस सुहाग-सुहेलरी ।
मोहनमदन गुपाल हिये की हिलग-हमेलरी ।
अपने वृंदावन की सोभा आचरज-बेलरी ।
आनँदघन रसप्यासनि सींची नेह-नवेलरी ॥

हिंडोल] (७७१) [इकताला

वारियै या छबि पैं बहुत बसंत तू मदनगुपाल लाल कैं री
आली उर-बनमाल भई है ।
अंग अंग रतिरंग प्रगट भए भरी फूल हिय की नख-
सिख लौं तेरी रती विधना तोही लै दई है ।
मो नैननि को सुख हौं ही समझति नीकी बसंतपंचमी नई है ।
आनँदघन पिय रीझनि भीजि घमँड-रस राख्यौ अति
रसरासि लई है ॥

ब्रजबन-लीला मगन रहै मनमोहन-गुन-गाँसनि मैं गसिबो ।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहनि को लौं तापनि तसिबो ॥

धनासिरी] (७७७) [इकताला

राधे अब कैं चाचरि बहुरयौ दै अरु तेरी हा चाचरि रंग ।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलन कों पिय के संग ।
हौं रीझौ तेरी ऊठ पै तेरे नेह नाक सुहाग ।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरैं अनुराग ।
तेरी चाचरि राचनी अरु तेरो ही त्यौहार ।
तोतैं रंग रहै सबै रस भीज्यौ रसिया रिझवार ।
तेरी भाँवरि-भरनि मैं छकि घूमैं ब्रजनायक छैल ।
बदन-चटक लट-लटक सौं रोकैं मन-लोचन-गैल ।
ब्रजगोरीं गावैं सबैं तेरी चाचरि के गीत ।
भिजयौ रीझनि चौंप सौं अपनो आनँदघन मीत ॥

सारंग] (७७८) [इकताला

मुरली-धुनि सुनत डोलियै संग ।
मोहन-मूरति देखें बाढ़ति उर अभिलाष-तरंग ।
घर बाहिर के बच्छू कहँ तौ धरौं नहीं तिल एक ।
कैसैं टरति भटू हियरा तैं पूरन पन की टेक ।
बस करि लई रसीली तानानि नहिं सुहाय कछु और ।
रोम रोम भिजई आनँदघन रसिक छैल-सिरमौर ॥

सावंत] (७७९) [इकताला

राधा-मोहन की हित-बात होति रहति नित नैननि सैननि ।
मिलन-प्यास रस-आसनि लागे ताकत है होरी का घात ।
बोथिनि बगर जमुन-जल जित तित ताकैं रहत साँझ परभात ।

७७७-खेलन०-खेलैं ब्रजमोहन (सतना) तेरी०-तैं रीझत ये तेरो लहलहो (वही), तेरी ऊठ पै तेरे नेह नीक (वृंदा०)। सबै-सहै (लंदन)। छकि-थकि (सतना) चटक-चंद (वही)।

[७७६] तसिबो=त्रास देना ।

वन चाव न समात हिये मैं उमगे परत गात लखि गात ।
गनि फव्यौ फागु को औसर निडर खेल रंगनि सरसात ।
नरि गुलाल कसरि सब काढ़त आरति-भरे बिबस ह्वै जात ।
रवन-सुख सहेट-फल चाखत परम मरम हिलिमिलनि हिलात ।
र मोचत सींचत आनँदघन सदा रहौ इनकैं कुसरात ॥

रंग] (७८०) [इकताला

मतवार मोहन होरी को ।
जाहि सहजहीं रस को चसको घातनि गहि बरजोरी को ।
लटुवा भयौ फिरत दिन-रजनी लगुआ गोरी भोरी को ।
मीठो महा मिल्यौ मुँहमाग्यौ उघरि उघरि गुर चोरी को ।
भीजि रह्यौ रंगनि भर भिजवै ब्रजमोहन है ओरी को ।
या ब्रज यह औसर आनँदघन अति रस ढोराढोरी को ॥

ढ़ानो] (७८१) [इकताला

कन्हैया रंगनि भीजौ मोहू रंगनि भिजावै ।
डीठि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै ।
नैननि सैननि होरी खेलै करत सबै कछु जो जिय भावै ।
रीझनि रमँढि घमँढि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै ॥

रव] (७८२) [जात्राताल

बहुतनि सौं बहुत भाँति रमै एक स्याम ।
चेटक की मूरति है ब्रजमोहन नाम ।
याहि देखि कछु न देखियै दीसै सब ठाम ।
आँखिनि भरि देखन की साधैं अस्ट जाम ।
ब्रज अचरज रस भोयौ अद्‌भुत गुनधाम ।
आनँदघन जीवनधन जिय को बिसराम ॥

मनि] (७८३) [चौताला

सुंदर मुख माइथौ री तैं माइथौ मोहन को धनि यह फागु-रवानी ।
जैसैं मन चाहत हो तैसैं दुहुवनि मन रति मानी ।

[७८०] लगुआ=लागू, प्रेमी ।

बरस द्यौस या आसा चितयौं अब विधना यह बानक बानी ।
आनँदघन बुरि ढुरि रस बरसौ चिर जियौ जोरी सहानी ॥

मरहठी रागिनी] (७८४) [यात्राताल

मोहन लाल कौं मल्हाऊँ सरस बधाई गाऊँ ।
जसुमति के भागनि बरनि रसनें लाड़ लड़ाऊँ ।
सुंदर मुख भागनि फल आँखिनि लै दिखाऊँ ।
नित नित या घर को उदै भाँति भाँति मनाऊँ ।
लड़िल के सुख - सुहेले बीधि बधाई गाऊँ ।
नितहीं मंगल नंद के मंदिर दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन भागभरी के आँगन ही छाऊँ ॥

कानरो] (७८५) [चौताला

को पावै हो ब्रजरस को भेद ।
जानत पै न बखानत मन ही मन अनुमानत बेद ।
श्रीगोपीपद-रज-प्रसाद-बल अगम सुगम और साधन सकल खेद ।
आनँदघन याहीं रस भींजी रीझि पीतवसन-छोर ढोरि
सुखवत सुख-स्रम-सेद ॥

रामकली] (७८६) [आद चौताला

राधा - रूप गौर उर फुरै ।
स्याम रूप अनूप राधा स्याम अंतर ढुरै ।
प्रगट परमानंद मूरति नैन - पुतरिनि ढुरै ।
पलक - संपुट उघरि घुरि घुरि या दरस घन घुरै ।
प्रान चातकपन पलै रुचि टारि बिरहा - जुरै ।
केलि सकल सकेलि मनसा थकै सब कछु कुरै ॥

मरहठी रागिनी] (७८७)

राधा राधा गाऊँ राधा प्रान कौं रिझाऊँ ।
राधा के गुन - रूप बरनि रसनै रसाऊँ ।

[७८३] माड़यौ=गुलाल से रँग दिया । बानी=बनाई । सहानी=लाल रंग से रँगी । [७८५] सेद=स्वेद, पसीना । [७८६] कुरै=उड़ेल कर, देकर ।

राधा के ही सुख मैँ सुखी मोहन रस प्याऊँ।
अरस - परस रसदरस आनँदघन छाऊँ॥

सारंग] (७८८) [इकताला

होरी झुरमट माच्यौ नंद महर कैँ द्वार।
आईँ झूमि नव नव वधू झुंडनि चौँपनि भरीँ खिलार।
रूप अनूप कहाँ लौँ बरनौ उपमा लहौँ नहीँ उनहार।
चंदवृंद चपला चामीकर वारौँ चंपकहार।
सुंदरस्याम-सनेह-सगमगीँ सहज रँगमगीँ ओप अपार।
ब्रजमोहन की महा मोहनी साजैँ सरस सिँगार।
गावति गारीँ अति रसढारीँ सफल करति फागुन त्यौहार।
कंठ-किलक मैँ दसन - चिलक लखि छकत छैल रिझवार।
रीझनि भरि भिजवति रुचि - रंगनि चितवति पागति
पिय-हिय प्यार।
चाचरि चुहल चाव दावनि सौँ करति कटाछनि मार।
रूपविवस गिरिधरन लाल कौँ अपवस करति भरत अँकवार।
मन को मरक काढ़ि सब दिन की बाढ़ति धूम-धमार।
नैन आँजि मुख मसरि गुलालहिँ वेँदी देति लला के लिलार।
जीति लेति अवला बलवीरहि हँसि पहिरावति हार।
बहुत भाँति के नाच नचावति हो हो करि बोलति ततकार।
फहपट देति हठीली भाँतिनि सकुचत रसिक उदार।
झगरति झटकनि मुलकति पुलकति फगुवा माँगति करति झमार।
अति अदभुत औसर को यह सुख विलसत प्रान-अधार।
अपने कान्ह कुँवर की सोभा दूरि भए देखत सब ग्वार।
कछु न बसाति पचत बहुतेरो ठाढ़े करत पुकार।
प्रबल प्रीति की रीति प्रगट लखि काहू रही न तनक सम्हार।
सुर विमान चढ़ि कौतुक भूले विरसत विविध विहार।
या रस मगन रहत दिन-रजनी सजनी स्याम लहत सुखसार।
सब ब्रज रँग भिजयौ आनँदघन रसिया नंदकुमार॥

रामकली] (७८९) [मूलताल

आए हौ लाल रँगमगे बागैं । या बानक निरखे नहिं आगैं ।
नैन गुलाल - भरे से लागैं । कै भए अरुन कहूँ निसि-जागैं ।
नीकैं लगत अधर मसि - दागैं । बहु रँग - रचे फागु अनुरागैं ।
नखछत लगैं गहे भरि भागैं । हाहा करि छूटे खुलि खागैं ।
भँवर - भीर लीला-जस रागैं । माल नए परिमल - गुन तागैं ।
आनँदघन झूमैं घन पागैं । उघरि उघरि डोलैं डर त्यागैं ॥

सारंग] (७९०) [इकताला

मोहनमदन गुपाल बँसुरिया मैं री आली सारंग पूरै ।
लाज कानि कुल की बिसरावै चोंप-चटक चुहटनि चित चूरै ।
कहा करौं कैसैं करि राखौं उमँगि उमँगि मन विकल बिसूरै ।
उघरि बुरौंगी आनँदघन सौं सहि न सकत अब मदन-मरूरै ॥

सोहनी] (७९१) [मूलताल

अवे वंसीवालिया कान्ह गुवालिया कदी तौ सानू
भी मुख विखलाव ।
मैंडरी जिंद तुसाडे नाल लगी मैं धोली व्रजमोहन मतवालिया ॥

रामकली] (७९२) [इकताला

रसिकनी राधा राधा है ।
जाके मिलिवे की मोहन कैं नित ही साधा है ।
व्रजमोहन मोह्यौ इन आछैं रही न बाधा है ।
परम प्रेम रस - निधि आनँदघन प्रेम - समाधा है ॥

हिंडोल] (७९३) [इकताला

नव वृंदावन नव मनिमंदिर नव कंचन नव रतन-सिंहासन !
नवल कुँवर गोपीनाथ विराजत सोभानिधि भरे नवल हुलासन ।
नव भूषन नव वसन नवल तन महकत भीने नवल सुबासन ।
नवल रूप नव नेह भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन ।
नव गुन रूप अगाधा राधा जगमगाति ढिग नवल प्रकासन ।

[७९१] धोली=सीधी-सादी ।

नव सहचरी सजैं नव नवसत हरपति छवि निरखति चहुँ पासन ।
नवल गान नव तान ताल नव नवल जेत्र नव नृत्य बिलासन ।
नवल रीझ नव रँगरस-भीजनि आनंदघन बरसत मृदु हासन ॥

सारंग] (७९४) [चौताला

अति सुगंध मलयज घनसार ।
मिलाइ कुसुम-जल सौं छिरकाइ उसीर सदन बैठे मदन-
मोहन संग लै राधा प्रानंनि प्यारी रति-रंगनि ।
जमुन-तीर बानीर-कुंज मंजुल विधि पवन सुखपुंज
परम रोमांचित होत छबीले अंगनि ।
वृंदावन संपति दंपति बिलसत हुलसत ऐसैं अपनी उमंगनि ।
आनँदघन अभिलाष भरे खरे भीजे संगम-रस-सागर
की अतुल तरंगनि ॥

सारंग] (७९५) [इकताला

रँगीली जोरी की बलि जाँव, ललित रूप-गुन-रासि ।
कदम-मूल वन घर है जाको जमुना-कूल सुठाँव ।
गोरी साँवरो दृगनि भाँवरी निरखैं सुखनि सिहाँव ।
आनँदघन जीवन-धन-दायक राधा-मोहन नाँव ॥

सारंग] (७९६) [चौताल

या रस कौं हौं हौं बखानौं ऐसैं ।
वृंदावन जमुना-तट विहरत राधा-मोहन जैसैं ।
छिनहीं छिन या सरस सवादै लेत देत समझत तेई तैसैं ।
आनँदघन याको घमँडनि कौं उबरि लखै कोऊ कैसैं ॥

विहागरो] (७९७) [चंपकताल

कहाँ पाऊँ हो हरि हाय तुम्हैं ।
मेरी निपट अनाथ दसैं दैया कौन कहै समझाय तुम्हैं ।
मोकों पलको कल न परति है तुम जानो ज्यौं विहाय तुम्हैं ।
प्रानपपीहा पुकार सुनावन आनँदघन अकुलाय तुम्हैं ॥

[७९३] समर=स्मर, काम । नवसत=सोलहो शृंगार ।

कानरो] (७९८) [चंपक

जिन तुम पाइ लिये जिय ही मैं ते कित औसर खोवत ।
तुम जे जगाए ते क्यौं सोवत ।
लीला लोभ लगैंहूँ नेही अँखियाँ रूप समोवत ।
व्रजमोहन आनँदघन प्यारे तारे अंतर गोवत ॥

परज अरगजा ख्याल] (७९९) [मूलताल

लगन की बात अटपटी है ।
जब तैं निरखे व्रजमोहन चित चोंप-चटपटी है ।
आँखिनि के घालैं घर मैं दिनराति खटपटी है ।
लख्यौ चहति वह मोहन - बानक प्रेम-लटपटी है ।
सुंदर वर औसेरनि हियराँ निपट भटभटी है ।
आनँदघन पिय दरस-पियासनि डीठि रहचटी है ॥

(८००)

एक सरक दुहुँ ओर सलै ।
व्रजमोहन सौं हिलग राधिकै राधा-रस घनस्याम पलै ।
व्रज-बीथिन व्रज-बगर द्योसनिसि मन मैं मिलन-विचार ।
अति रसभरे खरे प्यासे मिलि अचरज प्रेम-विकार ।
इनकी दसा कहत नहिं आवै मति-गति अति जड़ होति ।
देखत सुनत थकित जड़ जंगम चकित निहारत जोति ।
अति रसकंद अमंद प्रेमनिधि राधा - मोहनलाल ।
आनँदघन व्रजवन जमुनातट सुखसमाज सब काल ॥

राग] (८०१)

आय आय कै निकसि जात हौ मोहन मन की गह तैं ।
अति अटपटी चटपटी बातैं बनत नाहिं कछु कहतैं ।
जोगी की गति गहैं वियोगी सुरति साँस - आधार ।
जब दरसौ तब की तुम जानौ निरमोही निरधार ।
दीसि परे सब भाँति दूभरे दृग मन कौं समझैये ।

[७९९] रहचटी=मार्ग चाटनेवाली, मार्ग देखनेवाली। [८०१] गह=पकड़ ।

बिन सूझैं बिन बूझैं हो हरि आसनि जीव जिवैयै ।
अति उदार ब्रजचंद छबीले या निबाह त्यौं हेरौ ।
बहक्यौ बह्यौ रहत ज्यौं सोचनि उरझनि आय निवेरौ ।
ब्रजबन जित तित तुम्हैं निहारैं हाथ कहूँ किनि लागौ ।
बनवारी पुकार सुनि लीजे सोवत से कहा जागौ ।
मतौ रावरौ छतौ छलनि सौं ढिग बसि रहौ अलग से ।
नेही ह्वै करि निबटे ग्यानी परखि परे नव नग से ।
दया लेहु तौ देहु दरस जू अरस करौ जिन हाहा ।
जीवनधन तुम बिना जियैं अब कहौ कौन सौं लाहा ।
ज्यौं बिधि बिचारौ तुमहीं सब लायक सब जानौ ।
लीला-गुन सुनि बसैं बास हूँ इतनौ नातौ मानौ ।
प्रीतम तें परमातम ठहरे यह धुरि ही तैं ठानी ।
सोई गति लें मिलत आजु लौं प्रानिनि के सुखदानी ।
देखैं जियैं तिन्हैं ये बातैं कहौ कौन बिधि पावैं ।
गाथा गनैं तिहारी कौ लौं थाह न क्यौं हूँ पावैं ।
आसा कैं आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ ।
ब्रज-बीथिन भटकाय भली बिधि अटक-भटक मिलि जैहौ ।
हरौ सूल सुखमूल साँवरे सुंदर जग-उजियारे ।
आनँदघन इक बरन जानि कै सरस करौ दृग तारे ।
अचरज ही सौं भरे भावते सुनि सुनि बढ़ौ उमाहैं ।
आस लगाएँ अलगनि गाहैं आँखैं देख्यौ चाहैं ॥

सारंग] (८०२) [इकताला

ब्रज के द्रुमनि निहारि रहौं ।
इनहिं देखि जो कछु देखति हौं सो धौं कहा कहौं ।
स्याम सुजान रसिक ब्रजमोहन बैस लहलहनि बाढ़े ।
मुरली-धरैं दृगनि के उत्सव इन तर देखति ठाढ़े ।
मौरे आँब कोकिला-कूकनि लेति करेजो कोरैं ।
यह बैरिनि बसंत मैं अधिकी आगम धरति मरोरैं ।

दरसन लगे स्याम चिकनाँहीं प्रान सजीवन सौंहीं ।
ये बदरा याँ चढ़े मूढ़ पै बरसि लगावत दौंहीं ।
सघन तरुन पर नवघन झूमनि मनहि चुराएँ लेति ।
बीच बीच चपला चमकनि को जानैं कहा सुधि देति ।
घन-घमँडनि व्रजवन छबि-राजनि नैननि भरौं हमारैं ।
आनँदघन औसर की सरकनि जीवन सहित सहारैं ॥

धनासिरी] (८०३) [चंपकताल

यह सुख जनम जनम एहो मोहि देहु ।
गुन गाऊँ व्रजनाथ रावरे व्रजखरिकनि खोरिनि मैं गेहु ।
व्रजलोचन व्रजवासिनि मैं बसि सूझि परै या व्रज को नेहु ।
दीन पपीहा ढुरि बरसौ कृपादृष्टि आनंदमेहु ॥

सारंग] (८०४) [इकताला

जमुना देखी देखी भावैं ।
देखत देखत राधा-मोहन रंग-तरंग दिखावैं ।
देखी कहौ यहो यों देखो देखैं ही बनि आवैं ।
याहि देखि आनँदघन घमँडनि उघरि उघरि झरि लावैं ॥

राग सारंग] (८०५ [चंपकताल

नंदनंदन सौं नैन लगे री ।
अब नहिं रहत दहत देखैं बिन बहत नीर निसिद्यौस जगे री ।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति ललित त्रिभंग हिये मैं खगे री ।
आनँदघन-हित प्रानपपीहा मिलन-प्यास-बस बिरह दगे री ॥

काँनरौ] (८०६) [चौताला

हरिकथा-रस के सवादी संत ।
मेरैं जान पुरान बेद मत तेई महा महंत ।
धनि सुकदेव परीछत राजा दोऊ भाग-अनुराग-वंत ।
आनँदघन रसभीजो देखियत इनको महिमा अनंत ॥

भैरव] (८०७) [मूलताल

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवनप्रान ।
राधारसबस राधासरबस राधारंगी रूपनिधान ।

राधारंजन राधाअंजन राधाप्रीतम राधामान ।
आनँदघन राधा-हित-चातक मुरलीधर राधागुन-गान ॥

सारंग] (८०८) [इकताला

भागनि भरी जसोदा मैया मन को मोद कहाँ ।
गोद लियेँ लालहि दुलरावति यह सुख देखि रहाँ ।
याही के पायनि प्रसाद को लेस असेस लहाँ ।
गोकुलचंद नंदनंदन को निसिदिन उदौ चहाँ ।
नव सुकुमार बैस मनमोहन ब्रजजन - जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहि सपूती देति पयोधर - पान ।
सुमकत पियत जियत अरु ज्यावत जननी-जिय-आधार ।
प्रबल मोह की उमँग - तरंगनि द्रवित दूध की धार ।
झाँपि लेति आँचर सोँ स्यामैँ निधरक सकति न चाहि ।
अतुल अगम क्योँ बरनि बताऊँ हित-गति अकथ कथाहि ।
नंदघरिनि की भागनिकाई सुत लखि कही न जाई ।
अतिलड़हूँ चिर जियौ सभागो ऐसी जननी पाई ।
नित मैया की मया मनाऊँ आऊँ देखन दौरि ।
कुलमंडन की नित न्यौछावरि पाऊँ गाऊँ पौरि ।
चहल-पहल गोपी-समाज की बालविनोद - कलोल ।
सुख - सिहानि जसुमति हिय समझै सुनत तोतरे बोल ।
दिन त्यौहार महर के आँगन अचरज रूप निहारैँ ।
मुदित महत महतोनि सबनि के मन कौँ रहति सम्हारैँ ।
दामोदर सावित्री को सुख लाड़िलहूँ हटि जाचै ।
उन बातनि बड़भागिनि मैया कुँवर कौतिकन राचै ।
सुत-हित-चोँप-चाय सोँ भीजी आनँदघन झर लाग्यौ ।
जसुमति-कूख सदा सुख सीतल सब ब्रज हित अनुराग्यौ ॥

सारंग] (८०९) [मूलताल

हरि राधा को रस गावै, ऐसी रसना को पावै ।
कोटि कोटि कंदर्प - दर्प हू लहत न लेस गावै ।

अकथ कथा अनुमान न आवै बानी कैसैं बरनि बतावै ।
आनँदघन अभूत दामिनि मिलि अचरज ही बरसावै ।
दंपति एक कृपा दरसावै ॥

कानरो] (८१०) [इकताला

जिनके मन हरि - अनुराग रचे ।
अति रसमगन भए लीलाबस नैन स्वरूप खचे ।
ब्रजबन केलि सदा अवगाहत बोलत बचन जचे ।
जमुनातीर बास करि निहचैं भावतरंग मचे ।
महामधुर रसरासि रसिकजन अनमिल संग सचे ।
सजल नैन अभिलाषनि प्यासे बिरह - बिकार रचे ।
घूमत रहत एक जक लागी मादक मधुर अचे ।
पूरे अति सूरे भ्रम चूरे पन पकि नाहिं कचे ।
वृंदावन आनँदघन घमँडे दुरि घुरि उघरि नचे ।
अति उन्नत पद पाय निरंतर कहूँ न लोभ लचे ॥

कानरो] (८११) [चौताला

मेरैं कौन काम हौं हूँ काम कौन की ।
नँदनंदन सौं उरझी अब तौ नाहिंन ओर हौन की ।
ह्वै ही गई साँपसूँघी सी सिख-बिष लागि गति गही मौन की ।
प्रानपपीहनि चाँप - चटपटी आनँदघन अचौन की ॥

कानरो] (८१२) [मूलताल

मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं, नंदमहर के कान्ह अचगरैं ।
धरम धीर कैसैं धौं साधौं सुर की संग लगी हौं ।
मोहन-मूरति आँखिनि आड़ी याही तैं निसिद्यौस जगी हौं ।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ॥

परिशिष्ट

गोवर्धन-पूजन] (८१३) [झपताल

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद वृषभानु परिकर-सहित देखौ ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहत यहि पूजि सब लेखौ ।
कान्ह कुल-मंडन थप्यौ उथपि अमरपति प्रगट दरस्यौ देवगिरिवर सुबेखौ
आनँदघन नँदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत बिसेखौ ॥

वेणु-नाद] (८१४) [जात्राताल

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे ; अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी ।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे ।
जब तैं सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे ।
अपने पपीहनि ज्याय लीजियै आनँदघन रस राखि सुखारे ॥

रूप-माधुरी] (८१५) [आड़ो चौताला

नित आइबे की गैल ।
रहत गाहत गहत बहियै सब समै ब्रज-छैल ।
लखी बारक कोऊ निकसत बदन आभा फैल ।
चाँपि चोप चकोर की, चख भए रूप - अरैल ।
अब कहा सोचति सखी सुनि मची आरति - ऐल ।
मुरलिका कल बिकल धुनि की, जाति समझि हठैल ।
जो कहूँ जिय रीझि भीजो दूरि करि हठ मैल ।
उघरि मिलि आनंदघन सौं कौन की सु दबैल ॥

दानलीला] (८१६) [रामकली, इकताल

गोरस जौ चाहौ तौ दीजियै जो रस चाहौ सोऽब दियौ क्यौं जाय ।
देखि बिरानी धरोहरि पैं मन बहकावै ऐसो ढीठ न काहू सकाय ।
औरनि तौ सो हूँ सौं उरभत नित-नित कैसैं निबहियै हाय ।
आनँदघन रसचाहनि घमड़्यौ कोऊ काहू दिन देहिगौ समझाय ॥

८१५—कोऊ—कोई (वृंदा०) । ८१६—काहू—कान्ह (सतना) । देहिगौ—देहँगौ (वृंदा०) ।

[८१५] अरैल=अड़नेवाले । ऐल=अधिकता ।

(८१७) [मूलताल

बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि साखौंगो ।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब दैहु जोइ जोइ अभिलाखौंगो ॥

(८१८) [जाबाताल

रहौ जू रहौ गहौ आपनी गैल भए रसिया दान के ।
ओटपाव के दाव चाव रचि घेरत हौ अबलानि आनि भरे जोबन गुमान के
बढ़ि बढ़ि बालत ऐंड़े डोलत लोभी हौ रसपान के ।
आनँदघन रसबादनि बनए मिस ही मिस ढिग ढूकै आवत गिधए आन के

विरह-संदेश] (८१९) [मूलताल

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसौं कहा कहियै ।
तिहारी ओसेरनि कैसैं सहियै मनहिं मसासनि गहियै रहियै ।
तुमहिं न सोच कछू काहू को जाहि लगी जानति है बहियै ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तब अब यौं दुसह परेखनि दहियै ॥

खंडिता] (८२०)

छाड़ौ जू तुम छाड़ौ मेरी बाँहा ।
भोर भए रसबाद करन कित आए मोसौं हाहा ।
आनँदघन घुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहू सरसे काँहा ।
तहीं जाउ जहाँ पायौ है नयो लाहा ॥

(८२१) [आड़ो चौताला

गोरे बदन बिथुरे केस ।
रैन जागे मैन-पागे नैन अरुन सुदेस ।
मृदु कपोलनि पीक-लीकैं भाल स्रमकन-लेस ।
मुदित आनन-कांति पर बलि करौं नव राकेस ।
अंग-अंग प्रति भोर छबि की, बनो सहज सुवेस ।
निरखि दुति आनंदघन-दृग भयो चैन बिसेस ॥

८१९–तारे–हारे (वृंदा०) । ८२०–छाड़ौ जू–छाँड़ौ जू (वृंदा०) ।
८२१–नव–बहु (वही) ।

वियोग-व्यथा] (८२२) [रूपता

ढरकि ढिग आवौ लाल ढरारे मोहन स्याम उज्यारे ।
दूर भजैंऊ भजति भाव तैं क्यौं हित बोलि बिसारे ।
मन उरझ्यो हो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै चातक-प्रान बिचारे ॥

उपालंभ] (८२३) [तालयात्र

जमुना-तीर की बातैं ।
सालति हैं हियैं स्याम उज्यारे सरद की रातैं ।
को जानत हो ऐसैं करौगे ब्रजमोहन घातैं ।
आनँदघन रस-रीझनि भीजे कहियत है यातैं ।

नयन-बाण] (८२४) [चौताल

मृगसावकनैनी री तैं कृस्नसार नंदकुमार मोह्यौ ।
मोहन लयौ लगाय लगौंहीं मदन-पारधी की भेदनि
ललचौंहीं अँखियन जोह्यौ ।
वृंदावन जमुना के तीर हरियारो ठावँ तहाँ टोह्यौ ।
आनँदघन हित पारि छंद-फँद बिषम बान सौं मरम पोह्यौ ॥

यमुना-महिमा] (८२५)

सरस दरस जमुना को पाएँ परम प्रेम-परस पाइयै ।
भाव-लहर-बढ़वारि होति हिय राधामोहन गाइयै,
अपूरब रस मैं न्हाइयै ।
वृंदावन सोभा की सीमा थकि थकि याही कौं धाइयै ।
आय तीर सब पीर बहाइयैं आनँदघन छाइयैं ॥

विरह-संदेश] (८२६) [तालजा

लागी है रे निरमोहिया तोही सौं जिय की लाग ।
घर मैं बैठि कहाँ लौं नाधौं या बिरहा-बैराग ।
अब तौ सब दर टारि सदा सँग बिहरौंगी बन-बाग ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन उचित न क्यौं हूँ त्याग ॥

पूर्वराग] (८२७) [इकताल

जमुना-तीर कान्ह डोलै है। भेदभरी बाँसुरी पै मोहिं बोलै है।
सासु-डरन साँस भरौं छतियाँ छोलै है।
प्रान प्यासे आनँदघनहिं मिलवै कों लै है॥

निर्मोही प्रिय] (८२८) [तालजात्रा

कहा बनि आई रे जियरा ! तोहि करि निरमोही सौं मोह।
अब तो आनि परयो कितहूँ तें बैरी बीच बिछोह।
काहे कों पछितात परेखनि तें हो कियो अपनो हित टोह।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुंबक तू लोह॥

मुरली-माधुरी] (८२९) [मूलताल

सुधियौ न रहै तन की तनको मनको मुरली की सुनत ही कान।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान उत चाहत चलि जान।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि ससकत न सकत उठि, मगन-गान।
आनदघन पिय को मिलन अभिलाखत सुर-विमान चढ़ि कौन
सुकृत-अभिमान॥

खंडिता] (८३०)

तिलक महावर को अति सोहै।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हूँ तैं मोहै।
मूड़ चढ़ाय लई अनुरागिनि अब ताकी पटतर कौ को है।
ऐंड़ि भाग उनयो आनँदघन उघरी परत अहो है॥

दधिदान] (८३१) [रूपताल

एँड़ी ऐंड़ी सिर धरैं दहैंड़ी।
अब सब दिन को दान कान्ह को देत बनै है लखि पाई गिरि-छैंड़ी।
रूखी परिखत रीति ग्वारि कित बहुत बार यौं गई अमैंड़ी।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मचिहै दधि की उरैंड़ा-बरैंड़ी॥

[८३०] बानिक=सजधज। पटतर=समता। ऐंड़ि=ऐंठकर अर्थात् भली भाँति। उघरी०=रहस्य की बात उद्‌घाटित हो रही है। [८३१] ऐंड़ी=अभिमान से टेढ़ी। दहैंड़ी=(दधिभांड,) दही की मटकी। छैंड़ी=घाटी,उपत्यका। अमैंड़ी=मर्यादा को न माननेवाली। उरैंड़ा=(उलेड़ना) अभिमान से बलपूर्वक गिरा देना।

प्रेम की रहन] (८३२) [चौताल

नेही सो विदेही और जग माँझ कौन है।
विरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,
नाहीं कछु कहै जाके सम बन भौन है।
जीवत अदृस्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौं यह लौन है।
बृंदावन - प्रभु प्यारो वस्यौ रहै नैनन मैं,
देखन कौं बावरो सो भयौ फिरै मौन है॥

मन की बात] (८३३) [इकताला

मन की बात नहीं जानै री, जब तैं देखे मोहन सोहन स्याम।
कैसैं रहौं कहौं अब कासौं को अब मानै री।
उर अरि रही रसीली मूरति प्राननि छानै री।
चातक - रट लागी आनँदघन पानै पानै री॥

रूपमाधुरी] (८३४) [रूपताल

मोरचंद्रिका सीस धरैं यह साँवरो चेटक है धौं को।
पैंठि परत आंखिन हैं अनेरो याहि निरखि पन लैं निबहै धौं को।
फिरि याकी मोहन मुरली सुनि धीरज धरि धरि तरुनी रहै धौं को।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौं को॥

विरही कृष्ण] (८३५) [मूलताल

राधा राधा रीमैं स्यामैं घर राधा बन राधा।
चायनि भरि गायनि लैं निकसत दुरि मिलिबे की साधा।
ब्रज बसि कैसैं बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा।
आनँदघन चातक लौं जीवत रसबस प्रान समाधा॥

[८३२] विदेही=देहाध्यासशून्य। जीवत०=अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएं खाता है, पर उनका स्वाद नहीं जानता। [८३३] अरि=अड़कर। छानै=छाँधती है। पानै=पानी। [८३४] चेटक=जादू। धौं को=न जाने कौन। अनेरो=अनोखा। [८३५] साधा=इच्छा। समाधा=समाधान।

(८३६)

मंजन करि कंचन - चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरी ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरी ।
लाल-जटित वर भाल सुबेंदी कछुक रसौं फबि माँग सिंदूरी ।
आनँदघन प्यारी - मुखछबि पै वारौं कोटि सरद - ससि पूरी ॥

यमुना-महिमा] (८३७) [राग टोड़ी

कृस्न-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस
परस सरस करत हिय नैननि बैननि ।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि ।
वृंदावन विनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि ।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमँडि घमँडि बसत
लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि ॥

मोहन-रूप] (८३८)

तेरी लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे ।
ब्रजमोहन रस - भीनी मूरति लगति प्यारी रे ।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे ।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकविहारी रे ॥

उपालंभ] (८३९) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिद लगी वे तैंडी नाल ।
वेखणी कारण तपदी वे कान्ह वेखि असाडे हाल ।
तुझ लग मैंडा कुझ वस नाहीं चलदा ज्यौं भी त्यौं भी करी वे वेहाल ।
आनँदघन हुण वंदियाँ विचारियैं याँ जानी वे तुसाडे ख्याल ॥

८३९—लग-गल (लगना) ।

[८३६] चूरी=कलाई पर के कड़े । बेंदी=माथ पर पहना जानेवाला गहना । [८३७] ऐन=अयन, घर । [८३८] वारियै=निछावर होना ही । जियारी=जिलानेवाली । [८३९] निमाणी=मनमानी करनेवाला । वेखणी०=आपके दर्शन के लिए । तपदी=तपती हूँ । वेखि=देखो । असाडे=हमारे । मैंडा=मेरा । कुझ=कुछ । हुण=अब । वंदियाँ=दासियाँ । तुसाडे०=तेरे विचार ।

गोपिका-प्रीति] (८४०) [इकताला

गोकुल की नारि नवल अनुराग-भरी रहैं स्यामसुँदर
देखन कौं दिनदिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवतिं जियतिं आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीं।
इनको सुख येई पै समझतिं रहि न सकतिं उन देखे बिन हीं।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं॥

पूर्वराग] (८४१)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुँदर ब्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखें नहिं चैन सखी री निसदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

कनड़ी बिलावल] (८४२) [मूलताल

बंसी बजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति ही सो ही इकौसैं औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय परयौ है जैसैं भँवर जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघनताननि बिष बाननि बरसैया॥

(८४३)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लै भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि परयौ ब्रजमोहन ठाढ़ौ गहैं तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनँदघन ये पनघट के हाल॥

धेनुचारन] (८४४) [राग कान्हरो

कहा बिष घोर्यौ है बंसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसवादी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौं करि देख्यौ कसु री मैं।

८४३—गई—उठोंग (संग्रह)।

[८४१] कुहुकि=चिल्लाकर। [८४२] इकौसैं=एकांत में। गहर=गहराई। जाजरी=टूटी-फूटी।

एक गाँव बसि कैसें भरियें कठिन कसक पँसुरी मैं।
अब आनँदघन उघरि पुरौंगी लैहौं यह जसु री मैं॥

पूर्वराग] (८४५)

बनवासी कान्हा चित्त चढ़्यौ री, तातें मोहिं घर-अँगना न सुहाय।
सुधि बुधि सोधि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवै घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलें बनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय॥

कानड़ा बिलावल] (८४६) [मूलताल

रंगी साँवरिया तेरी बनक न बरनी न जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन घाली आय।
रहि न सकौं मिलि सकौं न घर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचति रहौं कछु न ठिक ठहरै अरु कछुवै न बसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जनि तरसाय॥

वेणुवादन] (८४७)

बैन बजावै बनमाली अरी हौं कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोहन पर्यौ सखी ब्रजमोहन ताननि बेधत मरमैं।
कैसें रहौं कहाँ लौं साधौं टारत धीरज - धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा-झर मैं॥

पूर्वराग] (८४८) [राग कान्हरो

कहि सुघर सनेही स्याम मिलगे कब री।
हेली, मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत है निकसे जब री।
कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।
उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझौ लै मिलि काहू ढब री॥

८४६-जनि-जिय (सतना)।

[८४४] कसु=खींच-तान। भरियें=सहूँ। [८४६] घाली=आघात किया। [८४७] मरमैं=मर्मस्थल। झुरसति=झुलसती हूँ, जलती हूँ। [८४८] दब=दाव। भरम=भेद, रहस्य। ढब=ढंग, तरीका।

उपालंभ] (८४९) [राग कान्हरो

निमाणियाँ दी बस्ती, वो होवे चंगी रहै, तैंडो जान ।
एसी वे तुसाडे दरस-भिखारी, होवे सौदा दस्त-ब-दस्ती ।
तैंडे वे कारणँ फिरणे दिवाने हुसन-परस्त अलमस्ती ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे तलब दी मस्ती ॥

पूर्वराग] (८५०)

जेमन करिया कान देखि, सेई करिबो, प्रान-सखी बिसाखा
बिनती मनैं धरिबो ।
बाँसी-धुनि सुनि सुनि आछै बिकार, मदन-अनल जाला अंतर मझार ।
स्यामे रस रस कथा बूझिते ना पारी, आनँदघन ब्रजमोहन बिहारी ॥

राग कानड़ो बिलावल] (८५१) [मूलताल

हो जी साँवला थे तो भला बिलमाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी बाट जोकाँ थे ओठे भर
लाया, नहीं आया, परचाया ॥

पूर्वराग] (८५२)

एक ही नगर बसत बनमाली पैं मेरी आली आँखि लौं आँखि न दीसत ।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक बधिक हू तैं प्रान परेखनि पीसत ।
निकट आय मनभायौ करत किन, दूर तैं क्यौं बिष - सरनि कसीसत ।
आनँदघन सब बिधि वे सुखी रहौ निसिदिन जात असीसत ॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (८५३) [सारंग, झपताल

गिरिराज-कंदरा-मंदिर अमद अति मंदार-तरुबृंद-आवृत बिराजै ।
सुरभि-संज सौरभ सकल सौंज अनुकूल अनुचर-निकर बर प्रमोद सौं साजै ।

८४९—चंगी—चंगी (सतना) । ८५०—मुनि०—सुनियो या छविकारी (सतना) ।
अनल०—अनी अंतर मा तारी (वही) । ८५१—बिलमाया—बिप बसाया (सतना) ।

[८४९] चंगी = रंगीली । दस्त० = हाथोंहाथ । हुसन०=प्रेम साधक । अलमस्ती=मौजी । तलब० = नशे की । [८५०] जेमन० = जिस प्रकार कृष्ण को देखा वही करेगी । बूझिते०=समझ नहीं सकती । [८५१] थे=आप । ऊभी=खड़ी । बाट०=मार्ग जोहती हूँ । ओठे=यहाँ । परचाया=वहीं फँस गए । [८५२] असीसत = कोसते हैं ।

कृस्न वृपभानुजा-संग विहरत जहाँ समै-रुचि साधि कै करत हित-काजैं।
जयति गिरिनाथ ब्रजनाथ-हिय हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजैं॥

वृंदादेवी-स्तुति] (८५४) [सारंग, चौताल

वृंदादेवी वृंदावन-सेवी राधा-मोहन को हितकारिनि ।
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए बिहारी-बिहारिनि ।
मोहिं मिली महामंगल-स्वामिनि निज बनवास-आस-पन-पारिनि ।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनैं प्याऊ सब ही
विधि है अंतर को ताप निवारिनि ॥

वेणुवादन] (८५५) [सारंग, चौताला

निकसि निकसि मन तन तैं बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा बनि आई।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत नाहि रहाइ यौं बौराई ।
घर मैं रहै कहा याकौं घर बन ठहरयौ सासु ननँद न्याय रहत रिसाई ।
आनँदघन - हित अँसुवनि भीजी सोचनि सूखति मेरी माई ॥

चेतावनी] (८५६) [पूरबी, झपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है संसार ।
हरिचरनन चिंतवन करि निरंतर जिन ही लावै बार ।
छिनहीं छिन जात वै बीति यौं चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार ।
आनँदघन - चरित अमृत - रसधार करि पान है अमर निरधार ॥

पूर्वराग] (८५७) [इकताल

गुजरिया गुपाल के रंग बीधी मोहन लागियै डोलै ।
करति नहीं कुलकानि तनकहूँ जोबन-रूप-छकी सु गुमान भरियै न बोलै ।
ज्यौं ज्यौं चलत चबाव चहूँ दिसि त्यौं ही त्यौं रस-सिंधु कलोलैं ।
आनँदघन मुखचंद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारै अति अनुराग अतोलै

८५६-लावै०-लगावै पार (वृंदा०) । ८५७—रंग-गुन-(वृंदा०) । सु-अतिहि । अति-उर (वही) । अतोलै-हितोलै (सतना) ।

[८५३] मंदार=कल्पवृक्ष । आवृत=घिरा । सौंज=सामग्री । निकर=समूह । समै०=समयानुकूल । [८५६] सार=तत्त्व । जिन ही०=देर मत कर । वै=वयस् । [८५७] गुजरिया=(गुर्जरी) गोपी । बीधी=(विद्ध) रँगी । कलोलैं=लहराती है अर्थात् स्नान करती है । तोलै=अर्थात् साधती है ।

नयनोक्ति] (८५८) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखैं बिन न रहति ।
सब मिलि देत बहुत बिधि सिख सखी ये अमेड़ तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भीजी रीझी ओसेरनि जल बहति दहति ॥

विरह-व्यथा] (८५९) [राग सारंग, तालजात्रा

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन बल ना ।
घर-अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना ॥

पूर्वराग] (८६०) [मालव, मूलताल

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैं ।
लाल गरथारैं बोल सुनायौ प्रान परे अरबर मैं ।
निपट अटपटी पीर सखी री को पावै या मर मैं ।
आनँदघन ब्रज रस-झर लायौ हौं ही बिरहा-झर मैं ॥

पूर्वराग] (८६१) [गौरी-ईमन, रूपकताल

आई री बहुरि दुखदाई साँझ ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तें बनत बनबारी सौं अब
ताहू मैं परी है लाँझ ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सों भाँवरि भरन- गलीनि माँझ ।
झाँह - छिवन दूभर आनँदघन इनर देहरी करत झाँझ ॥

[illegible]] (८६२) [राग गौरी, इकताल

मुरली मैं कौन ठगौरी है ।
स्रौननि सुनी तनक मनकौ जिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है ।

८५९—[illegible] (वृं०दा०) । ८६१—[illegible] (वृं०दा०) ।

[८५८] अमेड़=मर्यादा को न माननेवाली । न चहति=नहीं देखती । ओसेर=लालसाजन्य पीड़ा । [८६०] गरथारैं=गली में । अरबर=मुश्किल । बिरहा=विरहाग्नि । [८६१] लाँझ=(लंघन) बाधा । छिवन=छूना । दूभर=कठिन । इनर=ओर, सिरा । देहरी=देहली के पास, निकट ही । झाँझ=शोर ।

उठि उठि चलत न रहत भवन दृग लागी देखन की ढौरी है।
आनँदघन पिय की प्यारी यह हम ही सौं अति खौरी है॥

चेतावनी] (८६३) [राग गौरी, इकताला

मन ! बन तैं बाहिर जिन जाय।
राधा-हिलन-मिलन-सुख स्यामहि पुरवत यहै बनाय।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तैं निपट सहाय।
तरु-तरु लता-लता मैं दरसत भरयौ सुदंपति-भाय।
याही मैं भाँवरी भरयौ करि बिनवत हाहा खाय।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि रस लै प्यास बढ़ाय॥

वन-विहार] (८६४) [गौरी, इकताल

गोकुल घाँ के ग्वार, डगर बताइ रे हौं भूली।
बिछुरि परी सहचरिन संग तैं डोलत बन किलकाइ रे।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दीनी गैल जताइ रे॥

रूपमाधुरी] (८६५) [तालजात्रा

अरे अरे साँवरे तैं, कहा टोना कीनौ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक बदन रँग-भीनौ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन तो पर सरबसु वारनै दीनौ॥

प्रेम-मिलन] (८६६) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया।
खरी पियासी आँखड़ियानूँ जोय-जियावन दरस दिया।

८६४—किलकाइ-वित जाइ (वृंदा०)।

[८६२] ढौरी=धुन। खौरी=बुराई। [८६३] बन=वृंदावन। पुरवत=पूरा करता है। बनाय=भली भाँति। निसि तैं = रात होते ही। सहाय=सहायक। हाहा खाय=दीनता दिखाकर। [८६४] घाँ के = ओर के, वाले। किलकाइ= चिल्लाकर। [८६५] गौरी०=गौड़ी रागिनी बजाते ही। घूमरे=नशीले।

उमरदराज गरीबाँ दी वस्ती कीती महर सवाब लिया ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरबानी मुख वेखि जिया ॥

उपालंभ] (८६७)

घनस्याम पियारे ये बातैं ।
मन औरैं मुख और बतावत छाँड़त नाहिं कपट की घातैं ।
काहू पै दिनहीं झूमत हो काहू पै त्यौं बितवौ रातैं ।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैं का तैं ।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हो तातैं ।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम ही मँडरातैं ॥

श्रीराधा-चरण] (८६८)

मृदु तरवनि मैं लसति ललाई ।
झमकि जहाँ पग धरति लाड़िली मनहु अरुनता आनि बिछाई ।
महा रुचिर वर गोरी गुलफनि मुक्तावलि छवि रही सुहाई ।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई ।
जगमगि रही सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई ।
नवल अंग की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई ।
बिबिध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई ।
तव की कहा कहौं आनंदघन जब पिय-सँग निर्तति सुखदाई ॥

(८६९) [मूलताल

निहारी चलिया चवरि परो,
हाँ हो स्याम उज्यारे काहे कौं सौंहैं खात ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागी अनत फरो ।

८६८—झम०—जगमगाय (सुजा०) । पै—पुनि । अंग—नगन (वही) । नवल—सुन्दर (संग्रह) ।

[८६६] गसां=ग्रसित प्यासी आँखों को । उमर०=सर्दार उमरवाले । गरीबाँ=गरीबों की बस्ती पर । कीता-की । महर=कृपा । सवाब=पुण्य । कुरबानी=निछावर है । [८६७] का तैं=किससे । [८६८] गुलफ=पैरों के ऊपर की गाँठ । न्यास=पैर रखने की क्रिया । लेत०=बलिहारी लेते हैं । निर्तति=नाचती है ।

[सोहनी ताल

(८७०)

जिंद निमाणी ! तपदी, सौंहणा मुख वेखलामी जानी ।
ब्रजमोहन वे-परवाह गुमानी वो वो वो तैंनूँ तैंनूँ तैंनूँ जपदी ॥

[पूरवी, धनाश्री

(८७१)

नयनोक्ति]

देखन को फल हो मोहन देखैं ।
नातर खुला मुँदी ये कैसो आँखैं कौन धौं लेखैं ।
कहा तिलौंछैं पौंछैं अँगौंछैं रचि काजर की रेखैं ।
आनँदघन ब्रजनाथ दरस बिन भोजी बरति परेखैं ॥

[हमीर, रूपताल

(८७२)

गो-दोहन]

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार ।
हाथ दोहनी देत लेत धीरज न रहत फिरि हाथ ।
नई हिलग की चोप-चटक-बस चितवनिहीं मैं भरत बाथ ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ ॥

[हमीर कल्याण, इकताल

(८७३)

मातृस्नेह]

जसोमति आरती उतारै उमगि आपनो ज्यों वारै ।
चित चढ़ि रही ललन की बन तैं गोधन लै घर-आवनि,
अति आरति सौं वदन निहारै ।
लै बलाय, आँचर मुख पोंछति प्रेम-पुचकरनि बरसति प्यारै ।
दूधनि भरी सपूती या विधि आनँदघन-हित कान्ह पपीहे पारै ॥

(८७४)

व्रजदूलह]

झुरमुट लाग्योई रहै नित नँदरानी के आँगन ।
ब्रज की नवल वधू रँगभीनी, मोहन स्याम चितै बस
कीनी, आवत मिस लै लै कछु माँगन ।

८७२—लेत—लौहआ—(संग्रह) । ८७३—आपनो०—आपनपो (वृंदा०)

[८७०] जिंद=जिंदगी । सौंहेणा=प्रिय । वेखलामी=दिखलाओ । तैनूँ=तुझको । तिलौंछना=तेल से चिकनाना । अँगौंछना=गीले कपड़े से पोंछना । [८७२] बाथ=अँकवार । खिरक=गाय बाँधने का स्थान, गोठ ।

कौ लौँ दुरति सरक सनेह की हियरा बिध्यौ बिषम सर-साँगन।
दिन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, बँध्यौ
परम पन काँगन ॥

(८७५) [मूलताल

नैना तरसत हैँ, पिय - मूरति देखन कौँ।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उघरे बरसत हैँ।
लोक-लाज त्यौँ तनक न ताकत अति ही अरसत हैँ।
आनँदघन-हित प्रान - पपीहा पल पल तरसत हैँ ॥

प्रेम-पीड़ा] (८७६) [इकताल

कठिन हिलग की पीर दैया कासौँ कहियै।
बिन देखैँ मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैँ दहियै।
नित जित तित छूछे चवाव सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहियै।
आनँदघन पिय सौँ जु भैँट तनकौ कहुँ होइ तौ कहा चहियै ॥

(८७७) [मूलताल

भटू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौँ अरु वाकी
सी वाही सौँ कपट अटपटी बतियानि ठानै ॥

(८७८) [भूपाली

तिहारे देखे बिना मैँ कैसैँ भरौँ दिन-रतियाँ।
वैसैँ मिलौँ क्यौँऽब अनमिलौँ तुम्हैँ जो किये बिरह छत छतियाँ।
काहे कौँ मन मोहि लियौ तब कहि कहि कै हित - बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी वैलतियाँ ॥

८७४–बिषम–बिलस (सतना)। परम०–परसपर (वही)। ८७६–नित०–जितहि तितहि (वृंदा०)। ८७७–भटू–बधू। इतौ–मिता (वही)। ८७८–इतहू०–इत वरुनी (वृंदा०)।

[८७४] झुरमट = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [८७८] वैलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')।

लघिता] (८७९) [ईमन, मूलताल

अनखि अनखि ज्यौं ज्यौं बोलै री लड़ीली त्यौं त्यौं
मोहिं लगति अति नीकी ।
मो सी मनमेलू सौं रूखी परति अचगरी निपट पुढ़ाई ही की ।
हौं तेरे नैननि बैननि हूं समझति सब जु कसक है जी की ।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई रिझई तू सुधि
करि लै सीबी की ॥

युगल-जोड़ी] (८८०) [ईमन, इकताल

कान्ह है गोकुल को, राधा बरसानेवारी ।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस विरंचि-सँवारी ।
धुर की लगनि लगी अति गाढ़ो बाढ़ी चोप-चटक जो प्यारी ।
नवल नेह रस-झर आनँदघन लाग्योइ रहत सदा री ॥

पूर्वराग] (८८१) [ईमन, इकताला

लालची नैन हमारे देखैं बिन न रहैं ।
अपनो सो बरजति बहुतेरो ये तनको न गहैं ।
मन हरि-हाथ दियौ लै इनहीं अटपटि चोप चहैं ।
आनँदघन रस चाखि बस भए सबके बोल सहैं ॥

पूर्वराग] (८८२) [ईमन, जात्राताल

अणी मिठबोलणा यार निमाणी दा ।
इत बल आँवदा कूक सुवणाँवदा महरम-हाल दिवाणी दा ।
मुरली वजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ-विकाणी दा ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ बंदी कुरवाणी दा ॥

८७९—पुढ़ाई—लुटाई (सतना) । ८८०—बरसाने—रावल (वृंदा०) ।

[८७९] लड़ीली=लाड़िली, आनबानवाली । मनमेलू=मन मिलानेवाली, हितू । अचगरी=छेड़छाड़ । सीबी=शीत्कार, सी सी । [८८०] धुर की=चरम सीमा की । [८८१] बोल=बात, व्यंग्य । [८८२] अणी=अरी । बल=ओर । मरहम-हाल०=मुझ दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है । प्यारिया=प्यारा ।

(८८३) [ईमन, मूलताल

तू की जाणदा वे हाल निमाणिया व्रजमोहन आनँदघन वेपरवाह।
ताती वात न लागै तैंनूँ प्यारे बुरी बे गरीबाँ दी आह वाह वाह॥

(८८४) [ईमन, चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं बनवारी।
श्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौं वारी।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति दसौ दिसा अँधियारी।
आनँदघन रसपान करन हित चित चातक-व्रतधारी॥

पनघट-लीला] (८८५) [ईमन, रूपताल

ए गागरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै।
दीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तैं नहिं चैन बितै।
वीर कहा कहौं पीर मरम की चितवनि मैं कछु गयौ चितै।
अब आनँदघन पिय सौं मिलौं, ज्यौ सुख पावै ज्यौं इतै॥

पूर्वराग] (८८६) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखेँ रह्यौ न जाय।
सुंदर वदन-सुधा-पान चसकैं चख रहे लुभाय।
कहियै कहा महा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय।
प्यासे प्रान रहत चातक लौं आनँदघनहिं मिलाय॥

पूर्वराग] (८८७) [तालजात्रा

तुमी सनु मोर मनुवा है, लागि रहिलौ ललना।
रूप-उजियारे निहारे विना सु परै निस-द्यौस कल ना॥

अभिलाप] (८८८) [कान्हरो, चौताल

मोकौं सरन रहौ राधे ये चरन तेरे लहौ मन-नैन इनहीं मैं बसेरे।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय-मन चोपनि एकटक हेरे।

८८६–रहत–रचत–(वृंदा०)।

[८८३] की० = क्या जानता है। ताती० = गरम हवा। गरीबाँ० = गरीबों की आह बुरी होती है। [८८५] आई० = धैर्य खो आई। नहिं० = चैन नहीं है। ज्यौ = जी, जीव।

परसन कौं तरसत रहत नागर भागनि चल अभिसरत सु नेरे ।
आनँदघन श्रीवृंदावन - अवनी - मंडन जीवन - धन हैं मेरे ॥

पूर्वराग] (८८९) [कान्हरो, मूलताल

स्याम सलोने सौं दृग अटके रोके रहत न घूँघट-पट के ।
रूप - रसासव छके न मानत वहुत भाँति हौं हटके ।
मोहूँ अपवस किये नचावत गोहन मोहन नागर नट के ।
आनँदघन इनकौं सिख ऐसैं जैसैं तुप लै फटके ॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (८९०) [संकराभरन, मूलताल

वृपभान - कुँवरि के चरन सरन - अभिलापा - भरन ।
सीतल-सुखद रसिक-मनरंजन कंज न ऐसे लसत वरन ।
श्रीवृंदावन-अवनी-मंडन रास-विलास-न्यास-गति-वितरन ।
आनँदघन कौं रसद विसदवर सदा विराजौ अभयकरन ॥

स्वादी लोचन] (८९१) [नायकी, चौताल

लोचन स्वादी हैं छवि - रस के ।
देखि देखि पिय - मुख सुख पावत त्यागी पलक - परस के ।
ताहो मैं मुसकनि - आसव छकि नाहिं रहे मो वस के ।
क्यौं कुलकानि करैं आनँदघन जिनहिं परे ये चसके ॥

अभिलाप] (८९२) [मूलताल

देखन न देहौं काहू कौं हौं आपने लाल पियारे को हौं ।
पलकनि संपुट करि राखौंगी रूप - उज्यारे को हौं ।
निधरक देखि न सकति दीठि डरि रहि रहि निकमति हारे को हौं ।
आनँदघन रसमूरति व्रजमोहन गुन - भारे को हौं ॥

८९०–वरन–सरन (सतना) ।

[८८९] रसासव = आनंद का आसव (शराव) । हटके = मना किया । अपवस = अपने वश में । तुप = धान की भूसी । [८९०] सरन० = शरणागत की । न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) मोक्ष देनेवाला है । [८९१] लागी० = पलकों का स्पर्श त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं । चसके = टेव, अभ्यास । [८९२] हारे० = विवश होकर ।

गिरि-धारण] (८९३)

आजु गिरि धारयौ हो ब्रजराज के लला ।
कहि न जात छल-बल की निकाई छबीली छिंगुनी-छोर छाजै ज्यौं छला ।
कछू न काहू को गयौ ब्रज नीकैं राखि लियौ भई है सकल बिधि भलो भला ।
अतिही चकित भयौ आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला ॥

प्रेम-वन] (८९४) [इकताल

उघरि उघरि मो हियँ बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा ।
ब्रजमोहन नवरंग छबीले तिहारी बातनि घातनि कौन छेहरा ॥

जन्म-वधाई] (८९५)

आजु बधावन, सुंदर बन घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे छेरवा ।
उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस राखिलौ नेह - मेहरवा ॥

स्मरण] (८९६) [केदारो, चौताल

तुम कौं जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं, तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम ।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि विरह - खोंप सीवत हैं ।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं ।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-वस प्यासन ही पीवत हैं ॥

प्रभावुकता] (८९७) [केदार, मूलताल

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि वोलनि गावनि ठगौरी ।
सब ही भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी ।
छिन-पल कल न परति बिन देखैं लगिय रहति निस-दिन यह ढौरी ।
चख-चातकन की तपति तबहिं तौ मिटै आनँदघन पिय दरसैं
बरसैं कहुँ जौ री ॥

[८९३] छला = छल्ला, अँगूठी । कला = विद्या । [८९४] नेहरा० = स्नेह का बादल; आनंदघन । छेहरा = अंत । [८९५] बधावन = बधाई, जन्म-बधाई । अइलौ = आए । छेरवा = बच्चा । रखिलौ = रखा । नेह० = प्रेम का बादल ; आनंदघन । [८९६] सुरति = सुध । टोहि = खोजकर । खोंप = फटा अंश, चीर । पलक० = निर्निमेष, रहते हैं ।

वेणुवादन] (८९८) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगाएँई डोलैं।
कहा करैं बपुरी व्रज-अबला, गरब-गाँठि गहि खोलैं।
धुनि सुनि और होति थिर चर गति, भोरी विचारिनि की मति कोलै।
आनँदघन हूँ भिजए रिझए क्यौं न बोल बड़ बोलैं॥

(८९९) [मूलताल

मुख मुरली मैं केदारो कैसैं गावैं।
जैसी जैसी जीव आवैं तैसी तैसी तानि भौंह दरसावैं
दृग-विलास देखैं भावैं।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहुँवैं रिझावैं।
आनँदघन देखत ही भीजी तू जानत है चित के चावैं॥

रासलीला] (९००)

रीझनि विवस भए रसरंगी मोहन राधा के गावत
हो रस-रास मैं।
सुरसवाद मन मोय गयौ मति-गति विथकी नैननि संग
आछे मुख-उजास मैं भौंहनि विलास मैं।
ऐसे रिझवार की मोहिं बलैया लागौं या समैं।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमँडि घमँडि हुलसौ
विलसौ वृंदावन जमुना-पुलिन प्रकास मैं॥

प्रवास-विरह] (९०१) [केदारो ख्याल, तालजात्रा

मारौ गरजि गरजि घन! मारौ जिया डरावौ
प्रीतम प्यारे विना मैं कैसैं भरौं हौं।
तैसियै निसि अँधियारी कारी तैसियै सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं॥

९००—बाद—बदन मोय गई (सतना)। की—वारि (वही)। ९०१—जिया—हो (सतना)।

[८९८] कोलैं=विह्वल हो जाती है। [८९९] केदारो=एक राग। [९००] उजास=उजाला। पुलिन=तट।

मानमोचन] (९०२) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उठि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहौं, ढीले ढीले॥

याचना] (९०३) [आड़ चौताला

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम-समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह ब्रज-युवराज।
अतुल आनँद-उमँग को कछु कहि न आवत बात।
बिवस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात॥

रूपदर्शन] (९०४) [बिहागरो, आड़ इकताला

रीझि रीझि मुख देखि रहै।
लाल लाड़िलो की छबि मोहै चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोय मन खोय जात है रूप-गहर की मिति न लहै।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दृगनि चहै॥

संघट्टन] (९०५) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रबीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखत दृगनि कुंज-गलियै जू।
आरति समझि गहर कित कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू॥

९०२–कसि०–स्यामा करि लैं अपने मन भाए (वृंदा०)। ९०३–बिवस–बसे (वृंदा०)। ९०४–मोय०–भोय भोय (वृंदा०)। ९०५–निहारत–नापत (वृंदा०)।

[९०३] अभंग=अखंड। [९०४] मोय=भींगकर। गहर=गहराई। मिति=थाह। [९०५] नाखत=डालते हैं। आरति=उत्कंठा। गहर=देर। अलियै=सखी ही। रलियै=क्रीड़ा ही।

जिज्ञासा] (९०६)

हौं तुम सौं एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरें हू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(९०७) [तानजाना

पुकारि पुकारि हारी हौ गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हौं बिलखाए
कंत ढरारे अंत कहा हौ लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसो हेत।
ओसेरनि हाहा जिन सुखवौ सींचौं आसा-खेत॥

युगल छवि] (९०८)

मेरी आँखिन सुख देवौ करौ रंगभरी जोरी।
स्यामसुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।
यहै सुरूप यहै जोवन धन यही रसीली बातैं।
यह बृंदावन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनके कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जियाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनही कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमड़ि सदा रस - संपति सरसौ।
दंपति की मधुर केलि ऐसँई दरसौ॥

प्रियागम] (९०९)

अहोणी, दिलजानी ढोलन पाया, रब कीता साडे रे दिल दा भाया।
ब्रजमोहन घन प्यारिया पपीहौं दे घर आया॥

९०८–जोवन०- गोबरधन (सतना)।

[९०६] अंतरपट=वस्त्र, परदा। नेह०=प्रेम बाँधते हो, करते हो। [९०७] ढरारे=ढलनेवाले। अंत०=प्राण क्यों लेते हो, मारते क्यों हो। सींचौ=सींचा हुआ। [९०८] कौतिक=कौतुक, खेल। दरसौ=दिखाई दे। [९०९] अहोणी=हे सखी। ढोलन=दूल्हा। रब=ईश्वर। कीता=किया। साडे०=हमारा मनचाहा।

पनघट-लीला] (६१०) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर ब्रजमोहन रस को प्यासो डोलै।
आनँदघन मोहियै भूम्यौ कहा कहौं चेटक चितवनि के सैनन ही बोलै॥

(६११) [परज; तालजात्रा

साँवला सोहणा मिठबोलन।
महरम दिलजानी भँउरा गुज्झ गलाँ दी घुंडियाँ खोलन।
जीव जिवाँदा गावँदा भावँदा आवँदा नी लटकेद्डा ढोलन।
प्रान-पपीहाँ दा आनँदघन रत्त- दिहाडे, छडिया कोलन॥

पूर्वराग] (६१२) [इकताला

निगोड़ो नेहरा बढ़ै।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढ़ै।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढ़ै।
हसि चितवनि कौंधनि आनँदघन मति-गति मोह मढ़ै॥

(६१३) [तालजात्रा

देख्यौ नेही नंदकिसोर।
हौं हूँ लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगौ जब देख्यौ याही ओर।
कैसैं अपबस राखौं अपनपौ है बरबट चित चोर।
अब आनँदघन उघरि घुरौंगी लै कर प्रान अँकोर॥

राधा रानी] (६१४) [मूलताल

वृंदावन - रानी राधा है।
रास-रसिक ब्रजमोहन पिय की पुरवनि साधा है।

६११—गलाँ—गुलाँ (सतना)।

[६१०] चेटक = जादू। [६११] सोहणा = (शोभन) सुंदर। महरम = मर्मी। भँउरा = भ्रमर। गुज्झ = गुह्य। गलाँ० = बात। नी = नु (निश्चयार्थक)। लटकेद्दा = लटक के साथ। ढोलन = प्रिय, पति। प्रान० = प्राणरूपी चातकों का। रत्तदिहाडे = रातदिन। छडिया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला। [६१२] रढ़ै = रटती है। [६१३] लई० = हृदय चिकना गया; प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया। बरबट = बरबस। अँकोर = भेंट।

याको छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है।
आनँदघन चातक-व्रत सेवत प्रेम अगाधा है॥

वेणुवादन] (६१५) [इकताल

बाँसली हे बीर! घणाँ दिन पाड़े छे।
भला घराँ रा माणसा नूँ कानाँ लागि बिगाड़े छे।
काँई कराँ, क्याँ बस नहिं चालै, घर बैठ्याँ नूँ ताड़े छे।
केड़े पड़ी रहै आनँदघन छानी बात उघाड़े छे॥

विरह-निवेदन] (६१६) [मूलताल

बिरहा ऐसी कै सताई जू निहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाड़े छति कौं।
स्यामसुँदर व्रजमोहन आनँदघन पिय तुमहिं
दया कबहुँ उपजै गति कौं॥

वेणुवादन] (६१७) [खंभायची, तालजात्रा

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनी मन मोहि लीयो छे।
तीखी तीखी तानाँ बानाँ प्राणाँ माहीं गैलो कीयो छे।
थे तो म्हारा रूड़ा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छे।
अब म्हानैं जग खारो लागै आनँदघन रस नीको पीयो छे॥

पूर्वराग] (६१८) [मूलताल

लगन लगी है स्याम पियारे।
अब कैसैं यह दुरी रहति है व्रजमोहन उजियारे।

[६१४] साधा=इच्छा। समाधा=समाधान (सब बातों का निराकरण)। [६१५] बाँसली=बाँसुरी। बीर=सखी। घणाँ०=बहुत ही हैरान कर रही है। भला०=भले घरों के लोगों को। कानाँ=कानों में। काँई०=क्या करूँ। घर०=बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है। केड़े०=पीछे पड़ी रहती है। छानी=(छन्न) ढकी बात खोल देती है। [६१६] ऐसी कै=इतना अधिक। छति=छत (से मार्ग देखती है)। गति०=मेरी ओर आने के लिए। [६१७] थारी=आपकी। गैलो=गली, रास्ता। थे=आप। म्हारा=मेरे। रूड़ा=सुंदर। राजिंदा=(राजेंद्र) अति प्रिय। म्हे=मैं। थानै=आपको। आपो=अपनत्व। खारो=कड़वा।

इत हौं बकति तिहारेई गुन तुम मँडरात चोप-मतवारे।
आनँदघन इत मुरलि तिहारी ये सब भेद उघारे ॥

बलदेवजू की स्तुति] (९१९) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार बिक्रम - बिपुल
अतुल-बलधाम अच्युत कृपानिधि।
जयति गौर सुंदर बरन नील-अंबर-धरन
एक - कुंडल - करन आभा बिबिधि।
जयति ब्रह्म - अग्रज ब्रज - बिलास मंगलसदन
कामपालक सदा मत्त-रसरंग-रिधि।
करुना-सुदृस्टि आनँदघन वृस्टि करि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि ॥

सारंग] (९२०) [चौताला

जय जय जय बलभद्र बीर धीर गंभीर अबिलंब प्रलंबहारी।
निज ब्रजकेलि - रस - माते मुसली कुसली
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी।
याही तें नीलांबर धारत परम प्रीति रीति रुचि बिस्तारी।
बन आनँदघन बरसत स्यामै सरसत हित गति न्यारी ॥

(९२१) [भैरव, तालजात्रा

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौं, बलदेव को एक आसरो राखौं।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौं, बलदेव कृपा तैं ब्रजरंग राचौं।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौं, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौं।
बलदेव सो एक बलदेव देखौं, बलदेव-कृपा को पुंज उर लेखौं।
बलदेव सब काज मेरे सुधारे, आनँदघन बरसि दुःख-ताप टारे ॥

९१६—ब्रह्म—कृस्न (वृंदा०)।

[९१९] एक० = बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है। करन = कर्ण, कान। ब्रह्म = श्रीकृष्ण। रिधि = ऋद्धि, समृद्धि। [९२०] प्रलंब = एक दानव। मुसली = मुसल धारण करनेवाले। [९२१] राचौं = लीन होओ, रूचो। अनुज = श्रीकृष्ण।

(९२२) [ललित, मूलताल

मद-विघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन
बल हलधर राजैं ।
गोपाल-मोह-गहबरित-हृदय ब्रजबन लीला साजैं निज सुख-काजैं।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं।
आनँदघन नीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं ॥

श्रीरामजन्म-बधाई] (९२३) [रामकली, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु ।
निरवधि करुना - अवधि - अवधि मंडन प्रगटे महाबाहु ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी लह्यो अपूरब पुन्यनि लाहु ।
फूले संत सुर-हित अनुकूले असहिन के उर दाहु ।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ़्यो जग मैं सुजस-प्रवाहु ।
निज दासनि को सुख कहा कहियें दिन दिन अधिक उमाहु ॥

(९२४) [टोड़ी, इकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसस्यंदन ।
अवधपुरी मधि महामोह छवि नरनारी फूले आनंदन ।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन ॥

(९२५) [केदारो, इकताल

आजु मंदिलरा दसरथराय के बाजैं रंग-बधाई है ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे,सब मनभाई है।
अवधपुरी आनँद - झर लाग्यौ उघरी भाग - निकाई है ।
चहूं ओर मंगल - धुनि सुनियत राम दुहाई है ॥

[९२२] विघूर्नित = चंचल । बरन = रंग । मोह = प्रेम । गहबरित = भरित । निसान = बाजा । [९२३] निरवधि = सीमारहित । अवधि-मंडन = अयोध्या की शोभा करनेवाले । कोखि = कोख ठंढी हुई (पुत्रोत्पत्ति से) । सुर-हित = देवों का हित (भलाई) । असही = न सहनेवाले, शत्रु । निज = खास । [९२४] दसस्यदंन = दशरथ । [९२५] मंदिलरा = मर्दल, मृदंग ।

(९२६) [कान्हरो बागेस्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
बाजति रंग-बधाई फूले फिरत नर तियौ ।
सिव बिधि सुक सनकादि सुर-समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ ।
आनँदघन झर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ ॥

(९२७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ ।
रबिकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अदभुत कला-बिलास ठयौ ।
दुख-तम दूरि गयौ दबि कितहूँ बाढ़्यौ मन मैं मोद नयौ ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरंग छयौ ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ ।
दसरथ-भाग कहा कहि,बरनौं सकल देखियत सुकृतन यौ ।
अमीदृस्टि रसबृस्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन उनयौ ॥

(९२८) [टोड़ी, मूलताल

मंदिलरा री बाजै अति ही गहगहे प्रगट भए
या अवध नगर मैं रामचंद्र बर आजै ।
गावत मंगल मिलि बनिता - गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै ।
करत बेद-धुनि बिप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा बिराजै ।
मनबांछित फल भए परमानँद बोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै ॥

९२७-सुर-नर (बृंदा०)। ९२८-उमँग०-मंगल रंग (वही)।

[९२६] तियौ=स्त्रियाँ भी। दातार=दानी। [९२७] ककुभ=दिशा। सुधा=सुधा में। [९२८] मंदिलरा=मर्दल, मृदंग। आजै=आज ही। तोरन=फाटक। राजै=स्वयं राजा ही।

(९२९) [मलार, इकताल

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरी चटक-चोप सौं।
पिय अपबस करि भले बसायौ कुंज-सदन हो सूनो।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वे नागर वर बनक दुहूनो।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो॥

प्रेमघन] (९३०) [रूपताल

तिहारो नेह चौबाई को सो नेह कान्ह झूमि झूमि व्रज बरसै।
निकसन काहु न देत घरिक हू कौं लौं घिरे घरहि रहियै
अति नकबानी करि सरसै।
अरु अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावै सो सूखि सूखि तरसै।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी दै नए नए रंगनि दरसै॥

(९३१) [मूलताल

एहो कामरि की खोही, रँग राख्यौ चूनरि को।
बन मैं बन्यो दावँ काहू मिस को न भावती जोही।
जमुना-तीर बर-तर ठाढ़े भीजत रीझन मति-गति मोही।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस-बरसा सोही॥

(९३२)

सघन वृंदावन सुहायौ राधामोहन - मन - भायौ
सहज ही ये पावस आय बिराज्यौ।
केकी कोकिलान की किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि गाज्यौ।

९३१—मति०—गति रति (वृंदा०)।

[९२९] दै० = सौतों के मुख में चूना लगाकर, सौतों को कष्ट पहुँचाकर।
[९३०] चौबाई = चारों दिशाओं से वायु का चलना। नकबानी = परेशानी।
[९३१] खोही = खोवी, कंबल को दो परत में लपेटकर ऐसे कर लेना जिसमे शरीर ढका जा सके। बर = बट।

तरनि-तनया की तरंगनि बढ़नि देखि बाढ़त
बिनोद मोद तन-ताप भाज्यौ।
यहि बिधि बैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुगति समागम साज्यौ ॥

घनश्याम] (९३३) [इकताल

आवत है हो हरि मातो मेह।
बन है निबहि जाउँ जौ घर लौं, तौ निबहै नित नित को नेह।
हठ की बात भली न भावते तुमहिं बढ्यौ मनमथ को तेह ॥

वृंदावन महत्ता] (९३४) [चौताल

सब रितु वृंदावन सुखदाई।
दंपति को हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई।
आनँदघन की घमड़ निरंतर मुरली-गरज सुहाई ॥

गोपी-प्रेम] (९३५) [इकताल

कामरियावारे की बात न क्यौंहूँ जानि परै।
राति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै।
ऐसो छली बली अति चौकस, नेकु न कानि परै।
आनँदघन रस-बस करि राखै जौ उहि पानि परै ॥

(९३६) [मूलताल

कैसें रहौंगी अब मैं ऐसें स्याम उज्यारे बिना।
ब्रजमोहन आनँदघन किनहूँ छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत है मोकौं रैन-दिना ॥

९३२–सुगति–सुरति (वही)। ९३३–सं०–के निर्वाह (मतना)। ९३६–ऐसें–अपने (वृंदा०)।

[९३३] तेह = तीखापन, वेग। [९३५] न कानि परै = मर्यादा का विचार नहीं करना। पानि = हाथ।

गोपी-प्रेम] (९३७)

हरवा मोर टुटीलौ अबही ननदिया वाही दीनो उतर कहा देहौं।
आनँदघन सुजान सुनौ विनती जिन अनवाद करौ तिहारी
सौं जान देहु जू जौ बनिहै तौ बहुरथौ ऐहौं ॥

हिँडोरा के पद] (९३८) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिँडोरैं दुहुन की, ए दुहुन की ।
चोप सौं लचकि मचकत खरे रंग-भरे कचनि तैं बरसनि प्रसून की ।
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की ।
यह छवि निहारि न सँभारि आनंदघन सुधि बुधि टरी सुर-बधून की ॥

(९३९)

लाड़ - गहेली को तीज मनावन की रीति मैया
भाग भरी सब भाँतिन ।
उबटि न्हवाय सिँगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय बहुत
कछु वारति फूली अंग माति न ।
रतन - हिँडोरैं हुलसि झुलावति सँग सोहति साथिनि
दाई की बनी ठनी अप-अपनी भाँतिन ।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन मैं मंगल-मनि की काँतिन ॥

लालजू की बधाई] (९४०) [भैरव, इकताल

या अति लाड़ के चाबन दै घर नित ही बधावनो ।
स्यामसुँदर होनौ दिन लोनो मंगल-मोद-बढ़ावनो है नैन-सिरावनो ।
जसुमति-बारो कुल - उजियारो सब विधि हिय - जिय भावनो ।
ब्रजजन - जीवनधन आनँदघन रस - बरसावनो ॥

(९४१ [तालजात्रा

आजु हमारैं काजु है हो जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो ।
आनँदघन ब्रजलोचन-तारो चिर जियौ नंदराय-दुलारो प्रान
को प्यारो ब्रज - रखवारो ।

९४०–होनो–दिन (सतना)। नैन०–रस बरसावनो (वृंदा०)।

[९३७] अनवाद = फालतू बखेड़ा । [९३८] कच = केश । दून = संगीत-भेद, साधारण से दूना ।

मंगल गावौ मोद बढ़ावौ भागनि के फल नैन निहारो।
दिन दिन यह दिन रहौ या घर असीस उचारो॥

(९४२) [चरचरीता

वधाई नंद के भई हो मोद - विनोदमई।
स्यामसुंदर - आगमहि गोकुल - ओप नई।
फैलि परी हित की फलि, अंतर - सूल गई।
भागनि वल यह सुभ घरी विधि वनाय दई।
आनँदघन मंगल - धुनि ठौर ठौर रई।
थिर - चर रस - रंग भोजे कीरति उनई॥

(९४३) [रामकली, तालजा

लला को सोहिलो गाऊँ, फूली अंग न माऊँ।
नाँदौ वाढ़ौ चिर जीवौ दिन - दिन उदौ मनाऊँ।
नित मोहन - मुखचंद निहारौं नैननि हियो सिराऊँ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि - दौरि आछेई
आऊँ रंगनि वरसाऊँ॥

(९४४) [आसावरी, चौता

स्यामसुंदर को जनम-वौस आजु आनंद नंद-सदन मैं निपट
गावत मंगल गीत गुनीजन प्रेममगन वर वाजे वजावत नाचत
मुदित मैन से वहु नट
कुँवर कन्हाई दृगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत राजत
श्रीव्रजराज के निकट
अनगन नखि सुख - छवि पै वारौं वलि, रंगनि भरे अंगनि की
मयूखनि झलकनि छलकति अति झीने पट

९४२–फलि–फलि (वृंदा०)। ९४४–गननि–भूपन (वही)। मव
पुमदाँ (वृंदा०)।

[९४२] फलि = फली। रई = रमी। [९४३] सोहिलो = सोहर। नाँदौ
आनंदित होओ। [९४४] व्रजराज = नंद। झीन = पतले, महीन। अमर०
देवों का समूह।

बनि ठनि बैठे गोप ओप सौं रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को संघट ।
कोटि-कुवेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई पल-
पल सबकी रसना रट ।
द्वार-द्वार नूतन किसलय की जलज-लरनिजुत बंदन-माला अरु
नग खचित दीपत मंगल-घट ।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहपनि बरखत रतननि वारत
उमहि उमहि अंबर तैं अमर-ठट ॥

(९४५) [पूर्वी, तालजात्रा

तैंडा रंग, लाडला कान्ह जसोदे ! होवे जीवणा जागणा ।
इसदी बलैया मैंनूँ लगी अँखड़ियाँ दा लागणा ।
उमरदराज करी रब सैयाँ तुझ जेही केही वडभागणा ।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(९४६) [अड़ानो, चौताल

आजु मंदल की कहकैं ए सजनी सुनि ।
बरस - गाँठि ब्रजमोहन की यातैं मन खोलैं बोलैं धुनि ।
ललहि सिंगारि चौक बैठारति मैया को सुख कौन सकै गुनि ।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि ॥

(९४७) [ईमन, मूलताल

मंदिलरा बाजै रंग सौं ब्रजपति - मंदिर मैं आनंद ।
जसुमति - रानी - कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद ।

९४५—लाडला—चाँगला (वृंदा०) ।

[९४५] रंग = धन्य है । जसोदे = हे यशोदा । इसदी० = इसकी बला मुझे लगे । अँखड़ियाँ० = आँखों में बस जानेवाला । रब = ईश्वर । सैयाँ = स्वामी । जेही० = जिस किसके लिए । प्यारिया = प्यारा । सभ = सब । सानूँ = हमको । रस० = रस में डुबानेवाला । [९४६] मंदल = मृदंग । कहकैं = ध्वनि । ललहि = लाल (पुत्र) को ।

वंदीजन जस - बिरद बखानत बिप्र वेद - विधि छंद ।
आनँदघन सबको मनवांछित हरखत बरखत नंद ॥

(९४८) [गौरी, तालमूल

आवौ री मिलि गावौ सुहेलरा, आजु हमारे मंगल माई ।
उदौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी की कूखि सिरानी सुख
निरखत आनंद-बधाई ।
दुखतम टर्‌यौ कर्‌यौ सब विधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई ।
अद्भुत अमी - कला आनँदघन सुजस - जोन्ह रसवृष्टि सुहाई ॥

कुँवरानी जू की बधाई] (९४९) [रामकली, तालजात्रा

सोहिलो वृपभान - भवन पै, प्रगटी है मंगल - मनि राधा ।
कीरति - कुल - उजियारी प्यारी पूरन करी सकल विधि साधा ।
ब्रजदेवी सुर-नर - मुनि - सेवी परम - प्रेम - गुन - रूप - अगाधा ।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ़्‌यौ, टरी सब बाधा ॥

(९५०) [हमीर, चौताल

प्रगटो है मंगल - मनि वृपभान - कुँवरि राधा नामिनी ।
ब्रजजीवन की प्रान - सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी ।
रस-बिहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि को स्वामिनी ।
आनँदघन - रस - रानि रसीली वृंदावन - धामिनी ॥

(९५१) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा - नावँ की ।
याहि लड़ाऊँ गाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गावँ की ।

[९४७] मंदिलरा = मृदंग या ढोल । विप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं । [९४८] सुहेलरा = मंगल-गीत । अमी-कला = चंद्रमा । [९४९] कीरति = कीर्ति, राधा की माता । साधा = उत्कंठा । [९५१] लड़ाऊँ = प्यार

वृषभान पिता की जोय - जियारी श्रीदामा की पीठि प्रगट
भई सोभा-निधि ब्रज-ठावँ की ।
वंदौं याहि भीजि आनँदघन हँसनि होउँ निहाल छिनहि
छिन रज लै पावँ की ॥

(९५२) [चौताल

साध पूजी मेरे मन की जू कीरति कन्या जाई ।
जसुमति के ब्रजजीवन प्रगटे देखि भयौ सुख यह सुखमानिधि आई ।
इन हूँ घर की एक लुगाइत जो चित - चाती सु विधि बनाई ।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ नित ही सोहिले मनाऊँ
न्यौछावरि भरि पाई ॥

(९५३) [ईमन, तालजात्रा

बधावा हौं ही गाऊँ री कीरति-कुँवरि कौं मल्हाऊँ ।
मंगल की मनि सोभा की निधि निरखत नैन सिराऊँ सुखनि सिहाऊँ ।
याही के सुहेले मनाऊँ हँसनि दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन रंगनि बरसाऊँ याकी बलैया लै लौं ज्यौं जियाऊँ
बहु विधि लाड़ लड़ाऊँ सबै कछु पाऊँ ॥

(९५४) [जैतश्री मूलताल

राधा की जनम बधाई हुलसि हुलसि हँसनि गाऊँ ।
देखि देखि मुखचंद सिहाऊँ मीठी भास मल्हाऊँ ।
कीरति - कुल - उजियारी को बहु भाँतिन लाड़ लड़ाऊँ ।
जसोदा-जीवन ब्रजमोहन-हित जोरी-अभिलाष मनाऊँ ॥

(९५५) [बिहागरो, इकताल

यह कौन विधाता की रचना है कीरति-कूखि आनि प्रगटी ।
याहि निरखि जो सुख बाढ़त सो जीयहि जानै चित चढ़ि
बहुरि नाहिंन हटी ।

९५२–यह०–भानु-धियाई (सतना) ।

करूँ । जियारी = जिलानेवाली । श्रीदामा = राधा के बड़े भाई । की पीठि० = श्रीदामा के बाद जन्मी । [९५२] जाई = जनी, प्रसव की । सोहिले = मंगल, बधावा । [९५३] मल्हाऊँ = दुलार से खेलाऊँ । [९५४] भास = वाणी, वचन ।

जसुमति - ललन देखि मन आवत जोरी - जुगति अनूप ठटी ।
आनँदघन चिर जियौ हमारौ जीवन की निधि जनम-जनम
की तपति कटी ॥

(९५६)

बजै वृषभानु कैँ बधाई कीरति कन्या जाई ।
भाग-भरी राधिका सुलच्छिनि ब्रज मंगल-मनि आई ।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी विधना बनक बनाई ।
सुत को हित विचार मन ही मन फूली अँग न समाई ।
मंगल मोद बधाई की धुनि गोकुल रावल छाई ।
प्रेम-विवस डोलत नर - नारि हित गति की अधिकाई ।
यह जोरी चिर जियौ छबीली मन नैननि सुखदाई ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन सरसौ हरप - हरयाई ॥

श्रीकृष्ण-जन्म] (९५७) [टोड़ी, चौताल

आजु बधावनो नंद-भवन मैँ भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो ।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख - उपजावनो ।
दुज मागध बंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो ।
ब्रजपति की उदारता सौँ कैसेँ करि सकत सरसावनो ।
रस - जस मंगल - सिंधु सबै ब्रज - रंग तरंग - उमंग बढ़ावनो ।
आनदघन ब्रजचंद अखंड अमल अपूरब दरसावनो ॥

(९५८) [बिहागरो, इकताल

ब्रज मंगल आजु है हो ।
ब्रजरानी सुंदर सुत जायौ पूरब - भाग - उदै हो ।
मनभायौ सब ही के आयौ धन्य सुदेस समै हो ।
आजु हमारो भाग है जसुमति मैया मोँ लै हो ।
कहिये कहा महासुख सरस्यौ चिरजीज्यौ रसमै हो ।
आनँदघन ब्रजजन - जीवनधन बरसौ उनै उनै हो ॥

[९५५] तपति = ताप । [९५६] रावल = राधा का ननिहाल जहाँ वे जन्मी थीं । नारि = नारी । हरयाई = हरियाली ।

साँझी] (९५९) [हमीर, एकताल

पुजावति साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय।
अरचि चरचि चंदन वंदन सों फूलमाल पहिराय,
विविध मधु मेवा भोग रचाय।
बोलो बहिनोली घर-घर तेँ भरि भरि ओली देत सिहाय।
कंचन-थार उतारि आरत्यो हँसनि लागति पाय,
लली को भाग-सुहाग मनाय।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय।
आनँदघन ब्रजजीवन जोरी रसिकन सदा सहाय॥

(९६०) [ईमन, तालजात्रा

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सों गति लै।
मुंह की फबनि भौंह-दबनि सबनि के चित चूरे
मुरली मैं रंगरली जति लै।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरंगनि कोजति लै।
आनँदघन रस रास रचायो पाग दई सबकी मति लै॥

(९६१) [केदारो, मूलताल

रास मैं राधा सब रस राख्यौ।
वृंदावन स्वामिनि अभिरामिनि मन जस राख्यौ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ॥

९५९—बहिनोली—बहि दोली (वृंदा०)।

[९५९] साँझी=शरद् ऋतु मैं फूल-पत्तों, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी। पुजावति=राधा से पुजावती है। चरचि=युक्त करके। वंदन=सिंदूर। बोली=बुलवाई, निमंत्रित की। बहिनोली=सजातीय स्त्रियाँ। ओली=कोंछ। सिहाय=प्रशंसा करके। [९६०] जति=यति, ठहराव। पाग०=भली भाँति मिला दी। [९६१] जस=जैसा। कस=कैसा।

(९६२) [केदारो, इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके।
सोही लै गति चोख चटक सौँ अनुपम रूप दिखाय
सिखावति ज्यौँ ही त्यौँ जिय भावै पी के।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पै बनि आवै ही ये
पटतर हैँ आप सही के।
आनँदघन वृंदावन जमुना-तीर घमड़ि रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी के॥

(९६३)

सरद-रितु जामिनि फूली है।
जगमगी जोन्ह छबीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि
रची जमुन-कूल अति ही अनुकूली है।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रसमूली है।
आनँदघन अद्भुत बिलास-झर वृंदावन मैँ देखत भूली है॥

(९६४) [संकराभरन, तालजात्रा

अगनित बनिता बनि बनि नाचत बनमाली-सँग
बन्यौ है रास बर बानिक जमुना-पुलिन मैँ।
साँवरो सोहन रसिक मोहन चपल चुहल चतुर जोहन
नवनि सौँ हिलि मिलि बिलसत अति आनंद मन मैँ।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि रचना रंजित सकल
भुवनि मिलि चाँप ब्यापक कै पुरयौ त्रिभुवन मैँ।
आनँदघन रस-संपति अचरज-मूरति दंपति नित
बिहार बिलसत पागे हित-रस मैँ॥

(९६५) [केदारो, चौताल

सकल-कला-प्रवीन वृषभानुनंदिनी रस-रास नचैं।
उघटत मोहन नटनागर बर सरस ततकारनि चोपनि चुहल मचैं।

[९६२] सोही=शोभित। चोख=तीव्र। पटतर=समानता। सही=ठीक।
राका=पूर्णिमा। [९६४] चुहल=विनोदी।

ललिता ललित मृदंग मैं रंग राखति विविध भेद सौं सुगंध सचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच को साँच रचै॥

(९६६) [केदारो, चौताल

साधि के सुर मुरलिका मैं केदारो ठान्यौ मोहन रसरंगी।
जैसैं जैसैं जिय भावै तैसैं रावे रिझावै तान त्यौनार तरंगी।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि गासनि की व्यौरनि मैं रंगी।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैं रहत अभंगी॥

(९६७)

तेरे री मुख की जोति आगें कोटिक सरद-चंद मद लागैं।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि दमकि नंदकिसोर
चकोर-नैना नव चैन-पियूषनि सौं पागैं।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैं मुसकि लाड़िबो
गालनि मैं गाड़ परत आछी छवि जागैं।
आनंदघन पिय जिय की जीवनि ताहि सौं अनुरागैं
सु तेरई गुन निसि दिन रागैं॥

(९६८) हिंडोल, इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौं।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौं।
हित-चाँचरि नित मचो रहति है नइ नइ उमंग दुहूँ ओरी सौं।
आनँदघन रस रीझे भीजे हिलगनि झकझोरी सौं॥

(९६९)

जोबन मौर्यौ बसंत फूल्यौ सरस सुराई सोभा निकसी।
अंग अंग नवरंग जगमगे मुख सुखसदन चंद्रिका विकसी।

९६६–सुर–रस (वृंदा०)। ९६९–विक–विक (सतना)।

[९६५] तरल = चंचल। ततकारनि=नाच के बोल। नाच०=नृत्य की सत्यता सिद्ध हो जाती है। आँकौ०=अंक, गोद। [९६६] त्यौनार=ढंग। गास=गाँठ। व्यौरनि = खोलना। [९६७] गाड़=गड्ढा।

रसिया मधुप लट्टू भयौ डोलैं बन बोलैं सो लैं सुनि पिक सी ।
बलि बलि चलि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही चिक सी ॥

(९७०) [बसंत

बनि बनि आई ब्रज-बनिता बर बसंत बृंदाबन
बनमाली के हित हिलि मिलि ।
कोटि काम अभिराम स्याम-छबि-हेत हुलसि लसे हैं बदन
सुख-सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि ।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनंग-रंग झिलि ।
बहु बिधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बंदन
भरत परसपर जोबन के जोरनि पिलि ॥

(९७१) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा को साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतर ।
प्रफुलित ललित हित - बलित सदा बिराजत लाग्यौ
रहत आनंद-मकरंद-झर ।
भौंरी अँखिया पीवति जीवति नित रस सींचे जमुना-
तट हो बृंदाबन सुदेस थर ।
बिलसत लसत घुमड़ि आनंदघन ऐसे बड़भागी जु
बन ही मैं करि पायौ घर ॥

(९७२) [मूलताल

ऐसौ राधा कौ सुहाग, याकैं सरबोपर अनुराग ।
कान्ह कंत बसंत-सूरनि नित याकैं बस बड़भाग
बिहारन कौं बृंदाबन-बाग ।
याकौ रूप-निकाई बिधना याहि बनाई याकैं गुन
सुरनी मैं गावत पूरन बिबिध रागिनी राग ।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगो परम पन-राग ॥

(९७३) [वसंत, इकताल

नव वसंत फूल्यौ है, जब तैं हरि राधा फूले अति मन मैं
उघरि उघरि होरी खेलन कौं हित चित चौपनि ।
छाके प्रेम नेग सब थाके ताके वे दिन भरि अभिलापनि
चितवनि ही मैं भई जु बहुत विधि हिय जिय सौपनि ।
चाव गहगहे उमगि डहडहे बैस लहलहे जोबन कौपनि ।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँदघन रस पियत
जियत मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-खौपनि ॥

(९७४) [हिंडोल, चौताल

वसंत नटुवा बनि आयौ री नव बरन बरन पुहुप-बसन
पहिरि रिझावन कौं ब्रजमोहन स्याम ।
नटनागर गुन - आगर को मुख देखि बिवस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोरिक काम ।
ब्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ वृंदावन मैं
नित को बिसराम ।
आनँदघन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि बैन बजावत
लै लै नाम चलि चलि विहरन कौं सब धाम ॥

(९७५) [वसंत, इकताल

होरी खेलैं रस-भीजे रीझे नंदलाल वृषभानु-कुँवरि
भरि रंग रंग-भाय अनुराग-चाय ।
आछी मीठी भासनि सौं हितदारी गारी गाय गाय
मुख-सुषमा कछु बरनि न जाय ।
दुहुँ दिसि सहचरि भरित रंग सौं उमहति समुहति धाय धाय ।
मच्यौ खेल वृंदावन जमुना-तट आनंद-अंबुद रह्यौ छाय
यह छबि हेरत गति-गति हिराय ॥

९७३–नव–बन (सतना) । ७६६–दारी–टारी (वही) ।

[९७३] कौंपनि=कोंपनि । खौपनि=खोँच, वस्त्र का फटा अंश ।
[९७५] भासनि=भाषण, बातचीत । समुहति = सामने आती है ।

(९७६) धनाश्री, तालजात्रा

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सौं।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जीवन को फल लीजियै यह कीजियै पनै।
जीजियै रस पीजियै बरसाय आनँदघनै॥

(९७७) [धनाश्री, इकताल

ऐसो छैल नंद को घाती, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट की ओट पवन नहिं लागत नवजोवन की थाती।
कछुक अनूठो मिस बनाय ढिग आय करत कनघाती।
मुख सौं मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
औटपाय के दाय भरयौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौत लगी री होरी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनखादन आनँदघन तब ही बिष खाती॥

(९७८)

अचगरे तुमहीं देखे सब डर डारेई डोलौ।
खेल किधौं मनभाव लाड़िले कंचुकि के कस खोलौ।
जौ कोऊ लखि पावै तौ उतर देहु कहा कहि बोलौ।
आनँदघन रसबादनि हमैं तुम सौं भलौ अबोलौ॥

(९७९) [इकताल

होरी खेलियै, फागिन सौं आँखि मिलाय।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक कै रस झेलियै।

९७७–अनखानी–अनखाती। ९७८–रस–रम (ललना)।

[९७७ अनखानी=मुँह ताने में नाराज बात करना। औटपाय=नटखट-पन। दगाती=दगाबाज। न्यौत०=ईसा की अंखि की जाग (बाती) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी०=जहाँ जबर्दस्ती का ही बल चलता है। नातर=नहीं तो। अनखादन=कान्ह बातों से। [९७८] अचगरे=नटखट, शरारती। रस=रंग

अंजन आँजि मीड़ि रोरी मुख हँसि गरबाँही मेलियै।
गहर करन को दाँव न राधे तू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(९८०)

भले बनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करी हौ निहाल।
अंग अनूठी सुगंध के डोरे गुही अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अरगजा ढोरि करैंगी आनँदघन ख्याल॥

(९८१) [इकताल

आजु निपट ढिठाई दै टरे हौ साँवरे कसरि काढ़ि कै मन की।
भौंह नचाय कहा ऐंडत हौ निडर अमैंड भए ब्रजमोहन
घात बनि गई बन की।
ब्रज-राजा को कानि न मानत गोधन-ओट टोह पर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचैहौं
तौ हौं राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(९८२) [टोड़ी, तालजात्रा

होरी खेल रंगनि रँगीलो छैल छबीलो नागर गोरी-संग।
उरजनि तकि तकि छाँड़त छबि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत धावत मूठि - गुलाल
चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ बरसोले झूमि झपटि लपटि
जात भीने अनँग-उमंग॥

९८१-टरे-रहे (सतना)।

[९७९] मरक=हौसला। मेलियै=क्रीड़ा कीजिए। मेलियै=डालिए। धुर की=अत्यंत, बहुत। [९८०] डोरे=सहारे। ढोरि=लेकर। ख्याल=खेल। [९८१] अमैंड=मनमानी करनेवाला। गोधन०=गाय चराने के बहाने। धन=द्रव्य; धन्या (स्त्री)। तन=ओर, पक्ष।

(९८३)

पकरि बस कीने री नँदलाल, झुरमुट करि
चहुँघा तेँ बहुत ब्रजबाल।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौँ मसरि गुलाल।
देखत बनै स्याम की सोभा; सहनसील कै भए निहाल।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैँ ऐसे हाल।
चपरि चलन कौँ बहुत अरबरत छूटत क्यौँऽब परि प्रेम के जाल।
सूधे किये बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल॥

(९८४)

होरी के खिलवार, देखे।
मोहीँ सौँ रसवाद चलावौ नए छैल रिझवार।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैँ पिछवार।
आनँदघन उनई दीसत गिनत न साँझ सवार॥

(९८५)

आजु मेरे आए मया करि होरी खेलन स्याम रसीले।
सब रँग भीजि रहे पहिले ही स्याम रसीले।
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैँ रस-बरसीले॥

(९८६) [केदारो, मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-संग।
सुंदर बदन गुलाल लगैये चोवा चंदन बंदन स्याम सलोने अंग।
गैयै बजैयै चाँचरि मचैयै तचैयै री वाहि गति अति ही सुढंग।
आनँदघन बरसैयै बढ़ैयै सरसैयै सुख उपजैयै अद्भुत रंग॥

(९८७) [अड़ानो, रूपकताल

निपट लाड़िली एरी तेरी मुसक्यान प्रानपिय-
जिय सौँ खेलि खगी है।
अधर पाय धरि धाय रंग बरसाय जाय ढुरि भिजवति
मुरवनि हाय, कौन होरी दाय के चाय पगी है।

[९८३] झुरमुट=झुंड। मसरि=मलकर। [९८४] उघारी=खुली, बेपरद।

फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आवन, गैल अरैल
भयो टारत नहिं नेकु टगी है॥

(९८८) [ईमन, तालजात्रा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम वरवट बहियाँ मरोरौ।
आवत मूड़ चढ़े अति ज्यौं ज्यौं करी कछु कानि कनौड़
जनावत जोवन जोरौ।
बातनि बातनि की चतुराई चलैगी न त्यौं ऐसैं औरन भोरौ।
बहबहे कहूँ रहे, धोखे काहु के आनंदघन भूले से
फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरौ॥

(९८९) [इकताल

नंदलला वृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सौं।
सुंदर वदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनी तान
धावत गुलाल लै लै दायन सौं।
दुहुँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि आवत
खेलन कौं जोवन-भरी तमक तायन सौं।
आनंदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृस्टि बचाइ
जाइ ढिग रंगनि भरी बिबिध भायन सौं॥

(९९०)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडित-गुलाल।
मनहिं लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।
बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित चित छलति हाल।
नीलमनी मिलि बनी द्वैलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी खरी ओट दीने तमाल।
चोटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन चितवत रसाल॥

९९०—मनहिं—मोहि (सतना)।

[९८७] टगी=टकटकी। [९८८] बरबट=बरबस, जबर्दस्ती। कानि०=मर्यादा का ध्यान, लिहाज। बहबहे=बहेतू। टकटोरौ=टकटकी लगाकर देखते हो। [९९०] बैंदी=बिंदी। हाल=तुरंत। बीर=हे सखी।

(९९१)

लै गुलाल मुख माड़्यौ पी कौ, देखौ हो साहस या ती कौ ॥
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहि गए कुँवर कन्हाई।
याको धीर कहत नहिं आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चखनि चौंध भरि, आई अलग छराए लौं छरि।
मोड़नि करनि मौन हरि ठाढ़े, रूप-बिमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, वहुत दिनन तें जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सूखि सिझायौ ॥

(९९२) [बिभास, इकताल

गोकुल मैं होरी यह कैसी, अहो दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं झझोरत झपटत करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक हौं अपनेई पीहर औरो रहती जौ पै जानती होति ह्याँ ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी ॥

(९९३) [पूरवी, तालजात्रा

गोरी गोरी दिनन की थोरी, बोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलै होरी।
गावै गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै करै चित चोरी।
हँसि जोहै सोहै उमेठियै पैठियै जाति हिये बरजोरी।
आनँदघन मुरकि डारै भोरी सो झोरी मैं रोरी और जानै को री ॥

(९९४) [बिहागरो, मूलताल

तुम ऐसें कैसें खेलौ होरी।
मानस हैं कि ये नाहिं कोउ भाग जाऊँ क्यौं न, अब भई न थोरी।
औरौ वसति लुगाई ब्रज मैं मोहिं लगी कछु चोरी।
नए छैल निवटे आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी ॥

९९१–हो०–होसाहोसी (सतना)। करनि०–करति मनोहर (वृंदा०)।
९९४–कोउ–तुम (सतना)।

[९९१] गुलचा=गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। छराए०=मायादृश्य या जादू की भाँति। सिझायौ=रससिक्त हुआ। [९९४] निवटे=निपट, अत्यंत।

(९९५) [इकताल

कैसैं डफ ढार ही ढार बजावैं, नवेली नागरि गारी गावैं ।
मुख-बिकास भौंहनि-बिलास जोबन-उजास
तानिनि मिठास मोहन के मनहिं घुमावैं ।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की चोप बढ़ावैं ।
रसमूरति आनंदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावैं ॥

(९९६)

रसिक छैल नंद को नैनन मैं होरी खेलै ।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलैं पलकनि ओकैं झेलै ।
और कहा गति कहौं सखी री सब विधि करत भावती केलै ।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझै भिजै रस रेलै ॥

(९९७) [सारंग, सूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखे ।
बिना जान-पहचान रावरे होत फिरत उरहार ।
नए छैल गहि गैल रहत नित करत न नेकु बिचार ।
आनँदघन कैसैं कै परसै फल अति ऊँची डार ॥

(९९८) [बिभास, चौताल

निपट अरसानी सरसानी मैं जानी मानी है सुखदानी
साँवरे सौं सब निसि रंगरली ।
मची है चोप-चाँचरि भाँति भाँतिन मिलि दावनि चावनि
भावनि भाँति भली ।
भई है दलनि दलमलनि छल-बलनि सुबस कियौ गिरिधरन बली ।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि गावै रँगीलो मेरी तू प्रान अली ॥

९९७—उर०—गरहार (सतना) । गैल—बाँहिं (वही) । ९९८—भाँति०—मनभावनि (वृंदा०) ।

[९९५] ढार०=ढंग से, ठीक ताल पर ताल देकर । [९९६] ओक=अंजली । केलै=केलि ।

(९९९) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तैं तुम भए हो निपट धौताल हौ।
द्वै पावँ पाछे तैं आवत पकरि करत बनमाल हौ।
काढ़त मनौं वैर कितहू को उर दलमलत गुलाल हौ।
नकवानी करि लेत मानसै निपटै रसिक रसाल हौ।
दैया दौरि दौरि खौरत मोही सौं यौं गिधए किहि बाल हौ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ॥

(१०००) [मूलताल

रस राख्यौ राधा होरी खेलि।
रंगनि भरयौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि।
ब्रजमोहन की महामोहनी रची बिधाता सब गुननि सकेलि।
आनँदघन पिय भिजै रिझायौ उमगि अनुरागनि ठेलि॥

(१००१) [मारू

लाल खिलार हो भए होरी के तौ खेल खेलियै।
निपट लगि परे जानि परैगी छैल छबीले रावरे ढंग नए।
नकवानी हो करत अचगरे याही बगर मैं रहत छए।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत सिझवत रिझवत कैसैं हो अए॥

(१००२) [परज, तालजात्रा

ऐसैं खेलियै, जिन जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कहावत आवत घातन मैं तुम बातन ही मैं लहे।
इन भाँतिनि किये बहबहे कै घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे॥

९९९-गिधए०-गिरिधर किहि चाल (वही)। १००१-ठेलि-झेलि (वही)। रिझवत-खिझवत (वृंदा०)।

[९९९] धौताल=शरारती। मानसै=मन को। गिधये=परचे। [१००१] बगर=घर। अए=अये, आश्चर्यबोधक अव्यय। [१००२] बहबहे=नटखटपने, शरारतें। हौंस=लालसा। पुजायोई=पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे=देखे।

(१००३) [मूलताल

हो छबीले मोहन सों खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि झकोरी हो।
गावत रसीली नारी हिलि मिलि ब्रजनारी
रूप-गुन-फूलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उझिल-झेल
जोबन की रेल-ठेल चोपनि सों बोरी हो।
मोद-घन झर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की उरेंड़ कुलकानि-मेंड़ तोरी हो॥

(१००४) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझोनो उनही है जोवन-कोप।
मुरली टेर सुनाय जगावै याही बगर मड़राय।
हौंहुँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार॥

(१००५) [सोरठ, मूलताल

मनमोहन छैल खिलार।
होरी-रँग-भरयौ चितै चितै रँगि लेत
रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अंग छवि-संग उमगि दृग मग रोकत सिंगार।
प्राननि गरैं हरैं गहि डारत हँसनि ठगोरी-हार।
मैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन वा गुन गसि लाज भई उपहार॥

(१००६) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ बधुनि सों करत फिरत है बरियाई।

[१००३] मोद-घन=आनंद का बादल; आनंदघन। [१००५] हरैं=धीरे से।

आवौ सखी घेरि गहि लीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि वनाय नचाय चुहुटियन छाँड़ि देहिँ करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुली दै निरखैँ छवि दृग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतो ठानि दृढ़ करौ न तनक सिथिलताई॥

(१००७) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौँ गोरी गोरी गोपवधूटी।
रसिक छैल रिझवारहिँ रिझवति रस मैँ रूप-गुन-भरी वै-संधि छूटी।
कहा कहौँ जोवन की जागनि तनदुति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैँ करि राखी सब वीरवधूटी॥

(१००८) [गूजरी, आड़ो चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हो पठई लैन सैननि ही हाहा खात।
उठि चलि वलि राधे रँग राखि लै वरख्यौ सु फागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै, जीजै,
कीजै सफल गुन गात॥

(१००९) [रामकली, तालजात्रा

इन विरहा फाग मचाय दई, आए नए निरदई सुध्यौ न लई।
रंग लियौ सब अंगनि तैँ हौँ भिजै भिजै यौँ सुखई।
याकी हथचलई कहा कहियै पल-पल हियरा होत हई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसैँ औसर कैसैँ करत गई॥

(१०१०) [मूलताल

होरी को खेल हम ही त्यौँ ठान्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढंग जान्यौ।
औरौ वसति वहुत ब्रजसुंदरि याही वगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गोहन लागे नयो नेह कितहू तैँ आन्यो।
खेल किधौँ रतिभाव लाड़िले काहू कौ प्रान करत हौ छान्यो।

[१००६] गुलचि=गुलचे लगाकर। वनाय=स्वाँग वनाकर। चुहुटियन=परेशान करके, रूप गत वनाकर। [१००७] वै-संधि= वयःसंधि, पूर्ण युवती। [१००९] करत० =आनाकानी करते हो।

आनँदघन अठपहरा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ ।
रंग राखि खेलियै जोऽब रसिकई सौं चित सान्यौ ॥

(१०११) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहिं सुहाए ।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए ।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए ।
ज्यौं जानैं त्यौं पकरि नचाए, सरबस फगुवा दै मुकराए ।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए ॥

(१०१२) [तालजात्रा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे कहा दुराव करत हौ मोसौं
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग ।
सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किये गहि स्याम त्रिभंग ।
कौन खेल अबखेलियै तुम सौं छैल छबीले गुननि भरे सब अंग ॥

(१०१३) [नायकी तालजात्रा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि ।
कौन खेल यह भिजै भजि जैबो आँखिन मैं गुलालहिं डारि ।
अति ही ढीठ भयौ कहा डोलै नेकु धौं काहू की ओर निहारि ।
आनँदघन अब कौन बचैगो बबा की सौंह दैहौं गारि ।

(१०१४) [सूहो, इकताल

आवौ गावौ रंग बढ़ावौ मोहन स्याम उजारे सौं खेल रचावौ ।
निपट नवेली जोबन-गहेली चाँचरि मचावौ
गहि गुलचायन चाय चलावौ ।

१०११–जानैं–नाचे (सतना) । दै०–लै मुरकाए (वही) । १०१५–बिलग–चिलग (सतना) ।

[१०११] मुकराए=यह स्वीकार कराया कि अब ऐसा काम न करूँगा । [१०१४] गुलचायन=गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना । पैज=प्रतिज्ञा ।

भागनि बन्यो फागु को औसर गोकुल के खेलवार कहावौ ॥
आजु तिहारो पैज यहो जू आनँदघन पिय को
भली भाँतिनि सों भिजै रिझावौ ॥

(१०१५)

हो हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि ।
हिय की हिलग बिलग बिन उघरी फागुन औसर रहे बिचारि ।
खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि ।
चहुवाँ ब्रज आनँदघन घमड़्यो रस भीजे गोकुल-नरनारि ॥

(१०१६) [सोहनी

चलि री बलि राधे गोरी साँवरे सों खेलै होरी ।
तोहि बुलावन काज भावते सैननि हौं बहु भाँति निहोरी ।
आईं निकसि सकल ब्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी ।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन दुरति कहाँ लौं हित की चोरी ।
तोसों हार जीत जिय मानत औरनि सों जीतेऊ सो री ।
ये आनँदघन तू छबि-दामिनि, है अति सर-बरसीली जोरी ॥

(१०१७) [सुघराई, मूलताल

नंदलला रे होरी बीति गए बसिबो है एक ही बास ।
अधिको ओटपाव करि बैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास ।
ओछी बातनि कहा बड़ाई गहत क्यों न बोलन मिठास ।
टोडिस नयौ भयौ डोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि खगि जिनसौं पूजी जिय-आस ॥

(१०१८) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बीर क्यों भरियै ।
एक चवाव भरे पहिले ही बहुर्यो फागुन मास ।
आई उघरि सबनि के मन की निपट अटपटी गास ।
सपनें स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय ।

[१०१५] हिलग = प्यार । [१०१७] टोडिस = शरारती ।

तासों मोहिं लगाय लजावत निलजी गारी गाय।
छाँह बचाय चलौं मारग मैं धरौं न ऊबट पाय।
तऊ न रहै अपलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय।
साँचो कहौं तऊ झूठहि मानै साँह पत्याय न कोय।
अब तिनही जस देहौं आनँदघन होनी होय सु होय॥

(१०१९) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पियरवा तुम सन खेलौं होरी रे।
तिहारे काज सुजान सुंदर वर लाज कानि सब तोरी रे।
घरि पल इत उत जान न देहौं गहि बाँधौं हित डोरी रे।
आनँदघन बरसैहौं निसिदिन एहो जीवन जोरी रे॥

[सतना की प्रति से]

राग केदारो] (१०२०) [चौताल

देखौ देखौ हो वृंदावन बिराजै नीको।
सघन स्याम जमुना के तीर हिय हारयारो प्यारो जी को।
हरि राधा को नित हितकारी याही तें याके सिर टीको।
आनँदघन अभिलाषनि बरसत सुख सब विधि ही को॥

(१०२१) [टोड़ी

हो लकवानी कीनी इन रँगभीनै मोहन।
बाट बाट बन बाथनि माहयाँ लग्योई रहत मेरे गोहन।
मेरे ही आय पाय हग छोवत ग्रीव ढुराय नचावत भौंहन।
आनदघन उनएई दाखत नेह-बारि वार सोहन॥

राग टोड़ी] (१०२२) [मूलताल

सु तुव हित-बेली री अलबेली पिय-हिय-आलवाल मधि जमी।
मन लगाय पल पल तिहि सींचति परम प्रेमरस अमी।
फूले चारु मकरंद लाड़ अनुराग पराग सुगंध रमी।
आनँदघन पिय सौं मिलन-फल की अब राखति है क्यौं कमी॥

[१०१८] ऊबट = अमार्ग।

राग बिलावल] (१०२३) [इकताल

अपने गुन आपहि आप ढरी।
जमुना तेरी कृपा कहा कहौं जो मन-नैन भरी।
राधारवन - रसामृत - धारा रसना ह्वै सँचरी।
लाग्यौ रहत मोद - कादंबनि नव नव रंग - झरी॥

राग सुघराई] (१०२४) [चौताल

हिलि मिलि खेलैं गोपकुमारी सावन तीज तिनमैं श्रीराधा मुकुटमनि।
अंग मंग अंजन मंजन महदी रँगीले बसन भूपन वनि।
रँगीले हिँडोले चढ़ि चाइन सौं गावत मंजुल गीत सुकंठनि।
अंग संग सुख लेत रसिक आनँदघन स्याम सखी बनि॥

राग केदारो] (१०२५)

नंद के नंद ब्रजचंद श्रीगोबिंद सावन मनभावन मैं
झूलै झूलना तैसी है हरियारी।
अति कारी चहुँ ओर घटा तैसिय पिय-प्यारी-उर फूल फूलना।
सहचरी झुलावैं खरी आनँद उर प्रेम भरी नील-पीत चंचल दुकूलना।
मधुर मधुर धुनि गावैं काम को गर्व नसावैं सुंदर मुख
सोभा पावैं भरे तमूलना।
तैसेई चहुँ ओर कूजैं मोर घन घोर सुनि निसि-भोर जानियै
न सुख अतूल तूलना।
तैसेइ श्रीवृंदावन तैसे दोऊ आनँदघन तैसेई हरि
राधा सुखद जमुना-कूलना॥

राग आसावरी, जैतश्री] (१०२६)

नंदसदन जनम्यौ मोहन सुत आनँद ब्रज फूल्यौ हो।
मंगलमनि कुलकलस जगमग्यौ जनम-जनम-दुख भूल्यौ हो।
जसुमति-कूखि कलपतरुवर अति अद्भुत-फल झूल्यौ हो।
पुन्यपुंज को सार साँवरो यह ब्रज अति अनुकूल्यौ हो।

[१०२३] मोद०=आनंदघन ; आनंदमेघ। [१०२५] तमूलना = तांबूल।

क्यों कहि सकै भाग की महिमा नाहिन कोउ समतूल्यौ हो।
आनँदघन चिरजीवौ महरि को जीवन-प्रान जरूल्यौ हो॥

राग मलार] (१०२७) [चौताल

गज चाल चलत जोवन-मदमाती पचरँग चूदँरी पहिरैं ग्वालि।
गौर मुरनि भुज दुरनि भाय सौं उर सरकत मोतियन की मालि।
लंक चलनि सो नचनि नैन की गोरी पीठि पर वेनी हालि।
मुसकि चितै आनँदघन पिय कौं करि जु गई छिन मैं वेहालि॥

राग कनावड़ी, विलावल] (१०२८) [मूलताल

स्यामसुंदर व्रजमोहन पिय सौं नैना मेरे लागे री।
विन देखैं नहिं चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि विसारी इनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन हित प्रानपपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री॥

राग रामकली] (१०२९) [मूलताल

आज तेरी दहेड़ी चाखौंगौ चाखौंगौ रस राखौंगौ।
वहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगौ।
व्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि अभिलाखौंगौ॥

[वृंदावन की प्रति से]

खंडिता] (१०३०)

लाल तुम कहाँ तैं आए जागे।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे।
आनँदघन पिय उहइँ जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे॥

पूर्वराग] (१०३१)

स्याम सुजान के विन देखैं अटपटाय कहुँ ना लागै मन।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैननि लीने हैं री पन।
कहा करौं मन परवस परि गयौ इनहिं न दुख छिन छिन छीजत तन।
आनँदघन पिय सौं कहा कहियै उनकी हाँसी और को मरन॥

[१०२६] जरूल्यौ=(जटिल) लटूरीवाले, गभुआरे केशवाले।
[१०३०] बोलत०=बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलते।

राग बिलावल] (१०२३) [इकताल

अपने गुन आपहि आप ढरी ।
जमुना तेरी कृपा कहा कहौं जो मन-नैन भरी ।
राधारवन - रसामृत - धारा रसना ह्वै सँचरी ।
लाग्यौ रहत मोद - कादंबनि नव नव रंग - झरी ॥

राग सुघराई] (१०२४) [चौताल

हिलि मिलि खेलैं गोपकुमारी सावन तीज तिनमैं श्रीराधा मुकुटमनि ।
अंग मंग अंजन मंजन महदी रँगीले बसन भूषन बनि ।
रँगीले हिंडोले चढ़ि चाइन सौं गावत मंजुल गीत सुकंठनि ।
अंग संग सुख लेत रसिक आनँदघन स्याम सखी बनि ॥

राग केदारो] (१०२५)

नंद के नंद ब्रजचंद श्रीगोविंद सावन मनभावन मैं
झूलैं झूलना तैसी है हरियारी ।
अति कारी चहुँ ओर घटा तैसिय पिय-प्यारी-उर फूल फूलना ।
सहचरी झुलावैं खरी आनँद उर प्रेम भरी नील-पीत चंचल दुकूलना ।
मधुर मधुर धुनि गावैं काम को गर्व नसावैं सुंदर मुख
सोभा पावैं भरे तमूलना ।
तैसेई चहुँ ओर कूजें मोर घन घोर सुनि निसि-भोर जानियै
न सुख अतूल तूलना ।
तैसेइ श्रीवृंदावन तैसे दोऊ आनँदघन तैसेई हरि
राधा सुखद जमुना-कूलना ॥

राग आसावरी, जैतश्री] (१०२६)

नंदसदन जनम्यौ मोहन सुत आनँद ब्रज फूल्यौ हो ।
मंगलमनि कुलकलस जगमग्यौ जनम-जनम-दुख भूल्यौ हो ।
जसुमति-कूखि कलपतरुवर अति अद्भुत-फल झूल्यौ हो ।
पुन्यपुंज को सार साँवरो यह ब्रज अति अनुकूल्यौ हो ।

[१०२३] मोद०=आनंदघन ; घानंदमेव । [१०२५] तमूलना = तांबूल ।

क्यौं कहि सकै भाग की महिमा नाहिन कोउ समतूल्यौ हो ।
आनँदघन चिरजीवौ महरि को जीवन-प्रान जरूल्यौ हो ॥

राग मलार] (१०२७) [चौताल

गज चाल चलत जोबन-मदमाती पचरँग चूँदरी पहिरैं ग्वालि ।
गौर मुरनि भुज ढुरनि भाय सौं उर मरकत मोतियन की मालि ।
लंक चलनि सो नचनि नैन की गोरी पीठि पर वेनी हालि ।
मुसकि चितै आनँदघन पिय कौं करि जु गई छिन मैं बेहालि ॥

राग कनावड़ी, विलावल] (१०२८) [मूलताल

स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं नैना मेरे लागे री ।
विन देखैं नहिं चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री ।
लोकलाज कुलकानि बिसारी इनहीं सौं अनुरागे री ।
आनँदघन हित प्रानपपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री ॥

राग रामकली] (१०२९) [मूलताल

आज तेरी दहेड़ी चाखौंगो चाखौंगो रस राखौंगो ।
बहुत दिनन को दान दुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगो ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँची सौंहनि अभिलाखौंगो ॥

[वृंदावन की प्रति से]

खंडिता] (१०३०)

लाल तुम कहाँ तैं आए जागे ।
अंजन अधरन भाल महाउर चरन धरत डगमगे ।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न लगे ।
आनँदघन पिय उहईं जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे ॥

पूर्वराग] (१०३१)

स्याम सुजान के बिन देखैं अटपटाय कहुँ ना लागै मन ।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैननि लीने हैं री पन ।
कहा करौं मन परवस परि गयौ इनहिं न दुख छिन छिन छीजत तन ।
आनँदघन पिय सौं कहा कहिये उनकी हाँसी और को मरन ॥

[१०२६] जरूल्यौ =(जटिल) लट्टरीवाले, गभुआरे केशवाले ।
[१०३०] बोलत० = बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलते ।

होली] (१०३२) [कान्हरो

मोसौं होरी खेलन आयौ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ।
डगर डगर मैं, बगर बगर मैं सबहिन के मन भायौ।
आनँदघन प्रभु कर दृग मोड़त हँसि हँसि कंठ लगायौ॥

(१०३३) [सारंग

सो बाँके डफ बाजे हैं री, नदनंदन रसिया के।
अब की होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके।
कोउ काहू की कानि न मानत, ग्वाल फिरैं मद छाके छाके।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी, अब न बनै रहि ढाँके ढाँके॥

(१०३४)

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ।
मन मैं तुम्हारे कौन बात है सोई क्यौं न कहौ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ।
आनँदघन तापै नहिं मानत लरिका है निबहौ॥

(१०३५)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री।
अंजन आँजि माँडि मुख मरवट फिरि मुख हेरौ री।
गारी गाय गवाय लाल कौं कार ल्यौ चेरौ री।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री॥

['रसखान और घनानंद' से]

पूर्वराग] (१०३६) [भैरव तिताला

मोवत नगर मैं बोल्यौ को है बगर मैं।
इक डर है मोहि सासु ननद को अलियाँ गलियाँ डगर मैं।
प्रात-समै उठे नदनँदनजू बिरहा भोजन कर मैं।
आनँदघन ब्रज उठहि सबेरे सासु ननद के डर मैं॥

[१०३३] नाका = मुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है। [१०३५] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना।

(१०३७) [टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलोगे तिहारी भँवर की सी रीत।
जित सुगंध पावत तित धावत हौ तुम गरज परे के मीत।
आनँदघन व्रजमोहन प्यारे ठौर ठौरके रस चाखत हौ कैसैं करैं प्रतीत॥

शिव-विनय] (१०३८)

करौ सिव! महर की नजर निसिदिन घरी घरी पल-छिनन।
कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के बिधाता, तुम ही
देवौ दूध पूत लच्छमी आनँदघन॥

पूर्वराग] (१०३९) [बिहाग, चौताल

ए नैना तोहि बरजौं तू नहिं मानत मेरी सीख।
बरजि रही, बरजी नहिं मानत घर घर माँगत रूप-भीख।
चित चाहत है प्यारे के सरूप को अब कैसैं मिलनो होय देख।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीं करम-रेख॥

(१०४०) [तिताला

प्रीति करी सो मैं जानी रे मोहन।
दै बिस्वास गयौ तजि मथुरा रति कुबजा सौं मानी रे।
कपट-भरो कारो तन तेरो कपट-भरी सब बानी रे।
आनँदघन हित चित री बातौं जानत राधा रानी रे॥

(१०४१) [झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो, लागी मैंडे वो।
जब तैं कृपा करी नँदनंदन मिट गई कर्म की खोट वो।
लख चौरासी भटकत भटकत स्यामसरन आई ओट वो।
आनँदघन घनस्याम मोहिं मिल गए मन मैं रही कहुँ टोट वो॥

(१०४२) [जंगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया वे, स्याम तेरे।
भौंहैं कमान बान कटाछन बेधा गरीबाँ दा हिया वे।
रहदे मस्त महा मतवारे खंजन मध जो पिया वे।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया वे॥

[१०३८] महर=कृपा। [१०४१] मैंडे=मेरे, मुझे। खोट=खोटापन। ओट=शरण। टोट=कमी। [१०४२] खँजन०=खँजनों ने शराब पी है। असाडा=हमारा।

चेतावनी] (१०४३) [कालिंगरो

विलम न करियै हरि के भजन को ।
करत पलक मैं और और तैं नाहिं भरोसो तन को ।
आय बन्यौ है अवसर नीको करि लै मनोरथ मन को ।
बार बार सुमिरै गुन-पूरन सुनि जस आनँदघन को ॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१०४४)

वृंदावन आनंदघन, कछु छवि बरनि न जाय ।
कृस्न-ललित-लीला-करन, धारि रह्यौ जड़ताय ॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१०४५) [पूरवी ख्याल, इकताला

नैनन देखिवे की बानि ।
बरजि रही बरज्यौं नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहचानि ॥

(१०४६) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया ।
या मारग हूँकै हौं निकसी, मेरो छीनि लियो दहिया दैया ।
सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया ।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया ।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया ।
आनँदघन कैसैं कै भीजैं ओढ़ि रहे कारी कामरिया ॥

['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(१०४७) [खंमाती

होरी खेलौंगी स्याम-संग जाय हो सजनी भागनि तें फागुन आयौ ।
वो भिजवै मेरी सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग ।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुहार ।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग ।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सों मेरो रहियौ है भाग-सुहाग ॥

[१०४४] जड़ताय=जड़ता । [१०४६] पीहर=मायका । पाँवरियाँ=जूतियाँ । [१०४७] वो० = वह भिजाएगा । पाग=पगड़ी । सुघर=चतुर ।

(१०४८) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोवन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(१०४९) [सोरठ

लागी रट राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन धन बरसानो गाम॥

(१०५०) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।
चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसिदिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(१०५१) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहीं साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(१०५२) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्योछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

बालम=पति। [१०४९] ढुटौना=पुत्र। खोरि=गली। [१०५०] चरचत०=बदनामी करते हैं। बटाऊ=पथिक।

चेतावनी] (१०४३) [कालिंगरो

विलम न करियै हरि के भजन को ।
करत पलक मैं और और तैं नाहिं भरोसो तन को ।
आय बन्यौ है अवसर नीको करि लै मनोरथ मन को ।
बार बार सुमिरै गुन - पूरन सुनि जस आनँदघन को ॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१०४४)

वृंदावन आनंदघन, कछु छवि बरनि न जाय ।
कृस्न - ललित - लीला - करन, धारि रह्यौ जड़ताय ॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१०४५) [पूरवी ख्याल, इकताला

नैनन देखिबे की बानि ।
बरजि रही बरज्यौ नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी अंतर की पहचानि ॥

(१०४६) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कान्हैया ।
या मारग ह्वै कै हौं निकसी, मेरो छीनि लियौ दहिया दैया ।
मासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया ।
इत डर उत डर भूलि गिरी, सँग मोहन नाचौंगी ताथैया ।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पाँवरिया ।
आनँदघन कैसैं कै भीजै ओढ़ि रहे कारी कामरिया ॥

['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(१०४७) [खंभाती

होरी खेलौंगी स्याम-संग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ ।
वो भिजवै मेरी सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग ।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुवार ।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग ।
आनँदघन रंगीलौ सुघर बालम सौं मेरो रहियौ है भाग-सुहाग ॥

[१०४४] जड़ताय=जड़ता । [१०४६] पीहर=मायका । पाँवरिया=जूतियाँ । [१०४७] वो०=वह भिजाएगा । पाग=पगड़ी । सुघर=चतुर ।

(१०४८) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर ते री।
तू जो नई दुलही नव जोवन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित चरचा तेरी।
जा दिन तोहि लखैं घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(१०४९) [सोरठ

लागी रट राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन धन बरसानो गाम॥

(१०५०) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी तब किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।
चरचत हैं सब लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसिदिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(१०५१) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनन नाहीं साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
तैसिय अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(१०५२) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्योछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु को जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

बालम=पति। [१०४९] ढुटौना=पुत्र। खोरि=गली। [१०५०] चरचत॰=बदनामी करते हैं। बटाऊ=पथिक।

(१०५३)

ए री हौं तौ चहूँगी री। [मालव'

अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी।
सास ननद की कानि न मानूँ देवर-गारि सहूँगी।
आनँदघन व्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी॥

विरहिणी]

['घन-आनंद' से]

(१०५४)

तेरे नाल लगी हो जिंद निमानी। [कान्हरा

कित वल कूँगाँ कोई नहिं सुनदा साडी दरद-कहानी।
जो तुन वेखाँ तोसी जीवाँ मान न कर वे गुमानी।
आनँदघन हूँ तू तरसावी वारी वारी ओ दिलजानी॥

टेर]

(१०५५)

तुमकों टेरत हौं कहौं न। [ललित

श्रीवृंदावन-ओर जात हैं रूप-रासि की खाँन।
टेरन के लगि हेरन लागी हेरन लागि हेराँन।
आनँदघन रसमत्त पपैया ज्यौं जल बिन मुरझाँन॥

लगन]

(१०५६)

लागि रह्यौ मन गिरधर सौं और कहूँ कछु और उपर सौं।
दिन रतिनाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुघर सौं।
आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगोंगी मैं गिरधर सौं॥

(१०५७)

आईये आईये लालन, अंग संग रंग के तरंग [मालव

उपजैं री जब सब निसा जगाई।
नद ही कों मनमथ, मथ नित जानति तांके के रस-बस
आनँदघन मौनिन गाजनी गाई॥

—['मनमाली' से]

[१०५३] चहूँगी=देखूँगी। [१०५४] नाल=लिए, वास्ते। जिंद=जिंदगी। निमानी=अभागी। दरद=दर्द। साडी=हमारी। वेखाँ=देखूँ। [१०५५] पपैया=पपीहा। [१०६०] उपर०=ऊपर से। [१०६१] गाजनी=गर्जन, दर्प।

प्रकीर्णक

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन-दमक फैलि हियैं मोती-माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥ १॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि मैं छवि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥ २॥

कवित्त

छवि को सदन, मोद-मंडित वदन-चंद,
तृषित चखनि लाल! कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेष करैं, मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
विरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि! आनँद को घन बरसायहौ॥ ३॥

[१] भाय=भाव। लड़कि=लटक या ललक के साथ। निधि=खजाना। [२] जलजावलि०=दो लर की मोतियों की माला। [३] ढुराय=मटकाते हुए। लड़काय=ललककर।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है॥ ४॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइयै॥ ५॥

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यों हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै॥ ६॥

[४] लड़कीली=ललकवाली। बैन=बेनु, बाँसुरी। चिताई=चितवन की हुई। [५] बड़वागि=बड़वाग्नि। पैयै=पाइए। ऐपै=इतने पर भी, किंतु। [६] सूल=वेदना की हूक। कलपायहै=तरसाएगा। कल=चैन।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भरयौ,
कालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सु ऐन आलौ,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तें न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भट्ट लूट सी वित गयौ ॥ ७ ॥
जाके उर बसी, रसमसी छवि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसैं करि लागिहै।
चखनि चपक पूरि पियो जिन रूप-रस,
कैसैं सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसैं कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरैं सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है ॥ ८ ॥
हिलग अनोखी क्यौंहूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट विकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै ॥ ९ ॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान, भरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।

[७] ऐन=घर। लूट०=लूट सी करके। [८] रसमसी=रसीली। चपक=प्याला। धूम०=धूएँ का धुंध। [९] हिलग=लगन। मरूर=पीड़ा।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छवि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है ॥ ४ ॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसैं करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई, दई कैसैं कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ बाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोप काहि कौं लगाइयै ॥ ५ ॥

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलै तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसैं कल पायहै ॥ ६ ॥

[४] लड़कीली = ललकवाली। बैन = वेणु, बाँसुरी। चिताई=चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि = बढ़ती। कैं=कई। ऐपै = इतने पर भी, किंतु। [६] सूल०=वेदना की हूक। कलपायहै = तरसाएगा। कल = चैन।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भरयौ,
फालिह मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े बाँके नैन महा सोभा के सुऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तैं न मेरे चित्त चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरैं सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भट्ट लूट सौ वितै गयौ॥ ७॥
जाके उर बसी रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसैं करि लागिहै।
चखनि चषक पूरि पियो जिन रूप-रस,
कैसैं सो गरल-सनी सोखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल अंग
छाड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसैं कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को वदन हेरैं सीरे होत,
और बात आली सब लागति ज्यौं आगि है॥ ८॥
हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिले हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट विकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि विसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी मति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैयै सुधि जी मैं ठहरैयै,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै॥ ९॥

सवैया

रैन-दिना घुटिबो करैं प्रान, झरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।

[७] ऐन=घर। लूट०=लूट सी करके। [८] रसमसी=रसीली। चषक=प्याला। धूम०=धूएँ का धुंध। [९] हिलग=लगन। मरूर=पीड़ा।

चौचँद - चार चवाइन के चहुँ ओर मचैं विरचैं करि हाँसी।
याँ मरियै भरियै कहि क्यौं सु परी जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१०॥
अलि ! जौ विधिना व्रजबास न देतो न नेह को गेह हियो करतो।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहीं लखियै दीठि सौं ले भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छवीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख को लौं सहौं बुटि कैसैं रहौं भयौ भाकसी देखैं बिना घर तौ ॥११॥

कवित्त

छवि सौं छवीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीली भाँति औचक ही आय गौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखैं मो मन विकाय गौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मो तन चिताय गाय लोचन दुराय गौ।
तब तैं रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसाय गौ ॥ १२ ॥
छवि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाई जो लुनाई दरसति है।
बारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रानप्यारे, रूप-
रेलहिं सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥ १३ ॥
सुंदर सरल लोनो ललित रँगीलो मुख,
जोबन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।

[१०] गाँसी=फाँस। चौचँद०=बदनामी की चर्चा। [११] भाकसी=(भस्त्रा=भाथी) भट्टी। [१२] दुराय गौ=मटका गया। घूमि०=मतवाली हो गई हूँ। रेल=प्रवाह, अधिकता। चाहनि०=देखने से लालसा की वृद्धि होती है।

लोचन चपल चितवनि चाव-चोज-भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भावनि ढरनि है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हिरा हरनि है।
नख-सिख आनँद उमग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छबि छलक्यौ करति है ॥ १४ ॥

बैस है नवेली अलबेली ऊठ अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग पैंडत चलत है।
सहज छबीले दसननि मैं रची री बीरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उफनत है।
छके छुवैं कान बारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैननि दलत है।
कारी घुंघरारी अलकनि के छलानि, छैल
ताननि लुभाय फिरि प्राननि छलत है ॥ १५ ॥

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलो सु
डग-मग उरझ्यो परत आली उर मैं।
काननि है प्राननि निकासि लेत एरी बीर!
ऐसो कछू गावत मधुर बंसी-सुर मैं।
ढोरियै दरेरनि निदरि लाज देखिबे कौं,
पौरि पौरि याही खोरि साची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै, बसि कीजै कहा, महा सोच,
चारयौ ओर चलत चबाव लघु-गुर मैं ॥ १६ ॥

तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज झूमि झूमि बरसत है।
लोने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
पीत कौं चमकि लै लै हियैं सरसत है।

[१४] सुठौन = सुंदर। [१५] ऊठ = उठनि। [illegible] = [illegible]। मैन० = कामों को पराजित करता है। छला = छल्लों के छल्ले। [१६] [illegible] = धँसे आ रहे हैं। ढोरियै = साथ लगना। खोरि = खोर।

चाह के समीर की झकोरनि अंधोर ह्वै ह्वै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हूँ उघरैं न एकौ पल,
ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है॥ १७॥

आई आन गाँव तैं नवेली पास पायसैं सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो तक्यौ ता कहूँ,
दीठि के मिलत वढ़ि परयौ चित चाव री।
रीझि-परवस पर वस न चलत कछू,
ऐसैं ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
धूँधरि अबीर की कौं मानत बिभावरी॥ १८॥

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायैं पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौं।
मीड़िबे के लेखैं कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं॥ १९॥

भावती सहेट अंक भरि भैंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर!
बानियौ सिरानी, क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगैं कहा बीती, भई तब हीं सुरति-रीती,
जैसैं सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।

[१७] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। [१८] पास = निकट, पड़ोस। पायसैं = जेवनार मैं। आवरी = व्यग्र। बिभावरी = रात्रि। [१९] चहनि = देखना।

सोभा-रस चाखैं अभिलाखैं दुतीं आँखैं,
घनआनँद उछरि ओछी फूलीं भूलीं जाप कों॥ २० ॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी तामैं केती सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई मृदुताई की अवधि सोधी,
कैसे कै रची है जामैं बिधि-बुधि राँक है।
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यों बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है।
चलि चित चोरैं मुरि मनहि मरोरैं सुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है॥ २१ ॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-समै,
सब सुख भोर ही सिंदूरा की सी फल है।
जोबन गरूर गरुवाई सों भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की दुति आगैं
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।
दुहूँ हाथ अंसनि तैं पोरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि रौरि परि थाकी गैल है॥ २२ ॥

मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के बरन झोने नीमा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन बनितान के,
निहारि मोती-मालहि बिचारि धारा गंग की।

[२०] सहेट = संकेतस्थल। सिरानी = बंद हो गई। सुरति० = सुधहीन। [२१] लटपटी = टेढ़ी-मेढ़ी। सूध = सीधी। बाँक = वक्रता। साँक = सशंक। लाँक = कमर। [२२] सिंदूरा = उषा की रक्तिमा। मैन = कामदेव; मोम।

आनँदनि भरो खरो मुरली बजाव मीठी
धुनि उपजावै राग - रागिनी - तरंग को ॥ २३ ॥

सवैया

नैन किये नरजी दिनरैन रती-चख कंचन-रूपहि तोलौं।
बारह बानि बनी ठनी षोड़स प्यारी के प्रेम छकी नित डोलौं।
श्रीबन-रानी के छत्र की छाँह करैं सुख-वारिधि माहिं कलोलौं।
चाड़ न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गरूर भरी नहिं बोलौं ॥ २४ ॥

['घनआनंद-कवित्त' से]

कवित्त

लाख अभिलाषन की चिंता गुनकथनन,
सुधि करि दान की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु वेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यौ तौ अति अकुलात,
सैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिलजान सौं जु मानी वा सुजान सौं,
निसानी दै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥ २५ ॥

सवैया

आपु ही तैं तन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौ सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अमीत कहा यह ऐसो न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहि गाउँ मैं ॥२६॥

[२३] नीमा=नीचे पहनने की कुरती। मजन=स्नान। [२४] नरजी=तौल करनेवाला। रती = रति (प्रेम) ; रत्ती। बारह० = बारह बानी सोना, कुंदन; बारह आभूषण। षोड़स = सोलह शृंगार। श्रीबन० = राधा। चाड़=लालसा, यहाँ अपेक्षा या परवाह। [२५] लाप = संलाप, बातचीत। निसानी = पहचानकर का चिह्न। [२६] भाउ = भाव, वृत्ति।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ह्वै लगे कित जीजियै जू।
रसनायक दायक ह्वौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ विनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥२७॥

['शृंगार संग्रह' से]

तब तौ दुरि दूरहि तें मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैननि मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहें धँसे ॥२८॥

['सुजान-शतक' से]

कवित्त

बिरह बिसूरे पीर-पूरे मन सबन के,
राति-धौंस भयौ जिन्हैं पलकौ कलन को।
औधि-आस ओसनि सहारैं हाय कैसैं करि,
जिनको दुसह दीसै पारिबो पलन को।
या विधि वियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दलन को।
आनँदपयोद के पपीहनि पै छायौ अब,
दीरघ दुसह घाम स्याम के चलन को ॥२९॥

['मिश्रबंधु-विनोद' से]

मरम भिदै न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसैं सुरनि घँघोइबो।
राग ही तें राग के सरूप सौं चिन्हारि होति,
नैनहीन काननि असूझ टकटोइबो।
अकथ कथा है क्यौंऽवगाहियै अथाहै तान,
च्यौरिबो वृथा है बादि औसरहि खोइबो।

[२७] रस=आनंद। [२८] हे=थे। [२९] कल=चैन। पारिबो=बिताना।

प्रेम-आगि जागैं लागैं झर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ३० ॥

गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाएँ कहा रस कछू औरई ।
समझि समझि बातैं छोलिबो न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौं नेह-बौरई ।
कान्ह ब्रजमोहन सौं जौ पन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति दौरई ।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरे मिले को सुख,
तिनहीं मैं व्यापौ ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ३१ ॥

करुना की रासि सदा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की निधि बिधि मूरति सुठान की ।
रूप-चतुराई सुभ सील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वैहै कहियै धौं को समान की ।
अति ही उदारता की सीवाँ, उर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की ।
काहू सौं न कछू कहौं अपनी ही सोचि रहौं,
मोहिं आस तैयै क्यौं लड़ैती वृषभान की ॥ ३२ ॥

अगम अगाध अद्भुत औरै और अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौं हू आवरे ।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
बदत बदत बेदौ भेद भए बावरे ।
आनँद के अंबुद रसाल महा रोचक हैं,
सब ही के हिये मैं बढ़ाय देत चाव रे ।

[३०] मरम=मर्मस्थल । मरम=तत्त्व । घँघोइबो = मैला करना, बिगाड़ना । राग=अनुराग । राग=गीत का राग । नैन=मानस-नेत्र । क्यौंऽवगाहियै=कैसे थहाया जाय । ब्यौरिबो=विवेचन करना । [३१] ससक=सिसक । बौरई=पागलपन । रौरई=कोलाहल । [३२] न होत०=शिव आदि (मति के थकित

सुनत गुनत अभिलाखत अरुझि बानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥ ३३ ॥

सुनि सुनि रावरे गुननि बावरे हैं कान,
लोचन उतावरे हैं लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
बारनैं तिहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
छाए घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
दरसौ न देया देखे उघरि अनैसे हौ ॥ ३४ ॥

जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल ही
मान्योई रहत बन बेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भैंट,
नैन-सैन-दैन-चैन चाहतो परस है।
बानक सुठौन सहजैं ही देखैं बनि आवैं,
आनँद को अंबुद मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी है जौ लगैं तौ सौंह आँखिन की,
आँखिन को फल ब्रजभूमि को दरस है ॥ ३५ ॥

बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
बीचिनि मरीचैं जागि लागति जगमगी।
भावना भरनि हिय, गहर भँवर परैं,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगी।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंबुद कौं
बन घन ढूँढ़ै रीझि डोलति डगमगी।

होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवरे=मलिन, यहाँ विमुख।
सक्र=इंद्र। सहसमुख=शेष नाग। [३४] लोचैं=विचारते हैं। [३५]
सुठौन=सुंदर। [३६] बिभाकर०=सूर्य की पुत्री, यमुना। बीचिनि=

प्रेम की पसीजनि प्रवाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिँगार - सार सौँ सगमगो ॥ ३६ ॥
स्याम-अंग-संगिनी बिसाल-रस-रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौँ रही भोय है।
जमुना जननि मोदकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर पर्‍यौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
बिनती करत हाहा हठि हारि रोय है।
आनँद के घन सौँ पपीहापन पालै क्यौँ हूँ,
बासना मलीन मेरे अंतर को धोयहै ॥ ३७ ॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के जब तेँ हरिबोई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सो धन हेली इते पर हाथ कौँ पाय पसारै।
ह्वैहै कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सवारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैँ बिष-बाननि मारै ॥ ३८ ॥

कवित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रलिका।
हरि बनमाली करि हरित भयौ है हियो,
कैसेँ रह्यौ परै खिली लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु ब्रजगोरी घनआनँद की,
इते मान तान-बान करी है बिकलिका।
कथनि कही न परै प्रेम-मतवारिन की,
काहू की न सुनी ऐसेँ सुनी है मुरलिका ॥ ३९ ॥
लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करन चित-छाय को।
जोबन झलक अंग रंग तकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।

लहरों में। सगमगी=सज्जित। [३८] हाथ०=हाथ में और कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (डटी है)। [३९] रलिका=क्रीड़ा।

गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख-
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर चीर जमुना के तीर बीर,
टोना भरयौ डोलत ढुटौना नंदराय को॥ ४० ॥
रसिया रँगीलो ब्रजमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरै अनुराग ही को,
ताननि घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनँद को घन चोप चातक ह्वै भूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तौ हारि परी पै घटै न कहूँ याको तेह॥ ४१ ॥

सवैया

जब तैं डफ-बाज सुनी सजनी तब तैं मति कौं कछु बौरई सी।
मन के पन की गति जोऽब लखौं रितु और भई रति औरई सी।
मचिहै जब फाग कहा करिहौं अब ही करी कान्हर खौरई सी।
घनआनँद धावत गारिनि गावत आवत पारत रौरई सी॥ ४२॥
रोक्यौ रहै अब क्यौं करिकै मिलि खेलनि हाँस को ओज बढ़यौ है।
राख्यौ दुराव दुराइ हियैं अनुराग सु बाहिर आनि कढ़यौ है।
साँवरे छैल गरबारनि गारिनि गाय के दोहरा एक पढ़यौ है।
चोपनि चौगुनियै पुट लागिहै आजु तौ सौगुनो रंग चढ़यौ है॥ ४३॥

कवित्त

रूपे हैं गुपाल ग्वाल-मंडली लगौंहीं संग,
सजे खेल साजनि सौं उपमा न सरसी।
इतै राधा नागरि विनोद-बिजै-मूरति,
सहेलिन के जूथ फूली रूप-कंज-सरसी।

[४०] मैन=मदन, काम। छाय=छेद। ढुटौना=पुत्र। [४१] अछेह=अपार। तेह=तीखापन। [४२] खौरई=नटखटी। रौरई=शोरगुल, कोलाहल। [४३] पुट लगना=रंग चढ़ना।

धूँधरि धमारि कीच माची कहो परै कैसैं,
कोटि काम-कटक कै धसकै धौंसर सी।
आनँद के घन की गरज हो हो बोलनि मैं,
होति है परसपर पैजनी-पसर सी ॥ ४४ ॥

कान्हर खिलार मोद मूरति उदार रूप,
जोबन को मतवार होरी-खेल खग्यौ है।
अवसर सरस बखानैं आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताकी उमँगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार - भरी भावती के
रोम रोम राग-भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामनीन पुंज फैलि परे,
आनँद के घन पै बिनोद-झर लाग्यौ है ॥ ४५ ॥

खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग - राग सरसाति है।
भाग-भरे भावते सौं औसर फब्यौ है आनि,
आनँद के घन की घमंड दरसाति है।
औचक निसंक अंक चाँपि खेल-धूँधरि मैं,
सखिन त्यौं सैननि ही चैननि सिहात है।
केसू रंग बोरि गोरे करि स्यामसुंदर कौं,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि बूड़ि जाति है ॥ ४६ ॥

सवैया

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फीकियै खौरनि सौं।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनाँ दस दौसि परै सब ठौरनि सौं।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिलै कहूँ टौरनि सौं।
मन चाहत है मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौं ॥४७॥

[४४] उपमा०=उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसी=छोटा तालाब। धसकै=फैल रही है। धौंसर=धूलि का आवरण। [४५] खग्यौ०=लगा है। [४६] केसू=किंशुक, पलाश।

बात कही उन रातिन की अब ही तें कहौ दिन कैसें बितैयै।
चातकी ह्वै घनआनँद ओर चकोरी भएँ ब्रजचंद चितैयै।
बाढ़ि परी अभिलाष-नदी अति, कौन बनाव की नाव बनैयै।
चीर लिये सु हिये हरि हेलां दिये न दिये घर लैं कहा जैयै ॥ ४८ ॥

पिय को मन ह्वै चलिबे कौं नठ्यौ जिय बैठो रहै न सह्यौ परिहै।
चित तो चपट्यौ तिन जात लियें यह बावरो कैसें गह्यौ परिहै।
घनआनँद पावस आय लगी बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परिहै।
करिहौ सु कहा कहि री सजनी बदरान लखें न रह्यौ परिहै ॥ ४९ ॥

भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कुंज भयानक भासे।
जेइ रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के प्यासे।
हिये सियरात मिले घनआनँद लौटत ओटत हाय अवासे।
बस लगि काहि सखी बिरहा ब्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे ॥५०॥

धनि वे बन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरें सु धरौ।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनके फल लैं रसपान करौ।
घनआनँद सींचत डालो सबै बड़भाग की रासि रसीली भरौ।
हम सूखतिं ये पन-प्यास-भरी ब्रजजीवन जीव की जानि ढरौ ॥५१॥

पल ओट भए पन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है।
तुम दीसि परौ न इतै पर प्यारे तिहारियै आवनि दीसति है।
घनआनँद प्रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नीके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिनरात असीसति है ॥५२॥

ब्रजमोहन रूप-छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते।
उर आनियै ते जिय जानियै ते सनमानियै ते सुखदानियै ते।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह बखानियै ते ॥५३॥

[४७] खौरनि=हलकेपन की दुष्टता। टौर=घात, दावँ। [५०] अवासे=आवास, घर। बिरहा०=उन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले ब्रज को विरह के हाथ सौंपते गए। [५२] कसीसति० = खींचती है। मनसा=इच्छा।

काहे कौं सूल सहौं सजनी अरु क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिले घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसें कहौंगी।
जोबन बैर परयौ है कुटीचर काम पै वाहु अनेक चहौंगी।
लैहौं हियैं लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥५४॥

आनि मिलौ ढुरि आपुनि गौं फिरि जारत जू जियराहि बिछोहन।
कौन सवाद परयौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय बढ़ावत हौ इत छोहन।
जानि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥५५॥

ब्रजमोहन गोहन छाड़त नाहिँ चढ़े चित बैरहि लेत रहैँ।
दिन-रैन समीप. बियोग धौं कैसो, कहा जौ दिखाइ न देत रहैँ।
झर लाय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैँ।
भरि हेत रहैँ करि चेत रहैँ, तजि खेत रहैँ रसमेत रहैँ ॥५६॥

पाय परैं गति रावरी कैसैँ मिलैं अमिलौ रहि मोहत मो ही।
जीवन हौ जग के घनआनँद या विधि क्यौं तरसावत मोही।
लालसा लागी रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-माँझ बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहे तैं ऐसैं अमोही ॥५७॥

अनचाहेऊ चाहैं खिजेऊ हँसैं, जगि बोले बिना उख-नींद खगैं।
बिन काज ही हार से फिरैं. जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लई मुरली-सुर मैं रसबाद जगैं।
कहि क्यौं मरियै करियैऽब कहा नियरेई रहैं अति दूर भगैं ॥५८॥

अति तीखे परेखनि सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा जिवावन आए कहा घटि जायहै जू।
मन कौन धरे जु बियोग को आँचनि ताचि तनौ लटि जायहै जू।
कबहूँक तिहारी औसेर - दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ॥५९॥

[५४] कुटीचर=कपटी। [५५] छोह=ममत्व। [५६] हेत=प्रेम। रसमेत=रसमय। [५९] ताचि=पककर। तनौ=शरीर भी। लटि०=क्षीण हो जायगा। औसेर=प्रतीक्षाजन्य वेदना।

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुतंतर हौ अंतर पिराय कै।
भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह थप्यौ है थिराय कै।
मीठी मीठी बातैं कहि दैया बिष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
बरसौ बिसासी घनआनँद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥६५॥

गति लेत प्यारी न्यारी न्यारीयै लहक जामैं,
लोन अंग रंगनि लगै निकाइयै झरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी ररी।
मुरलो बजाय कै नचावै रिझवार प्यारो,
सुरति लगौंहीं डटि भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललिता ललित आँगुरीरि ढोरै,
छायौ घनआनँद चटक चोख है परी ॥६६॥

कोए बिष-भोए सुधा सींचत निहारनि मैं,
बिषम अन्यारे प्यारे लागै पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं चकचौंधी होति,
उज्जल ढरारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकी हैं घन-
आनँद उमहि दाबै धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन टरै न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊलट उठान हैं ॥६७॥

मोहन अनूप बने रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी उरझ की छबीले येई साखियै।

[६५] गसीले=गाँस से भरे, छली। अंतर=चित्त। [६६] ररी=रटती है, व्यक्त करती है। ढोरक=ढोलक। ढोरै=चलाती है। चोख=तीव्र। [६७] बाँक०=

पीवति अघाय प्यास बाढ़िये रहति सदा,
अहा अचरज कहौं कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
जसुधा-कुँवार गुन गाहि अभिलाखियै।
चोप चातकी है भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस हैं रसीले रस राखियै ॥६८॥

लगैगी तुम्हैं हूँ, कहूँ कबहूँ सनेह-चोट,
मेरी सौं दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौं ऐसो दिन होयगो कबै धौं दैया,
विषम बिछोह बौसरातिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनंद जू,
मोहि फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातें तुम सुखी रहौ हौं ही दहौं, कहौं कब
लपटनि तातो छाती लपटि सिरायहौ ॥६९॥

सवैया

लहाछेह कहा धौं मचाय रहे ब्रजमोहन हौ उख-नींद भरे हौ।
मिलि होति न भेंट, दुरे उघरौ, ठहरें ठहरानि के लाले परे हौ।
बिछुरें मिलि जात मिलें बिछुरें यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ ॥७०॥

छप्पय

अच्छर मन कौं छरै बहुरि अच्छर ही भावै।
रूप अच्छरातीत ताहि अच्छरै बतावै।
अच्छर को यह भेद कौन जानै बिन मानै।
अच्छर हू मैं मौन मिलै सारदा सुठानै॥
अच्छर मौन सवाद-रज आनँदघन बरसत रहै।
तत्वबोध बौरानि मैं अच्छरगति अच्छर लहै ॥ ७१ ॥

हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [६९] दुहेली=दुःखद। [७०] लहाछेह=शीघ्रता। [७१] अच्छर=(अक्षर) वर्ण। अक्षर=ब्रह्म। छरै=छलता है।

छंद

ब्रजमोहन जू मन लागि परयौ जो लागि परौ ते लेखै है।
नाहीं तौ हाहा जनम निगोड़ो यौँ ही जात परेखै है।
जिन तरसावौ रस बरसावौ जग छायौ सुजस बिसेखै है।
आनँदघन प्यारे प्रान पपीहै पल पहार बिन देखै है ॥ ७२ ॥
तीखी तरल सोच हूकनि हिय हाय हाय कौ लौं छनिहै जू।
धुनि धुनि सीस दीन जियरा पुनि कब लौं दुखनि हारि हनिहै जू।
ऐसैं ही ऐसैं आनँदघन कैसैं तुम्हैं बिना बनिहै जू।
औधि अनेक भाँति बितई हरि अंत लेत फिरि को गनिहै जू ॥ ७३ ॥

चौपाई

जो सवाद आवै हरि-रस को। मन तैं मिटै मीच को धसको।
मिलै सजीवन बाढ़ै चसको। आनँदघन झर लगै दरस को ॥ ७४ ॥

बरवै

श्रीबृंदाबन आवै सो मन और।
ऐसैं भटकै मन को केतिक दौर ॥ ७५ ॥

महाबरवै

सुनहु लड़ैती राधे कीजै करुना-डीठि।
मन सनमुख करि लीजै कब लौं पीठि ॥ ७६ ॥

सोरठा

जासौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥ ७७ ॥

दोहा

ब्रजबासिन की अगम गति कौं लखि सकै न कोय।
नंदराय के बास बसि, जौ ब्रजबासी होय ॥ ७८ ॥
ब्रजमोहन सुख नित नयो, तिहूँ समय रसरूप।
बिन बूझे मति सूझई, अतुलित प्रेम अनूप ॥ ७९ ॥

—[श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना से प्राप्त]

[७३] छनिहै = बँधा रहेगा। [७७] पोहि = गुहकर।

छंदाष्टक

कहाँ जाहिं अरु करैं कहा अब तुम तौ पिय सब गतिनि थकाईं।
विसवासिनि विसभरी बँसुरिया क्यौं बजाइ करि बिवस बुलाईं।
घर तैं गईं भईं यौं बन की कत कौं करत हाइ निठुराईं।
कठिन बात कहि जिन जिय जारौ हा हा स्याम सरन हैं आईं ॥८०॥
रूप निहारि हारि मन लोचन ब्रजमोहन बिन मोल बिकाईं।
क्यौं धौं तजत दीन दुखियनि कौं जथासकति सेवाहित धाईं।
सफल करौ किनि कृपा कलपतरु फूलि फूलि अभिलाषनि छाईं।
आनँदघन हौ सुरस सींचियौ बिरह-ताप-मुरझानि सताईं ॥८१॥
तजि कित गए भए हित आखत पिय आकिली क्यौं तुम्हैं सुहाईं।
हाहा हो ब्रजनाथ साथ बिन बिरहा डरनि मरनि हहराईं।
छतियाँ छत कर छियौ सजीवन बिथा हरौ अब अधिक पिराईं।
रस चखाइ चातकनि मोदघन प्यास-त्रास या बिधि तरसाईं ॥८२॥
सुनि पुकार ः गत गुहार किन अपनी करि कत करत पराईं।
अबलनि बलहि सम्हार महाभुज दहिने ह्वै न दीजियै बाईं।
आइ जिवाइ लेउ आनँदघन औसेरनि औसनि अकुलाईं।
रसभीजी चितवनि लखाइ करि अब ऐसी आखैं दिखराईं ॥८३॥
देखौ री चलि सघन कुंज मैं तम-पुंजनि न होत डरपाईं।
अनबोली ह्वै रहौ घरिक लौं सुनि सो धौं मुरली सुरझाईं।
या दिसि होत जोति सी जागत फिरि धौं कहा बढ़ी दुखदाईं।
लेहु ढूँढ़ि चितचोर आपनो देहु देखि मुख भाग बड़ाईं ॥८४॥
मुसकत लसत पीतपट ओढ़ें उर बिलास बनमाल भुराईं।
नमित नैन सुखदैन हमारे मृदुमूरति न दूसरी दाईं।
सतहि लगी अँखियनि बिकानि कसु क्यौं करै न बसु इन धाईं।
भल स्याम प्यारे तारे हौ दृग मिलिबो किनि दई मिलाईं ॥८५॥
धरौ चरन दुखहरन दयामनि हम दीननि ओढ़नी बिछाईं।
मन सुख ह्वै सुखसदन साँवर बैठौ तनक बहुत बिडराईं।
कहौ प्रीति की नीति रीति कछु जीति लियौ सब जग चतुराईं।
ये पटियाँ कित पढ़े कहौ किनि कपट छाँड़ि गोपाल गुसाईं ॥८६॥

गस जिनि गह्यौ कह्यौ सो ऐ पर उचित आहि अपराध छमाईँ ।
अतुल प्रेम की कला करोरिक तुम बिधि अबिधि दाबि दरसाईँ ।
या बिधि तन मन धन दै रंकहिँ रिनी कियौ अपनी अगराईँ
बुरो मानिबो उर न आनिबो अब तुम ही सब भाँति भलाईँ ॥८७॥

त्रिभंगी

सब सुखनिधि मुख सुषमानिधि रसनिधि जसनिधि हितनिधि लहि किन तूँ
भ्रम-स्रम-भंजन सुचि रुचि रंजन मुनिमनरंजन पन गहि किन तूँ ।
आनँदघन अमित अपार सारस्रुति सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत - द्रव मैँ मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८८॥
जग-छीलर सुलप सलिल सुख-संपति तिहिँ तजि तनक उमहि किन तूँ ।
प्रसरित भ्रमजाल बिसाल तहाँ यह सुख सुनि वेगि निबहि लहि किन तूँ ।
आनँदघन सदा सरस सीतल सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत-द्रव मैँ मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८९॥
मोहन - मुरली अंमृत - धुनि सुनि मोहति रस - बस ह्वै ।
अद्भुत अनुराग रचना जब जब प्रताप जड़ चलत जु च्वै ।
जमुना-जल अनिल सगन ससि बिथकित सबै चकित सरूप-गुन छ्वै ।
आनँदघन गरजि गरजि बरसत ब्रजतिय-हिय-तृषा-भावना भ्वै ॥९०॥
श्रीकृस्नकथा मंगलमनि हैं याते सिवब्रह्मानारदसारद मुनिसुकादि राखीभनि हैं
कीरति-कुल-कलस अलस तजि सेस सुनाम असेस सिथिल गनि हैं ।
रसना हित रसद बिसद कामद निहकामनि कामधेनु धनि हैं ।
गुन - रूप - रासि मोहन मुरलीधर स्रवन कथन मन सरसनि हैं ।
ब्रज आनँदघन गोपीजन - जीवन प्रेम वमँड सुख-रमँडनि हैं ॥९१॥
निरवधि सुखदायक रस मधि नायक ललित सुभायक नवनागर ।
राधामन- रंजन प्रीतम- अंजन मानस - मंजन गुन - सागर ।
अच्युत आनँदघन ब्रज जीवनधन बन बिहरत क्रीड़ा - आगर ।
मोहन-मुरली-रत रमनी - संजुत रुचि अद्भुत रजनी - जागर ॥९२॥

———

परमहंस-वंशावली

दोहा

श्रीगुरुपदवर - कोकनद - नव-मकरंदहि चाखि ।
मन-मधुकर आनंदघन चातक-रुचि अभिलाषि ॥ १ ॥
सुभकरनी हरनी-दुरित गुरु - सरनी सुखसार ।
भवतरनी बरनी बिसद-निज - निदेस अनुसार ॥ २ ॥
श्रीगुरुवदन - मयंक तें बहै चंद्रिका चाहि ।
चित-चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि ॥ ३ ॥
श्रीनिकेत नित परमगुरु श्रीनारायनदेव ।
हंस - रूप सनकादि सों उपदेस्यौ निज भेव ॥ ४ ॥
बिषय-नीर जल-छीर लौं ब्यौरि दियौ रसदानि ।
कृपा-कलपतरु है सदा निज जनहित पहचानि ॥ ५ ॥
भव-पारद नारद भए तिन उपदेस - प्रसाद ।
बीना धरि हरिकीरतन - मगन प्रेम - उनमाद ॥ ६ ॥
कलिकालीन मलीन जन तिन उधार कैं चाव ।
करुनानिधि इहिं बिधि कियौ प्रभुगुन-गान-प्रभाव ॥ ७ ॥
नारद हारद-रूप धरि भरि आवेस अपार ।
संप्रदाय - थापन प्रगट निंबादित्य उदार ॥ ८ ॥
ब्यापक बिपुल प्रताप जग हरयौ मोह-नीहार ।
अमल कमल बिकसे सुहृद तरुन करुन अवतार ॥ ९ ॥
रवि राख्यौ भाख्यौ जगत कहूँ कौनहूँ दाव ।
प्रभु की प्रभा प्रभाव को करि साखा-ससि-न्याव ॥ १० ॥

[२] तरनी=नाव । [३] भाषा=ब्रजभाषा । अमरभनित=संस्कृत, अमरवाणी । [४] भेव=भेद । [६] भव०=भवसागर से पार करनेवाले । [८] हारद=हार्द, मानस । [१०] रवि०=भक्त-माल में कथा है कि कोई यति (जैन) इनसे शास्त्रार्थ कर रहाथा, सूर्यास्त होरहा था इससे इन्होंने उससे भोजन करने को कहा (जैन सूर्यास्त हो जाने पर भोजन नहीं करते) । जब तक वह भोजन नहीं कर चुका तब तक इन्होंने सूर्य को नीम के पेड़ पर रोक

गस जिनि गह्यौ कह्यौ सो ऐ पर उचित आहि अपराध छमाईं।
अतुल प्रेम की कला करोरिक तुम बिधि अबिधि दाबि दरसाईं।
या बिधि तन मन धन दै रंकहिं रिनी कियौ अपनी अगराईं
बुरो मानिबो उर न आनिबो अब तुम ही सब भाँति भलाईं ॥८७॥

त्रिभंगी

सब सुखनिधि मुख सुषमानिधि रसनिधि जसनिधि हितनिधि लहिकिनतूँ
भ्रम-स्रम-भंजन सुचि रुचि रंजन मुनिमनरंजन पन गहि किन तूँ।
आनँदघन अमित अपार सारस्रुति सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत-द्रव मैँ मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८८॥
जग-छीलर सुलप सलिल सुख-संपति तिहिँ तजि तनक उमहि किन तूँ।
प्रसरित भ्रमजाल बिसाल तहाँ यह सुख सुनि वेगि निबहि लहि किन तूँ।
आनँदघन सदा सरस सीतल सतसंगहि लहि अवगहि किन तूँ।
श्रीकृस्ननाम अंमृत-द्रव मैँ मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८९॥
मोहन - मुरली अंमृत - धुनि सुनि मोहति रस - बस ह्वै।
अद्भुत अनुराग रचना जब जब प्रताप जड़ चलत जु च्वै।
जमुना-जल अनिल सगन ससि बिथकित सबै चकित सरूप-गुन छ्वै।
आनँदघन गरजि गरजि वरसत व्रजतिय-हिय-तृषा-भावना भ्वै ॥९०॥
श्रीकृस्नकथा मंगलमनि है याते सिवब्रह्मानारदसारद मुनिसुकादि राखीभनि है
कीरति-कुल-कलस अलस तजि सेस सुनाम असेस सिथिल गनि है।
रसना हित रसद बिसद कामद निहकामनि कामधेनु धनि है।
गुन - रूप - रासि मोहन मुरलीधर स्रवन कथन मन सरसनि है।
व्रज आनँदघन गोपीजन - जीवन प्रेम वमँड सुख-रमँडनि है ॥९१॥
निरवधि सुखदायक रस मधि नायक ललित सुभायक नवनागर।
राधामन- रंजन प्रीतम- अंजन मानस - मंजन गुन - सागर।
अच्युत आनँदघन व्रज जीवनधन बन बिहरत क्रीड़ा - आगर।
मोहन-मुरली-रत रमनी - संजुत रुचि अद्भुत रजनी - जागर ॥९२॥

———

परमहंस-वंशावली

दोहा

श्रीगुरुपदवर - कोकनद - नव-मकरंदहि चाखि ।
मन-मधुकर आनंदवन चातक-रुचि अभिलाषि ॥ १ ॥
सुभकरनी हरनी-दुरित गुरु - सरनी सुखसार ।
भवतरनी वरनी विमद-निज - निदेस अनुसार ॥ २ ॥
श्रीगुरुवदन - मयंक तें बढ़ि चंद्रिका चाहि ।
चित-चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि ॥ ३ ॥
श्रीनिकेत नित परमगुरु श्रीनारायनदेव ।
हंस - रूप सनकादि सों उपदेस्यौ निज भेव ॥ ४ ॥
विषय-जीव जल-छीर लौं न्यौरि दियौ रसदानि ।
कृपा-कलपतरु है सदा निज जनहित पहचानि ॥ ५ ॥
भव-पारद नारद भए तिन उपदेस - प्रसाद ।
बीना धरि हरिकीरतन - मगन प्रेम - उनमाद ॥ ६ ॥
कलिकालीन मलीन जन तिन उधार कैं चाव ।
करुनानिधि इहिं विधि कियौ प्रभुगुन-गान-प्रभाव ॥ ७ ॥
नारद हारद-रूप धरि भरि आवेस अपार ।
संप्रदाय - थापन प्रगट निंबादित्य उदार ॥ ८ ॥
व्यापक विपुल प्रताप जग हरयौ मोह-नीहार ।
अमल कमल विकसे सुहृद तरुन करुन अवतार ॥ ९ ॥
रवि राख्यौ भाख्यौ जगत कहूँ कौनहूँ दाव ।
प्रभु की प्रभा प्रभाव को करि साखा-ससि-न्याव ॥ १० ॥

[२] तरनी = नाव । [३] भाषा = ब्रजभाषा । अमरभनित = संस्कृत, अमरवाणी । [४] भेव = भेद । [६] भव० = भवसागर से पार करनेवाले । [८] हारद = हार्द, मानस । [१०] रवि० = भक्त-माल में कथा है कि कोई यति (जैन) इनसे शास्त्रार्थ कर रहाथा, सूर्यास्त होरहा था इससे इन्होंने उससे भोजन करने को कहा (जैन सूर्यास्त हो जाने पर भोजन नहीं करते) । जब तक वह भोजन नहीं कर चुका तब तक इन्हों ने सूर्य को नीम के पेड़ पर रोक

श्रीनिवास तिनतैं भए आचारज बिख्यात।
श्रीजुत महिमाजुत महा जग कीरति अवदात ॥ ११ ॥
बिस्वाचारज बिस्वहित तिनकैं कृपानिकेत।
तिनतैं पुरुषोत्तम प्रगट आचारज जस-केत ॥ १२ ॥
भई बिलासाचारजै तिनतैं कृपा अमोघ।
हरिबिलास-बिलसित सदा हरे जगत-अघ-ओघ ॥ १३ ॥
कहौ सरूपाचारजै तिनकैं कृपा-स्वरूप।
बहुरि माधवाचारजै तिनकी कृपा अनूप ॥ १४ ॥
आचारज बलभद्र कौं तिनतैं मिल्यौ प्रसाद।
तिन करि पद्माचारजै पूरन प्रेमसवाद ॥ १५ ॥
स्यामाचारज स्यामरत तिनकी कृपा प्रकास।
गोपालाचारज भजौ पुनि उन अंतेबासि ॥ १६ ॥
तिन सुदृस्टि-रसबृस्टि तैं कृपाचारजै तोष।
हरिगुन गसि जड़ जियनि कौं दई बंध तैं मोष ॥ १७ ॥
श्रीदेवाचारज भए तिनके सिस्य प्रबीन।
कृस्न-चरन-रति-दान दै करे कृतारथ दीन ॥ १८ ॥
तिनतैं सुंदर भट्ट को भौ सब सुंदर काज।
पद्मनाभ भट्टहि भजौ तिनकी कृपा-जिहाज ॥ १९ ॥
पुनि उपेंद्र भट्टहि कहौ तिन उपदेसागार।
रामचंद्र भट्टहि मिल्यौ तिनतैं ब्रजरस-सार ॥ २० ॥
तिनतैं बावन भट्ट को बढ़्यौ प्रताप प्रचंड।
कृस्न भट्ट श्रीजुत भए तिन उपदेस अखंड ॥ २१ ॥
श्रीपद्माकर भट्ट कौं तिन सुदेस उपदेस।
स्रवन भट्ट तिनतैं लह्यौ नाम-प्रसाद असेष ॥ २२ ॥

खा। इसीसे 'निंबादित्य' कहलाए। साखा० = शाखा-चँद्र न्याय। चंद्रमा को देखाने के लिए कोई पेड़ दिखाकर कहा जाता है कि चंद्रमा उस शाखा पर है। ११] अवदात = स्वच्छ, निर्मल। [१२] केत = केतु, पताका [१३] अघ० = पापों का समूह। [१६] अंतेबासी = शिष्य। [२२] सुदेस = सुंदर।

भूरिभाग - भाजन भए भूरि भट्ट तिन सोय।
तिनतें माधव भट्ट लै दई अनेकनि भोप ॥ २३ ॥
स्याम भट्ट तिनतें लह्यौ स्याम-नाम अभिराम।
पुनि गुपाल भट्टहि मिली तिन करि हरिगुन-दाम ॥ २४ ॥
भए भट्ट बलभद्र पुनि बलनिधि तिन उपदेस।
गोपीनाथ सुभट्ट कौं तिनतें नामादेस ॥ २५ ॥
तिन करि केसव भट्ट कौं मिल्यौ सु केसव नाम।
मंगल भट्ट भलें भए तिनतें मंगल - धाम ॥ २६ ॥
ख्याति कासमीरी विपुल श्रीकेसव सुभ नाम।
विद्यानिधि बानी विसद तिन प्रसाद अभिराम ॥ २७ ॥
काजी कौं माजी कियौ माड़ी मथुरा मैंड।
हरिजन - राजी संग लै साजी गुरुता - ऐंड ॥ २८ ॥
तिन प्रसाद श्रीभट लही निरवधि रस की रासि।
सो संपति परति न कही दंपति भलें उपासि ॥ २९ ॥
जुगुलचंद सुखकंद को बनविनोद रसभूरि।
भाख्यौ हित राख्यौ सु नित चित-बेला बलि पूरि ॥ ३० ॥
तिन हारद के हृद भए हरिव्यास बड़देव।
अति गँभीर आसय सरस सबनि करी जिहिं सेव ॥ ३१ ॥
महिमा विदित कहौं कहा देवन नगर मझार।
देवी कौं उपदेस दै मेट्यौ पसुसंहार ॥ ३२ ॥
हिंसा-हतन करयौ भलें लयौ सुधरम जिवाय।
करुनानिधि कलिकाल मैं या विधि कियौ सहाय ॥ ३३ ॥
तिन सिस्यनि संख्या नहीं मही महोदधि-रूप।
अमित प्रताप पुनीत जस सबै धर्मधुज-भूप ॥ ३४ ॥

[२३] भोप=भिक्षा। [२४] दाम=माला। [२८] काजी=न्याय-कर्ता। माजी०=मार्जन किया, दंड दिया। माड़ी=मँडित की, स्थापित की। मैंड़=मर्यादा। राजी=पंक्ति, समूह। ऐंड=दबदबा। [२९] दंपति=राधा-कृष्ण। उपासि=उपासना करके। [३१] हारद=हार्द, कृपालु। हृद=हृदय।

तिनके पाट बिराजि कै परमानिधि श्रीमान।
पदवो कौं पदवी दई मुनिबर कृपानिधान ॥ ३५ ॥
अगम पदारथ सुगम किय भाषा हित-बिस्तार।
....॥ ३६ ॥

हरिगुन-चरितनि सुरसरित महाधीर मति मौन।
तहाँ नमित नरपति कहँ कहौ बड़ाई कौन ॥ ३७ ॥
जीवदया हरिधर्म - हित रच्यौ सत्र सुखदानि।
श्रीपुहकर दिसि बिदित नित साधुसंत सनमानि ॥ ३८ ॥
तिनके पाट लसे बसे मुनिवर श्रीहरिबंस।
अति बिवेक विज्ञान-घन जसनिधि परम प्रसंस ॥ ३९ ॥
श्रीनारायनदेव कौं तिनको कृपा-प्रसाद।
अति उदार बिद्याबिपुल पूरन प्रेम-सवाद ॥४० ॥
सदा कृस्न-गुन-कथन-रत मत-मँडन-जय-रूप।
बिमुखनि खंडन बचनबर-रचना - तुँड अनूप ॥ ४१ ॥
दीन-सरनदायक करुन हरन अखिल-दुख-दोष।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जग करन-जीव-परितोष ॥ ४२ ॥
बिद्यानिधि बहुविधि निपुन कृपा-अवधि रसकंद।
वचनरचन हरिचरितमय ससि तैं अमल अमंद ॥ ४३ ॥
जग-बोहित मो हित प्रगट हरिबिनोद निजधाम।
अवनीमनि श्रीयुत सदा बृंदावन अभिराम ॥ ४४ ॥
विसे बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हैं बीस।
सदा वसौ नीकैं लसौ कृपा - ईस मो सीस ॥ ४५ ॥
परमहंस - वंसावली रची सची इहिं भाय।
कंठ धारिहैं गुरुमुखी सुखदाई समुदाय ॥ ४६ ॥
कासीवासी सेप गन निगमागमन-प्रवीन।
निंबादित्य - अनुगम सबै परम पुनीत कुलीन ॥ ४७ ॥
तिनको वंस प्रसंस जग जगमग ज्यौं द्विजराज।
गनमंडित पंडित विबुध सोभित सदा समाज ॥ ४८ ॥

तिन करि यह निहचय करी परंपरा की रीति ।
स्रुति औ सुमृति पुरान की कथा पुरातन नीति ॥ ४९ ॥

आचारज हरिवपु सदा स्रुति भागवत प्रमान ।
... .॥ ५० ॥

जब जब धर्मगिलानि को हित अवनी संचार ।
तब तब निज वपु धरि करैं जगत-जीव-निस्तार ॥ ५१ ॥

कृस्नावेस-स्वरूप हैं आचारज जग माँहि ।
अप्राकृत जानौ तिन्हैं यामैं संसै नाहिं ॥ ५२ ॥

उभै लोक साधन यहै अभेदान को भावँ ।
हरिगुन - माल रसाल कौं धरन करो सुभावँ ॥ ५३ ॥

प्रतीकानुक्रमणी

कवित्त

['कवित्त' से तात्पर्य मनहरण, सवैया और छप्पय से है। अंक छंदों के हैं। अंकों के पीछे के अक्षर ग्रंथों के प्रतीक हैं। जिनमें ये अक्षर नहीं वे 'सुजानहित' के हैं। कृ०=कृपाकंद। वृं०=वृंदावनमुद्रा। प्रे०=प्रेमपद्धति। दा०=दानघटा। प्र०=प्रकीर्णक।]

पद